जनवरी-मार्च, 1996

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913 : विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
जनवरी-मार्च 1996 : वर्ष 81 अंक 10-12 मूल्य : यह अंक : 10 रु० 50 पैसे
आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत : 500 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 60 रु०, वार्षिक 25 रु० एक प्रति : 3 रु० 50 पैसे

विज्ञान विस्तार

चमत्कारिक चुम्बकीय चिकित्सा-पद्धति—चंचलमल चोरड़िया ... 1
बीरबल साहनी पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान—दीपक कोहली एवं अजय श्रीवास्तव ... 6
हिमालय का उद्भव—दीपक कोहली एवं समीर कुमार बेरा ... 9
विज्ञान के लोकप्रियकरण का विनम्र प्रयास—डॉ० शिवगोपाल मिश्र ... 11
धरा पर पादपों का उद्भव एवं विकास—डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय ... 15
सौर ऊर्जा-बीमार फसलों के लिए वरदान—डॉ० अरुण आर्य्य ... 17
भौतिकी के रंग एवं रंगों की भौतिकी—योगेन्द्र बहादुर सिंह ... 20
देवी-देवताओं को दुग्धपान कराने की घटना संबंधी प्रतिक्रिया—श्यामसरन विक्रम, विमलेश चन्द्र ... 23
सद्भावना पखवाडा समारोह—डॉ० सुनीता राय ... 25
विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिये प्रयास जरूरी ... 28
संचार क्रांति में नया आयाम : पेजिंग —प्रमोद कुमार गुप्त ... 30
रोबोट करेंगे अब खेती-बाड़ी—संजीव त्रिपाठी ... 33
आधुनिक चिकित्सा में महात्मा गाँधी के विचारों की प्रासंगिकता —डॉ० देवेन्द्र नाथ सिन्हा ... 35
विज्ञान वक्तव्य— ... 38

चामत्कारिक चुम्बकीय चिकित्सा-पद्धति

□ चंचलमल चोरड़िया

अध्यक्ष, महावीर इंटरनेशनल, जोधपुर,
चोरड़िया भवन, जालोरी गेट, जोधपुर, राजस्थान

शरीर में स्वयं स्वस्थ होने की क्षमता है

"पहला सुख नीरोगी काया" अच्छा स्वास्थ्य सुखी जीवन की सर्वोच्च आवश्यकता है। परन्तु चाहते हुए भी वास्तव में हम कितने नीरोग या स्वस्थ हैं, चिन्तन का प्रश्न है ? अनादिकाल से इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु वैज्ञानिकों, चिकित्सकों की निरन्तर खोज के बावजूद आज रोग एवं रोगियों की संख्या बढ़ रही है। अधिकांश व्यक्ति बाहर से स्वस्थ दिखाई देते हुए भी अनेक रोगों से त्रस्त हैं। शारीरिक, मानसिक असंतुलन रोगों का मूल कारण है जिसको नकारा जा रहा है। हम यह जानते हैं कि तनाव से रोग बढ़ते हैं फिर भी अधिकांश व्यक्ति तनावग्रस्त हैं एवं चिकित्सकों के पास कोई सरल दवा या इंजेक्शन नहीं। सफलता की बड़ी-बड़ी डींगे हांकने वाले अभी तक शरीर में असंख्य कोशिकाओं में से किसी एक का भी निर्माण कर पाने में समर्थ नहीं हुए, रक्त की एक बूँद न बना सके। हड्डी, मांस, मज्जा का निर्माण न कर सके, जो प्रत्येक चेतनाशील प्राणी में स्वत: विकसित होते हैं। मानव शरीर में स्वयं अधिकांश रोगों को दूर करने की क्षमता होती है। बाजार से मिलने वाली दवाइयाँ ऊर्जा के मूल स्रोत नहीं। कोई अच्छा चिकित्सक अथवा दवाई शरीर को अपना उपचार स्वयं कर सकने की प्राकृतिक शक्ति में सहायक मात्र होते हैं। अत: हमें जीने की प्राकृतिक विधि सीखनी होगी ताकि हम रोगग्रस्त ही न हों ? हम कब, कितना, कैसे श्वास लें ? पानी पीवें ? खाना कब खावें ? कैसा खावें ? कितना खावें ? कैसे खावें ? हमारा आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान कैसा हो उसका चिन्तन करें, क्या आवश्यक है, क्या त्याज्य है और क्या ग्रहणीय है ? उसका विवेक रख आचरण करें तो अधिकांश रोगों से स्वत: मुक्त हो जावेगी।

आज चेतनाशील जीवों में मानव का प्रतिशत 0.1% से भी कम है। 99.9% प्रतिशत जीवों को तो स्वास्थ्य संबंधी तनिक भी जानकारी नहीं होती, न वे चिकित्सकों के पास उपचार कराने हेतु जाते हैं, न चिकित्सा संबंधी भाषण ही सुनते हैं फिर भी उनका जीवन कैसे चल रहा है, वे असाध्य रोगों से पीड़ित क्यों नहीं होते और हो भी जावें तो पुन: स्वस्थ कैसे होते हैं ? अत: हमें पूर्वाग्रह छोड़ रोग के मूल कारणों को जानकर दूर करना होगा तब ही हम रोगों से बच सकेंगे।

संतुलन ही स्वास्थ्य का मूलाधार है

रोगों की रोकथाम के लिए आवश्यक है कि शरीर में जमें अनावश्यक तत्वों को बाहर निकाला जावे एवं शरीर के सभी अंग उपांगों को संतुलित रख शारीरिक क्रियाओं को नियंत्रित रखा जावे। जो अधिक सक्रिय हैं उन्हें शान्त किया जावे तथा जो असक्रिय हैं उन्हें सक्रिय किया जावे। "असंतुलन ही सभी रोगों की जड़ है।" चुम्बक इन सभी कार्यों में प्रभावशाली है अत: रोगों के उपचार एवं बचाव में विभिन्न प्रकार की चुम्बकीय ऊर्जा का उपयोग दिन-प्रतिदिन लोकप्रिय होता जा रहा है। चुम्बकीय ऊर्जा में शरीर के उन सभी रोगों को दूर करने की ताकत है जो शारीरिक क्रियाओं से विशेष रूप से

संबंधित है। उसका प्रभाव हड्डी अथवा शरीर के अन्य अवयवों तक सीधे पहुँचने की क्षमता के कारण उपचार शीघ्र एवं प्रभावशाली होता है।

पृथ्वी के चुम्बक का हमारे जीवन पर प्रभाव

वैज्ञानिकों की ऐसी मान्यता है कि सारे ब्रह्माण्ड का मूलाधार चुम्बकीय शक्ति है एवं उसके प्रभाव से ही सारे ग्रहों, उपग्रहों, नक्षत्रों को एक दूसरे से जुड़े रहने की शक्ति प्राप्त होती है। पृथ्वी हो या सूर्य, चन्द्रमा अथवा अन्य ग्रह एवं नक्षत्र सभी चुम्बकीय ऊर्जा के स्रोत हैं जिनका हमारे जीवन पर गहन प्रभाव पड़ता है। पृथ्वी स्वयं एक शक्तिशाली चुम्बक है एवं प्राणीमात्र के शरीर में भी चुम्बकीय शक्ति होती है। जब तक पृथ्वी के चुम्बक का हमारी चुम्बकीय ऊर्जा पर संतुलन और नियंत्रण रहता है तब तक हम स्वस्थ रहते हैं। जितने-जितने हम प्रकृति के समीप खुले वातावरण में रहते हैं हमारे स्वास्थ्य में निश्चित रूप से सुधार होता है। परन्तु आजकल हम चारों तरफ चुम्बकीय शक्ति को प्रभावित करने वाले वातावरण के बीच रहते हैं। हम खाने-पीने में प्राय: स्टील के बर्तनों का उपयोग करते हैं। आवागमन के लिए साइकिल, स्कूटर, कार, बस, रेल, हवाई जहाज या स्टीमर आदि का उपयोग करते हैं। मकानों में आर० सी० सी० का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। अधिकांश मशीनें, उपकरण, फर्नीचर आदि जिन्हें हम प्रतिदिन काम में लेते हैं, लोहे की बनी होती हैं जिससे पृथ्वी के चुम्बक का प्रभाव हमारे शरीर में घटता जा रहा है। हम कुएं का पानी उपयोग में लेने के बजाय जो पानी, कार्य में लेते हैं वह लोहे की पाइप लाइनों से आता है। दूसरी तरफ आज पृथ्वी का अन्धाधुन्ध दोहन किया जा रहा है, जिससे उसकी चुम्बकीय ऊर्जा कम होती जा रही है एवं उसका प्रभाव घटता जा रहा है। शरीर में चुम्बकीय ऊर्जा उपलब्ध करा दी जावें तो रोग दूर हो सकते हैं। चुम्बकीय चिकित्सा का यहीं सिद्धान्त है। इसी कारण खुले वातावरण में विचरण करने वाले, गाँवों में रहने वाले, कुएँ का पानी पीने वाले, पैदल चलने वाले अपेक्षाकृत स्वस्थ रहते हैं। जितना-जितना पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र से संपर्क बढ़ेगा, शरीर की सारी क्रियायें संतुलित एवं नियंत्रित होंगी, उतने-उतने हम रोग-मुक्त होते जावेंगे।

विभिन्न क्षेत्रों में चुम्बक के प्रयोग

आज विश्व भर में चुम्बकीय ऊर्जा का उपयोग सभी क्षेत्रों में बढ़ता जा रहा है। कृषि में चुम्बकीय ऊर्जा से प्रभावित पानी का उपयोग करने से अन्य सभी परिस्थितियाँ एक होने के बावजूद उत्पादन 10 से 15 प्रतिशत बढ़ जाता है। निर्माण कार्यों में ऐसे पानी के उपयोग से निर्माण में काम आने वाली सीमेन्ट, चूंना जैसे पदार्थों की ताकत 15 से 20 प्रतिशत बढ़ जाती है। शल्य चिकित्सा के पश्चात् चुम्बकीय ऊर्जा के उपयोग से शरीर की हीलींग क्षमता बढ़ जाती है, अत: बहुत से देशों में शल्य-चिकित्सा के पश्चात् जो रूई, पट्टियां आदि लगाई जाती हैं वे चुम्बकीय ऊर्जा से प्रभावित होती हैं, ताकि घाव जल्दी भर सकें। चुम्बकीय ऊर्जा पर शोध विविध क्षेत्रों में हो रही है एवं उसके जो प्रभावशाली परिणाम आ रहे हैं वे हमारी पूर्वग्रसित मान्यताओं को झकझोर देने वाले हैं। चुम्बक प्रभावशाली दर्दनाशक है।

वैज्ञानिकों का ऐसा निष्कर्ष है कि चुम्बक का थोड़ा या ज्यादा प्रभाव प्राय: सभी पदार्थों पर पड़ता है। यदि खेती में बोये जाने वाले बीजों को चुम्बकीय प्रभाव में रखा जावे तो वे अधिक पैदावार देते हैं। चुम्बक की विशेषता है कि वह किसी भी अवरोधक को पार कर अपना प्रभाव छोड़ने की क्षमता रखता है। जिस प्रकार बैटरी चार्ज करने के पश्चात् पुन: उपयोगी बन जाती है उसी प्रकार शारीरिक चुम्बकीय प्रभाव को विशेष चुम्बकों द्वारा संतुलित एवं नियंत्रित किया जा सकता है। चुम्बक का प्रभाव हड्डी जैसे कठोरतम भाग को पार कर सकता है, अत: हड्डी सम्बन्धी दर्द निवारण में चुम्बकीय चिकित्सा रामबाण के तुल्य है।

चुम्बकीय चिकित्सा की विशेषता

चुम्बकीय चिकित्सा पद्धति पूर्णतया वैज्ञानिक एवं प्राकृतिक नियमों पर आधारित है। यह सहज, सरल, पीड़ा रहित, पूर्ण अहिंसक, दुष्प्रभावों से रहित और सस्ती

है। इसके उपचार हेतु शरीर विज्ञान की विशेष जानकारी आवश्यक नहीं। अन्य चिकित्सा पद्धतियों द्वारा उपचार कराने के साथ भी इसको अपनाया जा सकता है। रोगी स्वयं घर बैठे-बैठे अपना उपचार कर सकता है, न ज्यादा स्थान चाहिए, न बड़े-बड़े खर्चीले अस्पताल अथवा रसायनिक प्रयोगशालायें। स्थायी चुम्बक से अनेक व्यक्तियों का अनेक वर्षों तक उपचार किया जा सकता है तथा प्रभाव कम होने पर बैटरी की भाँति पुन: चार्ज किये जा सकते हैं। चुम्बक को गिराने, धूम या अग्नि के पास रखने से चुम्बकीय क्षमता क्षीण हो जाती है।

चुम्बकीय चिकित्सा पद्धति में किसी भी प्रकार के टीके, दवाई, मालिश अथवा गहरे दबाव की आवश्यकता नहीं होती, केवल रोग के अनुसार चुम्बकों को पगथली, हथेली और रोगग्रस्त स्थान पर थोड़े समय के लिए छूना पड़ता है। पथ्यापथ्य का उतना परहेज नहीं रखना पड़ता जितना अन्य चिकित्सा पद्धतियों में आवश्यक है। रोग मुक्त होने के पश्चात् चुम्बकों का उपयोग छोड़ने में कोई कठिनाई नहीं होती, जैसा कि आजकल चन्द रोगों में दवाई जीवन का आवश्यक अंग बन जाती है। यह पद्धति सभी रोगों के उपचार तथा बचाव दोनों में सक्षम है। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में तो इस पद्धति से शीघ्र लाभ पहुँचता ही है परन्तु अनेक असाध्य रोगों में भी इससे राहत मिलती है। चुम्बक शरीर से पीड़ा दूर करने में बहुत प्रभावशाली है, घावों को शीघ्र भरता है, रक्त संचार ठीक करता है एवं हड्डियों को जोड़ने में मदद करता है।

चुम्बकीय उपचार का सिद्धान्त एवं विशेषतायें

शरीर मूल रूप से एक विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र है। शरीर की प्रत्येक कोशिका (सेल) विद्युत की एक इकाई है और उसका अपना क्षेत्र है। विद्युत के समान सबसे अधिक शक्तिशाली चुम्बकत्व मस्तिष्क में पैदा होता है और वह भी जब व्यक्ति निद्रा में होता है। ये चुम्बकीय क्षेत्र शरीर एवं मन में परिवर्तनों के अनुसार घटते-बढ़ते रहते हैं। चुम्बकीय चिकित्सा का मूल मन्त्र यह है कि शरीर में चुम्बकीय क्षेत्रों का संतुलन बनाये रखा जाय। चुम्बकीय सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक चुम्बक में प्राय: दो ध्रुव होते हैं, एक को उत्तरी ध्रुव व दूसरे को दक्षिणी ध्रुव कहते हैं। छड़ी वाले चुम्बक को धागे से बाँध सीधा लटकाने पर जो किनारा भौगोलिक उत्तर की तरफ स्थिर होता है, चुम्बकीय चिकित्सा में उस ध्रुव को दक्षिणी ध्रुव कहते हैं। बहुत से चुम्बक-उत्पादक उस पर 'True South Pole' यानि सही दक्षिणी ध्रुव लिखते हैं तथा दूसरा किनारा उससे विपरीत यानि उत्तरी ध्रुव या 'True North Pole' होता है। दो चुम्बकों के विपरीत ध्रुवों में आकर्षण होता है तथा समान ध्रुव एक दूसरे को दूर फेंकते हैं। दक्षिणी ध्रुव का प्रभाव गर्मी बढ़ाना, फैलाना, उत्तेजित करना, सक्रियता बढ़ाना हैं जबकि उत्तरी ध्रुव का प्रभाव इसके विपरीत शरीर में गर्मी कम करना, अंग सिकोड़ना, शांत करना, सक्रियता को नियंत्रित एवं संतुलित करना आदि हैं। चुम्बकीय ऊर्जा के माप की इकाई गौस अथवा ओस्टडे के नाम से जानी जाती है। जितना ज्यादा शक्तिशाली चुम्बक होगा उतना ही अधिक चुम्बकीय धातुओं के प्रति उसका आकर्षण होगा। छोटे बच्चों के कम शक्तिवाले चुम्बक को लगाना चाहिए। अन्य व्यक्तियों के चेहरे तथा हृदय जैसे कोमल भाग पर प्राय: कम शक्तिवाले चुम्बक लगाने चाहिए। परन्तु असाध्य एवं भयंकर रोगों में ज्यादा शक्ति वाले चुम्बकों का प्रयोग अनुभवी चिकित्सकों के मार्ग निर्देशन में किया जा सकता है।

चुम्बकीय उपचार की मुख्य तीन विधियाँ

1. रोगग्रस्त अंग पर आवश्यकतानुसार चुम्बक का स्पर्श करते से चुम्बकीय ऊर्जा उस क्षेत्र में संतुलित की जाती है। स्थायी रोगों, दर्द आदि में इससे काफी राहत मिलती है।

2. एक्यूप्रेशर की रिफलेक्सोलोजी के सिद्धान्तानुसार शरीर की सभी नाड़ियों के अन्तिम सिरे दोनों हथेली एवं दोनों पगथली के आसपास होते हैं। इन क्षेत्रों को चुम्बकीय प्रभाव क्षेत्र में रखने से वहां पर जमे अविजातीय पदार्थ दूर हो जाते हैं तथा रक्त एवं प्राण ऊर्जा का शरीर में प्रवाह संतुलित होने लगता है, जिससे रोग दूर हो जाते हैं। इस विधि के अनुसार दोनों हथेली एवं दोनों पगथली के नीचे कुछ समय के लिए चुम्बक को स्पर्श कराया जाता

है । दाहिनी हथेली एवं पगथली के नीचे सक्रियता संतुलित करने वाला उत्तरी ध्रुव तथा दाहिनी पगथली एवं हथेली के नीचे शरीर में सक्रियता बढ़ाने वाला दक्षिणी ध्रुव लगाना चाहिए ।

3. चुम्बकीय प्रभाव क्षेत्र में किसी पदार्थ अथवा द्रव्य, तरल पदार्थों को रखने से उसमें चुम्बकीय गुण प्रकट होने लगते हैं, जैसे जल, दूध, तेल आदि । ऐसे द्रव्यों को चुम्बकीय बनाकर उपयोग करने से काफी लाभ पहुँचता है ।

शरीर में नाभि के नीचे से सम्बन्धित रोगों के लिए शक्तिशाली स्थायी चुम्बकों के विपरीत ध्रुव को दोनों पगथली के नीचे स्पर्श कराया जाता है तथा नाभि के ऊपर से सम्बन्धित रोगों में चुम्बक के दोनों विपरीत ध्रुव को हथेली में स्पर्श करने से अधिक प्रभाव पड़ता है । यदि शरीर के अंग विशेष पर उपचार करना हो तो नीचे दक्षिणी ध्रुव तथा ऊपर उत्तरी ध्रुव का प्रयोग करना चाहिए। जब शरीर का छोटा सा अंग रोगग्रस्त हो तो एक ही ध्रुव का प्रयोग करना चाहिए । परन्तु जब रोग सारे शरीर में व्याप्त हो तो चुम्बक के दोनों ध्रुवों का प्रयोग अधिक प्रभावशाली होता है । अगर रोग किसी रोगाणु के कारण हो तो उस स्थान पर उत्तरी ध्रुव लगाना चाहिए परन्तु जहाँ किसी रोगाणु के बाह्य लक्षणों के बिना पीड़ा, सूजन हो वहाँ दक्षिणी ध्रुव का प्रयोग करना चाहिए। उत्तरी ध्रुव रोग को बढ़ने से रोकता है एवं शारीरिक क्रियाओं को नियंत्रित करता है । जबकि दक्षिणी ध्रुव शरीर में शक्ति देता है अत: उसमें रोग रोकने की शक्ति बढ़ाने का गुण है । शरीर में रोग होने के दो मुख्य कारण हैं — आवश्यक तत्वों की कमी या अधिकता । किसी अंग की अत्यधिक सक्रियता अथवा असक्रियता । संतुलन ही स्वास्थ्य का प्रतीक है ।

शरीर पर घड़ी की सुई के चलने की दिशा में (Clockwise) मसाज करने से भी उस क्षेत्र में दक्षिणी ध्रुव के गुण प्रकट होने लगते हैं । इसी प्रकार एन्टी क्लाकवाइज मसाज से उत्तरी ध्रुव के गुण प्रकट होने लगते हैं । उपचार करते समय चुम्बक अथवा शरीर के जिस भाग को वह छू रहा है उसको गति देने से चुम्बकीय प्रभाव बढ़ जाता है । चुम्बक के प्रयोग इतने अधिक होने लगे हैं कि आज हमारे देश में चुम्बक के बेड, कुर्सी व हार, पट्टे एवं अनेक प्रकार के उपकरण बनने लग गये हैं ।

स्थायी चुम्बकों के अलावा आजकल बिजली के प्रवाह से चुम्बकीय प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है । ऐसे पलसेटिंग चुम्बक, रिंग चुम्बकों का प्रयोग भी स्थानीय अथवा हड्डियों के दर्द में किया जाने लगा है । दर्द वाले क्षेत्र को चुम्बकीय क्षेत्र में रखने से शरीर का वह भाग रोग मुक्त हो जाता है । बिजली के प्रवाह से बनने वाले चुम्बकों में बारी-बारी से तीव्र गति (50 साइकिल प्रति सेकेण्ड) से उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव बनते रहते हैं । बार बार उत्तेजित एवं शांत करने से दर्द में जल्दी राहत मिलती है । चुम्बकीय उपचार करते समय रोगी को लकड़ी के पट्टे पर ऐसे बैठाना चाहिए ताकि उसका कोई अंग धरती अथवा दीवार को स्पर्श न करे । दूसरी बात रोगी का मुँह पश्चिम दिशा में रखने से पृथ्वी का चुम्बकीय प्रभाव सहायक होने से उपचार अधिक प्रभावशाली हो जाता है।

चुम्बकीय चिकित्सा के पश्चात् शरीर में कुछ समय के लिए सक्रियता आने से गर्मी आ जाती है । अत: उपचार के कुछ समय बाद तक ठण्डी वस्तुओं का उपयोग नहीं करना श्रेयस्कर होता है । गर्भवती स्त्रियों और बच्चों पर अथवा शरीर के कोमल संवेदनशील अंगों जैसे चेहरे, हृदय आदि स्थानों पर शक्तिशाली चुम्बक अनुभवी चिकित्सकों के मार्ग दर्शन पर ही लगाने चाहिए । भोजन के 2-3 घंटे बाद तक प्राय: उपचार नहीं करना चाहिए ।

चुम्बकीय चिकित्सा की अवधि

चुम्बकीय चिकित्सा सामान्यतया लगभग 10 से 15 मिनट एक स्थान पर करनी चाहिए परन्तु पुराने एवं असाध्य रोगों में चिकित्सकों के परामर्श एवं मार्ग-निर्देशन में समय परिस्थितियों एवं रोगी की अवस्था के अनुरूप निश्चित की जाती है । सामान्यतया चुम्बक चिकित्सा करते समय रोग में वृद्धि नहीं होती, परन्तु प्रारम्भ में यदि पीड़ा कुछ बढ़ जावे तो उसका कारण यह हो सकता है कि चुम्बक उस पीड़ा को दूर करने के लिए शरीर से निकल

हिमालय का उद्भव

❑ **दीपक कोहली एवं समीर कुमार बेरा**

बीरबल साहनी पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान,
53- विश्वविद्यालय मार्ग, लखनऊ -226007

हिमालय की उच्च पर्वत श्रृंखलाओं का विस्तार पूर्व में अरुणाचल प्रदेश से उत्तर पश्चिमी काश्मीर तक उत्तर भारत में है। यह पर्वतमालायें न केवल भारत वर्षकी अनुपम प्राकृतिक सम्पदा हैं, अपितु हमारी सीमा की सजग प्रहरी भी हैं। लेकिन क्या आप जानते हैं कि आज से करोड़ों वर्ष पूर्व उस स्थान पर "टैथीस" समुद्र था जहाँ आज हिमालय पर्वत स्थित है। जीवाश्मों के अध्ययन की सहायता से उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि हो चुकी है।

यदि हम भूतकाल के भौगोलिक स्वरूप पर निगाह डालें तो ज्ञात होता है कि उस समय नदियों का प्रवाह दक्षिण से उत्तर की ओर 'टेथीस सागर' में था, यह समुद्र आज अस्तित्व में नहीं है। नदियाँ अपने साथ लाये अवसाद (Sediments) का जमाव समुद्र में करती थीं। इस प्रकार जिन चट्टानों का निर्माण टेथीस समुद्र में हुआ, उनमें समुद्री जीवों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। यह सत्य है कि समुद्री जीवों के अश्मित अवशेषों की कल्पना पर्वतों में नहीं की जा सकती है, किन्तु हिमालय की चट्टानों में ऐसे समुद्री जीवाश्मों की उपस्थिति इंगित करती है कि जो अवसाद करोड़ों वर्ष पूर्व टैथीस समुद्र में एकत्रित हुए थे, उनमें उत्तरोत्तर वृद्धि के फलस्वरूप हिमालय की ऊँची पर्वत श्रृंखलाओं का निर्माण हुआ। उल्लेखनीय है कि हिमालय पर्वत श्रेणी हमारे देश की नवीनतम् पर्वत श्रेणी है।

'स्ट्रोमैटोलाइट्स' ऐसी संरचनायें हैं जो कि नील-हरित शैवाल (सायनोबैक्टीरिया) एवं जीवाणुओं के समुद्र तटीय अवसादन के फलस्वरूप निर्मित हुई हैं। यह स्ट्रोमैटोलाइट्स 650 से 1000 लाख वर्ष पूर्व की लाइमस्टोन चट्टानों (नैनीताल, पिथौरागढ़, जम्मू एवं काश्मीर आदि) में पाये गये हैं। इसके अतिरिक्त कैल्केरियस नोड्यूल्स के रूप में परमियन कल्प के अवसादों से समुद्री जन्तुओं के जीवाश्म अरुणाचल प्रदेश से मिले हैं एवं एककोशकीय समुद्री शैवाल, 'डायनोफ्लैजीलेट' के अवशेष, 650 लाख वर्ष प्राचीन अवसाद में मेघालय से प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जो टैथीस समुद्र 1000 लाख वर्ष पूर्व तक उपस्थित था, वह 650 लाख वर्ष पूर्व तक अस्तित्व में बना रहा होगा।

लगभग 300 लाख वर्ष पूर्व भारत उच्च अक्ष रेखा पर दक्षिण ध्रुव के अत्यन्त निकट था। 75 लाख वर्ष पहले यह उत्तरी दिशा की ओर खिसकने लगा। यह घटना निरन्तर जारी रही जिस कारण अवसाद का चूर्णन हुआ एवं टैथीस समुद्र छिछला और संकरा होता चला गया। इस कारण पूर्व-पश्चिम संग्रहण क्षेत्र बने एवं मध्यवर्ती उच्च भूमि का निर्माण हुआ। इस घटना की अवधि लगभग 37 से 53 लाख वर्ष पूर्व की है। 'लिवीस्टोना पॉम' (जो कि आज पर्वतों के ढाल एवं घाटियों में मिलता है) की पत्तियों के अश्मित अवशेष 36 लाख वर्ष पूर्व के अवसाद में लद्दाख क्षेत्र में 5000 मीटर की ऊँचाई पर मिले हैं। यह निष्कर्ष संकेत देता है कि 36 लाख वर्ष पहले हिमालय के कुछ क्षेत्र पर्याप्त ऊँचाई प्राप्त कर चुके थे।

उत्तर की ओर भारतीय महाद्वीप के विस्थापन की अन्तिम मुख्य अवस्था लगभग 15 लाख वर्ष पूर्व की है, जिस कारण भूमितल की ऊँचाई में और अधिक वृद्धि हुई।

प्रूनस पादप जो कि माज 1200 से 2100 मीटर (समुद्र तल से ऊँचाई) पर मिलता है, 15 लाख वर्ष पहले 5000 मीटर की ऊँचाई पर पाया जाता था।

उपर्युक्त प्रावस्था के पश्चात् हिमालय में पादपों का आरम्भिक अनुक्षेत्र वर्गीकरण प्रारम्भ हुआ। इसके 'निम्न वनस्पति क्षेत्र' में **डिप्टीरोकॉपर्स** (गुरजन), **बम्बूसा** (बाँस), **मैन्जी फेरा** (आम) आदि थे जब कि इसके

में 'उच्च अनुक्षेत्र' **डेओदारा** (देवदार), पाइनस (चीड), **पाइसिया** (स्पूस), **बैट्युला** (भोजपत्र) एवं **क्वैरकस** (ओक) आदि;पादपों का वर्चस्व स्थापित हुआ। इस प्रकार शनैः शनैः हिमालय को आज का स्वरूप प्राप्त हुआ।

जीवाश्मीय अध्ययन न केवल चट्टानों की आयु निर्धारित करते हैं, अपितु ये तत्कालीन वातावरण (पुराजलवायु), ऊँचाई व अक्ष रेखा के सम्बन्ध में भी महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। हिमालय की चट्टानों में दबे अश्मित जैवीय अवशेषों से ही ज्ञात हो सका है कि इस पर्वतमाला का निर्माण एक प्राचीन समुद्र से हुआ है। हमारे पौराणिक ग्रन्थों में भी 'क्षीर-सागर' से 'कैलाश पर्वत' की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है। ■■

मतभेदों को 'एवापोरेट' करें

डॉ० दिनेश मणि

सहायक सम्पादक 'विज्ञान'

'टु लव शुड बी आवर मोटो'
हम न किसी से 'हेट' करें।
'नेशनल इन्टीग्रेशन' हो सर्वोपरि
मतभेदों को 'एवापोरेट' करें
हम आपस में 'ब्यूरेट-पिपेट' बन
कुछ इस तरह से 'ट्राइट्रेट' करें।
कि सब 'मेरा भारत महान' कहें
सब मिल 'इण्डिया' को 'ग्रेट' करें।

....

विज्ञान परिषद प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

विज्ञान के लोकप्रियकरण का विनम्र प्रयास

❑ डॉ० शिवगोपाल मिश्र

25, अशोक नगर, इलाहाबाद-1

*पिछले दिनों 28 और 29 जनवरी 1996 को 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' और 'विज्ञान प्रसार' के संयुक्त तत्वावधान में एक द्विदिवसीय संगोष्ठी "स्वतंत्रता पूर्व विज्ञान लोकप्रियकरण के व्यक्तिनिष्ठ प्रयास" विज्ञान परिषद् प्रयाग में सम्पन्न हुई। प्रस्तुत है संगोष्ठी के आयोजक प्रो० शिवगोपाल मिश्र जी द्वारा दिया गया व्याख्यान। **सम्पादक***

जिस साहित्य से विज्ञान विषयक जानकारी दी जा सके, वही विज्ञान साहित्य है। ऐसे विज्ञान साहित्य के कई स्तर या भेद हो सकते हैं :

(1) सामान्य, शिक्षित व्यक्तियों के लिए वैज्ञानिक जानकारी देने वाला साहित्य। इसे लोकप्रिय या जनप्रिय अथवा सुलभ साहित्य कह सकते हैं। का प्रकाशन पत्रिकाओं, पाक्षिक या साप्ताहिक अथवा दैनिक पत्रों द्वारा होता है। इसमें फुटकर ललित साहित्य, जिसमें कविता, कहानी, उपन्यास के माध्यम से विज्ञान विषयक जानकारी दी जाय एवं आकाशवाणी, दूरदर्शन द्वारा प्रसारित संवादात्मक साहित्य भी सम्मिलित किया जा सकता है।

(2) विवरणात्मक साहित्य जो प्राय: पाठ्यपुस्तकों के रूप में विद्यार्थियों के लिए लिखा जाता है।

(3) विज्ञान कोश : प्राय: विविध वैज्ञानिक विषयों की संक्षिप्त जानकारी कराने वाले या कोश या विश्वकोश।

(4) शोध निबन्ध : विभिन्न शाखाओं में हो रहे शोधकार्य का उच्चस्तरीय विवरण जिसका प्रकाशन राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय जर्नलों में होता है अथवा जिनको विभिन्न सेमिनारों में पढ़ा जाता है।

इस विज्ञान साहित्य के लिए जो भाषा व्यवहृत होती है उसके भी कई स्तर हैं। लोकप्रिय साहित्य में भाषा सरल रखी जाती है और तरह-तरह की शैलियों को प्रश्रय दिया जाता है जबकि पाठ्यपुस्तकों में निश्चित प्रकार की एवं पारिभाषिक शब्दों में संतृप्त भाषा प्रयुक्त होती है। शोध प्रबन्ध में नितान्त परिष्कृत शब्दावली का संयत् प्रयोग होता है जिसे-विशेषज्ञ ही व्यवहृत करते और समझते हैं।

स्मरण रहे कि वैज्ञानिक विचारधारा ऊपर से नीचे की ओर बहने वाली है। उच्च स्तरीय ज्ञान का सहजीकरण करके ही लोकप्रिय साहित्य का सृजन किया जाता है। अत: लोकप्रिय विज्ञान लेखकों को उच्च स्तर से विचार लेकर उन्हें सामान्य स्तर तक लाना होता है। इसके लिए आवश्यक शर्तों में विदेशी भाषाओं का ज्ञान, उन भाषाओं के उपलब्ध साहित्य का देशी भाषा में अनुवाद करने की क्षमता, विदेशी शब्दों को सर्वमान्य देशी पर्यायों का ज्ञान प्रमुख हैं। तभी उच्चस्तरीय विज्ञान का लोकप्रियकरण हो सकता है। **लोकप्रियकरण** सूचक है व्यापक बनाने के सद्प्रयासों का। अत: सामान्य जन जो कि अपने चारों ओर दिखने वाली वस्तुओं या घटित होने वाली घटनाओं को जानने में रुचि रखते हैं अर्थात् जो जिज्ञासु हैं **उन तक**

विज्ञान को पहुँचाना विज्ञान का लोकप्रियकरण है । फलस्वरूप लोकप्रियकरण के लिए आवश्यक है कि लोकरुचि से परिचित हुआ जाय और तदनुसार जन सामान्य की ही भाषा में ज्ञान प्रस्तुत किया जाय । ऐसी भाषा के माध्यम से कितना और कैसा ज्ञान परोसा जाय यह लेखक के विषय-ज्ञान तथा लेखन-शैली पर निर्भर करेगा । ज्ञान नया हो सकता है और पुराना भी । इसमें सिद्धान्त की बातें हो सकती हैं, नई खोजों का वर्णन हो सकता है, महान विज्ञानियों की जीवनियाँ हो सकती हैं, और विज्ञान-गल्प भी हो सकते हैं । स्पष्ट है कि ऐसा साहित्य अति व्यापक होगा अत: किसी एक लेखक की नहीं अपितु लेखकवृन्द की आवश्यकता होगी -इसमें पुरुष तथा स्त्री दोनों प्रकार के लेखकों की भागीदारी होनी चाहिए और अनेकानेक पत्रिकाओं, पाक्षिक, साप्ताहिक तथा दैनिक पत्रों का प्रकाशन एवं वितरण होना चाहिए । लोकप्रियकरण के लिए आवश्यक है कि जो भी साहित्य छपे वह सामान्य जन तक, पाठकों तक पहुँचे, वह पुस्तकालयों की अलमारियों में बन्द न हो जाय । यह साहित्य आबालवृद्ध बनिता के लिए-अर्थात् बच्चों, युवकों, वृद्धों- सबों के लिए होना चाहिए । इसमें कृषि, स्वास्थ्य, इंजीनियरी, ज्योतिष, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान के चुने-चुने विषयों की संक्षिप्त, सहज, आकर्षक तथा सचित्र जानकारी प्रस्तुत की जानी चाहिए।

यहाँ पर प्रश्न उठाया जा सकता है कि विज्ञान का उच्चस्तरीय साहित्य लोकप्रियकरण की सीमा के भीतर है या इसकी सीमा का अतिक्रमण करता है ? जब तक उच्चस्तरीय विज्ञान देशी भाषाओं में या देश की किसी एक सर्वस्वीकृत भाषा में व्यक्त नहीं होगा तब तक उसको सामान्य स्तर तक लाने में कठिनाई ही कठिनाई होगी । यदि उच्च स्तर तथा सामान्य स्तर के बीच अनुवाद की प्रक्रिया अपनानी पड़े तो ज्ञान की प्राप्यता में बिलम्ब लगेगा। इसलिए **जब तक विज्ञान-विशेषज्ञ अपने देश में अपनी भाषा का प्रयोग नहीं करते, तब तक प्रामाणिक साहित्य का सृजन अधूरा ही बना रहेगा ।** अत: उच्चस्तर पर भी देशी भाषा के द्वारा विज्ञान का लोकप्रियकरण ही होता है !

इसमें सन्देह नहीं कि उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ से लेकर बीसवीं सदी के मध्य तक हमारे देश में अंग्रेजी का वर्चस्व रहा है फलत: विज्ञान विषयक **सारा साहित्य अंग्रेजी में ही प्राप्त होता रहा ।** चूँकि हमारे वैज्ञानिकों का प्रशिक्षण अंग्रेजी के माध्यम से ही हुआ अत: जब देश स्वतंत्र हुआ और राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ तो देशी भाषाओं की ओर, विशेषतया राष्ट्रभाषा हिन्दी की ओर, सभी की दृष्टि गई । तब विज्ञान का लोकप्रियकरण अनिवार्यता के रूप में देखा जाने लगा किन्तु इसके लिए बाध्यता नहीं थी । फलस्वरूप उसके बाद भी अपनी सुविधा के लिए उच्च स्तर पर वैज्ञानिकों द्वारा अंग्रेजी को ही प्रश्रय दिया गया । इस दुरावस्था के कारण ही कतिपय विद्वानों ने देशी भाषाओं को समुन्नत बनाकर विज्ञान के लोकप्रियकरण की दिशा में व्यापक अभियान छेड़ा ।

वैसे विगत 100 वर्षों से भी अधिक काल से हिन्दी में विज्ञान लेखन न्यूनाधिक मात्रा में होता रहा है । इससे भी पूर्व मराठी में 1815 ई० से तथा बंगला में 1818 ई० में विज्ञान लेखन शुरू हुआ था । किन्तु गति मन्द थी जिसका कारण उत्साही लेखकों का अभाव तथा पत्र-पत्रिकाओं की न्यूनता रही है । प्रारम्भिक लेखक शायद स्वान्त: सुखाय लिख रहे थे । उनके समक्ष पारिभाषिक शब्दों का अभाव या टोटा था । वे अपनी बुद्धि के अनुसार शब्द बना रहे थे । उनमें शायद अपनी भाषा तथा देश का प्रेम ही मुख्य था । धीरे-धीरे लोग अनुभव करने लगे थे कि कालान्तर में उन्हें देशी भाषा में ही विज्ञान की आवश्यकता होगी इसलिए लेखकों की संख्या भी बढ़ने लगी । कुछ अंग्रेजी पढ़े-लिखे विद्वान भी लोकप्रियकरण की ओर उन्मुख हुए । इस तरह प्रारम्भ में जिन लेखकों ने लिखा उनकी गणना उंगलियों में की जा सकती थी और वे लोगों की जबान पर थे । एक तरह से तब लोकप्रियता सरल थी । फिर भी लोकप्रियकरण एक दुस्साहसपूर्ण तथा अध्यवसायपूर्ण कार्य रहा है । कहाँ से शुरू किया जाय, क्या-क्या लिखा जाय, कैसे लिखा जाय, शैली कैसी हो कि लोगों को ग्राह्य हो ? चूँकि पारिश्रमिक की कोई व्यवस्था न थी. अत: इस ओर सभी लेखक प्रयास नहीं करते थे । प्राय: शुद्ध साहित्य लेखक थोड़ा बहुत

हिमालय का उद्भव

❑ दीपक कोहली एवं समीर कुमार बेरा

बीरबल साहनी पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान,
53- विश्वविद्यालय मार्ग, लखनऊ -226007

हिमालय की उच्च पर्वत श्रृंखलाओं का विस्तार पूर्व में अरुणाचल प्रदेश से उत्तर पश्चिमी काश्मीर तक उत्तर भारत में है। यह पर्वतमालायें न केवल भारत वर्षकी अनुपम प्राकृतिक सम्पदा हैं, अपितु हमारी सीमा की सजग प्रहरी भी हैं। लेकिन क्या आप जानते हैं कि आज से करोड़ों वर्ष पूर्व उस स्थान पर "टैथीस" समुद्र था जहाँ आज हिमालय पर्वत स्थित है। जीवाश्मों के अध्ययन की सहायता से उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि हो चुकी है।

यदि हम भूतकाल के भौगोलिक स्वरूप पर निगाह डालें तो ज्ञात होता है कि उस समय नदियों का प्रवाह दक्षिण से उत्तर की ओर 'टेथीस सागर' में था, यह समुद्र आज अस्तित्व में नहीं है। नदियाँ अपने साथ लाये अवसाद (Sediments) का जमाव समुद्र में करती थीं। इस प्रकार जिन चट्टानों का निर्माण टेथीस समुद्र में हुआ, उनमें समुद्री जीवों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। यह सत्य है कि समुद्री जीवों के अश्मित अवशेषों की कल्पना पर्वतों में नहीं की जा सकती है, किन्तु हिमालय की चट्टानों में ऐसे समुद्री जीवाश्मों की उपस्थिति इंगित करती है कि जो अवसाद करोड़ों वर्ष पूर्व टैथीस समुद्र में एकत्रित हुए थे, उनमें उत्तरोत्तर वृद्धि के फलस्वरूप हिमालय की ऊँची पर्वत श्रृंखलाओं का निर्माण हुआ। उल्लेखनीय है कि हिमालय पर्वत श्रेणी हमारे देश की नवीनतम् पर्वत श्रेणी है।

'स्ट्रोमैटोलाइट्स' ऐसी संरचनायें हैं जो कि नील-हरित शैवाल (सायनोबैक्टीरिया) एवं जीवाणुओं के समुद्र तटीय अवसादन के फलस्वरूप निर्मित हुई हैं। यह स्ट्रोमैटोलाइट्स 650 से 1000 लाख वर्ष पूर्व की लाइमस्टोन चट्टानों (नैनीताल, पिथौरागढ़, जम्मू एवं काश्मीर आदि) में पाये गये हैं। इसके अतिरिक्त कैल्केरियस नोड्यूल्स के रूप में परमियन कल्प के अवसादों से समुद्री जन्तुओं के जीवाश्म अरुणाचल प्रदेश से मिले हैं एवं एककोशकीय समुद्री शैवाल, 'डायनोफ्लैजीलेट' के अवशेष, 650 लाख वर्ष प्राचीन अवसाद में मेघालय से प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जो टैथीस समुद्र 1000 लाख वर्ष पूर्व तक उपस्थित था, वह 650 लाख वर्ष पूर्व तक अस्तित्व में बना रहा होगा।

लगभग 300 लाख वर्ष पूर्व भारत उच्च अक्ष रेखा पर दक्षिण ध्रुव के अत्यन्त निकट था। 75 लाख वर्ष पहले यह उत्तरी दिशा की ओर खिसकने लगा। यह घटना निरन्तर जारी रही जिस कारण अवसाद का चूर्णन हुआ एवं टैथीस समुद्र छिछला और संकरा होता चला गया। इस कारण पूर्व-पश्चिम संग्रहण क्षेत्र बने एवं मध्यवर्ती उच्च भूमि का निर्माण हुआ। इस घटना की अवधि लगभग 37 से 53 लाख वर्ष पूर्व की है। 'लिवीस्टोना पॉम' (जो कि आज पर्वतों के ढाल एवं घाटियों में मिलता है) की पत्तियों के अश्मित अवशेष 36 लाख वर्ष पूर्व के अवसाद में लद्दाख क्षेत्र में 5000 मीटर की ऊँचाई पर मिले हैं। यह निष्कर्ष संकेत देता है कि 36 लाख वर्ष पहले हिमालय के कुछ क्षेत्र पर्याप्त ऊँचाई प्राप्त कर चुके थे।

उत्तर की ओर भारतीय महाद्वीप के विस्थापन की अन्तिम मुख्य अवस्था लगभग 15 लाख वर्ष पूर्व की है, जिस कारण भूमितल की ऊँचाई में और अधिक वृद्धि हुई।

प्रूनस पादप जो कि माज 1200 से 2100 मीटर (समुद्र तल से ऊँचाई) पर मिलता है, 15 लाख वर्ष पहले 5000 मीटर की ऊँचाई पर पाया जाता था।

उपर्युक्त प्रावस्था के पश्चात् हिमालय में पादपों का आरम्भिक अनुक्षेत्र वर्गीकरण प्रारम्भ हुआ। इसके 'निम्न वनस्पति क्षेत्र' में **डिप्टीरोकॉपर्स** (गुरजन), **बम्बूसा** (बाँस), **मैन्जी फेरा** (आम) आदि थे जब कि इसके

में 'उच्च अनुक्षेत्र' **डेओदारा** (देवदार), पाइनस (चीड), **पाइसिया** (स्पूस), **बैट्युला** (भोजपत्र) एवं **क्वैरकस** (ओक) आदि;पादपों का वर्चस्व स्थापित हुआ। इस प्रकार शनैः शनैः हिमालय को आज का स्वरूप प्राप्त हुआ।

जीवाश्मीय अध्ययन न केवल चट्टानों की आयु निर्धारित करते हैं, अपितु ये तत्कालीन वातावरण (पुराजलवायु), ऊँचाई व अक्ष रेखा के सम्बन्ध में भी महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। हिमालय की चट्टानों में दबे अश्मित जैवीय अवशेषों से ही ज्ञात हो सका है कि इस पर्वतमाला का निर्माण एक प्राचीन समुद्र से हुआ है। हमारे पौराणिक ग्रन्थों में भी 'क्षीर-सागर' से 'कैलाश पर्वत' की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है। ■ ■

मतभेदों को 'एवापोरेट' करें

डॉ० दिनेश मणि

सहायक सम्पादक 'विज्ञान'

'टु लव शुड बी आवर मोटो'
हम न किसी से 'हेट' करें।
'नेशनल इन्टीग्रेशन' हो सर्वोपरि
मतभेदों को 'एवापोरेट' करें
हम आपस में 'ब्यूरेट-पिपेट' बन
कुछ इस तरह से 'ट्राइट्रेट' करें।
कि सब 'मेरा भारत महान' कहें
सब मिल 'इण्डिया' को 'ग्रेट' करें।

....

विज्ञान परिषद प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

विज्ञान के लोकप्रियकरण का विनम्र प्रयास

❑ डॉ० शिवगोपाल मिश्र

25, अशोक नगर, इलाहाबाद-1

*पिछले दिनों 28 और 29 जनवरी 1996 को 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' और 'विज्ञान प्रसार' के संयुक्त तत्वावधान में एक द्विदिवसीय संगोष्ठी "स्वतंत्रता पूर्व विज्ञान लोकप्रियकरण के व्यक्तिनिष्ठ प्रयास" विज्ञान परिषद् प्रयाग में सम्पन्न हुई । प्रस्तुत है संगोष्ठी के आयोजक प्रो० शिवगोपाल मिश्र जी द्वारा दिया गया व्याख्यान । **सम्पादक***

जिस साहित्य से विज्ञान विषयक जानकारी दी जा सके, वही विज्ञान साहित्य है । ऐसे विज्ञान साहित्य के कई स्तर या भेद हो सकते हैं :

(1) सामान्य, शिक्षित व्यक्तियों के लिए वैज्ञानिक जानकारी देने वाला साहित्य । इसे लोकप्रिय या जनप्रिय अथवा सुलभ साहित्य कह सकते हैं । का प्रकाशन पत्रिकाओं, पाक्षिक या साप्ताहिक अथवा दैनिक पत्रों द्वारा होता है । इसमें फुटकर ललित साहित्य, जिसमें कविता, कहानी, उपन्यास के माध्यम से विज्ञान विषयक जानकारी दी जाय एवं आकाशवाणी, दूरदर्शन द्वारा प्रसारित संवादात्मक साहित्य भी सम्मिलित किया जा सकता है ।

(2) विवरणात्मक साहित्य जो प्राय: पाठ्यपुस्तकों के रूप में विद्यार्थियों के लिए लिखा जाता है ।

(3) विज्ञान कोश : प्राय: विविध वैज्ञानिक विषयों की संक्षिप्त जानकारी कराने वाले या कोश या विश्वकोश।

(4) शोध निबन्ध : विभिन्न शाखाओं में हो रहे शोधकार्य का उच्चस्तरीय विवरण जिसका प्रकाशन राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय जर्नलों में होता है अथवा जिनको विभिन्न सेमिनारों में पढ़ा जाता है ।

इस विज्ञान साहित्य के लिए जो भाषा व्यवहृत होती है उसके भी कई स्तर हैं । लोकप्रिय साहित्य में भाषा सरल रखी जाती है और तरह-तरह की शैलियों को प्रश्रय दिया जाता है जबकि पाठ्यपुस्तकों में निश्चित प्रकार की एवं पारिभाषिक शब्दों में संतृप्त भाषा प्रयुक्त होती है । शोध प्रबन्ध में नितान्त परिष्कृत शब्दावली का संयत् प्रयोग होता है जिसे विशेषज्ञ ही व्यवहृत करते और समझते हैं।

स्मरण रहे कि वैज्ञानिक विचारधारा ऊपर से नीचे की ओर बहने वाली है । उच्च स्तरीय ज्ञान का सहजीकरण करके ही लोकप्रिय साहित्य का सृजन किया जाता है । अत: लोकप्रिय विज्ञान लेखकों को उच्च स्तर से विचार लेकर उन्हें सामान्य स्तर तक लाना होता है । इसके लिए आवश्यक शर्तों में विदेशी भाषाओं का ज्ञान, उन भाषाओं के उपलब्ध साहित्य का देशी भाषा में अनुवाद करने की क्षमता, विदेशी शब्दों को सर्वमान्य देशी पर्यायों का ज्ञान प्रमुख हैं । तभी उच्चस्तरीय विज्ञान का लोकप्रियकरण हो सकता है । **लोकप्रियकरण** सूचक है व्यापक बनाने के सद्प्रयासों का । अत: सामान्य जन जो कि अपने चारों ओर दिखने वाली वस्तुओं या घटित होने वाली घटनाओं को जानने में रुचि रखते हैं अर्थात् जो जिज्ञासु हैं **उन तक**

विज्ञान को पहुँचाना विज्ञान का लोकप्रियकरण है । फलस्वरूप लोकप्रियकरण के लिए आवश्यक है कि लोकरुचि से परिचित हुआ जाय और तदनुसार जन सामान्य की ही भाषा में ज्ञान प्रस्तुत किया जाय । ऐसी भाषा के माध्यम से कितना और कैसा ज्ञान परोसा जाय यह लेखक के विषय-ज्ञान तथा लेखन-शैली पर निर्भर करेगा । ज्ञान नया हो सकता है और पुराना भी । इसमें सिद्धान्त की बातें हो सकती हैं, नई खोजों का वर्णन हो सकता है, महान विज्ञानियों की जीवनियाँ हो सकती हैं, और विज्ञान-गल्प भी हो सकते हैं । स्पष्ट है कि ऐसा साहित्य अति व्यापक होगा अत: किसी एक लेखक की नहीं अपितु लेखकवृन्द की आवश्यकता होगी -इसमें पुरुष तथा स्त्री दोनों प्रकार के लेखकों की भागीदारी होनी चाहिए और अनेकानेक पत्रिकाओं, पाक्षिक, साप्ताहिक तथा दैनिक पत्रों का प्रकाशन एवं वितरण होना चाहिए । लोकप्रियकरण के लिए आवश्यक है कि जो भी साहित्य छपे वह सामान्य जन तक, पाठकों तक पहुँचे, वह पुस्तकालयों की अलमारियों में बन्द न हो जाय । यह साहित्य आबालवृद्ध बनिता के लिए-अर्थात् बच्चों, युवकों, वृद्धों- सबों के लिए होना चाहिए । इसमें कृषि, स्वास्थ्य, इंजीनियरी, ज्योतिष, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान के चुने-चुने विषयों की संक्षिप्त, सहज, आकर्षक तथा सचित्र जानकारी प्रस्तुत की जानी चाहिए।

यहाँ पर प्रश्न उठाया जा सकता है कि विज्ञान का उच्चस्तरीय साहित्य लोकप्रियकरण की सीमा के भीतर है या इसकी सीमा का अतिक्रमण करता है ? जब तक उच्चस्तरीय विज्ञान देशी भाषाओं में या देश की किसी एक सर्वस्वीकृत भाषा में व्यक्त नहीं होगा तब तक उसको सामान्य स्तर तक लाने में कठिनाई ही कठिनाई होगी । यदि उच्च स्तर तथा सामान्य स्तर के बीच अनुवाद की प्रक्रियां अपनानी पड़े तो ज्ञान की प्राप्यता में बिलम्ब लगेगा। इसलिए **जब तक विज्ञान-विशेषज्ञ अपने देश में अपनी भाषा का प्रयोग नहीं करते, तब तक प्रामाणिक साहित्य का सृजन अधूरा ही बना रहेगा ।** अत: उच्चस्तर पर भी देशी भाषा के द्वारा विज्ञान का लोकप्रियकरण ही होता है ।

इसमें सन्देह नहीं कि उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ से लेकर बीसवीं सदी के मध्य तक हमारे देश में अंग्रेजी का वर्चस्व रहा है फलत: विज्ञान विषयक **सारा साहित्य अंग्रेजी में ही प्राप्त होता रहा ।** चूँकि हमारे वैज्ञानिकों का प्रशिक्षण अंग्रेजी के माध्यम से ही हुआ अत: जब देश स्वतंत्र हुआ और राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ तो देशी भाषाओं की ओर, विशेषतया राष्ट्रभाषा हिन्दी की ओर, सभी की दृष्टि गई । तब विज्ञान का लोकप्रियकरण अनिवार्यता के रूप में देखा जाने लगा किन्तु इसके लिए बाध्यता नहीं थी । फलस्वरूप उसके बाद भी अपनी सुविधा के लिए उच्च स्तर पर वैज्ञानिकों द्वारा अंग्रेजी को ही प्रश्रय दिया गया । इस दुरावस्था के कारण ही कतिपय विद्वानों ने देशी भाषाओं को समुन्नत बनाकर विज्ञान के लोकप्रियकरण की दिशा में व्यापक अभियान छेड़ा ।

वैसे विगत 100 वर्षों से भी अधिक काल से हिन्दी में विज्ञान लेखन न्यूनाधिक मात्रा में होता रहा है । इससे भी पूर्व मराठी में 1815 ई० से तथा बंगला में 1818 ई० में विज्ञान लेखन शुरू हुआ था । किन्तु गति मन्द थी जिसका कारण उत्साही लेखकों का अभाव तथा पत्र-पत्रिकाओं की न्यूनता रही है । प्रारम्भिक लेखक शायद स्वान्त: सुखाय लिख रहे थे । उनके समक्ष पारिभाषिक शब्दों का अभाव या टोटा था । वे अपनी बुद्धि के अनुसार शब्द बना रहे थे । उनमें शायद अपनी भाषा तथा देश का प्रेम ही मुख्य था । धीरे-धीरे लोग अनुभव करने लगे थे कि कालान्तर में उन्हें देशी भाषा में ही विज्ञान की आवश्यकता होगी इसलिए लेखकों की संख्या भी बढ़ने लगी । कुछ अंग्रेजी पढ़े-लिखे विद्वान भी लोकप्रियकरण की ओर उन्मुख हुए । इस तरह प्रारम्भ में जिन लेखकों ने लिखा उनकी गणना उंगलियों में की जा सकती थी और वे लोगों की जबान पर थे । एक तरह से तब लोकप्रियता सरल थी । फिर भी लोकप्रियकरण एक दुस्साहसपूर्ण तथा अध्यवसायपूर्ण कार्य रहा है । कहाँ से शुरू किया जाय, क्या-क्या लिखा जाय, कैसे लिखा जाय, शैली कैसी हो कि लोगों को ग्राह्य हो ? चूँकि पारिश्रमिक की कोई व्यवस्था न थी. अत: इस ओर सभी लेखक प्रयास नहीं करते थे । प्राय: शुद्ध साहित्य लेखक थोड़ा बहुत

विज्ञान पढ़कर लेखन में हाथ लगाते रहे। तब नये लेखकों को सिखाने सुझाने वाले विद्वान विरले थे। हिन्दी में ऐसे कुछेक ही सम्पादक रहे हैं जिन्होने हिन्दी में विज्ञान लेखन को बढ़ावा दिया।

प्राप्त आंकड़े बताते हैं कि 1900 ई० के पूर्व हिन्दी में केवल छह पत्रिकाएं ऐसी थी, जिनमें आरोग्य तथा गोरक्षा के विषय में निबन्ध छपते थे। 1900 ई० के बाद ऐसा प्रतीत हुआ कि प्राप्य साधनों से विज्ञान को तब तक लोकप्रिय नहीं बनाया जा सकता, जब तक कि पारिभाषिक शब्द पर्याप्त मात्रा में न हो लें। स्पष्ट है कि लोकप्रियकरण के लिए भाषा का ज्ञान और वह भी संस्कृत का ज्ञान आवश्यक प्रतीत होने लगा। संस्कृत के विद्वान् विज्ञान लोकप्रियकरण में सहायक हो सकते थे किन्तु उनकी प्रतिबद्धता तथा रुचि वैदिक ज्ञान की दिशा में अधिक थी, आधुनिक विज्ञान की ओर कम। जब गुरुकुल कांगड़ी तथा नागरी प्रचारिणी सभा जैसी संस्थाओं की स्थापना हिन्दी-क्षेत्र में हुई तो हिन्दी को समर्थन प्राप्त हुआ और हिन्दी में विज्ञान लेखन के लिए प्रेरणा मिली और पारिभाषिक शब्दावली निर्माण का कार्य भी प्रगति करने लगा।

1913 में प्रयाग में विज्ञान परिषद् की स्थापना हो जाने पर विज्ञान प्रेमी लेखकों के लिए नया आधार मिला। 1913 से अद्यावधि 'विज्ञान' मासिक पत्रिका प्रकाशित हो रही है। इतना ही नहीं स्वतंत्रता के पूर्व विज्ञान परिषद् से विज्ञान लोकप्रियकरण की दिशा में विविध साहित्य रचा गया **जिसमें औद्योगिक साहित्य** उल्लेखनीय है। उस समय शिक्षित बेरोजगारों के लिए यह साहित्य उपयोगी सिद्ध हुआ। चूँकि विज्ञान परिषद् की स्थापना में विश्वविद्यालय के योग्य शिक्षकों का हाथ था इसलिए उन्होंने स्वयं विज्ञान में लेखन किया, अपने शिष्यों को लिखने का प्रशिक्षण दिया और 30-35 वर्षों में हिन्दी क्षेत्र में तमाम लेखकों को ला खड़ा किया। शायद ही कोई विज्ञान लेखक रहा हो, जिसका सम्बन्ध विज्ञान परिषद् से न रहा हो। अन्य प्रान्तों में भी स्वतंत्रता के पूर्व इसी उत्साह से कार्य चला।

ज्ञात हो कि 'विज्ञान' पत्रिका निकलने के पूर्व भी हिन्दी में 20 पत्रिकाएं छप रही थीं जिनमें से 4 पत्रिकाएं प्रयाग से ही निकलती थीं। किन्तु इनमें से एक भी पत्रिका विशुद्ध विज्ञान से सम्बन्धित नहीं थी। 'विज्ञान' पत्रिका ने प्रारम्भ से व्यापक दृष्टिकोण अपनाया। इसमें शुद्ध विज्ञान, औद्योगिक विज्ञान, स्वास्थ्य, चिकित्सा- सभी पक्षों पर लेख छपते रहे।

स्वतंत्रतापूर्व तक **हिन्दी में विज्ञान पत्रकारिता शैशवावस्था** में थी किन्तु विज्ञान की विविध पत्रिकाओं के सम्पादकों में उल्लेखनीय कर्मनिष्ठा एवं दूरदर्शिता थी। उनमें जनसेवा का भाव सर्वोपरि था और लोकप्रियकरण के लिए शायद यह सबसे पहली शर्त है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना के बाद उसके वार्षिक सम्मेलनों में प्रतिवर्ष 'विज्ञान परिषदों' की आयोजना की जाने लगी तो सुप्रसिद्ध विज्ञान लेखक हिन्दी के मंच से अपनी बातों, अपनी योजनाओं की घोषणा करने लगे। उस समय हिन्दी साहित्य के कर्णधारों को लग रहा था कि विज्ञान के लेखक भी उन्हीं के अंग हैं और इस तरह सृजित विज्ञान साहित्य हिन्दी साहित्य का अंग है और **इससे हिन्दी साहित्य सर्वांगीण बना रहा है**। हिन्दी में विज्ञान लोकप्रियकरण को यहीं से ठोस आधारभूमि मिली। फिर तो विज्ञान पत्रिकाओं की धूम मच गई। 1925 ई० के पूर्व हिन्दी में विज्ञान विषयों की 42 पत्रिकाएं थी जिनके मूल्य कम थे, ग्राहक संख्या सीमित थी। किन्तु ये पत्रिकाएं बंगाल, बिहार, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश- सभी प्रान्तों से निकल रही थी। इससे अज्ञातनामा सम्पादकों की सम्पादन कुशलता एवं हिन्दी की व्यापकता या लोक ग्राहकता का परिचय मिलता है।

1925 ई० के बाद से लेकर 1965 तक की अवधि के विषयमें प्रामाणिक जानकारी प्राप्त नहीं है किन्तु 1965 में 31 विज्ञान पत्रिकाओं की सूचना है। शायद 1925 तक निकलने वाली बहुत सी पत्रिकाएं मर चुकी थीं किन्तु 1965 से लेकर 1980 तक ऐसी पत्रिकाओं में अत्यधिक वृद्धि हुई। यह संख्या 321 हो गई जिनमें कृषि, स्वास्थ्य तथा सामान्य विज्ञान विषयक पत्रिकाओं की ही प्रधानता देखने को मिलती है। सम्प्रति 40 विज्ञान पत्रिकाएं निरन्तर प्रकाशित हो रही हैं जिनमें सभी तरह की लोकप्रिय एवं

उच्च स्तरीय विषयक सामग्री छपती है । इस तरह की विज्ञान पत्रिकाओं के माध्यम से सामान्यजन में विज्ञान अभिरुचि जगी है और विज्ञान लेखन के प्रति नवीन लेखकों में उत्साह उमड़ा है । यह शुभ लक्षण है और सूचक है इस बात का कि विज्ञान का लोकप्रियकरण हुआ है और वह सही दिशा में बढ़ रहा है । किन्तु पत्रिकाएं ही लोकप्रियकरण की एकमात्र साधन नहीं । अनेक समाचार पत्रों तथा साप्ताहिक पत्रों में विज्ञान लेख छपते रहे जिनमें साप्ताहिक हिन्दुस्तान, धर्मयुग, नवभारत टाइम्स प्रमुख हैं। इनमें भी वरिष्ठ लेखक लिखते रहे हैं । इस अवधि में विज्ञान पुस्तकें भी काफी मात्रा में रची गई ।

1965 के पूर्व जहाँ केवल 2250 पुस्तकों के लिखे जाने की सूचना है वहीं 1990 तक 4350 पुस्तकों की सूची प्राप्त है । ये पुस्तकें 3000 लेखकों द्वारा लिखी गई हैं जिनमें से 150 महिला लेखिकाएं हैं । इन समस्त लेखकों में 160 प्रतिष्ठित लेखक हैं । 1990 के बाद भी कुछ महत्वपूर्ण रचनाएं प्रकाशित हुई हैं जिनमें गुणाकर मुले, विष्णुदत्त शर्मा, नार्लिकर आदि दर्जनों लेखकों के नाम गिनाये जा सकते हैं ।

स्मरण रहे कि विज्ञान के लोकप्रियकरण में अनुवाद की भूमिका अतीव महत्वपूर्ण रही है । 1980 में ऐसे अनुवादकों की संख्या 250 से अधिक थी । इनमें से बहुत से लेखक मौलिक लेखन तथा सम्पादन का भी कार्य कर रहे थे । इन अनुवादकों ने लोकप्रिय विज्ञान लेखकों के लिए महत्वपूर्ण सामग्री तथा दिशा निर्देश प्रस्तुत किया । ये अनुवाद केवल अंग्रेजी पुस्तकों के हुए हैं । 'नेशनल बुक ट्रस्ट' ने बच्चों के लिए ऐसे तमाम अनुवाद कराये हैं ।

रेडियों तथा टेलीविजन के माध्यम से विज्ञान के विविध अंगों को लोकप्रिय बनाने के जो प्रयास हुए हैं वे स्वतंत्रता के पश्चात् ही हुए हैं । रेडियों से कृषि विषयक प्रभूत सामग्री का प्रसारण होता रहा है । टेलीविजन आने से रेडियों तथा टेलीविजन दोनों के द्वारा छात्रों के लिए भी उपयोगी वैज्ञानिक सामग्री प्रसारित होती है ।

गोष्ठियों तथा सेमिनारों में भी हिन्दी के माध्यम से वैज्ञानिक निबन्ध प्रस्तुत किये जाते रहे हैं । बाल विज्ञान लेखन एवं लोकप्रिय विज्ञान लेखन के सम्बन्ध में कार्यशालाएं भी आयोजित हुई हैं जिनमें विज्ञान परिषद् प्रयाग, सी० एस० आई० आर०, दिल्ली, कृषि विश्वविद्यालय, पन्तनगर तथा 'भाषा निधि ' लखनऊ के प्रयास उल्लेखनीय हैं ।

हर्ष की बात है कि शोध स्तरीय सामग्री के प्रकाशन हेतु अब अनुसंधान पत्रिकाएं भी प्रकाशित की जा रही हैं। 'भारत की सम्पदा' जैसे विश्वकोश के प्रकाशन ने विज्ञान साहित्य के सर्वांगी लोकप्रियकरण को प्रमाणित कर दिया है । इतना ही नहीं, अनेक पुस्तकों पर विशिष्ट पुरस्कार प्रदान किये गये हैं तथा हिन्दी के विज्ञान लेखन के लिए राष्ट्रीय स्तर पर लेखकों को सम्मानित भी किया जा रहा है ।

किन्तु देश की जनसंख्या को देखते हुए और विज्ञान में नित नूतन हो रहीं खोजों से देशवासियों को परिचित कराते रहने के लिए लोकप्रियकरण की आवश्यकता बनी ही रहेगी । पीढ़ी-अन्तराल को देशी भाषा के द्वारा नवीनतम वैज्ञानिक सूचना प्रदान करके ही पाटा जा सकेगा ।

यह गोष्ठी स्वतंत्रता पूर्व विज्ञान के लोकप्रियकरण के लिए उत्तरदायी विशिष्ट लेखकों के योगदान पर चर्चा करने के उद्देश्य से 'विज्ञान प्रसार' के सहयोग से आयोजित है।

हम इस गोष्ठी में भाग लेने वाले सुधीजनों का स्वागत करते हैं । हमें विश्वास है कि इस द्विदिवसीय गोष्ठी में अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री प्रकाश में आवेगी । ■ ■

धरा पर पादपों का उद्‍भव एवं विकास

❑ डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय

उपाध्याय कैंसर शोध संस्थान,
परिसर कोठी काके बाबू,
देवकाली मार्ग, फैजाबाद -224001

पादपों की धरा पर उत्पत्ति को लेकर अनेक विचार समय-समय पर वैज्ञानिक शोध निबन्धों में प्रकाशित होते रहे हैं, परन्तु अब मॉलीक्यूलर तकनीकों के उपयोग से प्राप्त परिणामों से जो तथ्य स्पष्ट हुए हैं उन पर अधिकांश वैज्ञानिकों की सहमति है।

अब यह माना जाने लगा है कि आधुनिक पादप समुदाय का विकास वातावरण में विकसित होने वाले, गन्धक को मेटावोलाइज करने वाले बक्टीरिया **इओसाइट** (जीवाणु) द्वारा आज से 1.2 विलियन वर्षों पूर्व धरा के अन्धकारमय वायुरहित ऊष्म वातावरण में प्रारम्भ हुआ था। यह बैक्टीरिया समुदाय अधिकांशत: उस पुराकालीन वातावरण में मात्र परोपजीवी था तथा कालान्तर में उससे विकसित प्रजातियों में न्यूक्लीअस एवं फ्लैजिला का विकास हुआ। इन जीवों में अथवा प्राचीन पादप प्रतिनिधियों में क्रमश: माइटोकॉन्ड्रिया का विकास "एन्डोसिम्बोसिस" (Endosymbosis) द्वारा प्रारम्भ तो हुआ पर यह समुदाय क्लोरोप्लास्टिड विहीन था, तथा प्रकाश द्वारा ऊर्जा संश्लेषण में सक्षम नहीं था। कालान्तर में धरा पर वातावरण, जनित परिवर्तनों के फलस्वरूप जल से "इयूग्लैन्वायड्स" (Englanoids) की उत्पत्ति हुई। यह "क्लोरोप्लास्टिड" युक्त समुदाय था। इसे फोटोसेन्थेसिस अथवा प्रकाश-संश्लेषण का गुण उन "फोटोसेन्थेटिक बैक्टीरिया" से प्राप्त हुआ था, जिनके साथ इन प्रारम्भिक पादप प्रजाति के प्रतिनिधि "इन्डोसिम्बांसिस" की परिस्थिति में रहते थे। अब इन पुरापादप समुदाय में दूसरा मूलभूत परिर्वतन हुआ। वे अब पूर्णरूपेण "ऐरोबिक" अथवा ऑक्सीजन, जो वातावरण में व्याप्त हो गयी थी, का उपयोग करने लगे थे। इस प्रकार धीरे-धीरे इनं आदि पादपों में "प्लाजमोडिया" का विकास हुआ, फंजाई अथवा फफूंद समुदाय विकसित हुआ, हरित शैवालों का विकास हुआ। और अन्त में समुद्र से धरातल पर क्रमश: पादपों की वृद्धि प्रारम्भ हुई। इस नवीन पादप समुदाय को धरातल पर विकसित हुए 500 मिलियन वर्षों से अधिक हो चुके हैं। परन्तु यह इस महती विकास-कथा का मात्र एक अंश है।

पृथ्वी के वातावरण में प्राचीन काल में अरबों वर्षों पूर्व जो परिवर्तन हुए, उसका प्रमाण नवीनतम मॉलीक्यूलर तकनीकों के प्रयोग से प्राप्त होता है। इस प्रकार पादपों मे आदि पादप समुदाय के विश्लेषण से यह अधिकांशत: मान्य हो गया है कि ब्राउन (Brown) अथवा भूरी शैवाल प्रजाति की उत्पत्ति "क्लोरोप्लास्टिड" को "सिम्बासिस" द्वारा प्राप्त करने से हुई है और यही तथ्य लाल-शैवाल, क्रिप्टोफाइसी प्रजाति के प्रतिनिधियों तथा इयूग्लैनायडों पर भी सामान्य रूप से लागू होता है। मॉलूक्यूलर तकनीकों के उपयोग से यह स्पष्ट हो चुका है कि सबसे पुराने शैवाल प्रजातियों में लाल-एल्गी अथवा शैवाल हैं, जिनकी उत्पत्ति 950-1260 मिलियन वर्षों पूर्व, समुद्र में हुई थी। (एक मिलियन में दस लाख वर्ष होते हैं)। समुद्र में जब तीव्र गति से शैवाल प्रजाति के प्रतिनिधियों का विकास हो रहा था उसी युग में धरातल पर भी अन्य सूक्ष्म पूर्वपादप

समुदाय विकास की ओर उन्मुख हो रहे थे । इस विषय में आइसोटोप्स (Isotopes) के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रक्रिया आज से अनुमानतः 1.2 विलियन वर्षों पूर्व शुरू हुई थी, परन्तु समुद्र में आदि समुदाय का विकास इसके करोड़ों वर्षों पूर्व ही प्रारम्भ हो गया था ।

समुद्र से धरा की ओर विकासोन्मुख होने में जीवों और फँफूदियों के आदि प्रतिनिधि कोऐनोफ्लैजैलेट्स (Choanoflagellates) प्रजाति के थे, जो अब कहीं भी नहीं पाये जाते । हाँ इनके विषय में जीवाश्मों के अध्ययन से अवश्य महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होते हैं । उनमें से एक तथ्य जो सर्वमान्य है, वह है, कि धरा के ऊष्ण-कटिबन्धीय प्रदेशों में पादपों और जीवों का विकास सर्वप्रथम प्रारम्भ हुआ और तीव्रता से चला ।

धरती पर पादप समुदाय के विकास के साथ-साथ हरीतिमा भी बढ़ी । नयी प्रजातियाँ विकसित हुई, फर्न और अन्य क्रिप्टोगेम्स के अनेक प्रतिनिध विकसित हुए और कालान्तर में करीब 100 मिलियन वर्षों पूर्व नवीन पादप समुदाय जिसमे ऊर्जा के उपयोग हेतु विकसित कोशिकायें भी और परागण की क्षमता थी, के विकसित होने के कारण इन फर्नों की कुछ प्रजातियाँ नष्ट हो गयीं। कोष-युक्त पादपों ने धरा को आच्छादित कर दिया और इनमें कालान्तर में बीजों का विकास हुआ एवं लैंगिग-प्रजनन की क्षमता की वृद्धि भी हुई ।

बीजों के विकास के पूर्व की अवस्था का ज्ञान हमें "वेन्सोनाइट्स " (Bensonites) एवं "आरकियोस्पर्मा " (Archaeosperma) के पूर्ववर्ती पादपों के जीवाष्मों के अध्ययन से ज्ञात होता है । उस समुदाय के मादा-गैमीटोफाइट में पराग को ग्रहण करने की क्षमता नहीं थी ।

डी एन ए (DNA) की नवीन विकसित तकनीकों के अध्ययन से, विशेष ऐंजीयोस्पर्मस् के नाभिक एवं क्लोरोप्लास्ट की संरचना के विषय में विवेचना करने से जो तथ्य सामने आये, उनसे स्पष्ट होता है कि दालीय पौधों का विकास करीब 200 मिलियन वर्षों पूर्व धरातल पर प्रारम्भ हो गया था । इस प्रकार इनके बाद अन्य पादप प्रजातियाँ क्रमेण धरा पर विकसित हुई । इस विकास क्रम में सर्वाधिक विकास की तीव्रता ऊष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में कैम्ब्रियन काल में प्रारम्भ हुई, क्योंकि उस युग तक पहुँचते-पहुँचते जीवों और वनस्पतियों में, क्लोरोप्लास्टिड युक्त, बहु कोशिकायुक्त लैंगिक प्रजनन की क्षमता वाले शरीर का निर्माण प्रारम्भ हो चला था ।

उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में जो दूसरी सुविधा जीव एवं वनस्पति समुदाय को प्राप्त थी, वह थी, अनेक प्रजातियों का समुद्र एवं धरातल पर विकसित होना तथा उनका संरक्षण एवं सतत प्रवर्धन जिसके परिणामस्वरूप पृथ्वी उस युग में जीवों एवं हरीतिमा प्रदान करने वाले पादपों से आच्छादित हो गयी थी ।

इस विकास के पीछे, पादपों और जीवों में, उसी युग में वर्तमान आर एन ए RNA का बहुत ही प्रमुख कार्य था । यह आर एन ए इन प्रारम्भिक जीवों / वनस्पतियों में, मात्र एक एन्ज़ाइम (Enzyme) का ही नहीं वरन् उनमें प्रवर्धन या रेप्लीकेशन (Replication) का भी कार्य उसी प्रकार करता था, जैसे यह क्रोमोसोमों में टीलोमर या टीलोफेज की अवस्था में आज भी कार्य करता है । अब तो यह भी स्पष्ट हो गया है कि उस कैम्ब्रीयन युग में विकसित वनस्पतियों एवं जीवों की संरचना को सुचारु ढंग से चलाने हेतु यह आर एन ए मॉलीक्यूल आटोकैटेलिसिस (Autocatalysis) एवं हेटेरोकैटेलिसिस (Heterocatalysis) की क्रियाओं को करने में सक्षम था । यह इसी आर एन ए का चमत्कार है कि उस आदि युगीन वायुरहित ओषजन रहित अन्धकार मुक्त युग में, इसने आज से करीब 3-4 विलियन वर्षों पूर्व जीवन का, प्राण का, स्पन्दन प्रारम्भ किया था तथा प्रोटीन की संरचना प्रारम्भ की थी । यही आधुनिक डी एन ए का रचयिता भी है, जन्मदाता भी है । यह अब आधुनिक प्रयोगों से सत्यापित किया जा चुका है ।

संक्षेप में, इस भाँति विज्ञान की नवीन-विधाओं का उपयोग, प्रकृति के रहस्यों, प्रमुखतः प्राणियों-वनस्पतियों के उद्भव को स्पष्ट करने में सहायक हो रहा है और अनेक अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर स्पष्ट होते जा रहे हैं ।

सौर ऊर्जा : बीमार फसलों के लिए वरदान

□ डॉ० अरुण आर्यूर्य

वनस्पति विभाग, विज्ञान संकाय,
महाराजा सयाजी राव विश्वविद्यालय, (गुजरात) बडोदरा -390002

सूर्य शक्ति का पुंज है, जो सदैव से मानव के लिए रहस्य के साथ-साथ उसके जीवन का आधार भी रहा है। पृथ्वी की लुप्त होती जा रही प्राणघातक संपदा का आधार भी सूर्य में निरन्तर ढूंढा जा रहा है। सोलर कुकर, सोलर वाटर हीटर, सोलर कार इसी के परिणाम हैं।

सूर्य हमारी आकाशगंगा का प्रमुख तारा है। आकाश गंगा के मध्य से इसकी दूरी लगभग 32,000 प्रकाश वर्ष है। पृथ्वी से सूर्य की दूरी 149,407,000 कि० मी० है, और यह पृथ्वी के तापमान को नियंत्रित करने हेतु समुचित ऊर्जा प्रदान करता है। जैसा कि हम सब को विदित है, सूर्य का प्रकाश पेड़ों की वृद्धि के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इस ऊर्जा के स्रोत द्वारा फसलों को अनेक बीमारियों से बचाया जा सकता है और मृदाजन्य कवकों के नियंत्रण हेतु लगने वाले कवकनाशी रसायनों के छिड़काव से बचकर वातावरण को प्रदूषण से मुक्त रखा जा सकता है।

सौर ऊर्जा के विविध उपयोग

सौर ऊर्जा के सदुपयोग का सुनहरा क्षितिज विज्ञान को निरन्तर आमंत्रित कर रहा है। सूर्य अपने सौरमंडल का अभिभावक है, जिसका अनेक समस्याओं के समाधान में उपयोग किया जा सकता है। सौर ऊर्जा आसानी से हाइड्रोजन प्रदान करता है। वहाँ कार्बन शायद कुछ उपद्रव नहीं कर सकेगा। पर्यावरण को प्रदूषण से मुक्त करने के सारे प्रयास औद्योगिक क्रांति के दूसरे चरण में योगदान करेंगे। स्थिति यह होगी कि अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण प्रदूषण आज मानवता के विकास के सभी रास्ते रोक कर भयानक दानव की तरह सीना तानकर अट्टहास कर रहा है। विज्ञान इस दानव को मारने के लिए अस्त्र खोज रहा है।

हमारे प्राचीन वैज्ञानिकों को भी सूर्य की ऊर्जा हमेशा से आकर्षित करती रही है। यहाँ वहाँ सूर्य की रश्मियों के रूप में बिखरी ऊर्जा का सही उपयोग करने की इच्छा अनेक मनीषियों के मन में आती रही है। आप मानें य न मानें बहुत प्राचीन काल से ही प्रतिदिन काफी बड़ी मात्रा में बेकार जा रही सौर ऊर्जा के उपयोग का विचार वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में आ चुका था। प्रमाण बताते हैं कि भारतवर्ष में प्राचीन काल में किये जाने वाले यज्ञों के लिए अवतल दर्पणों के द्वारा सूर्य किरणों को एक स्थान पर केंद्रित करके अग्नि प्रज्वलित की जाती थी।

सन् 214 ईसा पूर्व में यूनान के प्रसिद्ध वैज्ञानिक **आर्किमिडीज** ने कई बार पालिश किये हुए दर्पणों की सहायता से संकेन्द्रित सूर्य रश्मियों को साइराक्रूज पर आक्रमण कर देने वाले रोमने जहाजी बेड़े पर परावर्तित करके उसे 200 फुट की दूरी से जलाकर राख कर दिया था। इस दाहक कांच को आवश्यकतानुसार प्रत्येक दिशा में घुमाया जा सकता था। इतिहास में सौर ऊर्जा का उपयोग युद्धास्त्र के रूप में किये जाने का यह शायद प्रथम अवसर था।

सूर्य, ऊर्जा का एक असीम और महत्वपूर्ण स्रोत है। व्यावहारिक स्तर पर सौर किरणों को सीधे विद्युत में

परिवर्तन के प्रयास पिछले 3 दशकों से किये जा रहे हैं। प्रकाश वोल्टीय सेल, सौर ऊर्जा को सीधे विद्युत में परिवर्तित करता है। अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यों में सौर सेल का व्यापक उपयोग हो रहा है। पश्चिमी देशो में इसके लागत खर्च को कम कर इसे आर्थिक दृष्टि से अन्य ऊर्जा स्रोतों की तुलना में सस्ता बनाने के लिए युद्धस्तर पर अनुसंधान कार्य किया जा रहा है।

अन्न-उत्पादन और सौर ऊर्जा

अन्न-उत्पादन में सौर ऊर्जा का उपयोग कैसे किया जाय, यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। जैसा कि हम सब जानते हैं, फसलों की वृद्धि में सहायक है सूर्य का प्रकाश, जिसकी अनुपस्थिति में प्रकाश संश्लेषण अर्थात् भोजन बनने की प्रक्रिया संभव नहीं। फसल पकने पर बीजों को सूर्य की गर्मी में रखा जाता है, जिससे कि उनमें व्याप्त जल की मात्रा को कम किया जा सके। इस प्रकार सूखे बीजों में कवक एवं जीवाणुओं का प्रवेश नहीं हो पाता और वे अधिक समय तक निरोग बने रहते हैं।

ऑस्टिलागो न्यूडा नामक कुवकें द्वारा गेहूँ तथा जौ में श्लथकण्ड उत्पन्न करता है। इस रोग का विशेष महत्व है, क्योंकि यह रोग बीज में स्थिति प्रसुप्त कवक तन्तु द्वारा फैलता है अत: बीजों का कवकनाशी द्वारा बाह्य उपचार आन्तरिक संक्रमण को दूर नहीं कर सकता। इस बीमारी के उपचार हेतु बीजों को पहले गर्म, फिर ठंडे पानी में रखते हैं और फिर उन्हें धूप में सुखा लेते हैं।

अन्न की पैदावार के लिए अवरोधक बनती है मृदाजन्य कवक या फफूंदी। फसलों को जब लगातार एक ही खेत में बोया जाता है तो सूक्ष्म जीवाणुओं एवं कवकों की संख्या में कई गुना वृद्धि हो जाती है जिससे पौधे अधिक रोगी होते हैं। इन बीमारियों से बचने के लिए खेत या फसल दोनों में से किसी एक को बदल देना चाहिए। एक वर्ष खेती करने तथा अगले वर्ष जमीन खाली छोड़ देने से भी इन रोगों से बचा जा सकता है। लेकिन हमारे देश के किसान जिनकी आय का एकमात्र स्रोत यह छोटे-छोटे खेत ही हैं, उनके लिए ऐसा करना संभव नहीं।

बीमारियों को दूर करने के लिए प्रतिवर्ष लगभग 15,000 टन फफूंद नाशक 194,085 टन कीटनाशक और काफी मात्रा में खरपतवारनाशी रसायन प्रयोग किये जाते हैं। ये तथा इनसे बनने वाले पदार्थ पृथ्वी की ऊपरी 10 सेमी० सतह पर इकट्ठा होते रहते हैं। **अग्निहोत्री** तथा उनके सहयोगियों (1981) के अनुसार इन रसायनों के प्रयोग से फफूंद एवं कीटों की संख्या में कुछ कमी तो होती है, परन्तु अन्य लाभकारी सूक्ष्मजैविकों की संख्या में भी भारी कमी या फेर-बदल होता है, जिससे कि भूमि की उर्वराशक्ति प्रभावित होती है।

मल्चिंग की विधि में खेतों को प्लास्टिक की चादरों से ढंक कर सौर ऊर्जा द्वारा मिट्टी के तापक्रम को वायुमण्डल से 6 से 10 सेल्सियस बढ़ा दिया जाता है।

विज्ञान के बढ़ते कदम

मृदाजन्य बीमारियों की रोकथाम हेतु पादप रोग विज्ञान विभाग, हिब्रू विश्वविद्यालय, जेरूसलम, इजराइल के **डॉ० जे० काटन** (1981) तथा ताइवान, चीन गणराज्य के **डॉ० एस० होरिऊची** (1984) ने सौर ऊर्जा का उपयोग किया और **फ्यूजेरियम्** तथा **वर्टीसीलिम** नामक कवकों द्वारा अन्न, दालों, सब्जियों, कपास तथा पिस्ते के पेड़ों की बीमारियों को दूर करने में सफलता प्राप्त की माल्चिंक से पौधो में तीव्र वृद्धि प्रभाव होता है, खरपतवारों का नाश होता है, कीड़े-मकोड़ों की संख्या में कमी होती है और साथ ही पोधों से वृद्धि कारक रसायनों का निकास होता है, जिससे लाभकारी सूक्ष्मजैविकों की संख्या में वृद्धि होती है।

प्राचीन समय में भी कृषि वैज्ञानिकों ने मिट्टी में रहने वाले जीवाणुओं को नष्ट करने के प्रयास किये थे। मिट्टी को भाप के द्वारा 60 से 100° सेल्सियस तक गर्म करके जीवाणुओं की संख्या तथा उनकी किस्मों में कमी पायी गई, किन्तु वर्तमान विधि अधिक उपयोगी है, क्योंकि

इसमें जैविक वैक्यूम नहीं होता। इसके कारण जब तापमान फिर वापस आता है तो थोड़े ही समय में सूक्ष्मजीवों की संख्या में बहुत वृद्धि नहीं होती।

हमारे वैज्ञानिक भी किसी के कम नहीं

बडोदरा, गुजरात में महाराजा सयाजी राव विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग के युवा वैज्ञानिक **डॉ० अरुण आर्य** की टीम, भारतवर्ष के विज्ञान एवं तकनीकी विभाग के सहयोग से गत 5 वर्षों से इस क्षेत्र में शोध कर रही है। इनके अनुसार अब हम एक नई तकनीक विकसित कर रहे हैं, जिससे न केवल अनुपयुक्त रसायनों के अन्धाधुन्ध प्रयोग को कम किया जा सकेगा, वरन्, खेतों में बिना कीटनाशी डाले फसलों को रोगमुक्त किया जा सकेगा।

मल्चिंग के 6 सप्ताह के दौरान एक या दो बार खेतों में पानी भी दिया जाता है। वाष्पन के द्वारा पानी की छोटी-छोटी बूँदें प्लास्टिक शीट की निचली सतह पर जमा हो जाती हैं, वे सूर्य की किरणों को वापस नहीं जाने देतीं। बूँदों द्वारा अवशोषित की गई यह ऊर्जा मिट्टी का तापमान 5 से 10 सेन्टीमीटर गहराई तक कई डिग्री सेल्सियस बढ़ा देती है। पानी देने का दूसरा प्रभाव यह होता है कि कवक एवं जीवाणुओं के आराम कर रहे स्पोर्स हरकत में आ जाते हैं और उनमें वृद्धि शुरू हो जाती है, कवक जाल का आविर्भाव प्रारम्भ होता है, लेकिन अधिक ताप के कारण यह वृद्धि रुक जाती है। परिणामस्वरूप तमाम रोग उत्पन्न करने की क्षमता रखने वाले कवकों एवं कीटाणुओं का अंत हो जाता है।

अप्रैल-मई 1989 में 45 दिनों तक चलने वाले इन प्रयोगों को डॉ० आयर्य एवं डॉ० मैथ्यू द्वारा शोध प्रपत्र के रूप में **इण्डियन फाइटोपैथालॉजी** के 1993 संस्करण में प्रकाशित किया गया है। प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ कि विभिन्न रंगों में नीला रंग सर्वाधिक उपयुक्त था, परन्तु पारदर्शी शीट्स की ही संस्तुति की गई है। विभिन्न मोटाई की चादरों में 0.03 मिलीमीटर अथवा 150 गेज शीट को सफलतापूर्वक प्रयोग में लाया जा सकता है।

इन प्रयोगों से मिट्टी का तापमान 6° सेल्सियस बढ़ गया जिससे नेक कवकों की संख्या में कमी आयी और **फ्यूजेरियम् उडम** नामक अरहर की विल्ट नामक बीमारी का कारक भी समाप्त हो गया। सर्वप्रथम 1 x 2 1/2 मीटर जमीन के 10 टुकड़ों पर दो वर्ष यह प्रयोग किये गये और अरहर की बीमारी पर इस तकनीक का प्रभाव देखा गया। अब चना एवं कपास पर इसके प्रयोग प्रगति पर हैं। ऐसा अनुमान है कि काली मिट्टी पर यह विधि अधिक उपयोगी सिद्ध होगी।

डॉ० डी० जे० पटेल एवं उनके सहयोगियों ने गुजरात कृषि विश्वविद्यालय, आनन्द में टमाटर एवं तम्बाकू की पौधशालाओं में सूत्र कृमि (निमेटोड्स) एवं खरपतवार के नाश हेतु 'सोलेराइजेशन' का उपयोग किया, और पाया कि इस विधि द्वारा कई गुना अधिक आर्थिक लाभ कमाया जा सकता है। यह विधि सभी फसलों के लिए समान रूप से उपयोगी है।

डॉ० वाई० एल० नेने एवं उनके सहयोगियों ने इक्रीसेट्, पत्तनचेरू, आन्ध्रप्रदेश में इसी प्रकार के प्रयोग अरहर एवं चने पर किये और कवक तथा सूत्रकृमि की संख्या में काफी कमी दर्ज की।

सूर्य प्रकाश में निहित कृमि नाशक शक्ति का वर्णन **अथर्ववेद** में भी किया गया है।

"अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह।" 1, 4, 2

सूर्य के प्रकाश में रहने वाला जल शुद्ध होता है।

"उद्यन् आदित्यः क्रिमीन् हन्तु ..... रश्मिभिः। 2, 32, 1

इसका अर्थ है -"उदय होता हुआ सूर्य अपनी किरणों से कृमियों को नष्ट करे।"

आज जब कि हमारे यहाँ सौर ऊर्जा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, सरकार द्वारा इस दिशा में समुचित प्रयास किये जाने की आवश्यकता है।

■■

भौतिकी के रंग एवं रंगों की भौतिकी

❑ योगेन्द्र बहादुर सिंह

सम्पादक "आइट", प्रवक्ता, के० एन० आई०, सुल्तानपुर -228118

सूर्य के दृश्य स्पेक्ट्रम में सात रंग (बैंगनी, गहरा नीला, नीला, हरा, पीला, नारंगीं, लाल) मौजूद होते हैं.। इनमें लाल रंग का तरंग दैर्ध्य सबसे अधिक (लगभग 7.8 x 10^{-7} मी० होता है । हमारी आंखें पीले रंग (λ= 57 × 10^2 Ä) के प्रति सर्वाधिक संवेदी एवं बैंगनी (λ= 40× 10^2 Ä) के प्रति न्यूनतम संवेदी होती है । काले और पीले रंग का संयोग सबसे कहरा 'चाक्षुष प्रभाव' डालता है । दूसरे नम्बर पर सफेद-काला संयोग का प्रभाव है । पीले-काले संयोग का उपयोग यातायात में सर्वाधिक होता है । हाँ, खतरे के निशान के लिए लाल रंग का ही प्रयोग होता है, क्योंकि लाल रंग में दो विशेष गुण होते हैं : लाल रंग दूर से ही दिखायी देता है तथा यह धुंध और कुहरे में भी बराबर मुखरित होता है । ये गुण-लाल रंग में उसकी मोटी तरंगों के कारण होते हैं । जब खतरे के सूचक लाल रंगों पर श्वेत प्रकाश पड़ता है तब इसका प्रकीर्णन सबसे अधिक होता है । फलत: श्वेत प्रकाश का लाल हिस्सा 'खतरे के संकेत' से टकराकर चारों ओर बिखर जाता है । प्रकाश के प्रकीर्णन के लिए आदर्श स्थिति वही होती है जिसमें प्रकीर्णक व प्रकीर्णित तरंग का आकार लगभग बराबर हो और ऐसा स्वभाव लाल रंग को प्राप्त है । हरा रंग (λ= 50× 10^2 - 57 × 10^2 Ä) भी दूर से दिखायी देने वाला रंग है लेकिन लाल जैसा नहीं । प्रकाश वेग से चलने पर लालबत्ती हरी दिखायी देती है । यह 'डाप्लर प्रभाव' है । लाल कांच के टुकड़ों को अंधेरे में मर्ग करने पर हरे दिखाई पड़ते हैं । वैसे लाल और हरे रंगों को मिलाने पर काला रंग बनता है । फोटोग्राफर डार्करूम में हरे रंग के प्रकाश का प्रयोग करते हैं । टेलीविजन चलते समय कमरे में शून्यवाट का हरा बल्ब जलाना चाहिए । सूर्य की रोशनी को पीले कांच से गुजारने पर केवल पीली रोशनी मिलती है । परन्तु इन दोनों स्पेक्ट्रम में अन्तर होता है । पहली रोशनी के स्पेक्ट्रम में केवल पीले रंग का क्षेत्र मिलता है । इसे अवशोषण-स्पेक्ट्रम कहते हैं । दूसरी रोशनी के स्पेक्ट्रम में दो पीली रेखायें होती हैं.। इसे उत्सर्जन रेखा स्पेक्ट्रम कहते हैं ।

लेसर (लाइट एम्प्लीफिकेशन बाई स्टिमुलेटेड एमीशन ऑव रेडिएशन) किरणें एक ही रंग की होती है.। प्रथम लेसर किरण जो पैदा की थी, वह लाल रंग की थी । परन्तु आज हमारे पास विभिन्न रंगों की लेसर किरणें पैदा करने वाली अनेक प्रकार की युक्तियाँ हैं । लेसर ने रंगीन पदार्थों का स्पेक्ट्रम लेना आसान कर दिया है ।

न्यूटन के बाद यह खोज किया गया कि लाल रंग के तरंगदैर्ध्य से अनेक तरंगदैर्ध्य वाले क्षेत्र तथा बैंगनी रंग के तरंगदैर्ध्य से कम तरंगदैर्ध्य वाले क्षेत्र भी होते हैं । इन क्षेत्रों को अदृश्य स्पेक्ट्रम कहते हैं । लाल से अधिक तरंगदैर्ध्य वाले भाग को इन्फ्रारेड स्पेक्ट्रम तथा बैंगनी से कम तरंगदैर्ध्य वाले भाग को अल्ट्रा-वॉयलेट स्पेक्ट्रम कहते हैं । इन्फ्रा रेड रेडिएशन (λ : 7.8 × 10^{-7} m) सूर्य, स्पार्क, तप्त-निर्वात-स्पार्क व आयनीकृत गैसों से उत्पन्न होती है तथा गामा किरणों के सभी गणों को रखती है । हाँ, इस विकिरण की क्षेदन-क्षमता गामा-किरणों से कम होती है ।

साबुनों में प्रयुक्त रंजक पानी में निलंबित अवस्था

में रहते हैं और झाग को रंग देने में असमर्थ होते हैं क्योंकि साबुन का झाग रजकों के कारण नहीं वरन् साबुन के हाइड्रोकार्बन भाग के कारण होता है। रोचक तथ्य तो यह है कि झाग के जिन बुलबुलों को साबुन के रंजक नहीं रंग पाते, उन्हीं बुलबुलों की सतह पर सूर्य की किरणें गिरकर इन्द्रधनुषी छवि पैदा कर देती हैं। ऐसा होता है - व्यतिकरण के कारण। इसी प्रकार पानी के ऊपर तेल की सतह पर दृश्य रंग भी व्यतिकरण के कारण होते हैं। प्रिज्म के दृश्य रंग परावर्तन के कारण होता है। प्रकीर्णन के कारण आकाश-समुद्र व नदियों का पानी नीला दिखायी देता है। प्रकीर्णन के कारण ही उदय और अस्त होते समय सूरज लाल दिखायी पड़ता है। उदय और अस्त होते समय किरणों को पृथ्वी के वायुमण्डल में अधिक देर रहना पड़ता है (क्योंकि सूरज इस समय क्षितिज पर होता है) और इसीलिए नीले रंग (लघु तरंगदैर्ध्य) का विसरण अधिक हो जाने से नीला प्रकाश प्रेक्षक तक नहीं पहुँच पाता। ध्यान रहे प्रकीर्णन या विसरण की मात्रा के व्युत्क्रमानुपाती होता है। फलत: उगता और डूबता हुआ सूरज लाल-नारंगी दिखायी पड़ता है।

हल्के लाल रंग की नलिका में भरी निऑन गैस से विद्युत धारा गुजारने पर चमकदार लाल रंग का, हरे रंग की नलिका में ऑर्गन-नियॉन-पारे की वाष्प भरकर विद्युत धारा प्रवाहित करने पर हरे रंग का, लोहित रंग की नलिका में ऑर्गन-नियॉन-पारे की वाष्प भर कर विद्युत धारा प्रवाहित करने पर गहरे नीले रंग का उत्सर्जन होता है। उत्सर्जन की यह प्रक्रिया विज्ञापनों की दुनिया को रंगीन विस्तार प्रदान करती है।

धूप के रंगीन चश्मों में भी जिस रंग का उत्सर्जन होता है, शीशे उसी रंग के होते हैं। वैसे तो - कोई वस्तु उसी रंग की दिखायी ही पड़ती है, जिस रंग को वह उत्सर्जित करे। यदि सभी रंगों का अवशोषण कर लिया जाये तो वस्तु काली दिखायी देती है। ऐसी वस्तु को 'ब्लैक बॉडी' कहते हैं। ब्लैक बॉडी का आदर्श स्थिति संभव नहीं है। ब्लैक बॉडी की तर्ज पर ब्लैक-होल की परिभाषा दी जाती है। ब्लैक होल ऐसे तारे को कहते हैं जिसका पृष्ठ (Surface) सभी प्रकाशों को सोख ले और किसी को भी विसर्जित न करे। ब्लैक होल (काल कोठरी या काला छिद्र) आकाशगंगा के ऐसे केन्द्र हैं जहाँ अत्यधिक गुरुत्वाकर्षण वाले पदार्थों का संकेन्द्रण हो जाता है। नक्षत्र वैज्ञानिकों के अनुसार दो आकाशगंगाओं -एम -31 और एम -32 की नक्षत्र व्यवस्था के टूट जाने का खतरा पैदा हो गया है क्योंकि उनके केन्द्र में स्थित काल-कोठरियों में ऊर्जा का अधिकाधिक संकेन्द्रण हो रहा है। व्हाइट-ड्वार्फ कम चमक वाले - खूब घने तारों का एक छोटा-सा समूह है। छोटे आकार के कारण ये तारे उच्च पृष्ठ ताप रखते हैं और इसी कारण से सफेद दिखते हैं। मान्यता है कि 'सुपरनोवा विस्फोट' के अवशेष से व्हाइट ड्वार्फ स्टार बनता है। तारों के विस्तार एवं क्रमिक उन्नति में 'रेड-जिआण्ट' तारों का जिक्र होता है। ये तारे उपलब्ध हाइड्रोजन को अत्यधिक उच्च दर पर उपयोग में लाते हैं।। परिणामत: यही तारे सिकुड़कर व्हाइट-ड्वार्फ तारे बन जाते हैं। चश्मों की बात से आरंभ हुए इस अनुच्छेद का अंत भी आइये चश्मों की बात से करें। फोटोक्रोमैटिक चश्मों में सिल्वर आयोडाइड के महीन कण होते हैं। सूर्य की किरणों के पड़ने पर सिल्वर आयोडाइट सिल्वर और आयोडीन में विभक्त हो जाता है। सिल्वर कणों के कारण ही शीशे का रंग काला हो जाता है।

रंगीन टेलीविजन पच्चीस हजार वोल्ट की बिजली द्वारा रंगीन चित्र हमें दिखाता है जबकि ब्लैक एण्ड व्हाइट पचहत्तर हजार वोल्ट की बिजली द्वारा। अत: रंगीन टी० वी० से निकलने वाली एक्स किरणों का प्रभाव समीप बैठे हुए बच्चों पर अधिक पड़ता है। एक घण्टे में 150 मिली रांटजन किरणें वायुमण्डल में फैल जाती हैं जिनके कारण रक्त कैंसर तथा अन्य भयंकर रोगों की संभावनायें जन्म लेती हैं।

रंगीन फोटोग्राफी में तीन प्राथमिक रंगों में प्रतिबिम्ब प्राप्त करके, बाद में एक दूसरे के साथ मिलाकर वांछित रंग प्राप्त करते हैं। आजकल जो रंगीन फिल्में मिलती हैं, उन पर तीन पायस परतों का लेप होता है जो नीले, हरे और लाल रंगों के प्रति प्रभावी होती हैं। सबसे ऊपर की नीली परत और नीचे की दो अन्य परतों के बीच एक पीली छनित्र परत लगा दी जाती है ताकि नीली रोशनी

बाकी दोनों पायस परतों तक पहुँचकर उनसे क्रिया न करने पाये। पॉजिटिव बनाने के लिए सर्वप्रथम फिल्म को डेवलप करके लाल रोशनी के सामने रखकर पुन: डेवलप किया जाता है। फिर इस फिल्म को नीली रोशनी के सामने डेवलप किया जाता है। इससे तीनों परतों में लगा हुआ सिल्वर निकल जाता है और फिर फिल्म तीनों रंगों में स्पष्ट रूप से उभर आती हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड के वैज्ञानिक सेडलेटेलर और फ्रांस के वैज्ञानिक एम० गेभार्ड ने यह सिद्ध कर दिखाया कि आवाज का भी रंग होता है। ध्वनि रंग के ऊपर किये गये प्रयोगों ने ध्वनि द्वारा शीतल रंगों (नीला, हरा, बैंगनी) के प्रभाव के गहरे हो जाने तथा उष्ण रंगों (लाल, नारंगी, पीला) के प्रभाव के छिछले हो जाने की जानकारी दी। इसी आधार पर कमरों को साउण्ड-प्रूफ बनाने के लिए उन्हें शीतल रंगों से रंगने की तकनीक सामने आयी।

परा-भौतिकी ने भी यह स्वीकार किया है कि सूक्ष्म शरीर के चारों ओर जो एक चमकीला मण्डल बनता है, उसमें विभिन्न रंग दृष्टिगोचर होते हैं। स्वप्न-शास्त्रियों के अनुसार आंठ घंटे की नींद में अधिकांश लोगों को पाँच रंगीन सपने दिखाई देते हैं।

चलते-चलते

अंधेरे का कोई रंग नहीं होता किन्तु उसे काला माना गया है।

■■

वैज्ञानिक का एक कर्तव्य यह भी

"वैज्ञानिक का अपने देश के प्रति कर्तव्य होता है। वैज्ञानिक का कर्तव्य है कि वह अपनी योग्यता का वितरण नि:शुल्क रूप से स्वतंत्रतापूर्वक करे। यह वितरण केवल उन व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए जो उसे समझने में दक्ष हैं वरन् इस ज्ञान का वितरण इस रूप मे होना चाहिए कि समस्त साधारण जनता उसे भली भाँति समझ सके और उससे लाभ उठ सके तथा सत्य की खोज की ओर अग्रसर हो सके। प्रत्येक साधारण मनुष्य को आवश्यक वैज्ञानिक बातों का ज्ञान होना जरूरी है। यह एक बड़ा महत्वपूर्ण विचार है। भारत में इस ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। आज ज्ञान केवल कुछ ही गिने चुने व्यक्तियों तक ही सीमित है। मैं विज्ञान को साधारण जनता की पूँजी बनाना चाहता हूँ ... आज का संसार वैज्ञानिक युग का है इसलिए वैज्ञानिक ज्ञान का साधारण जनता में स्वतंत्रता पूर्वक वितरण करके ही हम अपने देश का स्तर उच्चतम बना सकते हैं।"

—**रामन विश्ववाणी** 1948

(भारतीय स्वतंत्रता का सांस्कृतिक महत्व)

—*प्रस्तुति* : डॉ० शिवगोपाल मिश्र

देवी-देवताओं को दुग्धपान कराने की घटना संबंधी प्रतिक्रिया

प्रिय मित्रवर प्रेमचन्द्र जी,

वास्ता है - विज्ञान : नवम्बर-दिसम्बर 1995
अंतिम पृष्ठ : विज्ञान वक्तव्य
विषय- 21 सितम्बर 95 : मूर्तियों द्वारा दुग्धपान।

बकौल आप ...... भारतीय विज्ञान चुटीला है, आपका मन उदास है, दुखी है, सो प्रेमचन्द्र जी। अबूझता के इस सफर में,

तुम अकेले ही नहीं, मैं भी तुम्हारा हम सफर हूँ।

भौतिकवाद को आधिभौतिकवाद में, अध्यात्मवाद में मिसफिट करने का तमाशा यही तो होगा। दूध भौतिक, मूर्तियाँ भौतिक ..... कोई यह नहीं बता सका कि मनों-टनों दूध आखिर गया कहाँ ? दुधमुहों को दूध के लाले पड़ गये। पीने वाले तो खैर, तमाशा देख रहे थे, हम पिलाने वालों का तमाशा देख रहे थे। पिलाने वाले कितना निहाल हुए, टोकने वाला पुजारी बेहाल हुआ (किसी आकस्मिक वैज्ञानिक कारणवश) मगर दूध बेचने वालों की तो लाटरियाँ खुल गयीं।

मूर्तिकार किसी मूर्ति के मुखद्वार पर सूराख तो बनाता नहीं कि हजरत चाहे जब चाय-पानी का शौक फरमावें, दूध धरती पर फैला नहीं वर्ना सोनचिरैया भारत में पुनः दूध की नदियाँ बह उठती, दूध मूर्तियों के पेट में गया नहीं वर्ना पेट के विस्फोट होते फिरते, फिर उसे दूध "पिलाना कैसे कहा गया ? दूध वायु में उड़ा नहीं फिर गया तो कहाँ गया ?

जब भगवान ने हिन्दू से पिया, मुस्लिम और इसाई से पिया, कोई जाति भेद नहीं माना तब परिवार में परस्पर तथा पुजारी-पुजारी में भेद क्यों यदि सच ही पीने वाला भगवान था ?

मित्रवर ! बुतपरस्ती का, मूर्तिपूजा का यह विश्व-व्यापी उन्माद एक तूफान था जो बतौर आँधी, इधर आया, उधर गया। आधिभौतिकता तथा श्रद्धा-विश्वास सब कुछ अकल्पनीय भी करने-कराने में समर्थ है तथा इससे भी बढ़चढ़ कर चमत्कार होते रहे हैं। उस पावन भावना को यों सरे आम भुनाना एक दयनीय उन्माद है।

कुछेक सस्ते वैज्ञानिकों ने इसे सतहाकर्षण कह कर भी उछाला... वह सब सर-माथे परन्तु परनाला वहीं का वहीं।

खुदा ही खैर करे, ये पागलपन तो बेढब है.....

प्रेमचन्द्र जी ! आप क्यों खुदा की नियामतें ये अपनी नींद, भूख से हफ्तों दाँव पर लगा रहे हैं। ये हिन्दुस्तान है, प्यारे ! समझौता कर लें कि कुछ बातें प्रयोग सिद्ध नहीं की जा सकती। श्रद्धा-विश्वास को अपने प्रतिष्ठापित आसन पर रहने दें, विज्ञान की कसौटी पर क्यों उनका चीर हरण करें ?

ये वो नग्मा है जो हर साज़ पर गाया नहीं जाता

शुभमस्तु

श्याम सरन विक्रम
68 असिस्टेन्ट लाइन, विरलानगर, ग्वालियर

प्रिय संपादक महोदय,

"विज्ञान" पत्रिका के नवम्बर-दिसम्बर 1995 अंक के "विज्ञान वक्तव्य" स्तंभ से जो प्रश्न आपने उठाया है उस सम्बन्ध में मेरे विचार व उत्तर निम्नलिखित हैं। जी, नहीं, 21 सितम्बर 1995 को देवी देवताओं की मूर्तियों को दूध पिलाने की बात या घटना मैंने उससे पहले कभी नहीं सुनी थी।

सारे देवी-देवताओं की प्रतिमाओं को दूध पिलाने की प्रथा मेरी जानकारी के अनुसार नहीं है। संभवतः अरबों रुपये सरकार और स्वयं सेवी संस्थाओं के तरफ से विज्ञान के प्रचार-प्रसार में प्रति वर्ष खर्च होता है।

आज हम सर्वत्र जो भ्रष्ट व गलत वातावरण देख रहे हैं वह इन कथित/शिक्षित वर्ग की ही देन है। सिर शर्म से और अधिक झुक जाता है जब ये शिक्षित/धनवान वर्ग आधुनिकता की अंधी दौड़ में दिन भर बेईमानी/गलत आचरण करते हुए सुबह-शाम देवी-देवताओं की पूजा करते हैं और कई जगहों पर तो समय व पैसा के साथ लाखों लीटर दूध व पानी पूजा के नाम पर बहा देते हैं। जबकि गरीब/निर्धन व अशिक्षित व्यक्ति यथा सम्भव पैसे व खाद्य सामग्रियों को नुकसान होने से बचाता है। दूध पीने/पिलाने को उपरोक्त घटना से जहाँ सबसे अधिक पढ़े लिखे, धनवान लोग प्रभावित रहे वहीं विज्ञान के प्रचार-प्रसार करने वाले सरकारी/गैर सरकारी संस्थानों की कलई भी खुल गई जो विज्ञान के माध्यम से देश व समाज को 21वीं शताब्दी में ले जाने की दावा करने से बाज नहीं आते हैं। यही नहीं, वैज्ञानिक वर्ग भी इन कारणों का स्पष्ट व पूर्ण व्याख्या करके जनसामान्य को संतुष्ट करने में असफल रहा। पृष्ठ तनाव/श्यानता/गुरुत्वाकर्षण के समवेत प्रभाव से दुग्ध विसरण हो जाना, सभी शिक्षित/वैज्ञानिक वर्ग को संतुष्ट कर पाना संभव नहीं हो पाया। और तो और मैने स्वयं कई वैज्ञानिकों द्वारा उक्त घटना स्वीकार करते हुए चमत्कार कहा जाना सुना और उनके द्वारा इस चमत्कार में आस्था व्यक्त करते हुए एक अद्वितीय घटना स्वीकार करना जैसे वक्तव्य सम्मिलित हैं। कुछ प्रश्न अवश्य जन सामान्य शिक्षित वर्ग ने जानना चाहा था जिसमें धातु व संगमरमर पत्थर निर्मित प्रतिमाओं में दुग्ध विसरण कैसे सम्भव हुआ? छोटी-छोटी मूर्तियों में भी कई-कई लीटर दूध का विसरण कुछ ही समय में कैसे सम्भव हुआ? जबकि दूध बाहर नहीं फैला। श्यानता/पृष्ठ तनाव आदि गुण प्रत्येक द्रव विशेष के लिए अपरिवर्तनीय व सुनिश्चित बल हैं जिसे कभी भी दोहराया जा सकता है फिर उपरोक्त घटना 21 सितम्बर 1995 को ही क्यों हुई, यदि मूर्तियाँ दूध नहीं पी रहीं थी तो क्या अनेक प्रबुद्ध वर्ग, वैज्ञानिक, वकील, जज, इन्जीनियर, डॉक्टर, नास्तिक, आस्तिक, युवा, बाल, वृद्धों का कथन झूठा या काल्पनिक हो सकता है? इस घटना की विदेशों में रहने वाले व्यक्तियों / समाचार माध्यमों/वैज्ञानिक वर्ग ने भी क्यों पुष्टि की?

वास्तव में जन-संचार माध्यमों को चाहिए था कि उपरोक्त घटना के सम्बन्ध में जन सामान्य के मन में उठे शंकाओं व प्रश्नों को स्पष्ट व पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करते जिससे कि शिक्षित वर्ग सहित सभी लोगों को शीघ्र व सटीक समाधान मिल सके तथा उनके मन में यह धारणा निकाली जा सके कि "चमत्कार को नकारने" के लिए "दुग्ध विसरण" की घटना गढ़ी गयी है। फिलहाल मुख्य बात अब यह नहीं रह गयी है कि मूर्तियों ने दूध पिया या नहीं बल्कि मुख्य बात यह हो गयी है कि जनमानस में वैज्ञानिक चेतना के विस्तार व प्रचार-प्रसार के लिए नई दिशा व नये प्रयत्न की तलाश किस प्रकास व कैसे की जाये जिससे कि पुनः ऐसे कथित चमत्कारों पर जन मानस विश्वास न करें?

विमलेश चन्द्र

विज्ञान लेखक, सूक्ष्म तरंग केन्द्र, पालेग

(भरूच), गुजरात -312220

सद्भावना पखवाड़ा समारोह

❑ डॉ० सुनीता राय
वैज्ञानिक, रक्षाप्रयोगशाला, जोधपुर (राजस्थान)

पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गाँधी के जन्म दिवस पर उनके राष्ट्र की एकता, सहिष्णुता एवं अखण्डता के लिए दिये गये बलिदान की याद को ताजा बनाये रखते हुए 20 अगस्त से 5 सितम्बर के मध्य सद्भावना पखवाड़ा का आयोजन किया जाता है इसी के तहत रक्षा प्रयोगशाला जोधपुर में भी सद्भावना पखवाड़ा समारोह आयोजित किया गया था।

आयोजन को स्वरूप देने के लिए एक समिति का गठन निम्न सदस्यों के साथ किया गया - डॉ० रामगोपाल -अध्यक्ष, श्री आर दयाल सचिव एवं श्री चन्द्रमोहन, श्री यू० आर० देथा, डॉ० सुशीला राय एवं श्री राकेश श्रीवास्तव -सदस्य।

आयोजन का शुभारंभ शपथ समारोह के साथ किया गया। रक्षा प्रयोगशाला के कार्यभारी निदेशक डॉ० रामगोपाल ने रक्षा कर्मचारियों को प्रयोगशाला प्रांगण में यह कहते हुए शपथ दिलाई कि हम सभी देश की एकता, सहिष्णुता एवं साम्प्रदायिकता की भावना को बनाये रखने में किसी भी प्रकार की अहिंसा व अस्त्र का प्रयोग नहीं करेंगे। शपथ समारोह के उपरान्त सद्भावना पखवाड़ा के अन्तर्गत विवेकानन्द केन्द्र के श्री मुकुल कानेटकर जी द्वारा सद्भावना पर एक ओजस्वी व्याख्यान दिया गया। इस ओजस्वी व्याख्यान में आपने बताया कि कोई भी व्यक्ति लगातार 1 घंटे तक झूठ नहीं बोल सकता अर्थात् मनुष्य हमेशा सत् का अनुसरण करने वाला है और यह सत् सद् शब्द के बना है तथा अच्छी भावना से जुड़कर ही सद्भावना का निर्माण हुआ है। यही सद्भावना मनुष्य में जीवन्त बनी रहती है। बस हम अपने स्वार्थवश इसमें परिवर्तन कर दुर्भावना को जन्म दे देते हैं। महाभारत में दुर्योधन को धर्मराज युधिष्ठिर ने कभी भी अपने अनुज को दुर्योधन के नाम से नहीं पुकारते थे बल्कि वे उन्हें सुयोधन ही कहते थे। अतः हमें भी सु-सत्य पर चलना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति कष्ट कर स्थिति में हमेशा सुखकर स्थिति में जाना चाहता है और इसी में जीना चाहता है तथा दूसरे व्यक्ति को भी सु-पथ पर चलने के लिए प्रेरित करता है। दानव ही स्वयं के लिए सोचता है जबकि महान व्यक्ति ही दूसरों के दुखदर्द से विचलित हो जाता है। मुकुल जी ने महान दार्शनिक अब्राहिम लिंकन के एक सद्भावना से प्रेरित हो किये गये एक कार्य का उदाहरण भी प्रस्तुत किया कि एक समय लिंकन जी अपने सहयोगियों के साथ किसी कार्य पर शीघ्रता से इक्के द्वारा जा रहे थे कि अचानक रास्ते में एक पानी से भरे पोखर में बैठे सुअर के बच्चे पर उनकी गाड़ी का पहिया लग गया फलस्वरूप सुअर का बच्चा आहत हो क्रंदन करने लगा। लिंकन जी से यह देखा न गया और वे झट सवारी गाड़ी से नीचे उतरे और उस आहत सुअर के बच्चे को गोद में उठा ऊपर समतल जमीन पर छोडा। उस वक्त अपने कपड़ों का गंदा होना बुरा नहीं लगा और बस उन्हीं कपड़ों में वे पुनः अपने इक्के में आ बैठे। साथियों ने कहा कि लिंकन तुम साफ सफेद कपड़ो में मीटिंग में जा रहे थे और अचानक इन्हें गंदे कर जा रहे हो। बस इतना सुनते ही लिंकन जी बोल

पड़े कि मेरे दोस्तों ! यदि मैं इसे अभी पोखर से न निकालता तो रात भर मैं चैन की नींद न सो पाऊँगा । तो यह है सद्भावना से ओत प्रोत कर्तव्य । तो क्यों न हम सभी इस सद्भावना पखवाड़े पर प्रतिज्ञा करें कि हम सद् अर्थात् अच्छी, भावना अर्थात् मंगल मैत्री की भावना से ओतप्रोत हो आपसी वैमनस्यता का त्याग करें । आज जो चारों तरफ आतंकवाद अहिंसा से प्रेरित नारे गूंज रहे हैं उनके स्थान पर देश की अखंण्डता को मजबूत बनाने के लिए देशभक्ति को जाग्रत व भाई चारे (अपनत्व) का नारा बुलंद करें ।

इसी कड़ी को बढ़ाते हुई रक्षा प्रयोगशाला में सद्भावना से ओतप्रोत सांस्कृतिक संध्या का आयोजन किया गया । नेत्रहीन विकास संस्थान के मरु अंध विद्यालय के नेत्रहीन बच्चों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रमों की प्रस्तुतीकरण पर रक्षा कर्मचारियों के परिवार सदस्यों ने भी अपनी उपस्थिति प्रस्तुत कर आनन्द उठाया । अंत में प्रयोगशाला के निदेशक डॉ० अ० रेड्डी ने नेत्रहीन बच्चों को ईनाम दे उनको बधाई दी व उनका मनोबल बढ़ाया

इसी सप्ताह के अन्तर्गत स्वामी रामसुख दास जी के प्रवचनों का लाभ भी रक्षा कर्मचारियों एवं परिवार के सदस्यों ने उठाया ।

समीक्षा

पुस्तक - भारतीय वास्तुकला

लेखक - डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव

प्रकाशक - नवभारती प्रकाशन, 118/3, दारागंज, इलाहाबाद

पृष्ठ संख्या - 24, मूल्य 13 रुपये, वर्ष 1995

पुस्तक को देखते ही बरबस आँखे उसकी ओर आकृष्ट हो जातीं हैं । पुस्तक को कुल पाँच खण्डों में विभक्त किया गया है । लेखक पुस्तक में भारतीय वास्तुकला की बड़ा ही सहज, सरल एवं रोचक चित्रण प्रस्तुत करते हैं। इससे उत्कृष्टता और भी बढ़ जाती है । पुस्तक की शुरूआत में ही लेखक ने पुस्तक की रचना की आवश्यकता को बताया है । पुस्तक बच्चों के लिए तो उपयोगी है ही साथ ही इसके प्रामाणिक सामग्री से बड़ों के लिए भी इसकी महत्ता बढ़ जाती है ।

पुस्तक - भारतीय मूर्तिकला एवं चित्रकला

लेखक - डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव

प्रकाशक - नवभारती प्रकाशन, 118/3, दारागंज, इलाहाबाद

पृष्ठ संख्या - 28, मूल्य 13 रुपये, वर्ष 1995

यह पुस्तक कुल तीन अध्यायों के अन्तर्गत विभक्त है । पुस्तक में जगह-जगह आवश्यकतानुसार चित्र दिये गये हैं । पुस्तक ऐसे तो बच्चों को ध्यान में रखकर लिखी गयी जान पड़ती हैं, परन्तु वस्तुतः यह शिक्षित वर्ग के लिए भी कम उपयोगी नहीं है । पुस्तक में भारतीय कला का परिचय, मूर्तिकला एवं चित्रकला का बहुत ही सारगर्भित वर्णन प्रस्तुत किया गया है । दोनों ही पुस्तकों का आवरण आकर्षक एवं मनमोहक है जो कि अपने पूर्ण सुव्यवस्थित एवं सुसज्जित कलेवर के साथ अवतरित हुई है । इसमें उपयोग किये गये उत्तम किस्म के कागज़ के कारण छपाई बहुत ही आकर्षक बन पड़ी है । निःसंदेह ये दोनों पुस्तकें सभी जिज्ञासुओं के लिए संग्रहणीय हैं । हाँ पुस्तकों के मूल्य कुछ अधिक जान पड़ते हैं । इसमें दो राय नहीं कि पुस्तक के इन सारगर्भित तथ्यों के लिए लेखक डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव का कठिन परिश्रम एवं लगन एवं उपयुक्त सामग्री लोगों के समक्ष प्रस्तुत करने के संकल्प का सुपरिणाम है ।

अन्ततः पुस्तक के सफल प्रस्तुतीकरण के लिए लेखक, प्रकाशक, मुद्रक तथा अन्य सभी, जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े रहे हैं, साधुवाद के पात्र हैं ।

सुनील कुमार पाण्डेय

डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव
5डी /4, स्टाफ क्वार्टर्स, लिडिल रोड,
जार्ज टाउन, इलाहाबाद-211002 (उ० प्र०)

प्रधान संपादक : डॉ० रमेशचन्द्र शर्मा, निदेशक - भारत कला भवन, वाराणसी,

संपादक : डॉ० गिरराज किशोर अग्रवाल, महामंत्री, श्री हजारीमल बाँठिया सम्मान समारोह समिति, अलीगढ़, उ० प्र० प्रकाशक :श्री हजारीमल बाँठिया सम्मान समारोह समिति, अलीगढ़, पृ० लगभग 300,एवं रंगीन तथा श्याम-श्वेत चित्र । बीकानेर, हाथरस तथा कानपुर में कार्यरत सुप्रसिद्ध समाजसेवी, साहित्यानुरागी एवं संस्कृति प्रेमी श्री हजारीमल बाँठिया के 71 वें जन्मदिन पर 24.9.95 को कानपुर में उनका सार्वजनिक सम्मान किया गया तथा उन्हें अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किया गया । प्रस्तुत कृति उसी अभिनन्दन ग्रंथ का पहला खण्ड है जिसे 'बाँठिया समग्र' के रूप में प्रकाशित किया गया है । दूसरे खण्ड में शोध निबन्ध होंगे । प्रस्तुत ग्रंथ के प्रथम भाग में विभिन्न विद्वानों, संभ्रान्त नागरिकों तथा श्री बाँठिया के प्रशंसकों के संस्मरण हैं ।

द्वितीय भाग 'श्री हजारीमल बाँठिया : पत्रों के प्रकाश में' शीर्षक से दिया गया है । इसमें श्री बाँठिया को लिखे गये अनेक विद्वानों और गणमान्य व्यक्तियों के पत्र हैं । तृतीय भाग 'व्यक्ति एक संस्थाएं अनेक' नाम से है । इसमें श्री बाँठियाँ के 67 संस्थाओं से सम्बन्ध की जानकारी दी गई है । ये संस्थाएं देश भर में तो हैं ही, विदेश में भी हैं । इटली में डॉ० एल० पी० तैस्तितोरी 'इटली-इण्डिया सोसाइटी, उदीने' तथा 'इटली-इण्डिया फ्रेण्डशिप सोसाइटी, वेनिस' नामक संस्थाओं से भी श्री बाँठियाँ का जुड़ाव है । अन्त में श्री हजारीमल बाँठिया के सहयोग-संचालन में आयोजित कतिपय विशिष्ट समारोहों-सम्मेलनों के संक्षिप्त विवरण भी दिये गये हैं ।

इस अभिनन्दन पत्रिका में दिये गये संस्मरणों, पत्रों और आयोजनों के विवरणों के माध्यम से श्री हजारीमल बाँठिया का बहुआयामी व्यक्तित्व एवं कृतित्व स्पष्ट रूप से पाठक के सामने प्रस्तुत करने का श्रेय निःसंदेह सफल सम्पादन को जाता है जिसके लिए डॉ० गिरराज किशोर अग्रवाल एवं उनके सहयोगी बधाई के पात्र हैं । ग्रंथ की छपाई एवं प्रस्तुति प्रशंसनीय और श्री बाँठिया के व्यक्तित्व के अनुरूप हैं ।

सम्मान

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा , द्वारा हिन्दी के माध्यम से श्रेष्ठ वैज्ञानिक साहित्य सृजन में उल्लेखनीय योगदान के लिए वर्ष 1995 का डॉ० आत्मा राम पुरस्कार, नई दिल्ली के श्री प्रेमानन्द चन्दोला एवं श्री हरीश अग्रवाल को प्रदान किया गया है । इस पुरस्कार में 15,000 रुपये की नकद धनराशि एवं ताम्र-पत्र शामिल है । श्री चन्दोला एवं श्री अग्रवाल दोनों ही लब्धप्रतिष्ठित विज्ञान लेखक हैं तथा विज्ञान परिषद् प्रयाग से गहरे जुड़े हुए हैं । दोनों विद्वानों को विज्ञान परिषद् परिवार की हार्दिक बधाई ।

विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रयास जरूरी

28 जनवरी : विज्ञान की जो लोकप्रियता आज है उसके पीछे वैज्ञानिकों और लेखकों का कठिन परिश्रम और निरंतर प्रयास रहा है । स्वतंत्रता पूर्व से ही बंगाल, महाराष्ट्र और पंजाब के वैज्ञानिकों और लेखकों ने इस दिशा में सतत प्रयास कियाहै और अनेक चुनौतियों का सामना करते हुए वे विज्ञान के प्रचार प्रसार में लगे रहे.। आज की युवा पीढ़ी को उनसे प्रेरणा लेनी चाहिए । ये विचार इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग के पूर्व अध्यक्ष डॉ० डी० डी० पंत ने आज यहां विज्ञान परिषद में आयोजित द्विदिवसीय संगोष्ठी का शुभारंभ करतेहुए व्यक्त किये । गोष्ठी का विषय है 'स्वतंत्रतापूर्व विज्ञान लोकप्रियकरण के व्यक्ति निष्ठ प्रयास.।'

उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता एन० सी० एस० टी० सी० और 'विज्ञान प्रसार' के निदेशक डॉ० नरेन्द्र सहगल ने की.। उन्होंने बताया कि किस तरह विज्ञान प्रसार विज्ञान को लोकप्रिय करने में प्रयत्नशील है । यह गैर सरकारी संस्था कार्यशाला और कारखानों के आयोजनों के साथ लोकप्रिय विज्ञान की पुस्तकें भी प्रकाशित कर रहीं हैं । उन्होंने बताया कि संस्था सीरियल और फिल्मों के माध्यम से भी विज्ञान को लोकप्रिय बनाने में प्रयत्नशील है । संगोष्ठी के संयोजक डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने संगोष्ठी के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला । 'विज्ञान' के सम्पादक श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने विज्ञान परिषद् का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया । संगोष्ठी का आयोजन विज्ञान प्रसार और विज्ञान परिषद् के संयुक्त तत्वाधान में किया गया है । डॉ० दिनेश मणि ने समारोह का संचालन किया ।

धन्यवाद ज्ञापन विज्ञान परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ० डी० डी० नौटियाल ने किया.।

संगोष्ठी के प्रथम सत्र की अध्यक्षता सुविख्यात भाषाविद डॉ० हरदेव बाहरी ने की । इस सत्र में श्री हरिमोहन मालवीय (इलाहाबाद) ने डॉ० रघुवीर के शब्दकोष पर तथा डॉ० गिरीश चन्द्र चौधरी (बी० एच० यू० वाराणसी) ने श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं श्री देवकी नन्दन खत्री की सरल सुबोध एवं रोचक विज्ञान कथाओं पर चर्चा की । डॉ० हरदेव बाहरी ने शब्दों का चयन उनकी लोकप्रियता के आधार पर करने का सुझाव दिया और कहा कि अंग्रेजी या अन्य भाषाओं के जो शब्द प्रचलित या लोकप्रिय हो चुके हैं उनका अनुवाद करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

संगोष्ठी के द्वितीय सत्र की अध्यक्षता सी० एस० आई० आर० के वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं भारत की सम्पदा के सम्पादक श्री तुरशन पाल पाठक ने की । इस सत्र में श्री दर्शनानन्द ने औद्योगिक विज्ञान साहित्य सृजन में प्रो० विलियम हेज के योगदान पर प्रकाश डाला । कैंसर रिसर्च इन्स्टीट्यूट के डाइरेक्टर डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय ने 16वीं शताब्दी में आयुर्वेद साहित्य के सृजन एवं प्रचार प्रसार में श्री भावमिश्र के योगदानों पर चर्चा की । कुलभाष्कर आश्रम कॉलेज के डॉ० प्रभाकर द्विवेदी ने भौतिक तथा रसायन विज्ञान साहित्य सृजन में पं० गोपाल स्वरूप भार्गव की सेवाओं का उल्लेख किया । एन० सी० एस० टी० सी० के वरिष्ठ वैज्ञानिक श्री मनोज कुमार पटेरिया ने हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता पर अपना शोध परक निबन्ध प्रस्तुत किया । द्वितीय सत्र के अध्यक्ष श्री तुरशन पाल पाठक ने विज्ञान साहित्य तथा धर्म के संगम स्वामी (डॉ०) सत्यप्रकाश सरस्वती की हिन्दी विज्ञान सेवाओं पर प्रकाश डाला । संगोष्ठी का तृतीय सत्र कल 29 जनवरी को पूर्वाह्न 10 बजे से होगा ।

29 जनवरी : विज्ञान प्रसार और विज्ञान परिषद् के संयुक्त तत्वावधान में स्वतंत्रतापूर्व विज्ञान लोकप्रियकरण के व्यक्तिनिष्ठ प्रयास विषयक संगोष्ठी के दूसरे दिन आज प्रत्येक लेखकों ने उन वैज्ञानिकों, लेखकों की चर्चा की जिन्होंने विज्ञान को आम आदमी तक पहुँचाने, उसे सरल भाषा में प्रस्तुत करने और लोगों को विज्ञान विषयों के प्रति जागरूक करने के लिए अपना बहुमूल्य योगदान किया है।

संगोष्ठी के दूसरे दिन दो सत्रों में लगभग एक दर्जन लोगों ने अपने पर्चे पढ़े जिनमें सर्वथा नयी जानकारियाँ दी गयी थीं।

प्रथम सत्र की अध्यक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रो० गिरीश चन्द्र चौधरी ने की। विज्ञान प्रगति के पूर्व सम्पादक श्री श्याम सुन्दर ने स्वामी हरिशरणानन्द जी द्वारा आयुर्वेदिक साहित्य सृजन एवं औषधियों के प्रचार प्रसार में की गयी उल्लेखनीय सेवाओं पर प्रकाश डाला।

विज्ञान परिषद के संयुक्त मंत्री डॉ० दिनेश मणि ने प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा द्वारा हिन्दी ने विज्ञान साहित्य के सृजन के क्षेत्र में दिये गये योगदान की चर्चा की। 'विज्ञान' के सम्पादक श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने स्वामी डॉ० सत्यप्रकाश की हिन्दी विज्ञान साहित्य की उपलब्धियों पर प्रकाश डाला। जाने माने विज्ञान लेखक श्री शुकदेव प्रसाद ने पं० जगपति चतुर्वेदी के हिन्दी विज्ञान लेखन में योगदान की सविस्तार चर्चा की और बताया कि आर्थिक विपन्नता सहते हुए भी किस तरह चतुर्वेदी जी ने हिन्दी में विज्ञान साहित्य का सृजन किया।

डॉ० राजकुमार दुबे ने प्रो० रामचरण मेहरोत्रा की हिन्दी सेवाओं की चर्चा की। डॉ० सुनील दत्त तिवारी ने बाबू रामदास गौड़ के योगदान का वर्णन किया।

संगोष्ठी के चतुर्थ सत्र की अध्यक्षता प्रसिद्ध गणितज्ञ डॉ० चन्द्रिका प्रसाद ने की।

'अमृत प्रभात' के उपसम्पादक श्री रामधनी द्विवेदी ने मराठी के लेखक स्व० शंकर बालकृष्ण दीक्षित के खगोल विज्ञान के प्रचार-प्रसार में किये गये योगदान की चर्चा की।

संगोष्ठी के संयोजक एवं विज्ञान परिषद् के पूर्व प्रधानमंत्री प्रो० शिवगोपाल मिश्र ने डॉ० गोरख प्रसाद के जीवन और कृतित्व पर प्रकाश डालते बताया कि हिन्दी विश्व कोष के कई खंडों का सम्पादन और अनेक वैज्ञानिक ग्रंथों की रचना उन्होंने किस लगने से की। श्री सुनील कुमार पाण्डेय ने प्रो० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव (सूर्य सिद्धान्त के टीकाकार) के विज्ञान साहित्य के प्रणयन में योगदान की चर्चा की। श्री तुरशन पाल पाठक ने भी रामचन्द्र तिवारी के वैज्ञानिक साहित्य पर प्रकाश डाला।

संगोष्ठी के समापन सत्र में विज्ञान प्रसार के निदेशक डॉ० नरेन्द्र सहगल ने संगोष्ठी की सार्वभौमिकता पर बल देते हुए कहा कि ऐसी संगोष्ठियां कई स्थानों पर होनी चाहिए और अतीत में जिन विज्ञान लेखकों ने विज्ञान के प्रचार-प्रसार में योगदान किया है उन्हें प्रकाश में लाया जाना चाहिए।

धन्यवाद ज्ञापन डॉ० डी० डी० नौटियाल ने तथा संचालन डॉ० दिनेशमणि ने किया। प्रो० शिवगोपाल मिश्र ने अतिथियों के प्रति आभार व्यक्त करते हुए विज्ञान के प्रचार प्रसार में विज्ञान परिषद् के सदैव तत्पर रहने का आश्वासन दिया और आशा व्यक्त की कि भविष्य में भी ऐसी संगोष्ठियां आयोजित होती रहेंगी। समापन समारोह में उपस्थित प्रमुख लोगों में डॉ० हरदेव बाहरी, दर्शनानन्द, हरिमोहन मालवीय, सुबोध महन्ती, मनोज पटेरिया, डॉ० रामकुमारी मिश्रा, मंजूलिका लक्ष्मी, डॉ० प्रभाकर द्विवेदी, देवी दयाल पाण्डेय, अरुण कुमार सिंह, संजीव त्रिपाठी, चन्द्र भूषण पाण्डेय आदि उपस्थित थे।

('अमृत प्रभात' से साभार)

संचार क्रांति में नया :आयाम पेजिंग

❑ प्रमोद कुमार गुप्त

एम० एस-सी० (कृषि) जीव रसायन विभाग,
इलाहाबाद कृषि संस्थान, इलाहाबाद -7

संचार प्रणाली आज आसमान की ऊँचाइयाँ छू रहा है। आज से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले हुए टेलीग्राफ के आविष्कार से संचार प्रणाली को कुछ हद तक सरल किया था। यहीं से संचार क्रांति का श्रीगणेश माना जाता है और इसी समय **ग्राहमबैल** के द्वारा टेलीफोन के आविष्कार के साथ ही टेलीफोन युग का सूत्रपात भी हुआ। संचार प्रणाली का क्षेत्र वर्तमान में प्रगति पथ पर है। प्राचीन काल में संचार माध्यम का एक मात्र स्रोत 'कबूतर' था पर आज संचार प्रणाली ने विभिन्न आयामों (जैसे- मैराथन दौड़, डाक व्यवस्था, यातायात, टेलीफोन) को पीछे छोड़ते हुए आशातीत सफलतायें अर्जित की हैं। विश्व अगले लगभग पाँच वर्षों के बाद इक्कीसवीं सदी में कदम रखने को हैं, फिर भी बीसवीं सदी के अंत तक विश्व वैज्ञानिकों की जो आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ रहीं हैं, वे निश्चय ही अगली शताब्दी में वैज्ञानिक क्रांति की ओर इंगित करती हैं।

आज आप घर बैठे विश्व के किसी भी स्थान से टेलीफोन के माध्यम से सम्पर्क कर सकते हैं। घर से ही कार्यालय, रिश्तेदारों, कारखानों, आदि से मात्र चन्द मिनटों में ही एक दूसरे की स्थितियों का ज्ञान हो जाता है। लेकिन जब आप अपने शहर में ही अज्ञात स्थानों पर होते हैं, घर या कार्यालय से सम्पर्क करना आवश्यक है, या कोई अप्रिय घटना घटी जिससे आपको असीमित हानि होने की आशंका है, पूर्व में यह वैज्ञानिकों के समक्ष चिंता का विषय था, किन्तु अब नहीं। इस समस्या का समाधान वैज्ञानिकों ने 'पेजर' (संदेश ग्रहण करने हेतु) और 'सेल्युलर फोन' (तुरन्त सम्पर्क के लिए) का आविष्कार करके किया है।

आप में से बहुतों ने बड़े-बड़े चिकित्सालयों में चिकित्सकों की जेबों में प्लास्टिक के छोटे उपकरण लगे अवश्य ही देखे होगें। इससे चिकित्सकों की आवश्यकतानुसार एक केन्द्र से ही रोगियों को उपचार हेतु नियंत्रित किया जाता है। वास्तव में इसी तकनीक का विकसित और संशोधित रूप है-"पेजर"। पेजर अंग्रेजी भाषा के पेज शब्द से बना है, जिसका आशय संदेश ले जाने से है। एक सूचना के अनुसार सिंगापुर में 25 प्रतिशत और अमेरिका में 9 प्रतिशत ही इस सेवा से लाभ उठाया जा रहा है, जबकि चीन और भारत में क्रमशः लगभग 2 प्रतिशत और एक प्रतिशत लोगों के पास ही टेलीफोन सुविधा उपलब्ध है।

पेजिंग एकतरफा संदेश प्राप्त करने वाला बेतार संचार प्रणाली है, जो बैटरी-चालित है। इसका आविष्कार स्वीडिश इंजीनियरों द्वारा 1986 में किया गया था, किन्तु भारत में इसका प्रचलन 14 जनवरी 1995 से हुआ। यह शुभ दिन भारतीय संचार इतिहास में अविस्मरणीय रहेगा। वैसे अभी तक दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास सहित लगभग 10 प्रमुख नगरों में ही यह सुविधा उपलब्ध है, किन्तु शीघ्र ही 27 शहरों में इसे उपलब्ध कराया जायेगा।

पेजिंग एक छोटा-सा डिब्बीनुमा वाकमैन या सामान्य कैलकुलेटर के आकार का होता है। टेलीफोन की भाँति इसका भी एक निश्चित नम्बर आबंटित होता है, जो पेजर कोड नम्बर कहलाता है। यह रेडियो जैसा रिसीवर है,

जिसमें केवल प्रसारित संदेश को ही पढ़ा जा सकता है।

पेजिंग की कार्यप्रणाली रोचक है। इसे आवंटित नम्बर पर टेलीफोन एक्सचेंज के माध्यम से संदेशदाता अपने संदेश को प्रसारित कराता है। जो पेजरधारी के पेजर का स्विच खुले रहने पर 'बीप बीप' की ध्वनि के साथ संदेश पेजर के स्क्रीन पर स्पष्ट रूप से छप जाता है। तदनुपरान्त पेजधारी संदेश पढ़कर आवश्यकतानुसार कार्यवाही करेगा या मेमोरी (स्मरण) में डाल देगा। इस संचार उपकरण की विशेषता यह है कि एक साथ कई संदेश (लगभग 80 संदेश) ग्रहण कर उन्हें सुरक्षित रख सकता है। पेजिंग सुविधा का लाभ केवल 50 किलोमीटर परिधि में अंतर्गत आने वाले पेजधारी ही उठा सकते हैं। इसलिए भारत में इसका प्रसारण आकाशवाणी के एफ० एम० (फ्रिक्वेंसी मॉड्यूलेशन) चैनलों पर किया जा रहा है। चूँकि यह सुविधा रेडियो के माध्यम से ही उपलब्ध करायी जाती है, अतएव इसे "रेडियोडाटापेजिंग सेवा प्रणाली" भी कहा जाता है।

पेजिंग के प्रकार– आमतौर से तीन प्रकार के पेजिंग होते हैं –

1. अल्फा न्यूमेरिक या शाब्दिक,
2. न्यूमेरिक या अंकीय, और
3. टोन पेजर।

'अल्फा न्यूमेरिक' में संदेश अंग्रेजी के छोटे वाक्यों में पेजर के स्क्रीन पर छप जाते हैं, जेसे- कम होम (Come Home) या फैक्ट्री फायर (Factory Fire) जबकि 'न्यूमेरिक में केवल संख्यायें ही स्क्रीन पर प्रदर्शित होती हैं- जैसे 108 और इसका कोड पूर्व निर्धारित रहता है।

संचार क्रांति में पेजिंग उपकरण विश्व की सबसे सस्ती, भरोसेमंद और सुविधाजनक संचार प्रणाली सिद्ध हो रही है। इसके लिए भारतवर्ष में मात्र 150-250 रुपये प्रति माह व्यय करने होते हैं, लेकिन प्रारम्भ में लगभग दो हजार रुपये पंजीकरण कराने के लिए जमा करने पड़ते हैं।

'आर० डी० एस०' या रेडियो डाटा पेजिंग सर्विस विश्व में केवल जापान में ही एफ० एम० बैंड पर उपलब्ध थी, पर अब हमारे देश में आकाशवाणी के सहयोग से इस तकनीक को उपलब्ध कराया जा रहा है। आकाशवाणी के शोध विभाग एवं इंजीनियरों ने जापानी तकनीक का विकास करके ही अपने यहाँ इस सुविधा को उपलब्ध कराया है। वास्तव में आर० डी० एस० आकाशवाणी के रेडियो स्टेशन ट्रांसमीटर की तरह कार्य करता है। एफ० एम० ट्रांसमीटर के बेस बैण्ड फ्रीक्वेंसी (आवृत्ति) की कुल क्षमता 75 किलोहर्ट्ज होती है, जिसमें केवल 53 किलोहर्ट्ज ही उपयोग हो पाता है। शेष 22 किलोहर्ट्ज बेकार हो जाता है, जिसका अनुप्रयोग सब कैरियर की तरह आर० डी० एस० में कर लिया जाता है, और तो और यह रेडियो सेट में भेजी जा रही आवाज़ को बाधित भी नहीं करती, इसलिए इस पर अतिरिक्त व्यय भी नहीं होता और न ही अतिरिक्त विद्युत् की खपत होती है।

आर० डी० एस० की कार्य प्रणाली यह पेजर के ही समान है। आप संदेशकर्त्ता अपने संदेश को टेलीफोन के माध्यम से पेजिंग ऑपरेटर को देते हैं। ऑपरेटर संदेश को संबन्धित पेजिंग कोड में पी० सी० टी० (पेजिंग कन्ट्रोल टर्मिनल) में फीड करता है। पी० सी० टी० या तो केबल द्वारा या उपग्रह के माध्यम से संदेश को आर० डी० एस० एन्कोडर में भेजेगा। आर० डी० एस० एन्कोडर इसे एन्कोड कर एफ० एम० ट्रांसमीटर में डाल देता है और एफ० एम० ट्रांसमीटर संदेश को सम्बन्धित पेजर में 'बीप-बीप' की ध्वनि के साथ पेजधारी को सतर्क करते हुए संदेस की जानकारी देता है। पेजधारी संदेशानुसार अगली कार्यवाही करता है या इसे मेमोरी में डाल देता है। मेमोरी में डाला गया संदेश किसी प्रमाण या गवाही के लिए भी उपयोगी हो सकता है। इसे मिटाया भी जा सकता है और आवश्यकता पड़ने पर संदेस की प्रिंट आउट भी तैयार की जा सकती है।

भारत में संचार तकनीक के क्रम में एक और नयी कड़ी जुड़ी है, जिसे ईमेल (EMEL) के नाम से जाना जाता है। "इमेल" वह पद्धति है, जिसमें प्रेषक और प्राप्तकर्त्ता के बीच पाठ, चित्र, ध्वनि तथा आँकड़ों का इलेक्ट्रानिक माध्यम से आदान-प्रदान किया जाता है।"

वर्तमान वैज्ञानिक युग की उपलब्धियों को देखते हुए अगली शताब्दी के लिए यह भविष्यवाणी करने में कोई अतिश्योक्ति न होगी कि एस० टी० डी० की भाँति ही पेजिंग, आर० डी० एस० तथा "इमेल" एक निश्चित परिधि तक सीमित न होकर विभिन्न देशों के बीच सम्पर्क करने में अधिक उपयोगी साबित होंगे। वैज्ञानिक खोजें तो होती ही रहती हैं, परन्तु भारतीय अर्थव्यवस्था की "रीढ़ की हड्डी" अर्थात् कृषि के लिए विकसित तकनीक आज भी कृषकों तक पहुँचने में लगभग 5 वर्ष का लम्बा समय ले लेती है। अगर इस क्षेत्र में पेजिंग की भाँति ऐसे यंत्र का विकास किया जाये, जिसे शीघ्र ही कृषकों तक पहुँचाया जा सके तो निश्चय ही कृषि के क्षेत्र में नयी क्रांति का सृजन हो सकता है, जिससे खाद्य-उत्पादन में आत्म-निर्भरता के साथ ही साथ निर्यात से भी अच्छी आय होगी।

संचार प्रणाली में हो रहे अनुसंधान के फलस्वरूप सम्पूर्ण विश्व को समय की बचत का सुअवसर मिला है। यातायात और संचार माध्यमों से देश की कृषि उत्पादकता में वृद्धि होगी। यह संचार-क्रांति भविष्य में गरीबी उन्मूलन, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का सुदृढ़ आधार तथा एकीकरण के क्षेत्र में आश्चर्यजनक सम्भावनाओं के द्वारा खोलती प्रतीत होती है। आवश्यकता है इस क्षेत्र में और अनुसंधान की, ताकि इस तकनीक को और भी उपयोगी बनाया जा सके।

■■■

(पृष्ठ 5 का शेषांश)

चुम्बकीय चिकित्सा पर शोध करने वालों को अनुदान एवं प्रोत्साहन दे। जिन-जिन देशों में चुम्बकीय पद्धतियों का तीव्रगति से विकास हो रहा है वहाँ के वैज्ञानिकों, चिकित्सकों से सम्पर्क कर, शोधों का अध्ययन कर एवं भारत में इस चिकित्सा पद्धति की क्रियान्विति की योजना बना व्यवस्थित कार्यक्रम बनाये तब ही इस पद्धति के प्रति अज्ञानतावश निराधार शंकाएं दूर हो सकेगी। इस सहज, सरल, निरापद, सस्ती, प्रभावशाली अहिंसक चिकित्सा पद्धति के प्रति जन साधारण का विश्वास बढ़ सकेगा एवं जन साधारण में लोकप्रिय बन सकेगी। चिकित्सा पद्धतियों में आपसी सामंजस्य, विचार-विमर्श एवं जन-जागरण से ही पीड़ित मानव समाज रोग मुक्त बन सकेगा।

■■

29 जनवरी : विज्ञान प्रसार और विज्ञान परिषद् के संयुक्त तत्वावधान में स्वतंत्रतापूर्व विज्ञान लोकप्रियकरण के व्यक्तिनिष्ठ प्रयास विषयक संगोष्ठी के दूसरे दिन आज प्रत्येक लेखकों ने उन वैज्ञानिकों, लेखकों की चर्चा की जिन्होंने विज्ञान को आम आदमी तक पहुँचाने, उसे सरल भाषा में प्रस्तुत करने और लोगों को विज्ञान विषयों के प्रति जागरूक करने के लिए अपना बहुमूल्य योगदान किया है ।

संगोष्ठी के दूसरे दिन दो सत्रों में लगभग एक दर्जन लोगों ने अपने पर्चे पढ़े जिनमें सर्वथा नयी जानकारियाँ दी गयी थीं ।

प्रथम सत्र की अध्यक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रो० गिरीश चन्द्र चौधरी ने की । विज्ञान प्रगति के पूर्व सम्पादक श्री श्याम सुन्दर ने स्वामी हरिशरणानन्द जी द्वारा आयुर्वेदिक साहित्य सृजन एवं औषधियों के प्रचार प्रसार में की गयी उल्लेखनीय सेवाओं पर प्रकाश डाला ।

विज्ञान परिषद के संयुक्त मंत्री डॉ० दिनेश मणि ने प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा द्वारा हिन्दी ने विज्ञान साहित्य के सृजन के क्षेत्र में दिये गये योगदान की चर्चा की । 'विज्ञान' के सम्पादक श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने स्वामी डॉ० सत्यप्रकाश की हिन्दी विज्ञान साहित्य की उपलब्धियों पर प्रकाश डाला । जाने माने विज्ञान लेखक श्री शुकदेव प्रसाद ने पं० जगपति चतुर्वेदी के हिन्दी विज्ञान लेखन में योगदान की सविस्तार चर्चा की और बताया कि आर्थिक विपन्नता सहते हुए भी किस तरह चतुर्वेदी जी ने हिन्दी में विज्ञान साहित्य का सृजन किया ।

डॉ० राजकुमार दुबे ने प्रो० रामचरण मेहरोत्रा की हिन्दी सेवाओं की चर्चा की । डॉ० सुनील दत्त तिवारी ने बाबू रामदास गौड़ के योगदान का वर्णन किया ।

संगोष्ठी के चतुर्थ सत्र की अध्यक्षता प्रसिद्ध गणितज्ञ डॉ० चन्द्रिका प्रसाद ने की ।

'अमृत प्रभात' के उपसम्पादक श्री रामधनी द्विवेदी ने मराठी के लेखक स्व० शंकर बालकृष्ण दीक्षित के खगोल विज्ञान के प्रचार-प्रसार में किये गये योगदान की चर्चा की ।

संगोष्ठी के संयोजक एवं विज्ञान परिषद् के पूर्व प्रधानमंत्री प्रो० शिवगोपाल मिश्र ने डॉ० गोरख प्रसाद के जीवन और कृतित्व पर प्रकाश डालते बताया कि हिन्दी विश्व कोष के कई खंडों का सम्पादन और अनेक वैज्ञानिक ग्रंथों की रचना उन्होंने किस लगने से की । श्री सुनील कुमार पाण्डेय ने प्रो० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव (सूर्य सिद्धान्त के टीकाकार) के विज्ञान साहित्य के प्रणयन में योगदान की चर्चा की । श्री तुरशन पाल पाठक ने भी रामचन्द्र तिवारी के वैज्ञानिक साहित्य पर प्रकाश डाला ।

संगोष्ठी के समापन सत्र में विज्ञान प्रसार के निदेशक डॉ० नरेन्द्र सहगल ने संगोष्ठी की सार्वभौमिकता पर बल देते हुए कहा कि ऐसी संगोष्ठियां कई स्थानों पर होनी चाहिए और अतीत में जिन विज्ञान लेखकों ने विज्ञान के प्रचार-प्रसार में योगदान किया है उन्हें प्रकाश में लाया जाना चाहिए ।

धन्यवाद ज्ञापन डॉ० डी० डी० नौटियाल ने तथा संचालन डॉ० दिनेशमणि ने किया । प्रो० शिवगोपाल मिश्र ने अतिथियों के प्रति आभार व्यक्त करते हुए विज्ञान के प्रचार प्रसार में विज्ञान परिषद् के सदैव तत्पर रहने का आश्वासन दिया और आशा व्यक्त की कि भविष्य में भी ऐसी संगोष्ठियां आयोजित होती रहेंगी । समापन समारोह में उपस्थित प्रमुख लोगों में डॉ० हरदेव बाहरी, दर्शनानन्द, हरिमोहन मालवीय, सुबोध महन्ती, मनोज पटेरिया, डॉ० रामकुमारी मिश्रा, मंजूलिका लक्ष्मी, डॉ० प्रभाकर द्विवेदी, देवी दयाल पाण्डेय, अरुण कुमार सिंह, संजीव त्रिपाठी, चन्द्र भूषण पाण्डेय आदि उपस्थित थे ।

('अमृत प्रभात' से साभार)

■■■

संचार क्रांति में नया :आयाम पेजिंग

❑ प्रमोद कुमार गुप्त

एम० एस-सी० (कृषि) जीव रसायन विभाग,
इलाहाबाद कृषि संस्थान, इलाहाबाद -7

संचार प्रणाली आज आसमान की ऊँचाइयाँ छू रहा है। आज से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले हुए टेलीग्राफ के आविष्कार से संचार प्रणाली को कुछ हद तक सरल किया था। यहीं से संचार क्रांति का श्रीगणेश माना जाता है और इसी समय **ग्राहमबैल** के द्वारा टेलीफोन के आविष्कार के साथ ही टेलीफोन युग का सूत्रपात भी हुआ। संचार प्रणाली का क्षेत्र वर्तमान में प्रगति पथ पर है। प्राचीन काल में संचार माध्यम का एक मात्र स्रोत 'कबूतर' था पर आज संचार प्रणाली ने विभिन्न आयामों (जैसे- मैराथन दौड़, डाक व्यवस्था, यातायात, टेलीफोन) को पीछे छोड़ते हुए आशातीत सफलतायें अर्जित की हैं। विश्व अगले लगभग पाँच वर्षों के बाद इक्कीसवीं सदी में कदम रखने को हैं, फिर भी बीसवीं सदी के अंत तक विश्व वैज्ञानिकों की जो आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ रहीं हैं, वे निश्चय ही अगली शताब्दी में वैज्ञानिक क्रांति की ओर इंगित करती हैं।

आज आप घर बैठे विश्व के किसी भी स्थान से टेलीफोन के माध्यम से सम्पर्क कर सकते हैं। घर से ही कार्यालय, रिश्तेदारों, कारखानों, आदि से मात्र चन्द मिनटों में ही एक दूसरे की स्थितियों का ज्ञान हो जाता है। लेकिन जब आप अपने शहर में ही अज्ञात स्थानों पर होते हैं, घर या कार्यालय से सम्पर्क करना आवश्यक है, या कोई अप्रिय घटना घटी जिससे आपको असीमित हानि होने की आशंका है, पूर्व में यह वैज्ञानिकों के समक्ष चिंता का विषय था, किन्तु अब नहीं। इस समस्या का समाधान वैज्ञानिकों ने 'पेजर' (संदेश ग्रहण करने हेतु) और 'सेल्युलर फोन' (तुरन्त सम्पर्क के लिए) का आविष्कार करके किया है।

आप में से बहुतों ने बड़े-बड़े चिकित्सालयों में चिकित्सकों की जेबों में प्लास्टिक के छोटे उपकरण लगे अवश्य ही देखे होगें। इससे चिकित्सकों की आवश्यकतानुसार एक केन्द्र से ही रोगियों को उपचार हेतु नियंत्रित किया जाता है। वास्तव में इसी तकनीक का विकसित और संशोधित रूप है-"पेजर"। पेजर अंग्रेजी भाषा के पेज शब्द से बना है, जिसका आशय संदेश ले जाने से है। एक सूचना के अनुसार सिंगापुर में 25 प्रतिशत और अमेरिका में 9 प्रतिशत ही इस सेवा से लाभ उठाया जा रहा है, जबकि चीन और भारत में क्रमशः लगभग 2 प्रतिशत और एक प्रतिशत लोगों के पास ही टेलीफोन सुविधा उपलब्ध है।

पेजिंग एकतरफा संदेश प्राप्त करने वाला बेतार संचार प्रणाली है, जो बैटरी-चालित है। इसका आविष्कार स्वीडिश इंजीनियरों द्वारा 1986 में किया गया था, किन्तु भारत में इसका प्रचलन 14 जनवरी 1995 से हुआ। यह शुभ दिन भारतीय संचार इतिहास में अविस्मरणीय रहेगा। वैसे अभी तक दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास सहित लगभग 10 प्रमुख नगरों में ही यह सुविधा उपलब्ध है, किन्तु शीघ्र ही 27 शहरों में इसे उपलब्ध कराया जायेगा।

पेजिंग एक छोटा-सा डिब्बीनुमा वाकमैन आ सामान्य कैलकुलेटर के आकार का होता है। टेलीफोन की भाँति इसका भी एक निश्चित नम्बर आबंटित होता है, जो पेजर कोड नम्बर कहलाता है। यह रेडियो जैसा रिसीवर है,

जिसमें केवल प्रसारित संदेश को ही पढ़ा जा सकता है।

पेजिंग की कार्यप्रणाली रोचक है। इसे आवंटित नम्बर पर टेलीफोन एक्सचेंज के माध्यम से संदेशदाता अपने संदेश को प्रसारित कराता है। जो पेजरधारी के पेजर का स्विच खुले रहने पर 'बीप बीप' की ध्वनि के साथ संदेश पेजर के स्क्रीन पर स्पष्ट रूप से छप जाता है। तदनुपरान्त पेजधारी संदेश पढ़कर आवश्यकतानुसार कार्यवाही करेगा या मेमोरी (स्मरण) में डाल देगा। इस संचार उपकरण की विशेषता यह है कि एक साथ कई संदेश (लगभग 80 संदेश) ग्रहण कर उन्हें सुरक्षित रख सकता है। पेजिंग सुविधा का लाभ केवल 50 किलोमीटर परिधि में अंतर्गत आने वाले पेजधारी ही उठा सकते हैं। इसलिए भारत में इसका प्रसारण आकाशवाणी के एफ० एम० (फ्रिक्वेंसी मॉड्यूलेशन) चैनलों पर किया जा रहा है। चूँकि यह सुविधा रेडियो के माध्यम से ही उपलब्ध करायी जाती है, अतएव इसे "रेडियोडाटापेजिंग सेवा प्रणाली" भी कहा जाता है।

पेजिंग के प्रकार– आमतौर से तीन प्रकार के पेजिंग होते हैं –

1. अल्फा न्यूमेरिक या शाब्दिक,
2. न्यूमेरिक या अंकीय, और
3. टोन पेजर।

'अल्फा न्यूमेरिक' में संदेश अंग्रेजी के छोटे वाक्यों में पेजर के स्क्रीन पर छप जाते हैं, जेसे- कम होम (Come Home) या फैक्ट्री फायर (Factory Fire) जबकि 'न्यूमेरिक में केवल संख्यायें ही स्क्रीन पर प्रदर्शित होती हैं- जैसे 108 और इसका कोड पूर्व निर्धारित रहता है।

संचार क्रांति में पेजिंग उपकरण विश्व की सबसे सस्ती, भरोसेमंद और सुविधाजनक संचार प्रणाली सिद्ध हो रही है। इसके लिए भारतवर्ष में मात्र 150-250 रुपये प्रति माह व्यय करने होते हैं, लेकिन प्रारम्भ में लगभग दो हजार रुपये पंजीकरण कराने के लिए जमा करने पड़ते हैं।

'आर० डी० एस०' या रेडियो डाटा पेजिंग सर्विस विश्व में केवल जापान में ही एफ० एम० बैंड पर उपलब्ध थी, पर अब हमारे देश में आकाशवाणी के सहयोग से इस तकनीक को उपलब्ध कराया जा रहा है। आकाशवाणी के शोध विभाग एवं इंजीनियरों ने जापानी तकनीक का विकास करके ही अपने यहाँ इस सुविधा को उपलब्ध कराया है। वास्तव में आर० डी० एस० आकाशवाणी के रेडियो स्टेशन ट्रांसमीटर की तरह कार्य करता है। एफ० एम० ट्रांसमीटर के बेस बैण्ड फ्रीक्वेंसी (आवृत्ति) की कुल क्षमता 75 किलोहर्ट्ज होती है, जिसमें केवल 53 किलोहर्ट्ज ही उपयोग हो पाता है। शेष 22 किलोहर्ट्ज बेकार हो जाता है, जिसका अनुप्रयोग सब कैरियर की तरह आर० डी० एस० में कर लिया जाता है, और तो और यह रेडियो सेट में भेजी जा रही आवाज़ को बाधित भी नहीं करती, इसलिए इस पर अतिरिक्त व्यय भी नहीं होता और न ही अतिरिक्त विद्युत् की खपत होती है।

आर० डी० एस० की कार्य प्रणाली यह पेजर के ही समान है। आप संदेशकर्त्ता अपने संदेश को टेलीफोन के माध्यम से पेजिंग ऑपरेटर को देते हैं। ऑपरेटर संदेश को संबन्धित पेजिंग कोड में पी० सी० टी० (पेजिंग कन्ट्रोल टर्मिनल) में फीड करता है। पी० सी० टी० या तो केबल द्वारा या उपग्रह के माध्यम से संदेश को आर० डी० एस० एन्कोडर में भेजेगा। आर० डी० एस० एन्कोडर इसे एन्कोड कर एफ० एम० ट्रांसमीटर में डाल देता है और एफ० एम० ट्रांसमीटर संदेश को सम्बन्धित पेजर में 'बीप-बीप' की ध्वनि के साथ पेजधारी को सतर्क करते हुए संदेस की जानकारी देता है। पेजधारी संदेशानुसार अगली कार्यवाही करता है या इसे मेमोरी में डाल देता है। मेमोरी में डाला गया संदेश किसी प्रमाण या गवाही के लिए भी उपयोगी हो सकता है। इसे मिटाया भी जा सकता है और आवश्यकता पड़ने पर संदेस की प्रिंट आउट भी तैयार की जा सकती है।

भारत में संचार तकनीक के क्रम में एक और नयी कड़ी जुड़ी है, जिसे ईमेल (EMEL) के नाम से जाना जाता है। "इमेल" वह पद्धति है, जिसमें प्रेषक और प्राप्तकर्त्ता के बीच पाठ, चित्र, ध्वनि तथा आँकड़ों का इलेक्ट्रानिक माध्यम से आदान-प्रदान किया जाता है।"

वर्तमान वैज्ञानिक युग की उपलब्धियों को देखते हुए अगली शताब्दी के लिए यह भविष्यवाणी करने में कोई अतिश्योक्ति न होगी कि एस० टी० डी० की भाँति ही पेजिंग, आर० डी० एस० तथा "इमेल" एक निश्चित परिधि तक सीमित न होकर विभिन्न देशों के बीच सम्पर्क करने में अधिक उपयोगी साबित होंगे। वैज्ञानिक खोजें तो होती ही रहती हैं, परन्तु भारतीय अर्थव्यवस्था की "रीढ़ की हड्डी" अर्थात् कृषि के लिए विकसित तकनीक आज भी कृषकों तक पहुँचने में लगभग 5 वर्ष का लम्बा समय ले लेती है। अगर इस क्षेत्र में पेजिंग की भाँति ऐसे यंत्र का विकास किया जाये, जिसे शीघ्र ही कृषकों तक पहुँचाया जा सके तो निश्चय ही कृषि के क्षेत्र में नयी क्रांति का सृजन हो सकता है, जिससे खाद्य-उत्पादन में आत्म-निर्भरता के साथ ही साथ निर्यात से भी अच्छी आय होगी।

संचार प्रणाली में हो रहे अनुसंधान के फलस्वरूप सम्पूर्ण विश्व को समय की बचत का सुअवसर मिला है। यातायात और संचार माध्यमों से देश की कृषि उत्पादकता में वृद्धि होगी। यह संचार-क्रांति भविष्य में गरीबी उन्मूलन, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का सुदृढ़ आधार तथा एकीकरण के क्षेत्र में आश्चर्यजनक सम्भावनाओं के द्वार खोलती प्रतीत होती है। आवश्यकता है इस क्षेत्र में और अनुसंधान की, ताकि इस तकनीक को और भी उपयोगी बनाया जा सके।

■■■

(पृष्ठ 5 का शेषांश)

चुम्बकीय चिकित्सा पर शोध करने वालों को अनुदान एवं प्रोत्साहन दे। जिन-जिन देशों में चुम्बकीय पद्धतियों का तीव्रगति से विकास हो रहा है वहाँ के वैज्ञानिकों, चिकित्सकों से सम्पर्क कर, शोधों का अध्ययन कर एवं भारत में इस चिकित्सा पद्धति की क्रियान्विति की योजना बना व्यवस्थित कार्यक्रम बनाये तब ही इस पद्धति के प्रति अज्ञानतावश निराधार शंकाएं दूर हो सकेगी। इस सहज, सरल, निरापद, सस्ती, प्रभावशाली अहिंसक चिकित्सा पद्धति के प्रति जन साधारण का विश्वास बढ़ सकेगा एवं जन साधारण में लोकप्रिय बन सकेगी। चिकित्सा पद्धतियों में आपसी सामंजस्य, विचार-विमर्श एवं जन-जागरण से ही पीड़ित मानव समाज रोग मुक्त बन सकेगा।

■■

रोगियों में से तीन मरीज़ जो शराब को दवा के रूप में नहीं ग्रहण करना चाहते थे, डॉ० गाडफ्रेथ के आदेश से, उन्हें अलग रखा गया था। दो मरीज़ बचा लिये गये थे। गाँधी जी के सुझाव के अनुसार उनके इलाज में मिट्टी लगा हुआ बैंडेज माथे पर तथा सीने पर लगाया गया। गाँधी जी को प्राकृतिक-चिकित्सा में पूर्ण आस्था थी। और जहाँ तक शराब के सेवन का प्रश्न था, उन्होंने उपचार के लिए मदिरा की उपयोगिता को नकारा है। प्राकृतिक चिकित्सा का सिद्धान्त जो भी रहा हो, लेकिन आज भी इसी तरह से मिट्टी के लेप लगे बैंडेज लगाने से मरीज़ का बढ़ा हुआ बुखार कम हो जाता था तथा उसको आराम मिलता है। यही नहीं, कुछ दिनों के बाद वे नर्से भी प्लेग रोग से पीड़ीत हो गई जो स्वयं मरीजों से दूर रहती थीं तथा शराब का सेवन, प्लेग से सुरक्षा के लिए, करती थीं।

आज भी कुछेक बीमारियाँ, जिनकी रोकथाम एवं जिनका इलाज कठिन है, इलाज के लिए प्राकृतिक चिकित्सा का मार्ग अपनाना श्रेयस्कर है। इससे दवाओं के शरीर पर कुप्रभावों से भी बचा जा सकता है।

गाँधी जी लिखतें हैं कि उन दिनों वे अपना भोजन निरामिष होटल मे किया करते थे। प्लेग की बीमारी फैलने पर उन्होंने अपने भोजन की मात्रा भी कम कर दी तथा हल्का आहार ग्रहण करने लगे। और तो और, रात के भोजन का भी परित्याग कर दिया। होटल में अन्य लोगों के आने के पहले ही अपना भोजन ग्रहण करके चले जाते थे। ताकि वह कम से कम लोगों के सम्पर्क में आयें।

उपरोक्त तथ्यों से ऐसा लगता है कि गाँधी जी सभी सावधानियाँ बरतते थे ताकि प्लेग की बीमारी को फैलने से रोका जा सके। और इस तरह रोग पर नियंत्रण प्राप्त हो सके। चूँकि वह सेवा कार्य में समर्पित थे अतः उन्होंने कम भोजन लेकर अपने शरीर को हल्का रखा ताकि सुस्ती न आये और सेवा कार्य में बाधा न उत्पन्न हो। यह प्रेरणादायक बातें आज भी प्रयोग में लाने वालीं हैं, जो स्वास्थ्यकर्मियों के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं।

उस समय प्लेग फैले हुए स्थानों से व्यक्तियों का आने-जाने पर रोक लगा दिया गया था ताकि रोग को फैलने से बचाया जा सके। लेकिन गाँधी जी तथा उनके समर्पित कार्यकर्ताओं को रोगियों की सेवा के लिए उन क्षेत्रों में जाने की पूरी छूट थी। किन्तु सूरत में जब प्लेग फैला तो लोगों का पलायन नहीं रोका गया जिसके परिणाम स्वरूप अन्य जगहों पर भी बीमारी के लक्षण पाये गये।

गाँधी जी ने लिखा है कि उस समय प्लेग को बीमारी की दहशत अत्यधिक फैल गयी थी,लेकिन गाँधी जी की उपस्थिति लोगों में आत्मविश्वास एवं धैर्य बँधाती थी। रोग से लड़ने के लिए धैर्य एवं आत्मविश्वास की आवश्यकता चिकित्सा के अन्य उपायों से बढ़कर है।

गाँधी जी अपनी आत्मकथा में उस समय की सामाजिक परिस्थितियों का भी वर्णन करते हैं जो कि प्लेग के समय देखने में आयी। इस बीच बहुत से गरीब लोग, जो अपना पैसा ज़मीन के नीचे गाड़कर रखते थे, उसे निकाल कर उन्होंने रखने के लिए गाँधी जी को दे दिया, क्योंकि छुआछूत की बीमारी के भय से बैंक के क्लर्कों ने भी उन्हें बैंक में पैसा जमा करने से मान कर दिया। बाद में दबाव के बाद बैंक-प्रबन्धक उन रुपयों पर रासायनिक का छिड़काव कराकर बैंक में रखने पर सहमत हुए।

गाँधी जी ने पुनः लिखा है कि प्लेग के क्षेत्र में रहने वालों को एक विशेष ट्रेन से दूर ले जाकर एक शिविर (कैम्प) में रखा गया। कैम्प में रहने पर लोगों को प्रसन्नता का अनुभव हुआ और सभी लोग अपने दुःख को भूलने लगे। यही नहीं, तीन हफ्ते खुले कैम्प में रहने के कारण लोगों के स्वास्थ्य में भी सुधार हुआ। इस तरह खुले वातावरण का स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव स्वयं सिद्ध होता है। दूसरे ही दिन प्लेग ग्रसित क्षेत्रों में जगह-जगह अग्नि प्रज्वलित कर दी गई। ताकि क्षेत्र पूर्ण रूप से रोग के जीवाणुओं से मुक्त हो जाये।

प्लेग का संदर्भ गाँधी जी के अनुभव एवं आत्मविश्वास की कहानी है। उनका स्वास्थ्य के प्रति प्रयोगात्मक अनुभव आधुनिक चिकित्सा पद्धति को नई दिशा प्रदान करता है। गाँधी जी के विचारों का वर्तमान चिकित्सा प्रणाली में समावेश करके इसे और भी प्रभावी बनाया जा सकता है, ऐसा मेरा निश्चित मत है। ■■

पिछला वर्ष विज्ञान के क्षेत्र में हुई उपलब्धियों के कारण विशेष रूप से उल्लेखनीय है । यह इस बात का भी संकेत है कि भारतीय विज्ञान प्रगति पथ पर अग्रसर है । पूर्ण सूर्यग्रहण के अवसर पर शिक्षित-अशिक्षित लोगों का बड़ी संख्या में भयमुक्त होकर घर से बाहर निकल कर वैज्ञानिक विधि से सूर्य ग्रहण देखना इसका जीता-जागता प्रमाण है । इससे यह भी सिद्ध होता है कि सूर्य ग्रहण से पूर्व देवी-देवताओं की मूर्तियों की दूध पीने की घटना पर भीड़ मात्र जिज्ञासा वश एकत्र हो गई थी ।

सेन्टर फॉर डेवेलपमेंट ऑव एडवांस्ड कम्प्यूटिंग (पुणे) द्वारा आविष्कृत सुपर कम्प्यूटर 'परम 9000' और एडवांस्ड न्यूमेरिकल रिसर्च एण्ड एनैलिसिस ग्रुप (ANURAG) हैदराबाद द्वारा आविष्कृत 'पेसप्लस' से सुपर कम्प्यूटर के क्षेत्र में क्रांति आ गई है ।

7 दिसम्बर को इंसट -2 सी और 28 दिसम्बर को आई आर एस- 1 सी के सफल प्रक्षेपण अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । एटामिक एनर्जी के क्षेत्र में तो आशातीत सफलता मिली है । नरोरा एटामिक पावर प्लांट की प्रथम इकाई का वेस्टर्न पावर ग्रिड के साथ तालमेल बैठ गया ।

भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स (BHEL) की सुपर कंडक्टिंग जेनेरेटर को बनाने के क्षेत्र में इंडियन इंस्टीट्यूट ऑव साइंस, बेंगलूर द्वारा

'स्विच' (Switch) नामक कंडक्टिंग ग्लास का निर्माण (जो 'कम्प्यूटर मेमोरी में प्रयुक्त होता है), बड़ी उपलब्धि है ।

वेक्टर कन्ट्रोल रिसर्च सेन्टर (पांडिचेरी) ने 'थ्राम्बिनेज नामक एक ऐसी दवा बना ली है जो हृदयाघात में उपयोगी है और अमेरिका ने इसका 'पेटेन्ट' भी स्वीकृत कर दिया है ।

हैदराबाद की द निजाम्स इंस्टीट्यूट ऑव मेडिकल साइंसेज़ ने कम मूल्य के एक ऐसे 'पेसमेकर' को बनाने में सफलता प्राप्त कर ली है जो हृदय की कार्य प्रणाली के रुकने का विद्युत् संकेत देता है ।

नेशनल इंस्टीट्यूट ऑव इम्यूनोलॉजी (नई दिल्ली) ने संक्रामक हेपेटाइसिस रोग उत्पन्न करने वाले विषाणु (वाइरस) को ढूँढ निकाला है ।

जीव विज्ञान संबंधी प्रयोगशाओं की उपलब्धियाँ भी कुछ कम नहीं । अब एक ऐसे सस्ते 'एड्स किट' को बना लिया गया है जिससे मानव शरीर में 'एड्स' रोग के वाइरस की उपस्थिति की पुष्टि की जा सकती है । कालरा रोग के उपचार के लिए एक ऐसा टीका (वैक्सीन) भी बना लिया गया है जिसका अब मानव शरीर पर भी परीक्षण किया जा सकता है । क्षय रोग की पहचान करने का आसान तरीका भी खोजा जा चुका है ।

वैसे तो भारतीय विश्वविद्यालयों की दशा आमतौर से अच्छी नहीं कही जा सकती, पर दिल्ली विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने जिगर की कैंसरग्रस्त कोशिकाओं तक इलाज के लिए, नुकसान न करने वाले जापान के एक विषाणु द्वारा ओषधि ले जाने के परीक्षणों में सफलता प्राप्त कर ली है और अब 'जीन' संबंधी ऐसी तकनीक विकसित कर रहें हैं, जिसकी सहायता से आनुवंशिक रोगों पर विजय पायी जा सकेगी ।

नेशनल इंस्टीट्यूट ऑव स्टैण्डर्ड्स एण्ड टेक्नोलॉजी और कोलोराडो विश्वविद्यालय (अमेरिका) के वैज्ञानिकों को एक 'नये पदाथर' को (इस्तेमाल करने लायक दशा में) बनाने में सफलता मिल गई जिसका नाम 'बोस-आईन्सटीन कडेनसेंट' रखा गया है । इस पदार्थ का संकेत आज से 70 वर्ष पूर्व भारतीय वैज्ञानिक सत्येन्द्र नाथ बोस और आइंस्टीन ने संयुक्त रूप से दिया था ।

भारत से बाहर कुछ देशों की वैज्ञानिक उपलब्धियाँ बड़ी ही रोचक और युगांतरकारी हैं। एक विशेष प्रकार की प्रोटीन, 'लेप्टिन', जिसके सेवन से मोटे चूहे दुबले हो गए, से इस बात की संभावना प्रबल हुई है कि शीघ्र ही मोटे मनुष्य भी मोटापे से छुटकारा पा सकेंगे और मोटापे से जुड़ी उच्च-रक्त-चाप, मधुमेह और हृदय संबंधी रोगों की चपेट में आने से भी बच सकेंगे।

मैसाचुसेट्स के वैज्ञानिकों ने तो एक ऐसे विचित्र जीव (चूहे) को बनाने में सफलता प्राप्त कर ली है, जिसकी पीठ पर मानव का कान उगा हुआ है। इससे इस बात का संकेत मिलता है कि मानव के वे अंग जो किसी रोग के कारण खराब या बेकार हो गए हों उनकी जगह नये अंग बनाए जा सकते हैं।

स्विटजरलैण्ड के वैज्ञानिकों ने फल-मक्खी में आँखों को बनाने वाले 'जीन' को ढूँढ लिया है। फल-मक्खी में 14 बड़ी आँखें उसके पंखों, टाँगों और एण्टीना पर उगाई गई हैं। नेत्रहीनों के लिए यह शुभ समाचार है।

इस प्रकार कुल मिलाकर पिछला वर्ष 1995 वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

आर्थिक कठिनाइयों के कारण हम 'विज्ञान' पत्रिका का प्रकाशन समय से नहीं कर पा रहे हैं किन्तु इस बीच परिषद् की गतिविधियाँ अच्छी तरह से चलती रही हैं।

'विज्ञान प्रसार' और 'एन सी एस टी सी', नई दिल्ली के निदेशक डॉ० नरेन्द्र कुमार सहगल और श्री सुबोध मोहन्ती (चीफ एवं सम्पादक, विज्ञान प्रसार) के सहयोग से 'विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद 'में' स्वतंत्रतापूर्व विज्ञान लेखन के प्रचार-प्रसार में व्यक्तिनिष्ठ प्रयास' विषय पर एक संगोष्ठी सफलतापूर्वक संपन्न हुई (देखें रिपोर्ट)।

इसके अतिरिक्त 'डॉ० रत्नकुमारी स्मृति व्याख्यान माला के अंतर्गत् डॉ० राधा पंत ने पाँचवा, व्याख्यान दिया। अध्यक्ष थीं श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया। स्थानीय स्तर की अनेक संगोष्ठियाँ समय-समय पर होती रही हैं। इसमें 28 फरवरी को 'राष्ट्रीय विज्ञान दिवस' 18 जनवरी को स्वर्गीय स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती के योगदान विषय पर परिचर्चा 10 मार्च को विज्ञान परिषद् प्रयाग की स्थापना दिवस के अवसर पर आयोजित संगोष्ठी आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

यह विज्ञान वक्तव्य अधूरा रह जायेगा यदि मैं इस बात का उल्लेख न करूँ कि स्थानीय 'नेशनल एकेडेमी ऑव साइंसेज' (इलाहाबाद) ने 'राष्ट्रीय विज्ञान दिवस' से संबंधित एक सप्ताह से अधिक समय तक अत्यधिक प्रशंसनीय कार्य किये हैं। ये कार्य इसलिए भी प्रशंसनीय हैं कि अधिकतर कार्यक्रम हिन्दी भाषा के माध्यम से हुए हैं। कार्यक्रमों में हाईस्कूल और इण्टर स्तर के स्कूल-कॉलेजों में विज्ञान विषयक व्याख्यान विद्वानों से कराना, वाद-विवाद प्रतियोगिता, विज्ञान प्रश्नोत्तरी आदि शामिल थे। वैसे तो एकेडेमी से जुड़े सभी व्यक्ति बधाई के पात्र हैं किन्तु प्रो० उमाशंकर श्रीवास्तव और प्रो० कृष्ण जी विशेष रूप से साधुवाद के पात्र हैं।

'विज्ञान' का यह अंक किसी प्रकार आप पाठकों तक पहुँच रहा है, इसके लिए मैं पत्रिका और परिषद् से जुड़े सभी लोगों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। नये वर्ष की शुभकामनाओं सहित।

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

फार्म 4/FORM IV

नियम 8 देखिये (See Rule 8)

1. प्रकाशन स्थान — विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद-211002

2. प्रकाशन अवधि — मासिक, प्रत्येक मास का 15 दिनांक

3. मुद्रक का नाम — श्री अरुण राय

क्या भारत का नागरिक है ? — हाँ

पता — प्रसाद मुद्रणालय, 7 ए बेली एवेन्यू इलाहाबाद -2

4. प्रकाशक का नाम — डॉ० देवेन्द्र दत्त नौटियाल

क्या भारत का नागरिक है ? — हाँ

पता — अवकाश प्राप्त अध्यक्ष, वनस्पति विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद -2

5. सम्पादक का नाम — प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

(क्या भारत का नागरिक है ? — हाँ

पता — वनस्पति विभाग, सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद -2

6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचारपत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों। — विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद -211002

मैं देवेन्द्र दत्त नौटियाल, एतत् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक : 08. 03. 1996

देवेन्द्र दत्त नौटियाल
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद -211002

विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा आयोजित अखिल भारतीय

विज्ञान लेख प्रतियोगिता 1995

व्हिटेकर पुरस्कार

दो सर्वश्रेष्ठ लेखों को पाँच-पाँच सौ रुपयों के दो पुरस्कार

शर्तें

(1) लेख विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए ।

(2) केवल प्रकाशित लेखों पर ही विचार किया जायेगा ।

(3) लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है ।

(4) प्रकाशन की अवधि जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है ।

(5) इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख जनवरी 1995 से दिसम्बर 1995 माह के बीच प्रकाशित हुआ हो ।

(6) लेखक को लेख के साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख मौलिक है.।

(7) विज्ञान परिषद् से सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते ।

(8) वर्ष 1995 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 15 मार्च 1996 है ।

(9) पुरस्कार के लिए पक्ष प्रचार करने वाले प्रतिभागियों को इस प्रतियोगिता के लिए उपयुक्त नहीं समझा जायेगा ।

लेख निम्न पते पर भेजें--

सम्पादक 'विज्ञान',
विज्ञान परिषद्,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

प्रकाशक	*सम्पादक*	*मुद्रक*	*सम्पर्क*
डॉ० डी० डी० नौटियाल	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	अरुण राय	विज्ञान परिषद्
प्रधानमंत्री	सहायक संपादक	प्रसाद मुद्रणालय	महर्षि दयानन्द मार्ग
विज्ञान परिषद् प्रयाग	डॉ० दिनेश मणि	7 बेली एवेन्यू, इलाहाबाद	इलाहाबाद

उत्तर-प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आँध्र प्रदेश के
शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें ।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामायिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों ।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें ।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र यदि किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी ।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा । उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है ।
6. हमें चिंतनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है । कृपया छोटे निम्नस्तरीय लेख हमें न भेजें ।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है ।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु पुस्तक अथवा पत्रिका की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए । समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी ।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है । विज्ञापन की दरें निम्नवत् हैं ।

भीतरी पूरा पृष्ठ 200.00 रु०, आधा पृष्ठ 100.00 रु० चौथाई पृष्ठ 50.00

आवरण : *द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ* 500.00 रु० ।

मूल्य :

आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत : 500 रु० संस्थागत, त्रिवार्षिक : 60 रु० : वार्षिक 25 रु०
प्रति अंक : 3 रु० 50 पैसे, यह अंक : 10 रु० 50 पैसे

प्रेषक : ***विज्ञान परिषद्*** , महर्षि दयानन्द मार्ग,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद -211002

ISSN : 0373 – 1200

अप्रैल - मई 1996

कौंसिल ऑफ साइंटिफिक
एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च,
नई दिल्ली के आंशिक
अनुदान द्वारा प्रकाशित
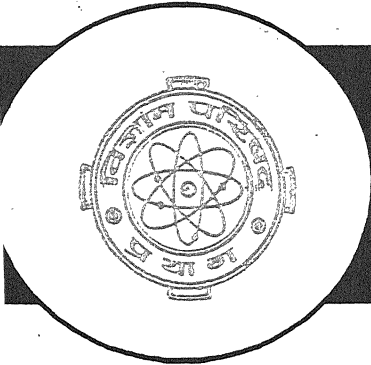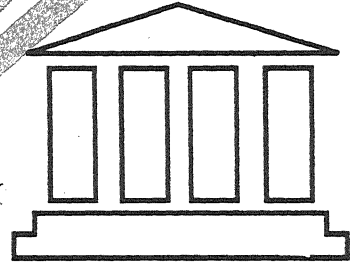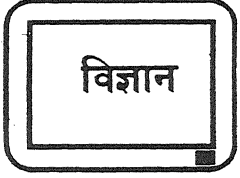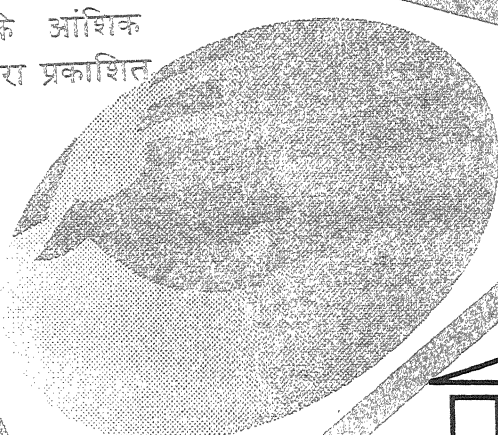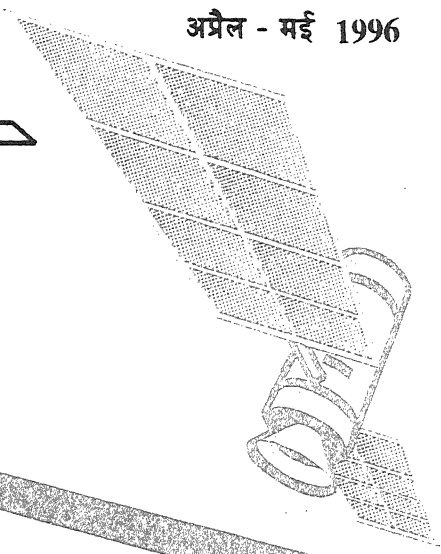
विज्ञान परिषद् प्रयाग

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913 : विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
अप्रैल-मई 1996 : वर्ष 82 अंक 1-2 मूल्य : यह अंक : 7 रु०
आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत : 500 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 60 रु०, वार्षिक 25 रु० एक प्रति : 3 रु० 50 पैसे

विज्ञान विस्तार

खाद बनेंगे नये सूक्ष्मजीव - डी० एन० भटनागर ... 1
उर्वरकों के भी ख़तरे हैं - राजेन्द्र कुमार राय ... 5
रोगों का देशी उपचार—महावीर सारस्वत ... 6
कीटनाशकों का धमनियों में घुलता जहर—प्रेमा राय ... 9
सैमुअल फिनले ब्रीज मोर्स—डॉ० रमेश चन्द्र कपूर ... 11
चिकित्सा विज्ञान की नवीनतम उपलब्धियाँ—के० एल० धवरिया ... 13
चने की फली वेधक का जैविक नियंत्रण करेंगे विषाणु—डॉ० आर० के० वर्मा ... 17
भारत में नम क्षेत्रों का फैलाव, महत्व एवं संरक्षण—डॉ० सतीश कुमार शर्मा ... 19
वनस्पतियों की रंग धर्मिता—योगेन्द्र बहादुर सिंह ... 21
कचरे से उत्पन्न ख़तरा - डॉ० दिनेश मणि ... 23
सीसा रहित पेट्रोल : कितना लाभकारी —प्रमिला शाह ... 25
परिषद् का पृष्ठ —डॉ० गोरख प्रसाद जन्मशती समारोह ... 26
पौध विषाणु विज्ञान : इतिहास के दर्पण में —रवीन्द्र कुमार सिंह, राजाराम, डेजी चौहान, ए० ए० जैदी 29
अकेसिया की विभिन्न जातियाँ एवं उनके उपयोग - एन० के० बोहरा ... 33
नवीन साहित्य परिचय - भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ... 38
विज्ञान वक्तव्य ... 39

खाद बनेंगे नए सूक्ष्मजीव

❑ डी० एन० भटनागर

वरिष्ठ सम्पादक 'आविष्कार'

डी-753, सरस्वती विहार, दिल्ली - 110034

❑ सूक्ष्मजीवों के खाद रूप में उपयोग से रासायनिक उर्वरकों की बचत आर्थिक लाभ तो दे सकती है पर क्या यह पर्यावरण की दृष्टि से भी लाभकारी है ?

प्रकृति ने इस धरती पर जीवन बिताने वाले इतनी तरह के जीव रूपों की रचना की है कि उन सबकी संख्या का सही सही अनुमान कर पाना भी हमारे लिए अभी तक संभव नहीं हुआ है । इनमें से अधिकांश से तो हमारा परिचय तक नहीं है ।

पौधों की लगभग बीस हजार प्रजातियों में से मनुष्य अभी तक केवल 100 पौधों की ही अपनी खाद्य आवश्यकता की पूर्ति के लिए खेती करता है । घास की 10,000 प्रजातियों में से केवल आठ गेहूं, चावल, मक्का, ज्वार, बाजरा, जौ, राई और ओट ही अभी तक खाद्य फसलों के रूप में स्वीकृति पा सकी हैं । उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों के लगभग 3000 फलों में केवल चार आम, पपीता, केला और अनन्नास विश्वव्यापी उपयोग के लिए उगाए जाते हैं.।

सूक्ष्मजीवों की ओर तो और भी कम ध्यान दिया गया है, हालांकि सूक्ष्मजीव इस धरती के सबसे पुराने, सबसे अधिक संख्या वाले, सबसे अधिक विविध और सबसे सरल शैली व्यतीत करने वाले जीवरूप हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि इनमें से अनेक ऐसे हैं जिनका उपयोग मनुष्य अपने लाभ के लिए कर सकता है । इनमें एल्गी (शैवाल), बैक्टीरिया (जीवाणु), फंजाई, (कवक), प्रोटोजोआ और वायरस शामिल हैं ।

सूक्ष्मजीवों की केवल 2 से 5 प्रतिशत प्रजातियों को ही हम अभी तक पहचान सके हैं जबकि अनुमान यह है कि कम से कम 30 लाख किस्म के जीवाणु, 15 लाख किस्म के कवक इस धरती पर जीवनयापन करते हैं । नार्वे के वैज्ञानिकों ने मिट्टी के केवल एक ग्राम में जीवाणुओं के 40000 विभेदों की पहचान की है ।

इन सूक्ष्मजीवों में अनेक ऐसे हैं जो हमारे जाने अनजाने सृष्टि के अनेक कार्यकलापों को प्रभावित करते हैं । माइक्रोप्लांकटन वातावरण में कार्बन स्थिरीकरण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । कुछ सूक्ष्मजीव वायुमंडल में कार्बन की मात्रा को संतुलित रखते हैं ।

कुछ सूक्ष्मजीव आने वाली प्राकृतिक आपदाओं की भी सूचना देते हैं, उदाहरण के लिए कुछ कवक अम्ल वर्षा से वृक्षों की तुलना में कहीं अधिक प्रभावित होते हैं.। चिकित्सा और कृषि के क्षेत्र में सूक्ष्मजीवों की उपयोगिता की संभावनाएं हाल ही में उजागर होनी शुरू हुई हैं । इनमें से अधिकांश के विषय में हम पांच वर्ष पूर्व जानते तक नहीं थे ।

मिट्टी में पाये जाने वाले सूक्ष्मजीवों में अनेक ऐसे हैं जो प्रकृति के पारस्थितिक तंत्र में महत्वपूर्ण संतुलनकारी भूमिका निभाते हैं । ये प्रकृति में अन्य प्रभेदों की आबादी

को नियंत्रित करते हैं और वातावरण की नाइट्रोजन और अन्य रसायनों को यौगिकों में बदल कर मिट्टी में संचित करते हैं।

सभी उच्च श्रेणी के पेड़-पौधे अपनी नाइट्रोजन की आवश्यकता की आपूर्ति के लिए कुछ प्रकार के शैवालों और सूक्ष्मजीवों पर निर्भर हैं। प्रकृति में नाइट्रोजन की आपूर्ति सामान्य रूप से वर्षा जल और सूक्ष्मजीवों की नाइट्रोजन स्थिरीकरण की प्रक्रिया से होती है। यही कारण है कि जब हमें अपनी धरती पर लगातार तेजी से बढ़ने वाली आबादी की खाद्य आवश्यकता पूरी करने के लिए धरती से उसकी प्राकृतिक क्षमता से अधिक उपज लेने की आवश्यकता होती है तब नाइट्रोजन की कमी उसमें रुकावट बनती है। इसीलिए अधिक उपज लेने के लिए किसानों को अपने खेतों में बार-बार खाद या उर्वरक डाल कर खेतों की फसलों के अनुरूप नाइट्रोजन की आवश्यकता की पूर्ति करते रहना पड़ता है।

लगातार एक ही जैसी फसल के उत्पादन के कारण खेतों में ज्यादा यूरिया की जरूरत होती है। फलस्वरूप विकसित देशों में नाइट्रोजन उर्वरकों की मांग बढ़ती ही जा रही है। इसकी आपूर्ति के लिए बहुत अधिक आर्थिक और पर्यावरणीय हानि उठानी पड़ रही है। यूरिया के आयात में बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा तो खर्च होती ही है इससे कई पर्यावरणीय खतरे भी पैदा होते हैं। जब खेतों के रासायनिक उर्वरक, वर्षा जल के साथ बहकर नदी-नालों, झीलों और तालाबों में पहुंचते हैं तो वहां तरह-तरह की शैवाल तथा जलीय खरपतवार की बढ़वार को बहुत तेज कर देते हैं। जलकुंभी की समस्या का यह एक प्रमुख कारण है। अधिक मात्रा में उर्वरकों के उपयोग से पीने के पानी में नाइट्रेट तथा नाइट्राइट की मात्रा निर्धारित सुरक्षित सीमा से ऊपर हो जाती है जो सेहत के लिए खराब है। पानी में इनकी मात्रा ज्यादा होने से रक्त में मिथेमोग्लेबिन बनता है जो रक्त की ऑक्सीजन ढोने की क्षमता को कम करता है, नतीजतन शरीर को ऑक्सीजन की उपलब्धि कम हो जाती है।

यूरिया जैसी नाइट्रोजनी खाद के पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव और इनके बढ़ते उपयोग के कारण होने वाली आर्थिक हानि को कम करने में सूक्ष्मजीव महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

उन सूक्ष्मजीवों में जो पौधों की वृद्धि की दृष्टि से उपयोगी हैं एक सूक्ष्मजीव **राइजोबियम** विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसका जीवन यापन का तरीका बड़ा ही रोचक है। यह फलीदार पौधों जैसे मटर, सोयाबीन और दालों जैसे लैग्युमिनोसी कुल के पौधों की जड़ों की गांठों में अपनी कालोनियां बसाकर अथवा पौधे के स्वतंत्र सहयोगी के रूप में रहता है। इन गांठों में रहते हुए वह हवा में मौजूद नाइट्रोजन को ऐसे उपयोगी यौगिकों के रूप में परिवर्तित करता रहता है जिन्हें पौधों को अपने उपयोग के लिए ग्रहण करना आसान हो जाता है। इस प्रकार इन सूक्ष्मजीवों की मदद से पौधे हवा में मौजूद नाइट्रोजन को अपने उपयोग के लिए इस्तेमाल कर पाते हैं। बिना सूक्ष्मजीवों की मदद के पौधे अपने आप हवा की नाइट्रोजन का उपयोग नहीं कर सकते। सूक्ष्मजीवों द्वारा हवा की नाइट्रोजन को पौधों के लिए उपयोगी रूप में बदलने की यह प्रक्रिया नाइट्रोजन के स्थिरीकरण की प्रक्रिया कहलाती है। वस्तुतः नाइट्रोजन स्थिरीकरण की प्रक्रिया एक ऐसी महत्वपूर्ण प्राकृतिक प्रक्रिया है जिसके कारण हमारी पृथ्वी पर नाइट्रोजन का एक निश्चित स्तर बना रहता है।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण की प्रक्रिया का महत्व इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि नाइट्रोजन उन चार पोषक तत्वों में से एक है जो पौधों को हवा और पानी से मिलते हैं। इसी नाइट्रोजन को प्राप्त करने के बाद पौधे उन सभी प्रकार के प्रोटीनों का निर्माण करते हैं जिन्हें पौधों से खाद्य पदार्थ के रूप में प्राप्त करके ही पृथ्वी के जीवों का जीवनचक्र चलता है।

इस प्रक्रिया में बहुत अधिक ऊर्जा का व्यय होता है अतः ये सूक्ष्म जीव उच्च वर्ग के पौधों में उनसे सहजीवी संबंध बनाकर रहते हैं। इनमें कुछ ऐसे भी हैं जो अपनी खाद्य आवश्यकता की आपूर्ति स्वयं करते हैं और अपने ऊर्जा की आवश्यकता भी स्वयं पूरी करते हैं।

इन फलीदार पौधों में सूक्ष्मजीवों के रहने के कारण

जो गाठें बनती हैं वे गोल, अंडाकार या लंबी संरचनाएं हो सकती हैं। इनमें लेगहीमोग्लोबिन नामक एक विशेष पदार्थ होता है जो नाइट्रोजन के स्थिरीकरण में काम आने वाले एक प्रमुख एन्जाइम नाइट्रोजिनेज को ऑक्सीजन के प्रतिकूल प्रभावों से बचाता है। इसका कार्य हमारे रक्त में मौजूद हीमोग्लोबिन की तरह ऑक्सीजन को सोखना है। इसकी उपस्थिति में गांठों में रहने वाले जीवाणुओं के आस पास ऑक्सीजन की कमी बनी रहती है और नाइट्रोजिनेज को नाइट्रोजन गैस को अमोनिया में बदलने के काम में कठिनाई नहीं होती।

उल्लेखनीय है कि प्रकृति में पाए जाने वाले कुछ ही सूक्ष्मजीवों में हवा की नाइट्रोजन को पौधों के लिए उपयोगी रसायनों में बदलने की क्षमता है। इनमें नीली हरी काई जिसे साइनो-बैक्टीरिया कहते हैं और **राइजोबियम** तथा **सेसबानिया** जैसे जीवाणु शामिल हैं। इन सूक्ष्म जीवों की इस अद्‌भुत क्षमता से पृथ्वी के अन्य सभी विकसित जीव और पौधे वंचित हैं।

इन सूक्ष्मजीवों में से वैज्ञानिकों ने जब **राइजोबियम मैलिलोटी** की जीवन शैली का विस्तृत अध्ययन किया तो उन्होंने पाया कि वे आनुवंशिक इंजीनियरी की तकनीकों का सहारा लेकर इस जीवाणु को नाइट्रोजन की ओर अधिक मात्रा स्थिर करने की दृष्टि से और सक्षम बनाने के उपाय कर सकते हैं। उन्होंने इसमें ऐसे जीनों का समावेश करने में सफलता प्राप्त कर ली जिनसे नाइट्रोजन को स्थिर करने की उसकी क्षमता काफी बढ़ गई। यह काम मिसूरी में सेंट जोसेफ नामक स्थान पर स्थित एक अमेरिकी कंपनी 'रिसर्च सीड्स' के वैज्ञानिकों ने किया है।

ब्रिटेन से प्रकाशित विज्ञान पत्रिका 'न्यू सांइटिस्ट' में छपी एक रिपोर्ट के अनुसार इस समय नई जीनों से युक्त यह जीवाणु समूचे अमेरिका में इस्तेमाल की दृष्टि से उपलब्ध कराने के लिए बिक्री के लिए अनुमोदन पाने की आशा से अमेरिकी 'एनवायर्नमेंटल प्रोटेक्शन एजेंसी' के सम्मुख प्रस्तुत है। लगभग छः वर्ष से चल रही इस अनुमोदन प्रक्रिया से गुजरने के बाद यह जीवाणु अब लगभग अनुमोदन प्राप्त करने ही वाला है। यदि ऐसा हो जाता है तो यह विश्व में पहला ऐसा मामला होगा जब मनुष्य द्वारा आनुवंशिक इंजीनियरी से बदले गए या संशोधित किसी जीव को बिक्री व सार्वजनिक उपयोग के लिए मुक्त किया जायेगा। छः वर्ष तक पर्यावरण सुरक्षा एजेन्सी के परीक्षण के बाद इस परिवर्तित बैक्टीरिया को सब जगह बेचा जाएगा।

वैज्ञानिक अनुसंधान के दौर में यह वस्तुतः सफलता की एक और सीढ़ी है। परन्तु इस उपलब्धि के लगभग पूर्ण होने के समय पर भी पर्यावरण सुरक्षा एजेन्सी के विशेषज्ञों ने अभी भी इस बैक्टीरिया से संभाव्य हानियों के संबंध में शंका प्रकट की है। उनके अनुसार अभी भी इस तथ्य को पूरी तरह स्थापित नहीं किया जा सका है कि यह विकसित बैक्टीरिया वातावरण के लिए पूर्णतः सुरक्षित है। इसके अलावा बैक्टीरिया को वातावरण में छोड़ने से पहले एक खतरा और भी है। जीवाणु में कुछ अन्य जीन होने के कारण परिवर्धन के विभिन्न चरणों के दौरान उसमें स्ट्रैप्टोमायसिन और स्पैक्टीनोमायसिन एन्टीबायोटिक के लिए प्रतिरक्षा भी उत्पन्न हो जाती है। एन्टीबायोटिक के प्रति प्रतिरक्षा क्षमता होने के कारण यह रोगी जीवों में फैल कर उनके इलाज को असंभव बना सकते हैं।

पर्यावरण सुरक्षा एजेन्सी के बायोटैक्नोलोजी सुझाव विभाग के एक उपविभाग के अनुसार इस बैक्टीरिया से मनुष्य, पशु व पौधों के स्वास्थ्य को तो नुकसान नहीं पहुंचेगा, परन्तु दो सदस्यों की शंकानुसार जंगली प्रजातियों में इस बैक्टीरिया के निवास की संभावनाओं पर कोई विस्तृत अध्ययन नहीं हो सका है। इससे स्पष्ट है कि इतने अध्ययन के बाद भी इस बैक्टीरिया को वातावरण में छोड़ने पर वैज्ञानिकों के अभी भी दो मत हैं।

मिनिसोटा विश्वविद्यालय के मृदा विशेषज्ञ **माईकल रसल** का कहना भी है कि मैस्कीट तथा मीठे क्वोवर जैसी खरपतवार **राइज़ोबियम** जैसे बैक्टीरिया के कारण बहुत अधिक बढ़ कर उपयोगी पौधों के लिए खतरा बन सकती है। **रसल** तथा **इस्टोक** के अनुसार अनुसंधानों से यह कहीं स्थापित नहीं हो पाया है कि प्राकृतिक बैक्टीरिया के

मुकाबले जीन अभियांत्रिकी से परिवर्धित बैक्टीरिया से पौधों की उपज में कोई विशेष बढ़त हो पाएगी। उन्होंने आशंका व्यक्त की है कि अगर ऐसा है तो बिना किसी उपयोग के जीन अभियंत्रिकी से निर्मित इस बैक्टीरिया का समर्थन क्या सही होगा ? जीवाणुओं की नाईट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता को बढ़ाकर उनका अधिक उपयोग करने के प्रयत्न हमारे देश के वैज्ञानिकों द्वारा भी किए जा रहे हैं। हाल ही में भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र के न्यूक्लीय कृषि प्रभाग के वैज्ञानिकों ने एक हरे खाद पौधे को जो तने में गाठें बनाने वाला एक लेग्यूम है, म्यूटाजेनेसिस प्रक्रिया द्वारा इतना सक्षम बनाया है कि वह 50 दिनों में 120, 160 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर स्थिर कर सकता है। इसे एक महत्वपूर्ण उपलब्धि कहा जा रहा है क्योंकि यह वायु की नाइट्रोजन को खींचकर उसे यूरिया की जगह एक जैव खाद की तरह इस्तेमाल योग्य बनाता है।

इस क्षेत्र में जैव अभियांत्रिक अनुसंधान कार्य भी किए जा रहे हैं। कल को कौन सा वैज्ञानिक दल कौन सी सफलता दर्ज करा देगा यह केवल देखने की बात है। यद्यपि यह सुनिश्चित है कि ये अनुसंधान देश के लिए आर्थिक दृष्टि से लाभकर होंगे, पर्यावरण पर इनके प्रभावों के विषय में हम निश्चित होकर नहीं बैठ सकते, उनका हमें पता लगाना होगा और स्वयं जागरूक रह कर आकलन करना होगा। (सम्प्रेषण) ■■

डॉ० गोरख प्रसाद विज्ञान लेखन पुरस्कार घोषित

डॉ० गोरख प्रसाद जन्मशती समारोह (28-29 मार्च, 96) के अवसर पर 1990 से 1995 तक के डॉ० गोरख प्रसाद विज्ञान लेखन पुरस्कार की घोषणा "विज्ञान" के संपादक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने की। पुरस्कृत लेखक हैं-

वर्ष 1990 प्रथम - श्री राजेश कुमार एवं मनमोहन बजाज (दिल्ली), **द्वितीय** : (1) डॉ० दिनेश मणि (इलाहाबाद) (2) श्री राजेश कुमार केसरी (इलाहाबाद), **तृतीय** : डॉ० किरन बनर्जी (पंजाब)

वर्ष 1991 प्रथम - श्री मनोज कुमार पटेरिया (दिल्ली), **द्वितीय** : (1) डॉ० सुरेन्द्र नाथ श्रीवास्तव (इलाहाबाद) (2) डॉ० विजय कुमार श्रीवास्तव (दिल्ली), **तृतीय** : (1) डॉ० अंजू शर्मा (दिल्ली) (2) श्रीमती शुभा पाण्डेय (लखनऊ)

वर्ष 1992 प्रथम - डॉ० एच० के० केहरी एवं डॉ० सुधीर चन्द्र (इलाहाबाद), **द्वितीय** : श्री राजेन्द्र कुमार राय (दिल्ली), **तृतीय** : श्री सुनील दत्त तिवारी (इलाहाबाद)

वर्ष 1993 प्रथम - डॉ० रविशंकर पांडेय एवं श्री मानवेन्द्र त्रिपाठी (इलाहाबाद), **द्वितीय** : डॉ० जगदीप सक्सेना (दिल्ली), **तृतीय** : सुश्री प्रेमा राय (दिल्ली)

वर्ष 1994 प्रथम - डॉ० सुरेन्द्र नाथ श्रीवास्तव (इलाहाबाद), **द्वितीय** : (1) डॉ० अरुण आर्य (दिल्ली) (2) डॉ० जय प्रकाश अग्रवाल (पुणे), **तृतीय** : श्री सुनील कुमार पाण्डेय (इलाहाबाद)

वर्ष 1995 प्रथम - डॉ० आई० सी० गुप्ता (जोधपुर), श्री जे० पी० मित्तल (जोधपुर), **द्वितीय** : डॉ० अमरेशचन्द्र पांडेय एवं निशी पांडेय, (अयोध्या), **तृतीय** : श्री हेमन्त कुमार पाण्डेय एवं श्री नरेन्द्र कुमार (पिथौरागढ़)

उर्वरकों के भी खतरे हैं

❑ राजेन्द्र कुमार राय

सम्पादक 'सम्प्रेषण', डी-753, सरस्वती विहार, दिल्ली - 34

हमारे यहां किसानों को यह सिखलाया गया है कि नाइट्रोजन युक्त खादों से पौधों में खाद और रेशा बढ़ता है। फसलों की पैदावार बनाए रखने के लिए हर वर्ष हमारे खेतों में 70 लाख टन नाइट्रोजन युक्त उर्वरक डाला जाता है। लेकिन दुर्भाग्य यह है कि जितना उर्वरक खेतों में डाला जाता है उसका 40 प्रतिशत भाग भूजल या हवा में चला जाता है। इस प्रकार न केवल मंहगा उत्पाद बेकार चला जाता है बल्कि कई तरह की समस्याएं भी पैदा की जाती है।

राजस्थान के कुछ इलाकों में पानी में नाइट्रेटों की बढ़ी हुई मात्रा पशुओं के लिए घातक साबित हुई है। मोटर गाड़ियों से धुएं के रूप में निकलने वाले नाइट्रोजन के ऑक्साइड भी काफी विषाक्त हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि हमारी परिस्थितिकी प्रणाली में एक भी ऐसा स्थान नहीं जहां नाइट्रोजन की आवश्यकता न हो।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद रासायनिक खादों और कीटनाशकों के इस्तेमाल के कारुण फसलों का उत्पादन तो काफी बढ़ गया, लेकिन इसके चलते आदमी, पशुओं और दूसरे प्राणियों को काफी नुकसान उठाना पड़ रहा है.। रासायनिक खादों के अत्यधिक इस्तेमाल से बरसात के दिनों में खेतों से बड़ी मात्रा में उपयोग किए गए नाइट्रोजन और फास्फेट बढ़ जाते हैं जो जल स्रोतों में पहुंच कर घातक साबित होते हैं। सेहत पर इनका क्या असर पड़ रहा है यह अभी सही सही बताना तो कठिन है, लेकिन इनका संबंध आजकल कैंसर से भी जोड़ा जा रहा है। वैसे कई शोधकर्ता यह जानने का प्रयास कर रहे हैं कि कीटनाशकों और उर्वरकों का हमारी सेहत पर क्या, कितना और कैसा प्रभाव पड़ रहा है।

देश के विभिन्न राज्यों द्वारा किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि भूजल में नाइट्रेटों की मात्रा बहुत बढ़ गई है। कुओं और उथले जल स्रोतों से प्राप्त यह भूजल हानिकर हो सकता है। केंद्रीय भूजल बोर्ड के **डॉ० हांडा** का कहना है कि कुओं के पानी में नाइट्रेट की मात्रा को सुनिश्चित किया जाना चाहिए और फिर नाइट्रेट और प्रदूषित पदार्थों के भूजल में घुलने को रोकने के प्रयत्न किए जाने चाहिए।

पंजाब में जहां कि नाइट्रोजन का इस्तेमाल लगभग 58.3 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है, वहीं हरियाणा और उत्तर प्रदेश में इसका प्रति हेक्टेयर उपयोग क्रमशः 38.8 व 21.8 किलोग्राम है। इन राज्यों में कई जगह नाइट्रेटों की मात्रा खतरनाक स्तर तक पहुंच गई है। भारतीय मानक संस्थान ने पेयजल में नाइट्रेट की अधिकतम मात्रा प्रति लीटर 45 निर्धारित की है। लेकिन इन सीमाओं का कहीं कहीं उल्लंघन भी हो रहा है। अधिक नाइट्रेटयुक्त पानी पीने से बच्चों को मैथेमैक्लोबिनोमिया नामक बीमारी होती है। नाइट्रोजन के सभी पहलुओं का अध्ययन करने के बाद जो बात उभर कर सामने आती है, वह यह है कि इस मीठे जहर के अधिक इस्तेमाल पर रोक लगनी चाहिए।

(सम्प्रेषण) ■■

रोगों का देशी उपचार

❑ महावीर सारस्वात
डी-753, सरस्वती विहार, दिल्ली - 110034

❑ यद्यपि आधुनिक चिकित्सा प्रणाली रोगों के उपचार के नए तरीके खोज कर व्यवहार में ला रही है, रोग हैं कि घटने में ही नहीं आ रहे हैं यही नहीं उपचार के ये तरीके आम आदमी की पहुंच के बाहर भी होते जा रहे हैं। विदेशों में इन उपचारों को आम आदमी की पहुंच के दायरे में बनाए रखने के लिए विशेष प्रकार की सामाजिक सुरक्षा व्यवस्थाओं को लागू करना पड़ा है, किन्तु इसके बावजूद उन्हें संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। हमारे देश में रोगों की उपचार की प्राचीन परम्पराएं आज भी उतनी ही खरी हैं, और उनका उपयोग उतना मंहगा भी नहीं। क्यों न उन्हें फिर प्रचलन में लाने के प्रयत्न किए जाएं। प्रस्तुत है उपयोगी जानकारी।

आज के वैज्ञानिक युग में यद्यपि आधुनिक चिकित्सा का तंत्र फैलता जा रहा है, और तरह-तरह के चिकित्सा उपकरणों के आविष्कार हो रहे हैं, फिर भी रोग व्याधियों का प्रकोप कम होने से नहीं आ रहा है। आज भी आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति पहले की ही तरह उपयोगी है, क्योंकि आयुर्वेदिक चिकित्सा हमारे ऋषि मुनियों के हजारों वर्ष के अथक परिश्रम, खोज तथा अनुभव का सार रूप हैं, एवं प्रकृति के सर्वथा अनुकूल भी। प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार विभिन्न रोगों की देसी उपचारों की जानकारी सभी के लिए आवश्यक है।

नेत्र विकार

• अदरख को जलाकर उसकी राख कर लें तथा महीन पीसकर आंखों में लगाएं इससे आंखों का जाला तथा ढलका (नेत्रस्राव) में लाभ मिलेगा।

• आंखों में फूली होने पर अनंतमूल की जड़ को बासी पानी में घिसकर आंखों में अंजन की तरह आंजने से फूली कट जाती है, अथवा अनंतमूल के पत्तों की राख कपड़ छान कर शहद के साथ आंजने से भी फूली कट कर लाभ मिलता है।

• अनार के पत्तों को कुचल कर निकला हुआ रस खरल में डालकर खरल करें। जब शुष्क हो जाए तो महीन कपड़े से छान कर रख लें। इसे सुबह शाम सलाई से आंखों में लगाएं। इससे आंखों की खुजली, नेत्रस्त्राव, पलकों के विकार इत्यादि से छुटकारा मिलता है।

• 'अपराजिता' के फूलों का रस लगाने से नेत्रों के पटल संबंधी विकार दूर होते हैं।

• अरहर की दाल को स्वस्थ पत्थर पर पानी के साथ घिसकर दिन में 2, 3 बार आंख की फुड़िया (गुहेरी) पर लगाने से लाभ मिलता है। अरहर की जड़ को घिसकर आंखों में लगाने से आंख का जाला कट जाता है।

• आबनूस की लकड़ी के सार भाग को खूब महीन पीस कर नेत्रों में आंजने से नेत्रों के अन्दर की हल्की फूली

खुजली, रतौंधी, नेत्रस्राव तथा नेत्रभिष्यद रोग में विशेष लाभ होता है।

कर्ण शूलादि विकार

• अनार के ताजे हरे पत्तों को कुचल कर निकाला गया रस दस तोले, गोमूत्र आध सेर, तथा तिलतैल दस तोले तीनों को धीमी आंच पर पकावें। तेल मात्र शेष रहने पर छान कर रख लें। इसकी कुछ बूंदें थोड़ी गरम करके सुबह शाम कान में डालते रहने से कान की पीड़ा, कर्णनाद तथा बधिरता में लाभ मिलता है।

• अनन्नासफल के तेल की कुछ बूंदें कान में टपकाते ही कर्ण पीड़ा में आराम मिलता है।

• कर्णस्रोत में वायु स्थिति हो जाने पर अजीब आवाजें सुनाई देना, बहरापन, कर्णस्राव, इत्यादि होने पर अपामार्ग के स्वरस में चार भाग बकरी या बकरे का मूत्र तथा स्वरस का अर्द्ध भाग तिलतैल मिलाकर धीमी आंच पर पकाकर तैल सिद्ध कर कान में डालने से उपर्युक्त विकारों में उत्तम लाभदायक है।

• अफीम एक माशा, मुसब्बर 6 माशे तथा मसूर की दाल एक तोला तीनों को मिलाकर धतूरे के रस में खरल कर कुछ गरम करके कान के चारों ओर बार बार लेप करने से कान की सूजन या कर्णशूल में शीघ्र लाभ होता है।

• आडू के बीजों का तेल नियमित रूप से कानों को साफ करके डालते रहना कर्णशूल तथा बहरापन में लाभदायक है।

दन्त विकार

• दांतों में कीड़े लगकर वहां के मसूड़े खोखले हो गए हों तो उन छेदों में अकरकरा का महीन पीसा गया चूर्ण भर देने से कीड़े नष्ट हो जाते हैं।

• दांतों की पीड़ा होने पर 'अगमकी' की मूल चबाएं, थूक दें, इससे दांतों के दर्द में शीघ्र आराम मिलता है।

• अजमोद को जला कर बनाए गए चूर्ण से दन्त मंजन करने से दन्त पीड़ा से छुटकारा मिलता है।

• अजवायन खुरासानी के महीन चूर्ण को थोड़ी सी राल के साथ पीस कर दांतों की खोखल में रखने से लार के साथ कीड़े गिर जाते हैं और वेदना शांत हो जाती है।

• दांत या डाढ़ का दर्द होने पर पके हुए अनन्नास के फल का रस दर्द के स्थान पर लगाना लाभदायक है।

• अपामार्ग की ताजी मोटी लकड़ी अथवा जड़ से नियमित दातून करने से दांतों में टीस मारना, दांतों का हिलना, दांतों की दुर्गंध या पायरिया की आरंभिक अवस्था में आराम मिलता है।

• अरहर का पत्ता अथवा दाल दो भाग, कटसरैया की जड़ एक भाग, और भिगावा (भल्लातक) अर्द्ध भाग इन तीनों तो कढ़ाई में भूनें, खूब गरम होने पर इसमें आग लगा दें। कोयला बन जाने पर कढ़ाई को उतार लें। ठंडा होने पर कढ़ाई में जो राख मिले उसमें चौथाई भाग नमक मिला कर महीन पीस कर शीशी में भर कर रख लें। इसका मंजन करने से दांतों के सभी रोगों में फायदा होकर दांत मजबूत तथा स्वस्थ बने रहेंगे।

उदरशूलादि

• अगस्तिया की छाल के क्वाथ में थोड़ा सेंधा नमक तथा भुनी हुई हींग मिलाकर पीने से तीन दिन में पुराने से पुराने शूलादि उदर विकार में लाभ मिलता है। यदि बालकों को इसके पत्र रस को उचित मात्रा में पिलाया जाए तो दो चार दस्त होकर उदर विकारों को शांत करता है।

• उदर पीड़ा होने पर अजमोद के चूर्ण में काला नमक मिलाकर खाने से लाभ होता है। यदि अफरा हो तो अजमोद के चूर्ण की गुड़ के साथ गोली बनाकर खाने से लाभ पहुंचता है।

• अजवायन को इन्द्रायन (तुम्बा) के फलों में भरकर रख छोड़े। सूखने पर महीन पीस लें। इसमें काला नमक इच्छानुसार मिला कर शीशी में भर लें। इस चूर्ण को गरम जल के साथ सेवन करें। इस उपचार से अमाशय में रस की कमी अधिक भोजन करने या निषेध द्रव्यों के सेवन से जिन्हें उदर विकार हों या भोजनोपरान्त

सामान्यतः ही पेट फूल जाता हो, इत्यादि उदर विकारों में बहुत लाभकारी है।

• जिन्हें मन्दाग्नि की शिकायत हो, तथा दूध न पचता हो उन्हें पानी में भिगोकर अंजीर खाना चाहिए और शेष बचा पानी भी पी लेना चाहिए। अंजीर को भिगोने की अवधि 12 से 24 घंटे आवश्यक हैं। यह उपचार उदर विकार के साथ-साथ रक्त विकार में भी लाभदायक है।

विशूचिका (हैजा)

• अगिया (अगिन) के तेल की 2 से 3 बूंद की मात्रा में शक्कर के साथ मिलाकर देने से उपद्रव सहित विशूचिका शांत होती है।

• विशूचिका की प्रथमावस्था में वमन और रेचन को रोकने और शरीर को उत्तेजित करने के लिए अजवायन का अर्क अढ़ाई से पांच तोला की मात्रा में आधा-आधा घंटा से प्रयुक्त करना चाहिए।

• एक सेर अतीस को कूटकर रात्रि में दस सेर जल में भिगो दें प्रातः आग पर पकाएं, जब शहद जैसा गाढ़ा हो जाए तब उतार लें, जब सूख कर गोलियां बनाने योग्य हो जाएं तब दो-दो रत्ती की गोलियां बनाकर छाया शुष्क कर लें। हैजा की स्थिति में तीन-तीन गोलियां एक-एक घंटे के बाद आराम होने तक खाएं।

• अनार के छः माशे हरे पत्तों को दो तोले जल के साथ पीस, छान कर उसमें दो तोला शरबत मिला कर लाभ होने तक एक-एक घंटा बाद पिलाएं। यह प्रयोग वमन भी रोकता है।

• अफीम और उत्तम हींग तीन-तीन माशे लेकर अदरक में छेदकर भर दें और केले के पत्ते से लपेट कर भूभल (गरम राख) के अन्दर गाढ़ दें। पंद्रह मिनट बाद अदरख के अन्दर की हींग और अफीम को निकाल कर खरल कर बारह गोलियां बना लें। बड़ों को दो गोली तथा बच्चों को एक या आधा गोली आवश्यकानुसार खिलाएं। यदि वमन हो जाए तो पुनः एक खुराक दें। जब उल्टी न हो खुराक बंद कर दें। शीघ्र लाभ होगा।

• अलसी बीज का चूर्ण 3 से 7 माशे तक लेकर उसमें 5 तोला उष्ण जल मिला कर ठंडा होने पर तीन बार पिलायें। इसी प्रकार बार-बार पिलाने से हैजा में लाभ मिलता है।

मूत्र विकार

• अजमोद में लवण मिला कर पोटली बना, सेकने में मूत्राशय की पीड़ा में लाभ मिलता है।

• एक अंजीर को 3 माशे कलमी सोरा के साथ मिला कर खाने से मूत्र कृच्छ में राहत मिलती है।

• अड़ूसा के पत्तों को समभाग खरबूजे के बीजों के साथ पीस, छान कर पीने से पेशाब खुलकर आने लगता है, तथा मूत्र संबंधी बीमारियों में लाभदायक है।

• मूत्राघात होने पर अनार के रस में छोटी इलायची के बीच और सौंठ का चूर्ण मिला कर पिएं। अथवा अनार पत्र एक तोला, हरा गोखरू एक तोला, दोनों को तीन छटांक जल में पीस, छानकर पीना लाभदायक है।

• सारिवा की छोटी मुलायम जड़ को कूट कर कोले के पत्र में लपेट, आग की भूभल (गरम राख) में गाढ़ दें। ऊपर का पत्र जल जाने पर अंदर की लुगदी निकाल, भूने हुए जीरे और शक्कर के साथ पीस, गाय के घी के साथ प्रातः सायं उचित मात्रा में लेने से मूत्र और वीर्य संबंधी विकार दूर हो जाते हैं।

नहरुआ (नारू) रोग

• अखरोट की खल को जल के साथ महीन पीसकर तथा आग पर गरम कर नहरुआ की सूजन पर लेप करें, और ऊपर से पट्टी बांध कर खूब सेंक देने से सूजन उतर जाती है। इसी प्रकार दस से बीस दिनों तक नित्य प्रयोग करने से नारू गल कर बह निकलता है।

• अजवायन खुरासानी के चूर्ण को उचित मात्रा में प्रातः सायं जल के साथ सेवन करने तथा इसे जल के साथ पीस कर पुल्टिस जैसी बना कर बांधने से नारू समूल नष्ट हो जाता है। (सम्प्रेषण) ■■

कीटनाशकों का धमनियों में घुलता जहर

❑ प्रेमा राय
डी-753, सरस्वती विहार, दिल्ली - 34

❑ विशेषज्ञों का कहना है कि अब कीटनाशक कीट पतंगों को कम, आदमी को अधिक मार रहे हैं। हमारी सेहत पर कीटनाशकों के पड़ रहे प्रभाव का एक लेखा जोखा।

हमारे देश में इस्तेमाल होने वाले कीटनाशकों में से करीब 70 प्रतिशत ऐसे हैं, जिनका इस्तेमाल पश्चिमी देशों में या तो बंद हो चुका है अथवा बहुत कम कर दिया गया है। इनमें से कई को विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अत्यन्त जहरीला और नुकसानदेह करार दिया है। उनमें प्रमुख हैं - फास्वेल डाएल्ड्रिन क्लोरेडेन और ए पी एन आदि.।

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा तैयार की गई सूची में भारत तीसरे नंबर पर है, जहां कीटनाशकों की दुर्घटनाएं अधिक संख्या में प्रत्येक वर्ष होती हैं। वास्तव में कीटनाशकों के असर से कितने लोग बीमार पड़ते हैं या मरते हैं यह जानना कठिन है, क्योंकि बीमारी को कीटनाशक के जहर से जोड़ना एक लम्बी प्रक्रिया है। इन कीटनाशकों का जहर जब मनुष्यों तक पहुंच जाता है, तभी हमारी आंखें खुलती हैं। लेकिन इनका असली असर तो पर्यावरण की महत्वपूर्ण प्रणालियों पर पड़ता है जिनमें फसल को लाभ पहुंचाने वाले छोटे मोटे कीड़ों का हनन, पशु पक्षियों का विनाश, पेयजल प्रदूषण तथा खाद्य पदार्थों का विषाक्त होना इत्यादि शामिल हैं। यदि कीटनाशकों के सभी दुष्प्रभावों को आंका जाए तो एक डरावनी तस्वीर सामने उभर कर आती है।

कुछ कीटनाशक तो बेहद खतरनाक हैं जैसे एल्डरिन.। इसका इस्तेमाल रक्त कैंसर तक पहुंचा सकता है। इस शताब्दी के सातवें दशक में जब फिलीपींस में धान की नई नई किस्में उगाई गई तो उनके प्रतिरक्षण हेतु भारी मात्रा में कीटनाशकों का इस्तेमाल किया गया.। ब्रिटेन के पर्यावरणीय प्रौद्योगिकी केंद्र (लंदन) के एम ए लोएविन्शन ने फिलीपीन्स के धान की पैदावार का 1960 से 1984 तक एक गहन अध्ययन किया। इस अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि फिलीपींस के धान प्रधान क्षेत्र न्यूवा एकिजा में किसानों की मृत्यु दर 248 प्रतिशत तक बढ़ गई। इस दौरान एल्डरिन जैसे कीटनाशकों से उत्पन्न रक्त कैंसर से प्रभावित व्यक्तियों की मृत्यु दर 480 प्रतिशत तक जा पहुंची। जब एल्डरिन पर सन् 1982 में वहां प्रतिबंध लागू हुआ तभी मरने की दर में कुछ कमी आई।

हमारे यहां धड़ल्ले से इस्तेमाल होने वाला एक कीटनाशक है डीडीटी। इसका अनेक देशों में इस्तेमाल वर्जित है। जमीन, वनस्पति और शरीर पर बहुत लम्बे समय तक नुकसानदेह असर बने रहने के कारण विश्व के कई देशों में इस पर रोक लगा दी गई है। लेकिन ताजा आंकड़ों के अनुसार यहां डीडीटी की कुल खपत 7500 टन प्रतिवर्ष है। दूसरा खरतनाक कीटनाशक है बीएच-सी.। यह डीडीटी से ढाई गुना तेज और जहरीला है। कुछ और खतरनाक कीटनाशक हैं, जैसे मैथाइल पैराथियान, इन्डोसल्फेन और डाइब्रोमोक्लोरोप्रोपेन (डी बी सी पी) आदि। बी एस सी के साथ कुछ प्रयोगों में पशुओं में कैंसर युक्त ट्यूमर पाए गए। यह त्वचा, मुंह

और नाक द्वारा अंदर प्रवेश करता है ।

डीबीसीपी के इस्तेमाल पर अमेरिका में रोक है, क्योंकि इससे कैंसर और नपुंसकता जैसे रोग हो जाते हैं.। लेकिन हमारे यहां गेहूं और अन्य फसलों पर इसका खूब इस्तेमाल होता है । डीडीटी एक ऐसा कीटनाशक है जो शरीर के अंदर जाकर जमता जाता है । यह खाद्य पदार्थों के माध्यम से शरीर में प्रवेश करता है । यह जीभ, होंठ, यकृत और गुर्दों को भारी क्षति पहुंचाता है, जिसके कारण कैंसर जैसी बीमारी हो सकती है ।

मराठवाड़ा कृषि विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों के एक दल ने महिलाओं के स्तन कैंसर का विश्लेषण करने पर उनके ऊतकों में भारी मात्रा में दो कीटनाशक डीडीटी और बीएचसी पाया । विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार दिल्ली में किए गए परीक्षणों से पता चला है कि आदमियों के खून में 0.177 से 0.683 मिलीग्राम प्रति लीटर डी डी टी समाया हुआ है जो कि दूसरे देशों से दस गुना अधिक है ।

कीटनाशकों के जहर का असर दिमाग पर भी पड़ता है । जिन इलाकों में कीटनाशकों का इस्तेमाल अधिक होता है, वहां लकवे के मरीज ज्यादा पाए जाते हैं ।

कहने को तो हमारे यहां कीटनाशक कानून भी है.। इसी कानून के तहत कीटनाशकों का पंजीयन, पैकिंग, लेबलिंग, आयात, उत्पादन, बिक्री और इस्तेमाल की अनुमति दी जाती है । कीटनाशकों के रजिस्ट्रेशन से पहले एक केन्द्रीय बोर्ड उनके दीर्घकालीन प्रभाव तथा संकट के समय इन्हें बेअसर करने के उपायों की परीक्षा करता है, लेकिन इन कानूनों में अन्य खतरों पर निगरानी और उनकी रोकथान का कोई प्रावधान नहीं है ।

कीटनाशक रसायन और रासायनिक खाद कितने ही खतरनाक क्यों न हो पाबंदी लगाना अभी संभव नहीं है । सन् 1985 में खाद और कृषि संगठन के एक सम्मेलन में 158 देशों ने एक स्वैच्छिक अंतरराष्ट्रीय संहिता स्वीकार की थी, जिसका उद्देश्य था कीटनाशक रसायनों के व्यापार और इस्तेमाल को नियमित करना ।

आज आवश्यकता इस बात की है कि कीटनाशकों और कृषि रसायनों का एक स्थायी और सुलभ विकल्प खोजा जाए । कीटनाशकों के विकल्प के रूप में जैविक नियंत्रण विधि का उपयोग काफी सफल रहा है । दुनिया के कई देशों में इनका इस्तेमाल बड़े पैमाने पर किया जा रहा है ।

अतः यह आवश्यक है कि विकल्पों की खोज को प्राथमिकता दी जाए । पर्यावरण की परवाह करने वालों को इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है ।

(सम्प्रेषण) ■■

(पृष्ठ 25 का शेष भाग)

अनेक देशों में सीसा रहित पेट्रोल अथवा कम सीसा पेट्रोल इस्तेमाल में लाने के बाद वायु प्रदूषण में वृद्धि हुई है । इसका एक कारण तो यह है कि इसके इस्तेमाल से पेट्रोल की खपत बढ़ गयी है, और दूसरा यह कि "कैटेलिक कन्वर्टर" रहित वाहनों में अभी सीसा युक्त पेट्रोल ही इस्तेमाल हो रहा है । विकासशील देशों में सभी गाड़ियों को "कैटेलिक कन्वर्टर" युक्त करना एक चुनौतीपूर्ण काम है । ब्रिटेन ने हाल ही में सीसा रहित पेट्रोल के इस्तेमाल पर रोक लगा दी है कि किन्तु भारत अपने को एक विकासशील देश समझकर अपनाने की बात करता है - क्या यही प्रगति है जिससे मनुष्य के जीवन को ख़तरा हो.?

■■

सैमुअल फिनले ब्रीज मॉर्स

❑ डॉ० रमेश चन्द्र कपूर

प्लाट ए 4, 8 रेजीडेंसी रोड, जोधपुर-342003

टेलीग्राफ के आविष्कारक **सेमुअल मॉर्स** का जन्म अमेरिका के मेसाचुसेस्ट राज्य के चार्लसटाउन में 27 अप्रैल 1791 को हुआ था। बालक मॉर्स की चित्रकारी में विशेष रुचि थी। चित्रकारी सीखने वह लंदन भी गया और लौटकर बोस्टन नगर में उसने एक स्टूडियो खोल दिया। बोस्टन में वह एक सफल चित्रकार के रूप में उभरा।

1829 में मॉर्स शास्त्रीय चित्रकला सीखने इटली गया। इन्हीं दिनों वह विद्युत विज्ञान में भी रुचि लेने लगा था। लगभग तीन वर्षों के बाद वह 1832 में समुद्री मार्ग से अमेरिका लौटा। उसका जलपोत (सिल्ली)[1] अक्टूबर 1832 को फ्रान्स से न्यूयार्क के लिये चला। सौभाग्य से यात्रियों में उसकी भेंट *डॉ० जैक्सन* से हुई, जिन्होंने मॉर्स को बताया कि तार द्वारा किसी भी लम्बाई तक विद्युत पहुँच सकती है। साथ में यह भी चकित करने वाली बात बताई कि इसकी गति इतनी तीव्र होती है कि इसे नाप सकना असंभव होता है। मॉर्स के मन में विचार आया कि यदि विद्युत की गति इतनी तीव्र होती है तो उसके द्वारा संदेशों को भेजना संभव होना चाहिये। इस विचार ने उसके जीवन की धारा ही बदल दी और वह विद्युत द्वारा संदेश भेजने के उपायों को ढूँढ़ने में जुट गया। फिर तो चित्रकारी को वह भूल ही गया। उसके मन में एक ही धुन थी कि विश्व के किसी भी कोने तक संदेश भेजने का यंत्र वह जल्दी बना ले। उसे विश्वास था कि यदि वह किसी तरह दस मील तक संदेश भेजने में सफल हो जायेगा तो विश्व भर में संदेश भेजने में भी उसे निश्चय ही एक न एक दिन अवश्य सफलता प्राप्त हो जायेगी।

मॉर्स को विद्युत विज्ञान की विधिवत् कोई शिक्षा नहीं मिली थी। अतएव यदि उसे उसके आरम्भिक प्रयत्नों में सफलता नहीं मिली तो आश्चर्य क्या ? किन्तु इससे वह हतोत्साहित नहीं हुआ। तीन वर्षों के प्रयोगों में उसकी सारी पूँजी समाप्त हो गई। विवश होकर वह चार वर्षों तक कला-शिक्षक बना रहा। इससे उसकी आजीविका चलती रही। परन्तु कला-शिक्षण के साथ ही साथ उसने उन साधनों की जानकारी भी ली जिनसे दुर्बल विद्युतधारा को रिले द्वारा सबल बनाना संभव था। प्रयोगों में होता यह है कि तार द्वारा विद्युतधारा प्रवाहित होने पर प्रतिरोध तथा घर्षण के फलस्वरूप उसकी ऊर्जा नष्ट होने लगती है और कुछ दूरी के उपरांत उसका प्रवाह-संकेत अत्यंत क्षीण हो जाता है। इस समस्या के निदान के लिये स्थान-स्थान पर विद्युत-बैटरियों द्वारा संकेतों को बल दिया जा सकता है। मॉर्स ने तर्क का सहारा लेकर अनुमान लगाया कि इस रिले प्रणाली द्वारा विद्युत् के निर्बल संकेतों को बहुत दूरी तक पहुँचाना संभव हो जायेगा। बैटरियों की रिले प्रणाली द्वारा ही मॉर्स ने टेलीग्राफ की खोज की थी।

मॉर्स ने अनेक वर्षों तक विभिन्न यंत्रों द्वारा अनेक प्रयोग किये। उन्हीं दिनों अमेरिका का *जोजफ हेनरी* भी टेलीग्राफ संयंत्र बनाने में लगा था। मॉर्स ने बड़े परिश्रम से अपने उपकरण का परिमार्जन किया और 1837 में उसने न्यूयार्क नगर विश्वविद्यालय में अपने आविष्कार का सफल प्रदर्शन कर दिखाया। वस्तुस्थिति यह थी कि मॉर्स ने अपनी सारी पूँजी इस आविष्कार को सम्पन्न करने में लगा दी थी। सौभाग्यवश ऐसे समय में उसकी एक उद्यमी नवयुवक ने सहायता की, जिसकी टेलीग्राफ में रुचि थी।

इससे टेलीग्राफ संयंत्र में कुछ सुधार किये जा सके और 1838 में एक कामचलाऊ टेलीग्राफ तैयार करके जनता के सामने लाने में मॉर्स को सफलता मिल गई।

परन्तु उस समय लोगों ने मॉर्स के इस आविष्कारक में रुचि नहीं दिखाई। लोगों ने इसे एक अव्यवहारिक खिलौना समझा। मॉर्स ने अमेरिका के पेटेंट कार्यालय में प्रार्थना पत्र दिया। किन्तु उसके आविष्कारक का पेटेंट न मिल सका। सरकार से भी उसने याचना की कि उसे आविष्कार के व्यवहाकि प्रदर्शन के लिये वित्तीय सहायता दी जाये। यहाँ भी असफलता ही उसके हाथ लगी। अमेरिका की संसद ने उसकी उपेक्षा कर दी। मॉर्स ने इंगलैंड जाकर वहां पेटेंट की याचिका दी, जिसे नकार दिया गया। रूस के साथ बातचीत में भी सफलता न मिली। परन्तु फ्रांस में उसका पेटेंट स्वीकृत हो गया।

एक वर्ष बाद अमेरिका लौटने पर स्थिति बदल चुकी थी। 1843 में अमेरिकी संसद ने मॉर्स को वित्तीय सहायता देने की स्वीकृति प्रदान कर दी और वाशिंगटन राजधानी से बाल्टीमोर नगर के बीच टेलीग्राम की लाइन बिछाई गई। मॉर्स ने पहले लाइन को भूमिगत बिछाना चाहा जो कम दूरी तक तो सफल रही, परन्तु लम्बे फासले में तार में प्रवाहित विद्युतधारा भूमि में क्षरित हो गई। एक मिस्त्री ने सुझाव दिया कि तारों को लकड़ी के खम्बों पर लटकाकर बिछाया जाय। यह सुझाव सफल रहा और 24 मई 1844 को राजधानी से बाल्टीमोर नगर में तार द्वारा संदेश भेजा गया। संदेश पहुँचने का समय एक सेकेंड का पैंतालिस सहस्त्रवां भाग रहा।

प्रतिद्वन्दियों के आग्रह पर 1847 में मॉर्स को न्यायालय में अपने आविष्कार को प्रमाणित करने को विवश किया गया। किन्तु अब सफलता उसके कदम चूम रही थी। अपने को टेलीग्राफ का मूल आविष्कारक सिद्ध करने में वह सफल रहा।

संदेशों को भेजने के लिये मॉर्स ने एक संकेत-पद्धति भी तैयार की जो 'मॉर्स-कोड' के नाम से विश्वविख्यात है। इस पद्धति में अक्षरों को बिन्दुओं और रेखिकाओं अथवा डैशों द्वारा चित्रित करते हैं। संकेत भेजने वाला अक्षरों को 'मॉर्स-कोड' द्वारा खटखटाता है और पाने वाला संकेतों से शब्द बनाता है। यह प्रणाली आज भी प्रचलित है।

कुछ ही समय में टेलीग्राफ के तार विश्व भर में फैल गये और चित्रकार सैमुअल मॉर्स का नाम एक आविष्कारक के रूप में अमर हो गया। यह कहना सत्य होगा कि मॉर्स ने विद्युतधारा का सर्वप्रथम व्यावहारिक उपयोग किया था। विद्युत-संचार प्रणाली के विश्वव्यापी उपयोगों को खोजने वालों में प्रथम स्थान प्राप्त करने का श्रेय मॉर्स को ही है।

मॉर्स ने 80 (अस्सी) वर्ष से अधिक आयु पाई। उसने जलमग्न तारों का भी उपयोग आरम्भ किया था, जिससे महासागरों के बीच तार-संचार संभव हो सका। उपरोक्त खोजों के अतिरिक्त मॉर्स ने फोटोग्राफी की 'देगुएरे प्रणाली' को अमेरिका में प्रचलित किया। उसने संगमरमर काटने की विशेष मशीन का भी आविष्कार किया। उसकी 'टेलीग्राफी-पद्धति' की उपयोगिता के सम्मान में आस्ट्रिया, बेलजियम, फ्रांस, हालैंड, रूस, वेटिकन, स्वीडेन, तुर्की, तुस्कनी तथा पियदमांव के प्रतिनिधियों ने मॉर्स के लिए प्रचुर धनराशि अनुमोदित की थी।

अपनी मृत्यु के पूर्व ही मॉर्स ने सारे संसार में एक आविष्कारक के रूप में प्रचुर ख्याति अर्जित कर ली थी। मॉर्स की खोजों के लिए सम्पूर्ण विश्व मॉर्स का ऋणी रहेगा। अपनी इन खोजों के कारण मॉर्स आज भी हम लोगों के बीच जीवित हैं। ■■

चिकित्सा विज्ञान की नवीनतम उपलब्धियाँ

❑ के० एल० धवरिया

प्रवक्ता, जीव विज्ञान, राजकीय सी० मा० विद्यालय, कांकरोली-313324

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में पिछले तीन-चार दशकों में एक प्रति क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है। विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ चिकित्सा क्षेत्र में रोज नये-नये परिवर्तन, खोज एवं तकनीकी का विकास हो रहा है। आज अनेक प्रकार के जानलेवा रोगों के कारणों का पता लगाकर प्रतिक्षण व्यवस्था प्राप्त कर ली है। चेचक, पोलियो, खसरा, हैजा, प्लेग तथा कई भयानक एवं साधारण बीमारियों के संक्रमण से बचाव के लिए चिकित्सा वैज्ञानिकों ने समय-समय पर रोग-निरोधक टीके विकसित कर लिये हैं।

रोगों के निदान एवं उपचार तकनीकी में एक्सरे, सोनोग्राफी, इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफ, इलेक्ट्रोमायोग्राफ, इलेक्ट्रोऐनसेफेलोग्राफ, स्पाइरोमीटर, ड्यूमीडिफर, पेसमेकर, इलेक्ट्रोफोरेसिस, फ्लेमफोटोमीटर, ओडियोमीटर, हियरिंग एड, एअर सरकुलेटर, इलेक्ट्रोमैग्नेटिक स्टाइरर, रक्त दाबमापी, टेम्परेचर प्रोब, हाईप्रेशर स्टेरीलाइजर, ओटोक्लेव, शार्ट वे डायाथर्मी, मसल स्टीमुलेटर, अल्ट्रासोनिक थिरेपी यूनिट, सर्जिकल डायाथर्मी, एंडोस्कोपी ट्रांस्ड्यूसर, इनक्यूबेटर, सूक्ष्मदर्शी, अल्ट्रासाउण्ड इमेजिंग, कम्प्यूटराइज्ड टोमोग्राफी, मैगनेटिक रिजोनेंस इमेजिंग, पॉजीट्रॉन इमीशन टोमोग्राफी आदि का आविष्कार कर उपयोग किया जाने लगा है। इसके परिणामस्वरूप हमारे स्वास्थ्य-सुरक्षा-तन्त्र को प्रभावी बनाने में बहुत सारी नई उपलब्धियाँ प्राप्त हुई हैं। इनमें से मुख्य उपलब्धियाँ निम्न प्रकार हैं-

1. अंग-प्रत्यारोपण

निम्नतापीय परिरक्षकों और मनचाही शीतलन दर के लिए मशीनरी तकनीक के विकास के साथ रक्त बैंक की तरह अब ऊतक बैंक में बड़ी संख्या में तरह-तरह के ऊतकों जैसे कॉर्निया, हृदय वाल्व, त्वचा गुर्दे आदि को प्रत्यारोपण के लिए संग्रहीत कर सकते हैं.। आवश्यकता पड़ने पर ऊतक बैंक से या स्वस्थ मनुष्य से हृदय वाल्व, हृदय, त्वचा, गुर्दे यकृत आदि को लेकर बीमार व्यक्ति के खराब सम्बन्धित अंग को हटाकर प्रत्यारोपित कर व्यक्ति को जीवनदान दिया जा सकता है.। अभी हाल ही में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, दिल्ली में हृदय-प्रत्यारोपण के तीन सफल प्रयोग किये जा चुके हैं।

2. हृदयी बीमारियाँ

हृदय रोग के निदान की अत्याधुनिक तकनीकी उपलब्ध हो रही है। रंगीन ईको-कार्डियोग्रांफी से शुरुआती अवस्था में ही हृदय की गड़बड़ियों का पता चलने की संभावना बढ़ गयी है। हृदय की पेशियों में विकार (कार्डियोमायोपैथी), हृदय वाल्व, संधिवातीय हृदय विकारों से ग्रसित रोगी भी आज सामान्य जीवन जीने की उम्मीद करने लगे हैं। अधिकांश हृदयाघात कोरोनरी धमनी में अवरोध पैदा हो जाने से होते हैं। अब इस धमनी से अवरोध दूर करने के लिए मुख्य तीन विधियाँ अत्याधुनिक हैं। प्रथम हैं **लैसर एंजिओप्लास्टी**- इस विधि में विविध तरंग दैर्घ्य की लैसर किरणों द्वारा धमनियों में

जमा हुए कोलेसट्रॉल वाले स्थान पर डाली जाती है जिससे कोलेसट्रॉल पिघल कर या वाष्प बनकर हट जाता है तथा धमनी बिल्कुल खुल जाती है। दूसरी विधि एथेरेक्टोमी में धमनियों में कैलशियम युक्त कठोर अवरोधों, जिनकों एंजिओप्लास्टी द्वारा नहीं हटाया जा सकता, को धातु या डायमंड की पैनी नोक द्वारा ड्रिल करके उनकों अत्यन्त छोटे टुकड़ों में तोड़कर अवरोधहीन कर दिया जाता है। तीसरी विधि स्टेन्ट (Stents) कहलाती है- एंजिओप्लास्टी तथा एथेरेक्टोमी में हटाये गये अवरोध से कोरोनरी धमनी पुनः अवरुद्ध हो जाती है। इससे बचने के लिए धातु तार या थर्मोप्लास्टिक के सूक्ष्म जाल को धमनी के अन्दर की सतह से पतली परत के रूप में लगा दिया जाता है यह सूक्ष्मजाल या स्टेन्ट स्पोर्ट के साथ-साथ चिकनी सतह प्रदान करता है।

हृदय के अन्दर के वाल्व, पेशी या पेस मेकर का प्रत्यारोपण करते समय हृदय को आराम दिया जाता है। जब हृदय गति, हर्ट अटैक, चोट से भौतिक नुकसान या अन्य हृदय रोग से रुक जाये या प्रभावित हो जाये तो कार्डियक असिस्ट डिवाइस (Cardiac Assist Device) की सहायता ली जाती है। इसमें क्रमशः पम्प होते हैं जो रुधिर परिसंचरण को निश्चित गति देते रहते हैं।

कृत्रिम हृदय - 2 कार्डियक असिस्ट डिवाइस के द्वारा बना होता है। हृदय गति रुक जाने के बाद कृत्रिम हृदय को हृदय के स्थान पर लगाकर कुछ समय के लिए रुधिर परिसंरचण बनाया जा सकता है।

3. कॉर्निया प्रत्यारोपण-अंधता निवारण

नेत्र में प्राकृतिक लैंस के खराब हो जाने पर उनके स्थान पर नजदीक या दूर की वस्तुओं को देखने के लिए कृत्रिम प्लास्टिक लैंस (वाइकोकल) या प्रत्यारोपण किया जाने लगा है। बी० एस० मेडिकल कम्पनी ने अंधे लोगों के कॉर्निया को लेसर सर्जरी से हटाकर अच्छे कॉर्निया का इन्ट्रास्ट्रोमल कॉर्नियल रिंग को अल्प सर्जरी द्वारा प्रत्यारोपण करने की तकनीकी विकसित कर ली है। इससे अंधे एवं नेत्र ज्योति खो चुके लोग भविष्य में पुनः नेत्र ज्योति प्राप्त कर सकेंगे।

4. कोक्लिया प्रत्यारोपण

बहरापन निवारण- अभी हाल ही में सुनने की प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण अंग कोक्लिया का प्रत्यारोपण किया गया है। यह एक इलेक्ट्रॉनिक रचना होती है जिसको सर्जरी के द्वारा कान में फिट किया जाता है। यह रचना यांत्रिक ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में बदल कर बहरों के लिए आशा की किरण बन गई है।

5. लिथोट्रिप्सी

वृक्कों में पथरी के उपचार की नई विधि लिथोट्रिप्सी कहलाती है। इसमें बिना किसी चीर-फाड़ के वृक्क, यकृत आदि से पथरी को निकाला जाता है। यूरेटर पथरी के लिए लैसर तरंगों के झटके दिये जाते हैं, जिससे पथरी तुरन्त धूल या छोटे-छोटे कणों में टूट जाती है। भविष्य में लियो ट्रिप्सी का प्रयोग ट्यूमर के उपचार के लिए किये जाने का प्रयोग कर रहे हैं।

6. लेसर सर्जरी

इसमें शरीर के आन्तरिक अंगों, जैसे गाल-ब्लेडर, गाल-स्टोन, संक्रमित ली. र आदि को बिना दर्द के निकालते हैं। इसके लिए शरीर में मुख्य रूप से उदर में 4 छिद्र बनाकर एक में से कटे हुए अंग को बाहर निकाला जाता है और दूसरे छिद्र से लैसर तन्तु को प्रविष्ट कराया जाता है। अन्य दो छिद्रों का उपयोग ऊतकों को ठीक स्थिति में रखने के लिए किया जाता है।

7. परखनली शिशु तथा बाँझपन निवारण

परखनली शिशु तकनीकी में कुछ विशेष उत्तेजक औषधियों से महिलाओं के अण्डाशय को उत्तेजित करके अण्डाणु प्राप्त कर लिये जाते हैं। इन अण्डाणुओं को शरीर से बाहर शुक्राणु के निषेचित कराके वापिस इन्हें महिला के गर्भाशय में स्थानान्तरित कर देते हैं। इस प्रकार परिवर्धित बच्चों को टेस्ट ट्यूब बेबी या परखनली शिशु कहते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा 6 परखनली शिशुओं को एक साथ प्राप्त कर चुके हैं।

बाँझपन के कारण सामाजिक एवं मानसिक यंत्रणाओं से गुजरते लाखों दम्पत्तियों के लिए यह अत्याधुनिक तकनीकी वरदान बनकर आई है। कृत्रिम शुक्राणु से वन, गिफ्ट यानि युग्मक का दूसरी डिम्बवाहिनी में स्थानान्तरण, जिफ्ट अर्थात् युग्मनज का दूसरी डिम्बवाहिनी में स्थानान्तरण, IUF (आई यू एफ) अर्थात् परखनली गर्भाधान, एड माइक्रोमैनिपुलेशन अर्थात् एक महिला का अण्डाणु दूसरे पुरुष के हिमशीतित शुक्राणु और तीसरी महिला के गर्भाशय का प्रयोग तथा आर्ट (ART-Assisted Reproduction Technique) के प्रयोग से बाँझ दम्पत्तियों की गोदी में बच्चों की किलकारियाँ गूँजने लगी हैं।

8. परिवार नियोजन

अब तक कई प्रकार के गर्भ निरोध पदार्थ एवं गर्भ निरोध तकनीकों को विकसित किया गया है। ये निम्न हैं—

गर्भ निरोधक खाने की गोली- सामान्तया ये गोलियाँ एस्ट्रोजन एवं प्रोजेस्टेरोन हारमोन की बनी होती हैं और प्रत्येक दिन एक गोली ली जाती है। अभी हाल ही में नॉन स्टेराइड एवं बिना हारमोन की बनी सेन्टक्रोमिन की गोली को गर्भनिरोधक के रूप में परिष्कृत किया गया है। यह बाजार में 'सहेली' के नाम से आयी है तथा सप्ताह में केवल 2 दिन महिलाओं को लेनी पड़ती है। महिलाओं के लिए ही नहीं बल्कि पुरुषों के लिए भी गर्भ निरोधक गोली 'गोसीपोल' को चीन में विकसित किया गया है।

सुई द्वारा लेने वाले गर्भ निरोधक- दीपो प्रोवेरा इंजेक्शन को त्रिमासिक एवं नोरीस्टेरेट इंजेक्शन का प्रयोग द्विमासिक रूप से किया जाने लगा है।

गर्भनिरोधक प्रत्यारोपण-अमेरिका के **एड कोक** एवं उनके सहयोगियों ने लेड पैंसिल की नोक के बराबर एक कैप्सूल तैयार किया है, जिसको एक विशेष सूई के द्वारा महिला की भुजा या कूल्हे में प्रत्यारोपित किया जाता है।

इससे निकलने वाले लीवोनोरगेस्ट्रेल हार्मोन से लगभग एक वर्ष तक गर्भ धारण को टाला जा सकता है। एक वर्ष बाद इस कैप्सूल के खण्डित उत्पाद बिना किसी विषैले प्रभाव के शरीर से त्याग दिये जाते हैं। इससे महिलाओं को रोज गोली खाने की आदत से छुटकारा मिल सकेगा।

वैजाइनल रिंग- यह कृमि कि तरह से सिलिकोन रबर की बनी हुई रिंग होतीहै, जो 3 सप्ताह से 3 माह के लिए योनि के दूरस्थ भाग में रखी जाती है।

अन्तर्गर्भाशय रचनाएं- जैसे IUDS (आई यू डी एस) को गर्भाशय गुहा में प्रविष्ठ करा कर गर्भधारण से बच सकते हैं। स्थायी बन्ध्यकरण हेतु पुरुषों में वासेक्टोमी एवं महिलाओं में ट्यूबक्टोमी नामक गर्भनिरोधक तकनीकी का व्यापक रूप से प्रयोग हो रहा है। अब वैज्ञानिकों की नज़र उन प्रेक्षणाधीन टीकों पर है जिनसे आसानी से अनचाहे गर्भ से बचा जा सकेगा।

9. लिंग परिवर्तन

व्यक्ति जो अपने-समान लैंगिक समुदाय में खुश नहीं रहते तथा वे विपरीत लिंगी समुदाय जैसी हरकतें करते हैं तो उनके लिंग का स्थानान्तरण कर उनकी समस्याओं का समाधान होने लगा है। न्यूयार्क के टेनिस खिलाड़ी (प्लेयर) रिचर्ड रेस्किन इस प्रक्रिया से औरत बन गया तथा अपना नाम बदर कर रिने रिचर्ड रख लिया। इसी तरह महाराष्ट्र के शीरपुर की **भारती** लिंग परिवर्तन ऑपरेशन के बाद **भारत** बन गई।

10. पुरुषों का दाम्पत्य जीवन

दाम्पत्य जीवन में असफल पुरुषों के लिंग में स्थायी सेमीरिजिड प्रोस्थेसिल एवं इनफ्लेटेबल प्रोस्थेसिस नामक कृत्रिम संरचनाओं का प्रत्यारोपण कर उन्हें सफल दाम्पत्य जीवन जीने के योग्य बनाये जाने के सफल प्रयोग किये जा चुके हैं।

11. कृत्रिम रुधिर

वैज्ञानिकों ने हाल ही में कृत्रिम रक्त के बनाने में सफलता हासिल कर ली है। इसमें पुरानी कोशिकाओं से हीमोग्लोबीन को लेकर कृत्रिम कोशिकाएं बनाई गई हैं।

साफ-सुथरी लकड़ी की डंडी लेकर सूँड़ियों को रगड़-रगड़ कर बारीक टुकड़ों में कर लेते हैं।

3. विषाणु सूँड़ियों के शरीर से निकलकर पानी में आ जाते हैं तथा सूँड़ियों की त्वचा पानी में तैरती रहती है। इसको अलग कर फेंक देते हैं। एन० पी० वी० (विषाणु) के कण पानी की तली में बैठ जाते हैं।

4. एन० पी० वी० के घोल को शुद्धीकरण के लिए सेन्ट्रीफ्यूज क्रिया द्वारा शोधित किया जाता है। फिर इस घोल को रेफ्रिजरेटर में रख देते हैं। घोल को आवश्यकतानुसार प्रक्षेत्र में प्रयोग करते हैं।

5. प्रक्षेत्र में खड़ी फ़सल पर घोल विभिन्न मात्रा, 125, 250, 500, 750 एल० ई० (लारवल इक्यूवैंलेन्ट) लेकर 1 एल० ई० = 6 × 109 पी० आई० वी० प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करते हैं।

एकीकृत जीवनाशी प्रबंधन (इन्ट्रीग्रेटेड पैस्ट मैनेजमेन्ट) के अन्तर्गत एन० पी० वी० का प्रयोग प्रक्षेत्र में विभिन्न विधियों द्वारा किया जा सकता है। आज की सघन खेती में रसायनों का अंधाधुन्ध प्रयोग होना सबसे बड़ी बाधा बन गया है। रसायनों के प्रतिकूल प्रभाव को देखते हुए वैज्ञानिकों ने जैविक साधनों का उपयोग महत्वपूर्ण बताया है। यदि किसानों के प्रशिक्षण का उचित प्रबन्ध किया जाय तो शायद हमारे किसान इन जैविक साधनों का प्रयोग अपने प्रक्षेत्र में बड़ी आसानी से कर सकते हैं। वैज्ञानिकों ने अनुसंधान के दौरान एन० पी० वी० के द्वारा इस कीट के नियंत्रण में 100% तक सफलता पाई है। भारत में बाजारों में अभी तक विषाणु के उत्पाद उपलब्ध नहीं हैं। विदेशों में बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ इस विषाणु के उत्पाद में संलग्न हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जीव नाशक उत्पाद का बाजार करीब 20.25% तक बढ़ गया है। ऐसा अनुमान है कि निकट भविष्य में भारत के बाजारों में भी फँफूंदी, बैक्टीरिया (जीवाणु) और विषाणु के उत्पाद उपलब्ध हो जायेंगे।

विषाणु उत्पाद के उदाहरण

1. न्यूक्लियोपॉलीहाइड्रोसिस वाइरस के उत्पाद

एल्कार, जिपचेक, नियोचेक, वाइराक्स, डीसाईड, कार्पोविरूसिन और मैमेसट्रिन आदि।

2. ग्रेन्यूलोसिस वाइरस (जी० बी०) के उत्पाद

कैपेक्स - 2, और मैडेक्स-3।

उपयोग

1. एन० पी० वी० के विभिन्न घोल 125, 250, 500,750 एल० ई० को 600-800 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से प्रक्षेत्र में छिड़काव के रूप में प्रयोग करना चाहिए।

2. विषाणु के घोल को कीटनाशकों जैसे कि इन्डोसल्फान, साइपर, मैथ्रिन, क्लोरपाईरिफास आदि के साथ मिलाकर भी प्रयोग कर सकते हैं। इस विधि के प्रयोग से कीटों के नियंत्रण में काफी हद तक सफलता प्राप्त की जा सकती है।

3. विषाणु को विभिन्न प्रकार के एडजूवेन्ट्स जैसे कि सोयाबीन का आटा 1%, सोयाबीन का तेल (0.01%) मूँगफली की खली, जगेरी, चने का आटा चारकोल इत्यादि के साथ मिलाकर प्रयोग किया जा सकता है। इस एडजूवेन्ट्स के उपयोग से विषाणु की क्रियाशीलता बढ़ जाती है।

4. घोल का छिड़काव फुटस्प्रेयर या नैपसेक स्प्रेयर से शाम के समय करना चाहिये जिस समय हवा न चल रही हो।

5. घोल का छिड़काव फसलों की फल वाली अवस्था में कम से कम 2-3 बार 15 दिन के अन्तराल पर करने पर ध्यान देना चाहिए। उपरोक्त विधि से फसलों को हानि पहुँचाने वाले कीटों का विषाणुओं की सहायता से सफाया किया जा सकता है और अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। ■■

भारत में नम क्षेत्रों का फैलाव, महत्व एवं संरक्षण

❑ डॉ० सतीश कुमार शर्मा

क्षेत्रीय वन अधिकारी,

अरावली वृक्षारोपण परियोजना,

झाडोल (फ), जिला-उदयपुर-313702

भूमि एवं पानी के मिलन स्थल पर एक ऐसा संक्रमणीय विस्तार होता है जो न तो भूमि की तरह सूखा होता है और न ही उन्मुक्त जल से लबालब। बल्कि वहाँ जलस्तर प्रायः भूमितल पर या भूमि तल के नजदीक होता है या उथला पानी भूमि के ऊपर फैला रहता है। मौसमी परिवर्तन के साथ भूमि-जल भूमि से कुछ ऊपर या भूमि तल के बराबर या कुछ नीचे बना रहता है। इस स्थिति के साल के पूर्ण या किसी हिस्से में कीचड़नुमा स्थिति बन पड़ती है जो शुष्क-भूमि एवं जल राशि के मध्य एक "इकोटोन" की तरह पनपती है। ये संक्रमण स्थल ही 'वैट लैण्ड' या 'नम क्षेत्र' कहलाते हैं। नम क्षेत्र स्थाई (साल भर नम रहने वाले) या अस्थाई (साल के कुछ भाग में नम रहने वाले), मीठे जल के या नमकीन जल के, समुद्री किनारे पर या अन्तःस्थलीय प्रकार के हो सकते हैं।

वैट लैण्ड के रूप में माने जाने वाले आवास

1. बोग (Bogs)
2. पीट युक्त क्षेत्र (Peat lands)
3. बाढ प्लावित होने वाले मैदानी क्षेत्र (Flood land)
4. दलदली क्षेत्र (Marshes)
5. स्वाम्प युक्त क्षेत्र (Swamps)
6. उथले तालाब (Shallow ponds)
7. बड़े जलाशयों के किनारे वाले क्षेत्र (Littoral Zones)
8. ज्वार से बने दलदल (Tidal Marshes)आदि आदि।

नम क्षेत्र मनुष्य के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन होते हैं। नम क्षेत्र बाढ़ रोकने के लिए, जलभरण करने, पानी की गुणवत्ता बनाये रखने, तलछट की दर कम रखने आदि की भूमिका अदा करते हैं। मछली पालन व चारा उत्पादन में भी इनका महत्वपूर्ण स्थान है। जलीय पक्षियों के भोजन एवं प्रजनन स्थलों के रूप भी में इनका बड़ा महत्व है। ट्यूरिज्म, फोटोग्राफी आदि हेतु नम क्षेत्र बहुत उपयोगी होते हैं।

मानव व पशु संख्या के बढ़ते दबाव, प्रदूषण, मल निस्तारण, यूट्रिफिकेशन, तलछट, खरपतवार, नदी घाटी योजनायें, जल प्रवाह में तब्दीली, भूगर्भीय जल का अंधाधुन्ध दोहन, सूखा, अति मत्स्य आखेट आदि महत्वपूर्ण कारक हैं जो नम क्षेत्रों को निर्जीव व शुष्क बना डालते हैं। नम क्षेत्रों को बचाने के लिए 1977 में रामसर कान्फ्रेन्स हुई जिसमें नम क्षेत्रों को बचाने के लिए 1980 तक 27 देशों ने हस्ताक्षर किये। भारत भी हस्ताक्षर करने वाले देशों में है।

भारत नम क्षेत्रों में एक धनी देश है। अनेक तरह के प्राकृतिक व मानव निर्मित नम क्षेत्र भारत में विद्यमान हैं। लम्बी समुद्री सीमा, नदियों का जाल तथा मानसून काल में कई निचले स्थानों के बाढ़ प्लावित हो जाने, नहरों एवं बांधों के निर्माण से हमारे देश में नम क्षेत्रों की कोई कमी नहीं है। दक्षिण एवं उत्तर-पूर्वी भारत, समुद्र तटीय भाग नम क्षेत्रों से भरे हुए हैं।

संरक्षण प्रयास

रामसर समझौते पर हस्ताक्षर कर के भारत ने नम क्षेत्र संरक्षण क्षेत्र में नये युग का श्री गणेश किया है। कई नम क्षेत्रों को तो पक्षी अभयारण्य घोषित किया गया है। कुछ उदाहरण सारणी में दर्ज हैं

सारणी

पक्षी अभयारण्य /राष्ट्रीय उद्यान बनाये गये नम क्षेत्र

राज्य	पक्षी अभयारण्य / राष्ट्रीय उद्यान	राज्य	पक्षी अभयारण्य / राष्ट्रीय उद्यान
जम्मू एवं काश्मीर	शंकराचारी	पंजाब	सुखना
हिमाचल प्रदेश	गोविन्दसागर	हरियाणा	हरिके बांध, सुलतानपुर झील
राजस्थान	केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान	गुजरात	नाल सरोवर, खिजाड़िया
मध्य प्रदेश	सीरपुर, गांधीसागर	महाराष्ट्र	करनाल
बिहार	तोपचंची	आंध्रप्रदेश	नीलामट्टू, कोलेरू
कर्नाटक	रंगनाथिट्टू, घटप्रभा	उड़ीसा	चिल्का झील
उत्तर प्रदेश	नवाबगंज	तमिलनाडु	पुलिकट, वेदानथंगल, वैंटगुडी
अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह	नारकोन्डम, उत्तरी रीफ		

गंगा व अन्य नदियों को प्रदूषण मुक्त करने के लिए नदियों में सफाई अभियान शुरू किया गया है। अनेक जलाशय जैसे पिछोला (राजस्थान), केजली (पंजाब), वूलर (जम्मू एवं काश्मीर), भोज (मध्य प्रदेश), लोकटक (मणिपुर), चिल्का (उड़ीसा), कोलेरु (आंध्रप्रदेश), सुखना (चंडीगढ़), रेणुका (हिमाचल प्रदेश) आदि के संरक्षण हेतु विशेष प्रयास किये गये हैं। कई नम क्षेत्रों को रामसर स्थल घोषित कर दिया गया है। जल पक्षी आखेट पर कानूनन रोक लगाई गई है।

अनुसंधान, प्रचार-प्रसार, जन चेतना पर काफी ध्यान दिया जा रहा है। कई स्वयं सेवी संस्थायें भी इस तरफ योगदान दे रही हैं।

नम क्षेत्रों में स्थानीय एवं देशान्तर गमनकर आने वाली पक्षी संख्या की मोनिटरिंग भी की जाने लगी है। कई महत्वपूर्ण नम क्षेत्रों को पक्षी अभयारण्य/ राष्ट्रीय उद्यान बनाकर उनके संरक्षण की तरफ सरकार ने प्रयास किये हैं।

■■

वनस्पतियों की रंगधर्मिता (पृष्ठ 22 का शेष)

हरी पत्तियों में उपस्थित क्लोरोफिल खुद ही एक हरा रंजक होता है। पतंग, खैर, लाल-चन्दन की लकड़ियों से भी रंजक प्राप्त किये जाते हैं। इनके अतिरिक्त शैवाल (एल्गी) और शैवाक (लाइकेन) भी रंजकों के अच्छे स्रोत हैं।

विश्व का सबसे बड़ा जीवित पेड़ 'लाल लकड़ी का पेड़' है- जो कैलीफोर्निया में होता है। इसका वजन विश्व के विशालतम जीव 'नीली व्हेल' से नौ गुना ज्यादा होता है।

■■

वनस्पतियों की रंगधर्मिता

❑ योगेन्द्र बहादुर सिंह
सम्पादक, 'आहट'
के० एन० आई०, सुलतानपुर- 228118

"पापा, घास हरी क्यों होती है ? लाल क्यों नहीं होती है ?"

"हर चीज का अपना रंग होता है ।"

"हर चीज का अपना रंग क्यों होता है ?"

"क्योंकि कुदरत ने हर चीज का अपना रंग बना दिया है ।"

"कुदरत क्या होती है ?"

मोहन राकेश की कहानी 'एक और जिंदगी' में नायक से उसके बच्चे द्वारा पूछे गये ये प्रश्न आम आदमी के मन में भी जिज्ञासायें जगाते हैं । पौधों का रंग हरा क्यों होता है ? पौधे-फल रंगीन क्यों होते हैं ? फल पक जाने पर रंग क्यों बदलते हैं ? आइये प्रश्नों की मायानगरी की दो-चार गलियाँ घूम आयें ।

सभी हरे पौधे ऑटोट्रोपिक (अपना भोजन स्वयं बनाने वाले) होते हैं । इन पौधों में क्लोरोप्लास्ट होता है.। क्लोरोप्लास्ट हरे क्लोरोफिल्स होते हैं जिनमें प्लास्टिड्स होते हैं और ये प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया में भाग लेते हैं । प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा ही पौधों में भोजन बनता है । पौधों में मौजूद-प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में भाग लेने वाले वर्णक तीन प्रकार के होते हैं : क्लोरोफिल (जल में अघुलनशील), कैरोटिनायड (जल में अघुलनशील) तथा फाइकोबिलिन्स (जल में घुलनशील).। प्रकाश-संस्लेषण की क्रिया आरम्भ होने से पहले वर्णकों द्वारा ऊर्जा अवशोषित कर ली जाती है । क्लोरोप्लास्ट में उसके शुष्क भार का पाँच प्रतिशत वर्णक होता है । इन वर्णकों की संरचना में संयुक्त द्वि-बन्ध होते हैं और ये दृश्य प्रकाश अवशोषित करके रंगीन दिखलाई पड़ते हैं । दस विभिन्न प्रकार के क्लोरोफिल्स की श्रृंखला ज्ञात है । वनस्पतियों (तथा हरी काइयों) में मुख्यतः क्लोरोफिल-ए तथा बी मौजूद होते हैं । बैक्टीरियोक्लोरोफिल-ए लाल काई (एल्गी) में होता है । क्लोरोफिल-बी लाल एल्गी में तथा क्लोरोफिल-सी भूरी एल्गी में मौजूद होता है । क्लोरोफिल - कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन और मैग्नीशियम तत्वों का यौगिक है । क्लोरोफिल का विशेष गुण है - सूर्य के प्रकाश में से लाल, नीला और हरा रंग सोख लेना । चाहे उस पर प्रकाश सीधा पड़ता हो या परावर्तित होकर, वह उसका उपयोग कर लेता है.। प्रकाश की उपस्थिति में क्लोरोफिल वायु से कार्बन डाइऑक्साइड और जल (CO_2 और H_2O) लेकर फ्रक्टोज, ग्लूकोज आदि में परिवर्तित कर देता है । इसी क्रिया को प्रकाश-संश्लेषण कहते हैं । ग्लूकोज के बाद स्टार्च, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, अम्ल, वसा, विटामिन, अल्कलाइड आदि पदार्थ बनते हैं । क्लोरोफिल के साथ उपस्थित मैग्नीशियम वनस्पतियों के कम और अधिक गहरे हरे रंग के लिए जिम्मेदार होता है । मैग्नीशियम की कमी से पत्ते पीले होकर गिर जाते हैं ।

जो पौधे हरे रंग से वंचित होते हैं-उनमें कैरोटिनायड हरे रंग का दायित्व निभाता है । कैरोटिनायड पीला-नारंगी रंग है । यह नाम कैरट (गाजर) से लिया गया है जो कि इसका मुख्य स्रोत है । पेड़-पौधों में क्लोरोफिल व

कैरोटिनायड केवल प्रकाश और लौह परमाणुओं की उपस्थिति में उत्पन्न होते हैं, हाँलाकि स्वयं उनमें लौह परमाणु नहीं होते। कैरोटिनायड के प्रधानतः दो समूह होते हैं - कैरोटीन्स तथा कैरोटिनोल। कैरोटीन्स असंतृप्त हाइड्रोकार्बन होते हैं जो नीले तथा हरे प्रकाश को अवशोषित करके पीले और लाल प्रकाश को उत्सर्जित करते हैं। फाइकोबिलिन्स प्रकाश-संश्लेषण वर्णकों के ऐसे समूह को निर्मित करता है जो नीले, हरे तथा लाल एल्गी में होते हैं। फाइकोबिलिन्स दो प्रकार के होते हैं - फाइकोएरिथ्रिन (लाल वर्णक) तथा फाइकोसायनिन (नीला वर्णक)।

प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया क्लोरोप्लास्ट में होती है। क्लोरोप्लास्ट में 50% जल, 25% प्रोटीन, 15% लिपिड तथा 10 प्रतिशत वर्णक होता है। क्लोरोफिल-ए तथा बी स्पेक्ट्रम का नीला और लाल क्षेत्र ही अवशोषित करते हैं। क्लोरोफिल-प्रतिदीप्ति निर्विवाद रूप से लाल होती है, भले ही उसे उत्तेजित करने वाला प्रकाश नीला, हरा या पीला हो। क्लोरोप्लास्ट के अधिकांश वर्णक प्रकाश-संश्लेषण की रासायनिक क्रिया में प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लेते। प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया सबसे अधिक लाल प्रकाश में, उसके बाद नीले प्रकाश में होती है। हरे प्रकाश में यह क्रिया कम होती है। लाल (शैवाली एल्गी) हरे प्रकाश में तथा भूरा शैवाल नीले प्रकाश में प्रकाश-संश्लेषण की अधिकता प्रदर्शित करते हैं।

उत्सर्जन की क्रिया लाल और नीले प्रकाश में बढ़ जाती है। क्योंकि ये प्रकाश स्टोमैटा को खोलने में मदद करते हैं जबकि हरा प्रकाश ऐसा नहीं कर पाता। ऐसे पौधों को जिन्हें अंधेरा अधिक चाहिए, यदि प्रकाश दे दिया जाये तो उनके फलने की प्रक्रिया विक्षोभित हो जाती है। यदि उनकी अंधेरी दुनिया को लाल प्रकाश (660 μ) से छेड़ दिया जाय तो उनकी फलने की प्रक्रिया बिल्कुल ही समाप्त हो जाती है। मजे की बात तो यह है कि लाल प्रकाश से छेड़ने के बाद यदि हम इन्फ्रारेड (730 μ) फेंके तो फूलने की प्रक्रिया बढ़ जाती है। यह सब कुछ जिस रंजक के कारण होता है, उसे फोटोक्रोम कहते हैं। फोटोक्रोम प्रकृति से फोटोरिवर्सिबिल होता है। यह नीले रंग का विलीप्रोटीन होता है।

फूलों की खूबसूरती में रंगों का प्रथम योगदान है। रंग ही फूलों में असाधारण आकर्षण पैदा करते हैं। **प्रो० रामन** की गहरी रुचि थी - फूलों के रंग-विज्ञान में। प्रो० रामन के अनुसार -"फ्लोरोक्रोम-ए नीले फूलों तथा फ्लोरोक्रोम-बी लाल फूलों के लिए उत्तरदायी हैं।" अन्य रंग इनके मिश्रण पर निर्भर होते हैं। वर्णकों के अतिरिक्त मिट्टी में उपस्थित विभिन्न लवण भी फूलों के रंग के लिए जिम्मेदार होते हैं। खुद फ्लोरोक्रोमों का अस्तित्व वर्णक के मायाजाल में घिरा होता है। जैसे कि फूलों में नीला रंग डेलफिन्ड वर्णक के कारण होता है। फल भी बड़े रंग मिजाज होते हैं। कच्चे हैं तो हरे पक जायें तो लाल, पीले, नारंगी, बैंगनी हो गये। पके फलों के रंग क्रोमोप्लास्ट के कारण होते हैं। क्रोमोप्लास्ट के वर्णक विभिन्न रंगों के लिए उत्तरदायी होते हैं। उदाहरण के लिए पके सेब का पीला रंग 'हाइपेरिन' के कारण होता है। इसी प्रकार 'आइडेइन' पके सेब के लाल रंग के लिए जिम्मेदार है। टमाटरों का लाल रंग 'लाइकोपीन' रंजक के कारण होता है। मोटे तौर पर कहते हैं कि जब फल पकता है तो उसका क्लोरोप्लास्ट, क्रोमोप्लास्ट में बदल जाता है। परन्तु - इस तथ्य के मेकेनिज्म को समझने के लिए वनस्पति विज्ञान की गहरी समझ होनी चाहिए।

वनस्पतियाँ हमें रंजक भी देती हैं। कुसुम, टेसू, हरसिंगार, धावी, तून आदि फलों से क्रमशः नारंगी पीला, पीला-नारंगी, नीला, पीत-लाल रंजक प्राप्त होते हैं जिनका उपयोग खाद्य पदार्थों-वस्त्रों की रंगाई में होता है। कामला (रौनी) के फलों के छिलके से प्राप्त लाल रंजक रेशम की रंगाई के काम आता है। सिंधुरिया तथा दूधी के बीजों से भी रंजक मिलते हैं। सागौन तथा बरबेरी की छाल से पीला रंजक तथा भिल्लर (विशपवुड) की छाल से लाल रंजक प्राप्त किये जाते हैं। जिग्गन की छाल का रंगने के कार्य में उपयोग होता है। खट्पालक की जड़ से लाल रंजक मिलता है। रसौत तथा बनहर्दी से पीला रंजक प्राप्त होता है। नील, इमली, लोध की पत्तियों से भी रंजक निकाले जाते हैं। मेंहदी की पत्तियों में 'लासोन' नामक रंजक होता है। (शेष पृष्ठ 20 पर देखें)

कचरे से उत्पन्न ख़तरा

❑ डॉ० दिनेश मणि

सहायक सम्पादक 'विज्ञान', विज्ञान परिषद्,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद -211002

बढ़ती जनसंख्या के साथ ही कूड़े-कचरे के निपटान की समस्या भी विकराल रूप धारण करती जा रही है। एक ओर जहाँ अपशिष्ट पदार्थों के कारण पर्यावरण का प्रदूषण बढ़ रहा है और मानव दिन प्रतिदिन अनेक प्रकार के रोगों की चपेट में आता जा रहा है, वहीं कचरे के निपटान की समस्या का उपाय भी समझ में नहीं आ रहा है। जर्मनी, अमेरिका, रूस, जापान जैसे आर्थिक रूप से सम्पन्न देशों ने तो कूड़े से बिजली बनाने की तकनीक विकसित कर ली है, किन्तु भारत जैसे विकासशील देश, जो आर्थिक रूप से साधन सम्पन्न नहीं है, उनके पास नयी तकनीक को बाहर से मँगाने के साधन भी नहीं हैं।

इस समस्या पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के बाद दिल्ली सरकार मास्को और सेन्टपीटर्स बर्ग नगर की सरकारों की सहायता से दिल्ली के ठोस अपशिष्ट से गंधहीन खाद और बिजली उत्पन्न करने की योजना बना रही है। इस समस्या पर पढ़िये डॉ० दिनेश मणि के विचार। — सम्पादक

पर्यावरण विशेषज्ञों के लिए नहीं, अपितु जन-सामान्य के लिए भी कचरा स्वयं में एक गम्भीर चुनौती का रूप लेता जा रहा है। बढ़ती आबादी के साथ-साथ ठोस कचरे की मात्रा में भी वृद्धि हो रही है। किसी शहर में उत्पन्न होने वाले कचरे की मात्रा व किस्म उस शहर के आकार व प्रकृति पर निर्भर है। साधारण रूप से इस कचरे को निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है-

1. घरेलू/व्यापारिक कूड़ा-करकट
2. सड़क-गली का कचला
3. निर्माण व विध्वंस का मलबा
4. अस्पतालों का कचरा
5. औद्योगिक कचरा।

शहर के विभिन्न हिस्सों के कचरे की किस्म व मात्रा में काफी अन्तर होता है। उदाहरण के लिए झुग्गी-बस्तियों के कचरे में जैव-पदार्थों की मात्रा अधिक होती है। वास्तव में कचरे का प्रकार तथा मात्रा उपभोग, उत्पादन व वृद्धि पर निर्भर है। उपभोग की शैली के अनुसार पूरे देश के स्तर पर प्रति व्यक्ति कचरा 100 ग्राम से 600 ग्राम प्रतिदिन के बीच होता है। औसत कचरा लगभग 330 ग्राम प्रतिदिन होता है। सारणी-1 में भारत के प्रमुख नगरों में कूड़ा-करकट उत्पादन की दर दी गयी है।

हमारे देश में फसलों के अवशेष, पशु गोबर जैसे अवशिष्ट पदार्थ तो प्रारम्भ में ही उत्पन्न होते रहते हैं, किन्तु शहरीकरण व औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप पॉलीथीन की थैलियाँ, प्लास्टिक के डिब्बे, टीन तथा अन्य धातु के डिब्बे, काँच के पात्रों के अवशेष, कल-कारखानों में विभिन्न धातुओं की छीजन, ठोस व्यर्थ पदार्थ के रूप में

तथा औद्योगिक मलजल तथा अवमल तरल व्यर्थ पदार्थ के रूप में एक विकट समस्या बन चुके हैं। यद्यपि कचरा सिर्फ कचरा ही नहीं होता, उसके कुछ हिस्से को फिर से उपयोग में लाया जा सकता है-पुनर्चक्रण (recycling) द्वारा.। किन्तु प्लास्टिक-कचरे में से 15-20% अंश को ही पुनः उपयोग में लाया जा सकता है। शेष विशुद्ध कचरा ही होता है जो कम विषाक्त से लेकर अत्यधिक विषाक्त हो सकता है। 80-85% धातु-कचरा किसी काम के लिए भी उपयोगी नहीं होता है। सारणी-1

भारत के प्रमुख बड़े नगरों में कूड़ा-करकट का उत्पादन

नगर	कुल उत्पादन (टन प्रतिदिन)
कलकत्ता	4,000
बम्बई	3,500
मद्रास	3,000
दिल्ली	2,200
बंगलौर	1,000
कानपुर	850
लखनऊ	700
चण्डीगढ़	500
वाराणसी	366

एक सर्वेक्षण के अनुसार बम्बई में जो कूड़ा-करकट होता है उसमें निम्नलिखित मात्रा में भिन्न-भिन्न वस्तुयें होती हैं -

तिनका व भूसा	17.5%
सड़ी गली सब्जियाँ	6.45%
धातु	0.13%
राख, मिट्टी आदि	13.00%
अन्य	3.05%

यह कैसी विडम्बना है कि प्लास्टिक-कचरे से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के प्रति अनभिज्ञता प्रदर्शित करते हुए हमारा देश विकसित देशों से एक बड़ी मात्रा में प्लास्टिक-कचरा आयात करता जा रहा है। आँकड़ों के अनुसार 1993 में भारत ने 7616 टन प्लास्टिक-कचरे का आयात किया। एक अनुमान के अनुसार अमेरिका के 50% से अधिक प्लास्टिक-कचरे को भारत, बंगलादेश और पाकिस्तान अपने यहाँ खपा लेते हैं। स्मरण रहे कि अमेरिका में प्रतिवर्ष 160 लाख टन प्लास्टिक कचरा निकलता है। यही नहीं, प्लास्टिक-कचरे के अलावा भारत ने 1993 में 502 टन लेड-कचरा, 346 टन लेड बैटरी कचरा, 30,498 टन टिन, ताँबा और अन्य धातुओं का कचरा आयात किया और प्रतिवर्ष यह आयात बढ़ता जा रहा है.। पर्यावरण विशेषज्ञों की सलाह की परवाह किये बिना भारत अपनी उदारता का परिचय देते हुए स्वयं को कचरे का अक्षय भण्डार बनाता जा रहा है।

एक ओर तो हमारे देश में बाहर से कचरा आ रहा है, दूसरी ओर हम अपनी लापरवाही से अपने कचरे को निश्चित स्थान पर न डालकर इस समस्या को और बढ़ा रहे हैं। कचरे को नियत स्थान पर डालना लोगों को काफी असुविधाजनक लगता है। इसलिए सामान्यतः सारा कचरा फुटपाथों, गलियों के किनारे या खुली नालियों में फेंका जाता है।

वैसे तो प्रकृति में हमेशा ही पुनर्चक्रण (recycling) की प्रक्रिया चलती रहती हैं, फलस्वरूप एक प्रकार का कूड़ा दूसरे प्रकार से उपयोगी सिद्ध हो सकता है। पुनर्चक्रण द्वारा पुराना लोहा, प्लास्टिक, काँच, आदि घूम फिर कर एक नया रूप लेकर हमारे सामने आ जाते हैं। फिर भी कूड़े की निरन्तर बढ़ती हुई मात्रा स्वयं में एक गम्भीर समस्या का रूप लेती जा रही है। जैसे घरों एवं सड़कों की बेकार वस्तुओं को हटाना, गन्दे पानी का बहाना आदि.।

भारत में अधिकांश नगरों में वाहित मल-जल के निस्तारण का प्राविधान अभी भी नहीं है। यह सुविधा महानगरों में ही कुछ विशेष भागों में प्राप्त है।

(शेष पृष्ठ 28 पर देखें)

सीसा रहित पेट्रोल : कितना लाभकारी

❑ प्रमिला शाह

रसायन विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय,
जोधपुर-342005

घासलेट, डीजल व पेट्रोल- हाइड्रोकार्बन की श्रेणी में आते हैं। ये सभी पदार्थ जलने पर उष्मा पैदा करते हैं.। पेट्रोल, वाष्प व हवा के मिश्रण को संघनित कराने से ऊर्जा प्राप्त होती है- पर कभी-कभी इस मिश्रण में पूर्ण दबने के पूर्व ही दहन क्रिया हो जाती है। इसकी वजह से उष्मा जो प्राप्त होती है, उसका कोई लाभ नहीं होता.। इसे नॉकिंग या अवघात कहते हैं। इसी नॉकिंग से पेट्रोल की गुणवत्ता का पता चलता है। आइसोऑक्टेन जो एक हाइड्रोकार्बन है उसे एक मापदण्ड (Standard) माना गया है। जो भी पेट्रोल उसके बराबर नॉकिंग करता है, उस पेट्रोल का ऑक्टेन नम्बर 100 होता है। जितनी नॉकिंग ज्यादा होती है ऑक्टेन नम्बर उसी अनुपात में घटता है.। नॉकिंग को कम करने के दो तरीके होते हैं - पहला यह कि पेट्रोल में कुछ ऐसे हाइड्रोकार्बन मिलाये जायें जो नॉकिंग नहीं करते तथा दूसरा तरीका है कि टेट्राइथाइल लेड जैसे नॉकिंगरोधी पदार्थ उसमें मिला दिये जायँ। लेड हानिकरक है क्योंकि इससे कार से धुएँ निकलने के अलावा बेन्जीन जैसा हानिकारक पदार्थ भी निकलता है। बेन्जीन के अलावा टाल्यूईन व जाईलीन भी पेट्रोल में पाये जाते हैं जो रक्त कैंसर होने, गुर्दे तथा अस्थि मज्जा को भी क्षति पहुँचाते हैं। टाल्यूईन हमारी ज्ञान-तन्तु प्रणाली को प्रभावित करता है - यह वंशानुगत परिवर्तन का कारण भी बन सकता है। जाईलीन अस्थि मज्जा को नुकसान पहुँचाने के अलावा रक्त कणों में कमी का कारण भी बनता है। परन्तु सबसे ज्यादा घातक बेन्जीन है। जितनी बार हम कार या अन्य वाहन में पेट्रोल भरवाते हैं उतनी बार उसके सम्पर्क में आते हैं। ब्रिटेन के एसोसिएटेड ऑक्टेल के मुख्य चिकित्सा अधिकारी डॉ० गिडलोव तथा रसायन विशेषज्ञ जे० लारबे के अनुसार सीसारहित पेट्रोल में बेंजीन के कारण यह पदार्थ सूर्य की किरणों से प्रतिक्रिया करके ओज़ोन बनाता है। यह एक फोटो-रसायनिक प्रतिक्रिया है जो वायुमण्डल में कोहरे के रूप में छाने से जन जीवन को नुकसान तथा श्वास सम्बन्धी रोग पैदा करता है।

सवाल यह है कि क्या सीसा रहित पेट्रोल, स्वास्थ्य की दृष्टि से सुरक्षित है ? अनुसन्धानों से पता चलता है कि यदि 100 ग्राम रक्त में सीसे की मात्रा 80 माइक्रोग्राम से अधिक हो जाये तो इसका घातक प्रभाव हो सकता है.।

ईंधन की ऑक्टेन गुणवता वाहन के सहज रूप में चलने के लिए जरूरी होता है। उच्च ऑक्टेन नम्बर वाले पेट्रोल, से प्रति लीटर अधिक "माइलेज" प्राप्त होता है। वाहन में 'कैटेलिक कन्वर्टर' बेंजीन व अन्य पदार्थों की मात्रा को कम करता है और ऑक्टेन नम्बर को बढ़ाने में मदद करता है। लेकिन सीसा रहित पेट्रोल से वायु प्रदूषण व पर्यावरण सम्बन्धी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। हवा में मौजूद सीसा सांस के जरिये हमारे शरीर में पहुँचकर दमा और अन्य श्वास सम्बन्धी रोगों को जन्म देता है तथा स्नायुतन्त्र को क्षति पहुँचाकर दिमागी बीमारियों का कारण बन सकता है। सीसे की ज्यादा मात्रा सुनने की शक्ति को भी प्रभावित करती है।

(शेष पृष्ठ 10 पर देखें)

डॉ० गोरख प्रसाद जन्मशती समारोह

(28-29 मार्च 1996)

गणित में रोचकता बढ़ाने पर जोर

इलाहाबाद, 28 मार्च। डॉ० गोरख प्रसाद जन्मशती समारोह के उपलक्ष्य में आयोजित दो दिवसीय संगोष्ठी का शुभारंभ आज जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के पूर्व प्रोफेसर और मेरठ विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति **डॉ० जे० एन० कपूर** द्वारा डॉ० गोरख प्रसाद के चित्र पर माल्यार्पण के साथ हुआ। गोष्ठी का आयोजन वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् तथा विज्ञान परिषद् के संयुक्त प्रयाससे किया गया है। आज की गोष्ठी के अध्यक्ष **प्रो० चन्द्रिका प्रसाद** थे। संगोष्ठी के मुख्य वक्ता **प्रो० जे० एन० कपूर** ने गणित के विविध आयामों पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि गणित के क्षेत्र में एक तरह की शून्यता आ गई है। उन्होंने कहा कि जो देश गणित की क्रीड़ास्थली रहा हो वहाँ गणित की पुस्तकों के लिए विदेशों पर निर्भर रहना पड़ रहा है, यह दुःख की बात है। उन्होंने कहा कि आज के गणित में बहुत कमियाँ हैं। यह छात्रों में रोचकता नहीं पैदा करता। यही कारण है कि गणित में शोध करने वाले तथा प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले को मूलभूत चीजें स्पष्ट नहीं होतीं। उन्होंने गणित के पाठ्यक्रम को प्रारम्भिक स्तर से ही रोचक बनाने पर जोर दिया ताकि छात्र उससे भावनात्मक स्तर पर जुड़ सकें। उन्होंने कहा कि आज के इस वैज्ञानिक युग में गणित की उपयोगिता न केवल विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में बल्कि अर्थशास्त्र, समाज विज्ञान आदि क्षेत्रों में भी है। प्रो० कपूर अब तक 80 पुस्तकों, 700 लेखों तथा 500 शोधपत्रों का प्रणयन कर चुकें हैं। वे कई देशों में विजिटिंग प्रोफेसर रह चुकें हैं। उन्हें कई राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है। उन्होंने कहा कि वित्त उद्योग, जनसंख्या आदि क्षेत्रों में गणित का सफल और सार्थक उपयोग किया जा सकता है तथा देश की चतुर्दिक प्रगति की जा सकती है।

संगोष्ठी के अन्तिम सत्र का संचालन कर रहे **प्रो० शिवगोपाल मिश्र** ने **डॉ० गोरख प्रसाद** को मूलतः खगोलविद् बताया। उन्होंने 1931 से लेकर 1962 के बीच खगोल शास्त्र पर हिन्दी में लिखी डॉ० गोरख प्रसाद की प्रमुख पुस्तकों-सौर परिवार, नीहारिकाएं, फ्रांटियर्स ऑफ एस्ट्रोनामी के हिन्दी अनुवाद आदि का उल्लेख किया। प्रो० मिश्र ने कहा कि डेढ़ सौ वर्षों में खगोलशास्त्र पर केवल 46 पुस्तकें लिखी गयीं हैं, जिसमें 6 अकेले डॉ० गोरख प्रसाद ने लिखी है। प्रो० मिश्र ने खगोल के क्षेत्र में इस तरह की उदासीनता पर दुःख व्यक्त किया।

"विज्ञान" पत्रिका के सम्पादक **प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव** ने वर्ष 1990 से 1995 तक के '**डॉ० गोरख प्रसाद विज्ञान लेखन पुरस्कारों**" की घोषणा की। प्रसिद्ध विज्ञान लेखक **शुकदेव प्रसाद** ने कहा कि डॉ० गोरख प्रसाद ने जिस क्षेत्र में व्यापक अनुसंधान किया है उस पर संगोष्ठी कराने की आवश्यकता है। उन्होंने डॉ० गोरख प्रसाद के नक्षत्र विज्ञान, गणित, ज्योतिष आदि में किये योगदान की विस्तृत चर्चा की।

संगोष्ठी के अध्यक्ष **प्रो० चन्द्रिका प्रसाद** ने अपने उद्बोधन में डॉ० गोरख प्रसाद को एक कुशल शिक्षक, समर्पित विज्ञान लेखक तथा बच्चों से स्नेह रखने वाला एवं उनके लिये खिलौना बनाने तथा कविताएं, फोटोग्राफी जैसे शौक रखने वाला मानवतावादी गणितज्ञ बताया।

प्रारम्भ में मुख्य अतिथि एवं अन्य अतिथियों ने डॉ० गोरख प्रसाद के चित्र पर माल्यार्पण किया एवं पुष्प चढ़ाए। "विज्ञान" के सम्पादक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने मुख्य अतिथि प्रो० कपूर को और डॉ० आर० के० दुबे ने डॉ० चन्द्रिका प्रसाद का माल्यार्पण द्वारा स्वागत किया।

संगोष्ठी ने प्रथम सत्र का संचालन विज्ञान परिषद के संयुक्त मंत्री **डॉ० दिनेश मणि** ने किया।

डॉ० गोरख प्रसाद की जन्मशती पर आयोजित इस संगोष्ठी में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के उस गणित विभाग के सदस्यों की भागीदारी नगण्य रही जिसके वह अध्यक्ष थे। विभाग के अवकाश प्राप्त प्रो० बनवारी लाल शर्मा और मात्र एक अन्य अध्यापक ही उपस्थित थे।

विज्ञान पत्रकारिता की समस्याओं पर चर्चा

वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली तथा विज्ञान परिषद् प्रयाग के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित डॉ० गोरख प्रसाद जन्मशती समारोह श्रृंखला में दूसरे दिन "विज्ञान लेखन व सम्पादन : समस्याएं एवं समाधान" विषय पर संगोष्ठी के मुख्य अतिथि थे नई दिल्ली के जाने-माने विज्ञान लेखक एवं संपादक डॉ० राम कृष्ण पराशर। सुप्रसिद्ध गणितज्ञ प्रो० चन्द्रिका प्रसाद ने संगोष्ठी की अध्यक्षता की।

संगोष्ठी के संयोजक **प्रो० शिवगोपाल मिश्र** नो "यह संगोष्ठी क्यों ?" बताते हुए कहा कि आज का हिन्दी विज्ञान लेखन एक असमंजस की स्थिति में है। वह कभी हिन्दी की वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली को कठिन बताता है तो कभी हिन्दी को वैज्ञानिक जानकारी सम्प्रेषित करने में अक्षम मानता है। जबकि वस्तुतः ऐसा नहीं है। लेखकों में आत्मविश्वास की कमी से ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है। द्वितीय वक्ता **डॉ० दिनेश मणि** ने हिन्दी में विज्ञान लेखन आवश्यकता एक सर्वस्वीकृत शब्दावली विषय पर कहा कि आज हमें अंग्रेज़ी, जर्मन, फ्रेंच तथा अन्य विदेशी एवं क्षेत्रीय भाषाओं के स्वीकृत शब्दों को अपनाने की आवश्यकता है। इसी प्रकार रासायनिक सूत्रों, रासायनिक तत्वों के नामों का हिन्दीकरण न किया, जाय तो अच्छा है। **श्री हरिमोहन मालवीय** ने विज्ञान को सरल तथा सुबोध भाषा में जन-जन तक पहुँचाने पर बल दिया। **डॉ० चन्द्र विजय चतुर्वेदी** ने प्राचीन भारतीय धार्मिक ग्रन्थों, यथा वेदों तथा उपनिषदों से वैज्ञानिक जानकारी ग्रहण करने तथा प्रचारित करने को कहा। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के **स्वामी डॉ० आत्मानन्द परमहंस** ने शुद्ध हिन्दी लिखने के लिए वर्तनी, व्याकरण इत्यादि के मूलभूत ज्ञान पर जोर दिया। **प्रो० बनवारी लाल शर्मा** ने विदेशियों द्वारा भारत में विज्ञान सम्बन्धी दुष्प्रचार से बचने के लिए लोगों को सावधानी बरतने को कहा। द्वितीय सत्र में 'अमृत प्रभात' के समाचार सम्पादक **श्री रामधनी द्विवेदी** ने दैनिक समाचार पत्रों में विज्ञान पत्रकारिता की समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए कहा कि आज भी अधिकांश समाचार पत्रों में राजनीतिक समाचारों की तुलना में वैज्ञानिक समाचारों को कम महत्व दिया जाता है जो कि उचित नहीं है। स्वतंत्र विज्ञान लेखन के निजी अनुभव बताते हुए कहा की विज्ञान लेखकों को विषय वस्तु की सही जानकारी होने पर ही उस विषय से सम्बन्धित लेखन करना चाहिए। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के **प्रो० आर० सी० तिवारी** ने लोक भाषा में विज्ञान को गाँव तक प्रचारित करने पर जोर दिया। **प्रो० शिवगोपाल मिश्र** ने पुरस्कारों के लिए मार्च में ही लेखकों द्वारा अधिकांश पुस्तकें लिखे जाने को हिन्दी में विज्ञान लेखन के लिए शोचनीय बताया। "विज्ञान" पत्रिका के सम्पादक **प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव** ने विज्ञान लेखन एवं संपादन के निजी अनुभवों को बताते हुए कहा कि किसी भी पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए आवश्यक है कि पत्रिका का आर्थिक पक्ष पुष्ट हो, उच्च स्तरीय लेख हों और पत्रिका नियमित रूप से प्रकाशित होती रहे।

"विज्ञान" पत्रिका के सामने ये तीनों समस्यायें आज भी बनी हुई हैं। उन्होंने लेखों पर समुचित मानदेय, पुरस्कार की राशि में वृद्धि का सुझाव दिया। **श्री विजय जी** ने ग्रामीण परिवेश में विज्ञान लेखन और पत्रकारिता से सम्बन्धित अपने अनुभव बताये। इसी प्रकार **डॉ० राजकुमार दुबे, डॉ० सुनील दत्त तिवारी** ने हिन्दी माध्यम से विज्ञान लेखन को नई दिशा देने के लिए युवा पीढ़ी को

रुचि लेने पर बल दिया। नई दिल्ली के **डॉ० नकुल पराशर** ने विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की पारिभाषिक शब्दावली के विकास की कहानी बतायी।

मुख्य अतिथि **डॉ० राम कृष्ण पराशर** ने विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी लेखन की प्रमुख विधाओं पर प्रकाश डालते हुए कहा कि आज भारत जैसे देश में विज्ञान के प्रचार प्रसार को व्यापक बनाने की अविलम्ब आवश्यकता है। उन्होंने विज्ञान परिषद् की इस संगोष्ठी के सफल आयोजन के लिए बधाई दी। अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में **प्रो० चन्द्रिका प्रसाद** ने कहा कि **डॉ० गोरख प्रसाद जी की जन्मशती** के अवसर पर यह एक सार्थक संगोष्ठी कही जायेगी। महान गणितज्ञ होने के साथ साथ डॉ० गोरख प्रसाद एक अच्छे विज्ञान लेखक एवं सम्पादक थे। उन्होंने बताया कि वे मेरे पिता भी थे और उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी कि वे अपने विचारों को कभी किसी पर थोपते नहीं थे।

अन्त में संगोष्ठी के संयोजक प्रो० शिवगोपाल मिश्र ने संगोष्ठी में भाग लेने वाले प्रतिभागियों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की। संगोष्ठी का संचालन "विज्ञान" के सहायक सम्पादक डॉ० दिनेश मणि ने किया। ■■

(पृष्ठ 24 का शेष भाग)

छोटे नगरों में कूड़े को साधारण तथा निम्न भू-भाग (गड्ढे) आदि में दफ्ना दिया जाता है। कहीं-कहीं कूड़े पर दुर्गन्धनाशक दवा छिड़क कर मिट्टी डाल दी जाती है। इसमें अधिक खर्च पड़ता है। कभी-कभी कूड़े के ढेर में आग लग जाने से परेशानी होती है। समुद्रतटीय नगरों में कूड़े को समुद्र में प्रवाहित कर दिया जाता है किन्तु इससे सागर प्रदूषण होता है।

कूड़े के निस्तारण के लिए उपर्युक्त सभी उपाय अवैज्ञानिक तथा व्यय युक्त है। अतः यूरोप और अमेरिका के बड़े नगरों में कूड़े में से उपयोगी सामग्री निकालकर शेष को जला दिया जाता है। अनेक स्थानों पर कूड़े को जला कर उससे प्राप्त उष्मा से इंजन चलाये जाते हैं। फलस्वरूप कूड़े की व्यवस्था में वहाँ अधिक खर्च नहीं पड़ता है। विभिन्न उपयोग हेतु खोदकर छोड़ी गयी पुरानी जगहों, गड्ढों और सूखे कुओं में जमा हुई गैस से दम घुटने या आग लगने की घटनायें आजकल आम हो गयी हैं। यह तो सभी जानते हैं कि इसके लिए मीथेन गैस उत्तरदायी है। मीथेन अत्यन्त ज्वलनशील गैस होती है। मीथेन बड़ी जल्दी भभकती है और दम घोंटू है, जबकि कार्बन डाइऑक्साइड आग तो नहीं पकड़ती मगर दम घोंटने में कोई कसर बाकी नहीं रखती। सूक्ष्मजीवों द्वारा जैविक सामग्री पर खमीर उठाने में जो क्रिया होती है, ठीक उसी तरह ये गैसें पैदा होती हैं, अतः यह स्पष्ट ही हो चुका है कि कचरे के प्रबन्ध में यह पक्ष भी काफी महत्वपूर्ण है जीवाश्म (फॉसिल) ईंधनों की बचत को ध्यान में रखते हुए पुराने विशाल गड्ढों के अन्दर पैदा हुई मीथेन गैस को ऊर्जा के स्रोत के रूप में इस्तेमाल करके लाभ उठाया जा सकता है। इस गैस से बिजली बनायी जा सकती है। साथ ही या इसके पूर्व गैस के इस्तेमाल के समय किसी भी तरह की सम्भावित दुर्घटना के बचाव जानना भी अत्यन्त आवश्यक है। ■■

पौध विषाणु विज्ञान : इतिहास के दर्पण में

❑ रवीन्द्र कुमार सिंह, राजा राम, डेजी चौहान एवं ए० ए० जैदी

वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् परिसर, पालमपुर, हि० प्र०

मानव को विषाणु रोगों का अनुभव और उनके द्वारा उत्पन्न लक्षणों का ज्ञान (स्वयं मनुष्य में तथा उसके पालतू जानवरों में) आदिकाल से था। इसे मानव ने देवी देवताओं के विभिन्न स्वरूप अथवा दैत्य-प्रकोप का कारण समझ कर इससे बचने के उपाय किये।

पौधों में विषाणुओं द्वारा उत्पन्न लक्षणों से सम्बन्धित सम्भवतः प्रथम सन्दर्भ 752 ईसवी में **राजा कोकेन** द्वारा रचित कविता में पाया जाता है। इस कविता में **यूपेटोरियम** की पीली पत्ती रोग तथा उसके लक्षणों का वर्णन मिलता है। डच चित्रकारों द्वारा सन् 1600-1662 ईसवी के मध्य ट्यूलिप पेटल ब्रेक डिज़ीज़ (ट्यूलिप के धारीदार पुष्प दल का रोग) के विभिन्न लक्षणों को भी उसी समय चित्रित किया गया। सत्रहवीं शताब्दी में हालैण्ड में **ट्यूलिप मोज़ैक वाइरस** द्वारा संक्रमित ट्यूलिप, पुष्प-उत्पादकों द्वारा अत्यन्त सराहा गया। हालैण्ड में उस समय इस प्रकार के संक्रमित शल्ककन्दों की बहुत अधिक माँग थी। कहा जाता है कि उस समय हालैण्ड में ट्यूलिप के एक शल्क कन्द (बल्ब) के बदले टनों अनाज, बैल, सूअर और हज़ारों प्रकार के अन्य सामान देने के लिए हालैण्डवासी तत्पर रहते थे। यद्यपि उस समय ट्यूलिप के दलों में उत्पन्न इन असामान्य लक्षणों के कारणों की जानकारी नहीं थी फिर भी कुछ पुष्प-उत्पादक इन असाधारण संक्रमित कंदों को दूसरे कन्दों में 'गूटी' बाँध कर प्राप्त करने की विद्या में निपुण थे। अन्ततः सन् 1926 ईसवी में इस तथ्य की जानकारी मिली कि ये लक्षण एक विषाणु द्वारा उत्पन्न होते हैं तथा इन विषाणुओं का संचरण संक्रमित पौधे के रस-प्रवेशन तथा कीट द्वारा स्थानान्तरण से होता है। 1692 ईसवी में चमेली के धारीदार पुष्प दलों वाले पौधों को गूटी बाँधने से स्वस्थ पौधों पर उत्पन्न लक्षणों का भी ज्ञान प्राप्त हुआ।

सन् 1879 ईसवी में डच कृषि संस्थान ने रसायनशास्त्री **श्री एडल्फ मेयर** से तम्बाकू की चित्तीदार बीमारी का अध्ययन करने का अनुरोध किया। 1883 में श्री मेयर के प्रयोगों से विदित हुआ कि उक्त रोग प्रसार स्वस्थ पौधों में रस-प्रवेशन द्वारा किया जा सकता है तथा यह रोग 'मोज़ैक' के नाम से प्रचलित हुआ। कुछ वर्षों पश्चात् **डिमट्री इवानोविस्की** ने सन् 1892 में तम्बाकू के दो रोगों पर कार्य किया तथा इन रोगों का वर्णन 'पाक्स' तथा 'मोज़ैक' नाम के रोगों से किया। डिमट्री की खोज का महत्वपूर्ण अंश यह था कि संक्रमित तम्बाकू के पौधों के रस को जीवाणुक छन्नी से यदि छाना जाये तब भी उस रस में संक्रमण की क्षमता विद्यमान रहती है। **मार्टिनस बीजेरिंक** (1892) ने सर्वप्रथम यह धारणा व्यक्त की कि यह रोगजनक रस 'संक्रामक जीवित द्रव्य' होता है और इसकी जनन-प्रक्रिया अन्तः कोशिकीय होती है। बीजेरिक ने इसे वाइरस (विषाणु) का नाम दिया।

हासिमोटो ने सन् 1894 और 1895 के मध्य धान के बौना रोग में धान में पाये जाने वाले लीफ हापर (कीट) की भूमिका पर शंका व्यक्त की। सन् 1900 में इस लीफ हापर की पहचान की गयी और सन् 1906 से 1908 के मध्य जापान के कुछ निश्चित क्षेत्रों में लीफ हापर द्वारा यह रोग संचरित होते हुए पाया गया। उसी समय

इस रोग वाहक के ज्ञान की पुष्टि हुई, जिसकी व्याख्या 1911 में की गयी। एक अन्य विषाणु **शुगर बीट कर्ली टाप** के वाहक लीफ हापर (यूटेटिक्स) की खोज सन् 1915 में **स्मिथ और बानकेट** द्वारा की गयी।

स्मिथ ने 1931 में विभिन्न पौधों का उपयोग कर विषाणुओं के अलग करने की क्रिया के द्वारा पौध विषाणु विज्ञान को महत्वपूर्ण आधार प्रदान किया तथा इन पौधों के उपयोग द्वारा आलू के **विषाणु एक्स और वाई** को अलग किया।

यद्यपि सन् 1900 और 1935 के मध्य विषाणु रोगों के लक्षणों पर अनेक अध्ययन और उनकी व्याख्या प्रस्तुत की गयी परन्तु इन विषाणुओं की प्रकृति से सम्बन्धित अध्ययन में नाम मात्र की उन्नति हो पायी। इस समय की सबसे सार्थक खोज स्थानिक क्षत लक्षण के आविष्कार के रूप में हुई जो **टोबैको मोज़ैक वाइरस** के संक्रमित पत्तियों के रस-प्रवेशन से तम्बाकू की पत्तियों पर उत्पन्न हुए थे। इस तथ्य का उपयोग संक्रमित पत्तियों में उपस्थित विषाणुओं की मात्रा-निर्धारण और परिमाणात्मक आमापन के रूप में हो रहा है। इस तथ्य के आधार पर **होम्स (1926) ने इस नियम का कि 'विषाणुओं द्वारा उत्पन्न स्थानिक क्षत की संख्या का सम्बन्ध प्रवेशित विषाणुओं की सान्द्रता पर निर्भर करता है का प्रतिपादन किया। यह विधि आज भी बहुत से पौध विषाणुओं के परिमाणात्मक आमापन के महत्वपूर्ण आधार है। इसी समय पुर्डी** (1929) के शोध आधार पर विषाणु द्वारा एन्टीबाडीज़ (प्रतिरक्षी) का स्तनधारियों में उत्पन्न होने का ज्ञान हुआ। **ग्रेटिया** (1933) के प्रयोगों से पता चला कि विभिन्न प्रकार के विषाणुओं द्वारा उत्पन्न एन्टीबाडीज़ में भिन्नता होती है, जिनके आधार पर अनेक सिरमीय अभिक्रियाओं में विषाणु प्रतिरक्षी का प्रयोग विषाणु विज्ञान के विकास में निःसन्देह मुख्य कार्य कर रहा है। इसका उपयोग विषाणुओं के निदानिक उद्देश्यों और परिमाणात्मक अध्ययन दोनों में बहुतायत रूप से हो रहा है। **स्टेनले** (1935) ने **टोबैको मोज़ैक वाइरस** का शुद्धिकरण किया तथा यह ज्ञात किया कि विषाणु का अभिलक्षणन और विलगन एक क्रिस्टलनीय प्रोटीन के रूप में होता है। स्टेनले ने विषाणु का स्वोत्प्रेरक प्रोटीन के रूप में वर्णन किया। यद्यपि उस समय आधुनिक पौध विषाणुओं के विभिन्न न्युक्लि ओप्रोटीन जैसी प्रकृति वाले इस अध्ययन को अधिक मान्यता नहीं मिल पायी थी, परन्तु दो वर्ष पश्चात् सन् 1937 में **बवेदन और पिरिए** के शोध ने संरचनात्मक विषाणु विज्ञान को आगे बढ़ाया, जिसके अनुसार **टोबैको मोज़ैक वाइरस** का निर्माण 65 प्रतिशत न्युक्लिक अम्ल और 5 प्रतिशत प्रोटीन द्वारा होता है। **बाडेन** ने 1935 में ही इसमें उपस्थित न्युक्लियो प्रोटीन तथा पेन्टीज शर्करा को प्रमाणित किया। सन् 1938 में **टोमैटो बुशी स्टंट वाइरस** के निर्मलीकरण के पश्चात् यह पाया गया कि न्युक्लिक अम्ल की मात्रा विभिन्न विषाणुओं में भिन्न-भिन्न होती है तथा टोमैटो बुशी स्टंट में यह मात्रा 18 प्रतिशत है। **बरनल तथा फनकुचेन** ने 1937 में 'एक्सरे' विधि द्वारा **टोबैको मोज़ैक वाइरस** की चौड़ाई मापी और उसके पैराक्रिस्टल का आकार बताया।

विषाणु विज्ञान 1950 तक केवल एक वर्णनात्मक विज्ञान के रूप तक सीमित था। सन् 1952 में **हरशे तथा चेज़** ने **बैक्टीरिया** के विकास में विषाणुविक प्रोटीन और न्युक्लिक अम्ल के अलग-अलग क्रिया-कलापों का प्रदर्शन किया जिसमें **इ० कोलाइ** को **कोलीफेज़ टी-2 द्वारा संक्रमिक किया गया था। इस प्रदर्शन से विषाणुक क्रियाकलाप के लिए डी एन ए के आनुवंशिक पदार्थ में विश्वास और दृढ़ हुआ।**

मरखम (1951) के प्रयोगों से न्युक्लिक अम्ल के प्रोटीन कवच के अन्दर पाया जाना सिद्ध हुआ। **हेरिस और नाइट** (1952) ने एन्ज़ाइम के द्वारा 7 प्रतिशत थिरियोनिन्न को विषाणु से निकाल कर पाया कि उसके पश्चात् विषाणुओं की संक्रामकता अप्रभावित रहती है। इसी समय **ग्वानिन** को इसके कृत्रिम एनालाग 8-एज़ाग्वानिन से बदला गया। इन सब कार्यों और **फ्रन्केल कोनरेट तथा विलियम्स** (1953) के प्रयोगों से नग्न आर एन ए की संक्रामक क्षमता का ज्ञान हुआ। विषाणु शोध के अगले चरण में विषाणु न्युक्लिक अम्ल की संक्रामकता की और पुष्टि हुई (**मरखम** 1953, **जिरर** और **स्कैम** 1956)। इसके आगे 20 वर्षों में विषाणुओं के रसायन तथा उनके संरचना से सम्बन्धित और भी अन्य महत्वपूर्ण कार्य हुए

। **फ्रन्केलकोनरेट** (1957) ने विविध श्रोतों से प्राप्त प्रोटीन और न्युक्लिक अम्ल का संश्लेषण कर विषाणु के पुनः संगठन के प्रयोगों का प्रदर्शन करके यह सिद्ध किया कि **टी एम वी** का आर एन ए संक्रामक होता है। **ग्रेगर और मुन्ड्री** (1958) ने 'इन विट्रो' दशाओं में **टी एम वी** के राइबोन्युक्लिक अम्ल की अदला-बदली करके उत्परिवर्तित विभेदों को उत्पादित किया तथा आनुवंशिक कोड के सत्यता की पुष्टि की।

विषाणु इतने सूक्ष्म होते हैं कि साधारण प्रकाश सूक्ष्मदर्शी से नहीं देखे जा सकते। विषाणु जीवाणुओं की भाँति 'इन विट्रो' विधि से परिष्कृत तथा पोषित भी किए जा सकते हैं। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी और द्रुत अपकेन्द्रित यन्त्रों के विकास ने विषाणुओं की आकारिकी तथा भौतिक-रासायनिक गुणों से परिचित होने में सहायता की.।

रोग वाहकों के क्षेत्र में अत्यन्त उपयोगी सूचनाएं, जैसे लीफ हापर के अण्डों द्वारा **राइस ड्वार्फ विषाणुओं** को पीढ़ी दर पीढ़ी संचरित होना (फ्कुशी 1940) तथा सूत्रकृमि (हेविट 1958) और कवक (ग्रोगन 1958) का विषाणु वाहक होना भी इसी समय ज्ञात हुई।

पौध विषाणु विज्ञान के आरम्भ में विषाणुओं की आकारिकी का ज्ञान सूक्ष्मदर्शी द्वारा करना असम्भव था.। उस समय उत्तकीय तथा कोशिकीय परिर्तनों को प्रकाश सूक्ष्मदर्शी की सहायता से देखा जाता था। विषाणुओं के आकार की अज्ञानता का कारण इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी का विकास न होना रहा। पौध विषाणु का प्रथम इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी चित्र **रस्का तथा उनके सहयोगियों** द्वारा विकसित 'मेटल शैडोयिंग तकनीक' से भिन्न थी। **ब्रेनर और हार्नी** (1959) ने निगेटिव स्टेनिंग के उपयोग से इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी विधियों में और भी विकास किया। विषाणुओं के शोध में तीव्रता एक और अन्य उपलब्धि-डेन्सिटी सेन्ट्रीफ्यूगेशन के विकास तथा उपयोग से आयी (**ब्रेके** 1951)। इसके द्वारा ही **लिस्टर** ने (1966, 1968) कुछ विषाणुओं, जैसे **टोबैको रिंग स्पॉट** में विषाणु जीनोम के दो कणों में विभाजन, प्रकृति तथा सैटेलाइट विषाणुओं का भी ज्ञान प्राप्त किया।

एन्डरर (1960) **ने टी एम वी** के कोट प्रोटीन के अमीनों अम्लों का अनुक्रमण किया जो प्रोटीन के कार्यों के पुष्टीकरण के लिए पर्याप्त सिद्ध हुआ।

विषाणुमुक्त पौधों के उत्पादन के क्षेत्र में 1952 में **मारेल और मार्टिन** ने सर्वप्रथम प्रयास किया। उतक-सम्वर्धन के द्वारा विभज्योतक सिरा का प्रयोग करते हुए इन वैज्ञानिकों ने संक्रमित पौधों से विषाणुमुक्त पौधे प्राप्त किये। उसके उपरान्त **कासानिस** (1954) ने ताप उपचार द्वारा विषाणु मुक्त पौधों के उत्पादन की प्रक्रिया को प्रदर्शित किया। इस प्रकार इन दोनों विधियों को अलग-अलग प्रयोग करके अथवा दोनों विधियों को एक साथ प्रयोग करके अनेक वानस्पतिक प्रवर्धित फसलों और बागवानी वाले पौधों के 'क्लोन' से विषाणुमुक्त पौधों को प्राप्त करने में इन विधियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है.।

कार्किंग (1966) तथा **टकेबे** और उनके सहयोगियों ने भी प्रोटोप्लास्ट का उपयोग विषणुओं के अध्ययन में किया।

सन् 1970 से 1980 के दशक में जो अविष्कार हुए उनमें से 'साइलेन्ट जीन्स' 'रीड थ्रू प्रोटीन्स', 'सब जीनोकिम' आर एन ए' से 'टी एम वी कोट प्रोटीन' का अनुवाद तथा आर एन ए आश्रित आर एन पॉलीमरेज' की खोज मुख्यतः अत्यन्त महत्वपूर्ण रही।

सन् 1986 से विषाणुओं का उपयोग जीन-वाहक के रूप में आरम्भ हुआ। इसके द्वारा **टी एम वी** आर एन ए के 3" सिरे से क्लोनित सी डी एन ए जो कि आवरण प्रोटीन के लिए केन्द्रित था, ट्रान्सजनिक पौधों का विकास किया गया तथा इन पौधों में **टी एम वी** के प्रति प्रतिरोधक क्षमता पायी गयी। इसके तीन वर्षों पश्चात् सन् 1986 में **टी एम वी** के एन्टीसेन्स राइबोन्युक्लिक अम्ल द्वारा ट्रान्सजीनी पौधों में रोग का निदान किया गया।

इस तथ्य के आधार पर जैव प्रौद्योगिक कम्पनियों ने अनेक कोट प्रोटीन द्वारा प्रेरित अवरोध का प्रयोग करते हुए जैविक रोगों के प्रति कम संवेदनशील ट्रांसजीनी पौधों का विकास किया गया है।

संरचनातमक जीव विज्ञान में विषाणुओं का उपयोग

थडॉट (1992) ने जैव अणुओं **टी एम वी** का प्रयोग कर एटामिक फोर्स माइक्रोस्कोप के अणुभागों का अंशाकन (केलीबरेशन) करने में किया। इसके साथ ही विषाणुओं का जिनकी खोज रोगकारक के रूप में हुआ करती थी, 1992 से रोग निवारक के रूप में परिवर्तित होना आरम्भ हो गया। **टी एम वी** के जीनोम का प्रयोग जैव स्रोत आनुवंशिक कार्पोरेशन, कैलिफोर्निया द्वारा सन् 1992-1993 में हीमोग्लोबिन के अवयवों को उत्पन्न तथा प्राप्त करने के लिए एक वाहक के रूप में किया। एड्स की एक प्रायोगिक औषधि 'टाइको सैन्थिन' तथा 'लैमाइलेज़' टीकाकरण एक माह पश्चात ट्रान्सजीनी पौधों से प्राप्त की गयी। इस 'जीन वेयर' पद्धति का इस्तेमाल नयी प्रोटीनों, क्रियाशील एन्ज़ाइमों तथा सेकेन्ड्री न्युक्लियोटाइड्स को उत्पन्न करने में किया जा सकता है।

पशुओं के रोगों जैसे खुरपका मुँहपका रोग के विषाणु के प्रति कोडित करने वाले एपीटोप के रूप में **लोबिया मोज़ैक विषाणु** का प्रयोग करने के लिए यू० के० की एक कृषि आनुवंशिक कम्पनी ने सुझाव दिया है कि **आर एन ए विषाणु** पर आधारित प्रोटीन का प्रयोग करते हुए लोबिया में कई पशु-वैक्सिनों का उत्पादन सम्भव है।

कृतज्ञता ज्ञापन

लेखक द्वय **प्रोफेसर अक्षय कुमार गुप्ता**, निदेशक एवं **डॉ० डी० मुखर्जी**, पुष्प विज्ञान विभागाध्यक्ष, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् परिसर, पालमपुर के आभारी है, जिनके सहयोग तथा उत्साहवर्धन के फलस्वरूप यह प्रपत्र तैयार हो सका और आवश्यक सुविधाओं का हम भोग कर सके। **डॉ० आर० डी० सिंह** के अमूल्य सुझावों के लिए और **श्रीमती रेणु सूद**, जिन्होंने इस प्रपत्र को टंकण करने में विशेष रुचि से सहयोग दिया, इन सब के प्रति हम सब आभार व्यक्त करते हैं।

संदर्भ

1. *आर० इ एफ मैथ्यूज,* 'प्लांट वाइरोलॉजी' 1991, अकादमिक प्रेस।
2. *जे डब्ल्यू डेविस,* 'मालीक्यूलर प्लान्ट वाइरोलॉजी' 1985, सी आर सी प्रेस।
3. *डी ग्रियर्सन एण्ड एस एन कवे,* 'प्लान्ट मीलक्यूलर बायोलाजी' 1988, *चैपमैन एण्ड हाल,* न्यूयार्क।

■■

21वीं शताब्दी का लेसर कंप्यूटर

अभी तक आपने कई कंप्यूटरों के बारे में पढ़ा होगा या सुना होगा। हाल ही में सुपर कंप्यूटर से भी कई गुना शक्तिशाली लेसर कंप्यूटर पर अमेरिकी वैज्ञानिकों ने शोध कार्य प्रारंभ कर दिया है। इस कंप्यूटर में सिलिकॉन चिप के स्थान पर गैलियम आर्सेनाइड चिप्स का प्रयोग किया जा रहा है। इलेक्ट्रॉन कण वाले चिप के स्थान पर प्रोटॉन कण व लेसर किरण से चलने वाले स्विच लगेंगे। इसे परिचालित करने में बिजली की आवश्यकता नहीं होगी बल्कि ये प्रकाश किरणों या लेसर किरणों से परिचालित होंगे। वर्तमान में सिलिकॉन चिप्स पर लाखों ट्रांजिस्टर का प्रयोग होता है जब कि प्रकाश या लेसर स्विच प्रयोग होने से करोड़ों ट्रांजिस्टरों का प्रयोग हो सकेगा। इस कंप्यूटर का आकार भी छोटा होगा जिसे कहीं भी सरलता से ले जाया जा सकेगा। इसमें बाइनरी (1, 0) प्रणाली की जगह बहु प्रणाली (0, 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 इत्यादि) का प्रयोग हो सकेगा। लेसर किरणों से हजारों संकेतों को भी एक साथ नियंत्रित किया जा सकेगा। वास्तव में यह कंप्यूटर, वर्तमान के सुपर कंप्यूटर से हर प्रकार से सुपर होगा। ('वैज्ञानिक' से साभार)

अकेसिया की विभिन्न जातियाँ एवं उनके उपयोग

❑ एन० के० बोहरा

शुष्क क्षेत्र वानिकी अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

भारतीय वानिकी का इतिहास बहुत पुराना एवं गौरवपूर्ण रहा है, परन्तु असंतुलित विकास, भोग विलासपूर्ण मानसिकता तथा स्वार्थ में अंधे होकर लोगों द्वारा वनों का अविवेकपूर्ण विनाश द्वारा यह गौरवपूर्ण इतिहास कलंकित हो रहा है। पूर्व में भारत में करीब 2 लाख प्रकार की प्रजातियाँ मिलती थीं जो वर्तमान में आधी से भी कम रह गई हैं। वनों का यह विनाश न केवल भारत में बल्कि सम्पूर्ण विश्व में हो रहा है, जिससे अनेक प्रजातियों की किस्में लुप्तप्राय हो चुकी हैं। आज के युग में वनों की लुप्त होती प्रजातियों को संरक्षण देने के साथ-साथ उपलब्ध प्रजातियों के संरक्षण की भी आवश्यकता है। इन अमूल्य धरोहरों की रक्षा हम सभी का कर्त्तव्य है।

प्रस्तुत लेख में **अकेसिया** की विभिन्न प्रजातियों एवं उनके उपयोग के बारे में जानकारी देने का संक्षिप्त प्रयाग किया गया है।

अकेसिया के नाम से लोग मुख्यतः 3-4 प्रजातियों को ही सामान्यतः जानते हैं - जैसे **अकेसिया सेनेगेल, अकेसिया निलोटिका, अकेसिया टोरटलीस** या फिर **अकेसिया कटेचू,** जबकि **अकेसिया** की 130 से भी अधिक प्रजातियाँ विश्व में पायी जाती है, इनमें से कई प्रजातियाँ भारत में भी पायी जाती हैं। **अकेसिया** की विभिन्न प्रजातियों का संक्षिप्त वर्णन एवं उनकी उपयोगिता इस प्रकार है :

1. अकेसिया केसिया- यह आरोही पादप हिमालय की तराई में 1200 मी० की उँचाई तक चिनाव से पूर्व की ओर असम तक पाया जाता है। ऐसी ही एक जाति **अकेसिया सूडो-इण्टसिया** अंडमान में मिलती है।

इसे हिन्दी में ऐला, मराठी में चिलार, तेलगू में कोरिटा, कोरिदम आदि नामों से भी जाना जाता है।

उपयोग : सिक्किम में लेपचा लोग साबुन से स्थान पर बाल धोने के लिए इसकी छाल का प्रयोग करते हैं।

2. अकेसिया कोंनसिना- यह एक काँटेदार आरोही झाड़ी है जो सर्वत्र मिलती है एवं भारत के उष्णकटिबंधीय जंगलों में विशेष रूप से दक्षिण में बहुतायत से मिलती है। इसे हिन्दी में कोची, रीठा, बंगाली में वनरीठा, मराठी में शिकेकाई, गुजराती में शिकाकाई, तेलगू में शीकाया, तमिल में शिकाई, कन्नड़ में सीगे, मलयालम में चीकाका आदि नामों से जाना जाता है।

उपयोग : इसकी फलियों का उपयोग सिर धोने के लिए किया जाताहै,इसके अतिरिक्त इसकी फलियों में 'सैपोनिन' की मात्रा 5% होती है जो उपयोगी है। उत्तरी बंगाल में इसका उपयोग मछलियों को मारने के लिए किया जाता है। इसकी नई पत्तियाँ खट्टी होती है एवं चटनी बनाने के काम आती हैं। इसकी छाल बंसी की डोरी रंगने के लिए इस्तेमाल की जाती है।

3. अकेसिया जैक्विमोण्टी - यह काँटेदार झाड़ी है, जिसके फूल मीठी गंध वाले होते हैं। यह पंजाब, राजस्थान एवं उत्तरी गुजरात के मैदानी भागों में तथा श्री लंका के शुष्क क्षेत्रों में पाई जाती है। यह गोंद देने वाले अकेशियाओं में से एक है। इसे राजस्थानी में बौली, गुल्ली, पंजाबी में

कीकर, बमूल आदि कहते हैं।

उपयोग : गोंद के अतिरिक्त, राजस्थान में इसकी छाल से चमड़ा बनाया जाता है जो भूरे या काले रंग का होता है। इसकी टहनियाँ पशुओं को खिलाई जाती हैं।

4. अकेसिया डिलबाटा- यह मूलतः तस्मानिया एवं दक्षिण आस्ट्रेलिया का एक चिरहरित वृक्ष है। हिमालय की पहाड़ियों पर भी यह शिमला, नैनीताल और अल्मोड़ा क्षेत्रों में पाया जाता है। इसमें जड़ीय कल्लों द्वारा पुनुरुत्पादन की अद्‌भुत क्षमता होती है। यह मुख्यतः **युकेलिप्टस** के वनों में इनके नीचे उगता है तथा भूमि को नाइट्रोजनयुक्त करता है।

उपयोग : इसका गोंद अच्छी किस्म का होता है जबकि लकड़ियाँ ईंधन के रूप में काम में ली जाती हैं। फ्रांस के दक्षिणी भागों में इस वृक्ष को इसके सुगंधित फूलों के लिए उगाया जाता है। विलायकों द्वारा निष्कर्षण से इनसे अच्छी प्रकार की मीमोसी सुगंध प्राप्त होती है।

5. अकेसिया डेकरेन्स- यह 12 मीटर ऊँचा एक चिरहरित वृक्ष है। भारत में नीलगिरि पर ये पेड़ दक्षिणी अफ्रीकी बीजों से उगाए गये हैं।

उपयोग : इनकी छाल में टैनिन होता है एवं फूलों में सुगंध होती है जो उपयोगी है।

6. अकेसिया पिकनैन्था- इसका मूल स्थान दक्षिण आस्ट्रेलिया है। भारत में इसकी खेती के प्रयोग नीलगिरि पर किये जा रहे हैं। यह अधिक सर्दी-गर्मी नहीं सह सकता है।

उपयोग : इस वृक्ष से मिलने वाला गोंद आस्ट्रेलियन गम कहलाता है। इसकी छाल में टैनिन की मात्रा 50% तक होती है।

7. अकेसिया पेन्नाटा- यह कंटीली आरोही झाड़ी प्रायः भारत के उन सभी स्थानों पर मिलती है जो बहुत सूखे नहीं है। इसे हिन्दी में ऐला, मराठी में शेम्बी, मलयालम में करींचा कहते हैं।

उपयोग : इसकी छाल में 9% टेनिन होता है तथा यह बम्बई में मछली पकड़ने के जालों को रंगने में काम आती है। इससे चमड़ा भी बनाया जाता है।

8. अकेसिया प्लैनिफ्रोस- इसे तमिल बबूल भी कहते हैं। यह दक्षिण भारत में सेलम, मदुराई, तिन्नेवेली एवं त्रावनकोर में तथा श्रीलंका में पाया जाता है। इसे तेलगू में गोडुंभ तुम्भा एवं तमिल में कोडइवेलम कहते हैं।

उपयोग : इसकी लकड़ी कड़ी एवं भारी होती है, यह खेती के औजार बनाने के काम आती है। यह अच्छा ईंधन भी है। इसकी फलियाँ गायों एवं बकरियों को खिलाई जाती हैं। इसमें टैनिन भी होता है।

9. अकेसिया फारनेसियाना- इसका मूल स्थान उष्णकटिबंधीय अमेरिका समझा जाता है। अब यह अधिकांश भारत एवं श्रीलंका में फैल गया है। दक्षिणी फ्रांस में इसकी खेती की जाती है। उत्तरी भारत में नदियों की बलुई मिट्टी में एवं पंजाब के शुष्क स्थानों पर यह अच्छी तरह उगता है एवं भू-क्षरण रोकने में सहायक है। यह वृक्ष तीसरे वर्ष से मुख्यतः नवम्बर से मार्च तक फूल देने लगता है।

उपयोग : इसके फूलों से सुगंध प्राप्त की जाती है। इसकी पकी फलियों में 23% टैनिन होता है व छाल भी चमड़ा पकाने के काम आती है। इससे गोंद भी प्राप्त किया जाता है। इसकी पत्तियों से चटनी बनाई जाती है। इसे खेतों में बाड़ लगाने के काम में भी लिया जाता है। इसके एक प्रौढ़ वृक्ष से एक मौसम में लगभग 1 किलो फूल मिलते हैं।

10. अकेसिया फेरूजीनिया- यह एक मंझले आकार का वृक्ष है जो गुजरात विदर्भ, आन्ध्र, डेकन, कोंकण, कर्नाटक, पश्चिमी घाट के पूर्वी ढ़लानों पर पाया जाता है। यह श्रीलंका के शुष्क वनों में भी मिलता है। इसे मराठी में पंधरा-खेरा, गुजराती में कैगु, तेलगू में अनसांद्रा, तमिल में वेलवेलम, कन्नड में बन्नी आदि नामों से भी जाना जाता है। यह कँटीले जंगलों में बिखरा हुआ उगता है।

उपयोग : इसे सावधानी से सुखोकर अच्छी लकड़ी

प्राप्त की जा सकती है, जिसे पहियों, खम्भों व कृषि औज़ारों के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। इसकी छाल और फलियाँ कषाय गुणयुक्त होती हैं। इस वृक्ष से गोंद भी मिलता है।

11. अकेसिया मेलानोक्सीलॉन- यह तस्मानिया और दक्षिणी आस्ट्रेलिया का एक विशाल चिरहरित वृक्ष है। इसे 1840 में नीलगिरि पर प्रवेशित किया गया था। वहाँ यह प्राकृतिक रूप से होता है जबकि उत्तर में नहीं होता है। भारत में इसकी ऊँचाई 24 मीटर तक हो जाती है।

उपयोग : इसकी लकड़ी गहरी भूरी एवं सुन्दर धब्बों वाली होती है, जिससे आस्ट्रेलिया में फर्नीचर, रेल डिब्बे आदि बनाये जाते हैं। नीलगिरि पर इसे मुख्यतः जलाने के काम में लेते हैं।

12. अकेसिया मोडेस्टा- यह 6-9 मीटर ऊँचा व 3-4 मीटर मोटा वृक्ष है जो मुख्यतः उप हिमालय तथा बाह हिमालय में जम्मू के आस-पास पाया जाता है। इसकी छाल खुरदरी व अनेक अनियमित दरारों वाली होती है।

उपयोग : इसकी लकड़ी का उपयोग कोल्हू, रहट, गाड़ियों के पहियों एवं कृषि औजारों में किया जाता है। इसे ईंधन के रूप में भी लिया जाता है। इससे थोड़ी मात्रा में पीला गोंद भी मिलता है। उत्तरी भारत में इसे औषधियों में एवं पंजाब में इसकी कोमल टहनियाँ दातून के रूप में काम में ली जाती हैं।

13. अकेसिया मोलिसिमा- इसका मूल स्थान दक्षिण आस्ट्रेलिया और तस्मानिया है। यह **अकेसिया डेकरेन्स** से मिलता जुलता है तथा केवल पर्णकों की आकृति के आधार पर विभेदित किया जा सकता है। यह दक्षिण अफ्रीका में उगाई जाने वाली महत्वपूर्ण प्रजाति है। भारत में यह नीलगिरि, पलनी व केरल के कुछ भागों में तथा श्रीलंका के पठारों पर पाई जाती है।

उपयोग : वाणिज्यिक रूप में वैटल की छाल का अधिकांश भाग इसी वृक्ष से प्राप्त किया जाता है। इससे चमड़ा पकाया जाता है। इसकी लकड़ी ईंधन में एवं गत्ता बनाने के काम में आती है।

14. अकेसिया ल्यूकोफ्लोइआ- यह एक मध्यम ऊँचाई का पर्णपाती वृक्ष है। यह वृक्ष मुख्यतः सूखे प्रदेशों में आमतौर पर पाया जाता है और पंजाब के मैदानों तथा प्रायद्वीप के सूखे जंगली क्षेत्रों में सभी जगह पाया जाता है। इसे हिन्दी में सफेद कीकर, बंगाली में सफेद बबूल, मराठी में हेबर, गुजराती में हारीबावल, तेलगू में तेल्लातुम्मा, तमिल में बेल्वायलम, कन्नड में विलीजाली एवं मलयालम में पट्टार्चयम कहते हैं। यह बंजर भूमि के लिए उपयोगी वृक्ष है।

उपयोग : इसकी लकड़ी मज़बूत, कठोर व दृढ़ होती है, जिसका उपयोग साधारणतः कृषि औज़ारों, तेल घानियों, बैलगाड़ियों, और उनके पहियों आदि में किया जाता है। इसे ईंधन के रूप में भी काम में लिया जाता है। इसकी छाल चर्मशोधन में काम आती है।

इसकी छाल को पानी में डालने के बाद पीटने पर रेशे निकलते हैं जिनसे मछली पकड़ने के जाल व रस्सियाँ बनाई जाती हैं। चीनी एवं ताड़ के रस से शराब बनाने में भी इसका उपयोग होता है।

इसकी गोंद देशी चिकित्सा में इस्तेमाल होती है। ताज़ी फलियाँ एवं बीज खाये जाते हैं। अकाल के दिनों में इसकी छाल पीसकर आटे में मिलाते हैं। साधारणतया इसकी फलियाँ पशुओं को खिलाई जाती है।

15. अकेसिया सुण्ड्रा- इसे पहले **अकेसिया कटेचू** की किस्म समझा जाता था परन्तु अब इसे अलग प्रजाति माना गया है। यह मध्यम आकार का वृक्ष है जो कोयम्बटूर, डेकन, कनारा, कोंकण, गुजरात और राजस्थान में मिलता है। यह पथरीली भूमि में, सूखे स्थानों पर पनपता हुआ मिलता है। इसे मराठी में लालखैर, तेलगु में सुंद्रा एवं व्यापारिक रूप में रेड कच कहते हैं।

उपयोग : इसकी लकड़ी कडियों, खम्भों एवं कृषि औज़ारों में काम आती है। बम्बई में इसका "रेड अबोनी" के व्यापारिक नाम से व्यापार होता है।

16. अकेसिया सूमा- यह मझले आकार का वृक्ष बंगाल, बिहार व भारतीय प्रायद्वीप के पश्चिमी भागों में

विशेषतः आर्द्र स्थानों में मिलता है । इसे बंगाली में सईकाँटा, मराठी में कमटिया, तेलगू में तुल्ल सुंद्रा व कन्नड में मुगाली के नाम से भी जाना जाता है ।

उपयोग : इसे ईंधन के रूप में काम में लिया जाता है । इसके अतिरिक्त इस वृक्ष की छाल का उपयोग रंगाई के लिए भी किया जाता है ।

17. अकेसिया लेंटीकुलेरिस- यह छोटा वृक्ष उप हिमालय क्षेत्र में कुमायूँ से सिक्किम तक पाया जाता है । यह भारतीय प्रायद्वीप के सूखे क्षेत्रों एवं श्रीलंका में भी मिलता है ।

उपयोग : लकड़ी का उपयोग बैलगाड़ी एवं कृषि औज़ारों में किया जाता है एवं कुछ मात्रा में गोंद भी प्राप्त किया जाता है ।

18. अकेसिया लेट्रोनम- यह छोटी कँटीली झाड़ी है.। इसे तमिल में करोडाई एवं तेलगू में पाकि तुम्मा भी कहते हैं । यह डेकन के सूखे भागों में आमतौर पर पाया जाता है ।

उपयोग : यह भू-क्षरण रोकने एवं छोटे पौधों को पशुओं से बचाने में भी उपयोगी है । इसकी लकड़ी ईंधन में एवं तम्बुओं के खूँटे बनाने के काम में ली जाती है ।

19. अकेसिया होलोसेरीशिया- यह मुख्यतः आस्ट्रेलिया, अफ्रीका एवं भारतीय उपमहाद्वीप में पायी जाने वाली मध्यम ऊँचाई वाली झाड़ी है । यह विशेष रूप से पथरीली, अम्लीय एवं कम उपजाऊ मिट्टी में अच्छी वृद्धि करता है ।

उपयोग : ईंधन के रूप में, चारे के रूप में एवं भू-क्षरण रोकने में यह उपयोगी है ।

20. अकेसिया अलविड़ा- मुख्यतः अफ्रीका एवं इजराइल के इस वृक्ष की ऊँचाई 20 मीटर तक हो सकती है । यह शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में आसानी से उगाया जा सकता है ।

उपयोग : इसका उपयोग मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ाने में, छाया करने में, बाड़ लगाने में, पत्तियों को चारे के रूप में एवं टैनिन तथा दवाइयों के रूप में भी किया जाता है ।

21. अकेसिया सियाल -यह मध्यम ऊँचाई का 9 से 10 मीटर ऊँचा वृक्ष मुख्यतः उत्तरी अफ्रीका, दक्षिण अफ्रीका, पश्चिमी सोमालिया, दक्षिण मिश्र की नीलघाटी एवं दक्षिणी जाम्बिया में पाया जाता है ।

उपयोग : इसकी लकड़ी ईंधन के रूप में, फल व पत्तियाँ चारे के रूप में तथा छाल टैनिन के रूप में काम आती है ।

22. अकेसिया कॉमबागी- यह 10-12 मीटर ऊँचाई का वृक्ष मुख्यतः पूर्वी, मध्य एवं पश्चिमी आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, परसियन गल्फ एवं भारत में पाया जाता है ।

उपयोग : जलाऊ लकड़ी के रूप में, चारकोल, बाड खम्भ, छोटे विभूषक वस्तुएँ बनाने में इसका उपयोग होता है ।

23. अकेसिया मिअर्नसाई- यह 25 मीटर तक लम्बाई वाला वृक्ष है जो आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, इण्डोनेशिया, भारत, श्रीलंका, दक्षिणी, मध्य एवं पूर्वी अफ्रीका और मध्य अमेरिका तक पाया जाता है । यह अम्लीय भूमि में भी जीवित रह सकता है ।

उपयोग : इसकी लकड़ी जलाने में, चारकोल के रूप में, पत्तियाँ हरी खाद के रूप में तथा छाल टैनिन के रूप में काम आती है । इसके अतिरिक्त यह मृदा अपरदन नियंत्रण में भी सहायक है ।

24. अकेसिया ब्राकिस्टोकिया- यह आस्ट्रेलिया के शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क भागों में पाई जाने वाली झाड़ी है । यह शुष्क पथरीली या बंजर क्षेत्रों में आसानी से उगती है.। इसे छाता मुलगा भी कहते हैं ।

उपयोग : इसकी लकड़ी कठोर, भारी एवं टिकाई होती है । लकड़ी जलाने में एवं विभूषक वस्तुएँ बनाने में, पत्तियाँ चारे के रूप में एवं बीज आदिवासियों द्वारा खाने के काम आते हैं ।

25. अकेसिया साइक्लोप्स- यह मुख्यतः आस्ट्रेलिया

के पश्चिमी भाग में प्रायः समुद्र के किनारे बालु-मिट्टी में एक सदाहरित 2-3 मीटर ऊँची झाड़ी के रूप में उगता है.।

उपयोग : इसकी उच्च गुणवत्ता की लकड़ी जलाने के काम में, पत्तियाँ चारे के रूप में तथा बीज एवं तेलीय डंठल जंगली जानवरों द्वारा खाये जाते हैं ।

26. अकेसिया टोरटीलिस- यह अफ्रीका, इजराइल एवं भारत में पाया जाने वाला वृक्ष है । यह 4-15 मीटर ऊँचा हो सकता है । इसे भारत में इजराइली बबूल के नाम से भी जाना जाता है । यह क्षारीय भूमि, बालु-मिट्टी एवं 12 माह सूखे रहने वाले स्थिर स्थानों पर भी तेजी से वृद्धि करता है ।

उपयोग : यह नत्रजन (नाइट्रोजन) स्थिर करने की क्षमता रखता है, साथ ही रेतीले टिब्बों के स्थिरीकरण में भी सहायक है । इसके अतिरिक्त इसकी लकड़ी जलाने में, पत्तियाँ व फलियाँ चारे के रूप में भी काम आती है.।

27. अकेसिया केटेचू- इसे खैर भी कहा जाता है । यह मुख्यतः भारत एवं वर्मा में मिलता है । यह मध्यम ऊँचाई वाला वृक्ष है । यह सभी प्रकार की मृदाओं (बलुई, बंजर, पथरीली, जलोद व काली मिट्टी) में उग सकता है ।

उपयोग : इसकी अंतकाष्ठ से कत्था बनाया जाता है । इसकी लकड़ी ईंधन व कोयले के लिए, पत्तियाँ चारे के रूप में व लकड़ी कृषि औजारों, बैलगाड़ी की धुरी व पहिये बनाने के काम आती है ।

28. अकेसिया एन्यूरा- यह आस्ट्रेलिया में मुख्यतः पाया जाता है । इसे मुलगा भी कहा जाता है । यह 10-15 मीटर ऊँचा वृक्ष है जो अम्लीय बालू या बलुई दुमट मृदाओं में हो सकता है ।

उपयोग : लकड़ी जलाने व चार्कोल में, बाड़ बनाने में तथा पत्तियाँ चारे के रूप में तथा छाया के लिए उपयोग में आते हैं ।

29. अकेसिया सेनेगल- यह मुख्यतः अफ्रीका (सेनेगल, सूडान) पाकिस्तान एवं भारत में पाया जाता है । भारत में यह दक्षिणी पंजाब, उत्तरी अरावली की पहाड़ियों और राजस्थान में मिलता है । यह प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जीवित रहने की क्षमता रखता है । इसे राजस्थान में "कूमट" कहते हैं ।

उपयोग : इससे व्यापारिक महत्व का उत्पाद "गम अरेबिक" प्राप्त होता है । इसके अतिरिक्त इसकी लकड़ी जलाने व बाड़ लगाने में, बीज सब्जियों के रूप में, पत्तियाँ चारे के रूप में काम आती है । गोंद व अन्य उत्पादों के अतिरिक्त यह कृषि वानिकी एवं बालू टिब्बा स्थिरीकरण करने में एक महत्वपूर्ण उपयोगी वृक्ष है । राजस्थान में एक प्रसिद्ध सब्जी "पचकूटा" में इसके बीज महत्वपूर्ण भाग होते है ।

30. अकेसिया निलोटिका- यह मुख्यतः दक्षिण व मध्य एवं पूर्वी अफ्रीका, सहेलियन अफ्रीका, पश्चिमी अफ्रीका व भारतीय उपमहाद्वीप में पाया जाने वाला 20 मीटर तक ऊँचाई वाला उपयोगी वृक्ष है । यह लवणीय एवं क्षारीय भूमि में भी उग सकता है ।

उपयोग : इसकी लकड़ी जलाने में, अनेक प्रकार के कृषि उपकरण बनाने के लिए, पत्तियाँ, फलियाँ चारे के रूप में, छाल से टैनिन एवं गोंद तथा कृषि वानिकी एवं मृदा स्थिरीकरण में उपयोग किया जाता है । यह एक औषधीय महत्व का भी वृक्ष है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि **अकेसिया** की अनेक प्रजातियाँ कई प्रकार के उपयोग में आती हैं । ■■

पुस्तक : **भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी,** *लेखक* : **शुकदेव प्रसाद,** *प्रकाशक* : **जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 62/2 बेरसराय, नई दिल्ली - 110016**

प्रथम संस्करण 1996, *मूल्य* : *रु०* 90, *पृष्ठ* 291

"भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी" जाने-माने विद्वान विज्ञान लेखक श्री शुकदेव प्रसाद की सद्य: प्रकाशित पुस्तक 291 पृष्ठों में भारत को विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से संबंधित ढेर सारी जानकारियाँ अपने कलेवर में समेटे हुए है । इतने कम पृष्ठों में नये-पुराने विज्ञान साहित्य को जिस खूबी से लेखक ने प्रस्तुत कियाहै वह नि:संदेह उनके कठिन परिश्रम, अध्यावसाय और कुशल लेखन-कला का परिचायक है ।

पुस्तक कालक्रम के अनुसार 4 खण्डों में विभक्त है यथा- प्राचीन भारत , मध्यभारत , ब्रिटिश भारत और अंतिम खण्ड आधुनिक भारत ।

प्रथम खण्ड में सैंधव सभ्यता में विज्ञान के उत्कर्ष, ज्यामिति की परिपाटी, भारतीय अंतर्राष्ट्रीय अंकों का विकास, गणित एवं खगोल विज्ञान के चरमोत्कर्ष, चिकित्सा विज्ञान का विकास, रसायन के विकास की परम्परा, प्रख्यात रसायनाचार्य नागार्जुन, महर्षि कणाद और उनका परमाणु दर्शन और प्राचीन भारत में धातु प्रयोग और धातु कर्म जैसे विषयों पर विस्तार से चर्चा की गई है ।

द्वितीय खण्ड में मध्यकालीन भारत में भारतीय विज्ञान को अंधयुग की संज्ञा दी गई है । इसके अतिरिक्त जयसिंह और उनकी वेधशालाओं तथा मुग़ल शासक जहाँगीर को प्रकृति विज्ञान का कुशल अध्येता बताया है.।

तृतीय खण्ड में भारतीय विज्ञान के पुनर्जागरण, ब्रिटिश काल की अनुसंधान समितियाँ, नेहरू का उदय और और भारतीय विज्ञान पर उनका प्रभाव, सी एस आई आर और देशव्यापी राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं की विस्तार से चर्चा की गई है ।

चतुर्थ खण्ड में राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिक नीति, विज्ञान की आयोजना और उनकी विसंगतियों, शिक्षा में विज्ञान, भारत में परमाणु अनुसंधान, भारत का अंतरिक्ष कार्यक्रम, भारत का रक्षा उपक्रम, पर्यावरण संरक्षण में व्यापक अभियान, महासागर विकास एवं अंटार्कटिक के अभियान, भारत में ऊर्जा परिदृश्य, कृषि में आत्मनिर्भरता और इलेक्ट्रॉनिकी के बढ़ते चरण विषय शामिल हैं ।

इस प्रकार सैंधव सभ्यता से लेकर भारत में विज्ञान की वर्तमान् स्थिति की प्रगति का लेखा-जोखा प्रस्तुत है । पुस्तक यह सिद्ध करती है कि प्राचीन भारत में विज्ञान अत्यधिक सम्मुन्नत था । विज्ञान संबंधी अनेक खोजें काफी पहले ही भारत में हो चुकी थीं । भाषा सरल और शैली रोचक है । चित्र विषय को समझने में सहायक हैं । कुछेक मुद्रण की त्रुटियाँ खटकतीं हैं । छपाई, मुद्रण, कवर संतोषप्रद कहा जा सकता है, किन्तु कागज़ और अच्छा होना चाहिए था.।

कुल मिलाकर पुस्तक सभी के लिए उपयोगी और संग्रहणीय है । लेखक, प्रकाशक और पुस्तक के प्रकाशन से जुड़े सभी व्यक्ति साधुवाद के पात्र हैं क्योंकि पुस्तक विज्ञान साहित्य की श्रीवृद्धि करती है ।

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय पाठकगण !

विलम्ब से ही सही, आपके हाथों में "विज्ञान" का पिछला जनवरी-मार्च 1996 अंक तो मिला ही होगा। येन केन प्रकारेण अंक निकल ही गया। किन्तु जब मैं स्वयं संतुष्ट नहीं था तो भला आपसे सन्तुष्ट होने की आशा कैसे कर सकता हूँ। त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

वर्तमान अंक के प्रकाशन में विलम्ब होने के कारण हमें अप्रैल-मई अंक एक साथ निकालना पड़ा। अंक समय से निकलते रहें इसके लिए हम प्रयासरत हैं।

पिछले दिनों विज्ञान परिषद् में सी० एस० आई० आर०, नई दिल्ली के आर्थिक सहयोग से दो दिवसीव 'डॉ० गोरख प्रसाद जन्मशती समारोह' सम्पन्न हुए। पहले दिन 28 मार्च को डॉ० गोरख प्रसाद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से संबंधित संगोष्ठी में अनेक व्याख्यान एवं आलेख प्रस्तुत किये गये और दूसरे दिन 29 मार्च को विज्ञान लेखन एवं सम्पादन से संबन्धित विषय पर व्याख्यान हुए एवं आलेख प्रस्तुत किये गये, जिसमें विद्वान प्रतिभागियों ने अपने विचार प्रस्तुत किये। इस संबंध में इसी अंक में अलग से एक रिपोर्ट भी प्रकाशित है।

'डॉ० आत्माराम स्मृति व्याख्यानमाला' की कड़ी में इस वर्ष का व्याख्यान 6 अप्रैल को इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग के अवकाशप्राप्त अध्यक्ष एवं अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के पुरावनस्पतिविद् प्रो० डी० डी० पंत ने दिया। व्याख्यान का विषय था- "भारत में विज्ञान की शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधानकर्ताओं की समस्याएं"।

डॉ० पंत ने अपने शोधपूर्ण एवं रोचक व्याख्यान का समापन करते हुए कहा—

"अनेक योग्य युवा एवं प्रौढ़ वैज्ञानिक अपनी योग्यता के अनुरूप शोधपद प्राप्त न होने एवं उचित स्थान पर चयन न होने पर निराशापूर्ण अवस्था में विदेशोन्मुख हो जातें हैं या विज्ञान को छोड़कर किसी अन्य व्यवसाय को या सरकारी नौकरी को अपनी जीविका का साधन बना लेते हैं। यह देश के सत्ताप्राप्त नीतिनिर्धारकों के मानसिक दिवालियेपन का द्योतक है तथा देश के दुर्भाग्य का कारण है। देश की योग्यता का निर्यात भी हमारे विज्ञान के अधःपतन का मूल कारण है।

अन्त में मैं इस सभा में उपस्थित वैज्ञानिकों से निवेदन करता हूँ कि हमारे विज्ञान तथा शिक्षा संस्थानों की समस्याएं इतनी गहन हैं और इनका स्तर इतना नीचे गिर गया है कि हमें इसके लिए देशभर में विचार गोष्ठियाँ आयोजित करनी चाहिए और इसके उपचार के उपाय सोचने चाहिए।"

डॉ० गोरख प्रसाद जन्मशती समारोह के अवसर पर ही वर्ष 1990 से 1995 तक के डॉ० गोरख प्रसाद विज्ञान लेखन पुरस्कारों की भी घोषणा कर दी गई। पुरस्कृत लेखकों को बहुत-बहुत बधाई। उनकी पुरस्कार की राशि और उनके प्रमाण-पत्र शीघ्र ही भेज दिये जायेंगे।

हमें खेद हैं कि अपरिहार्य कारणों से "ह्विटेकर पुरस्कार" की घोषणा अभी नहीं हो सकी है। हम इस दिशा में भी प्रयासरत हैं। हमें जैसे ही पुरस्कृत लेखकों के नामों की सूची प्राप्त हो जायेगी, घोषणा कर दी जायेगी।

22 अप्रैल को 'पृथ्वी दिवस' के अवसर पर एक स्थानीय स्तर की संगोष्ठी "धरती पर बढ़ता कचरा और निपटान की समस्या" विषय पर सम्पन्न हुई, जिसमें विद्वान वक्ताओं ने धरती पर बढ़ते कचरे पर चिंता व्यक्त की और निपटान के सुझाव भी दिये। इसी विषय पर एक अखिल भारतीय स्तर की एक द्विदिवसीय संगोष्ठी करने का भी हम प्रयास कर रहें हैं और आर्थिक स्रोत की तलाश में

हैं। हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर हम यह संगोष्ठी आयोजित करने में सफल हो जायेंगे । नागपुर, दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, वाराणसी, जोधपुर, रोहतक और अन्य स्थानों के पर्यावरणविद् इस संगोष्ठी में भाग लेंगे ।

पर इस बीच सभी कुछ अच्छा अच्छा ही नहीं रहा। एक दुःखद समाचार भी है । इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के अवकाशप्राप्त अध्यक्ष डॉ० राम दास तिवारी का 18 मार्च को निधन हो गया । स्व० डॉ० तिवारी लगभग पिछले 45 वर्षों से परिषद् से जुड़े हुए थे और "विज्ञान" के सम्पादक से लेकर उपसभापति पद को सुशोभित कर चुके थे । उनके निधन से जहाँ परिषद् ने अपना एक हितैषी खो दिया वहीं देश ने एक उच्चस्तरीय अंतर्राष्ट्रीय ख्याति का रसायनविद् भी खो दिया । डॉ० तिवारी राजभाषा हिन्दी के प्रबल पक्षधर थे । उन्हें विज्ञान परिषद् परिवार की भावभीनी श्रद्धान्जलि अर्पित है ।

शेष फिर,

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

शोक-प्रस्ताव

प्रो० राम दास तिवारी का निधन

'विज्ञान परिषद् प्रयाग' के अंतरंगियों की यह आकस्मिक शोक सभा विज्ञान परिषद् के पूर्व सभापति, उपसभापति, सम्पादक 'विज्ञान', अवकाशप्राप्त अध्यक्ष रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रो० रामदास तिवारी के निधन पर हार्दिक शोक व्यक्त करती है और ईश्वर से प्रार्थना करती है कि वे दिवंगत आत्मा को स्वर्ग में शांति प्रदान करें तथा शोकसंतप्त परिवारजनों को यह दुःखभार वहन करने की शक्ति दें । सभा में उपस्थित विद्वत्जनों ने स्वर्गीय डॉ० तिवारी के सद्गुणों का उल्लेख करते हुए कहा कि जहाँ डॉ० तिवारी एक अंतर्राष्ट्रीय स्तर के रसायन-विज्ञानी थे, वहीं वे एक महानुभाव भी थे । वे अपने सहयोगियों और विद्यार्थियों की सहायता के लिए सदैव तत्पर रहते थे ।

विज्ञान परिषद् प्रयाग से तो उनका अति निकट का संबंध था । परिषद् द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में वे न केवल सक्रिय भाग लेते थे वरन् अपने कुशल निर्देशन से आयोजनों को सफल भी बनाते थे । चाहे भवन निर्माण की बात हो, या राष्ट्रीय विज्ञान संगोष्ठियों का आयोजन अथवा स्मृति व्याख्यानमालाओं का आयोजन, अथवा पुस्तक लेखन या 'अनुसंधान पत्रिका' अथवा 'विज्ञान' पत्रिका का सम्पादन, सभी में उनकी भूमिका सदैव प्रशंसनीय रहती थी ।

उन्हें जीवन में अनेक पुरस्कार मिले, किन्तु वे इन सबसे बहुत ऊपर थे । डॉ० तिवारी के निधन से देश में जहाँ एक ओर एक प्रख्यात वैज्ञानिक खो दिया वहीं, विश्वविद्यालय ने एक कुशल अध्यापक और प्रशासक भी खो दिया । विज्ञान परिषद प्रयाग ने तो अपना एक हितचिंतक ही खो दिया ।

विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा आयोजित अखिल भारतीय

विज्ञान लेख प्रतियोगिता 1996

व्हिटेकर पुरस्कार

दो सर्वश्रेष्ठ लेखों को पाँच-पाँच सौ रुपयों के दो पुरस्कार

शर्तें

1. लेख विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए ।
2. केवल प्रकाशित लेखों पर ही विचार किया जायेगा ।
3. लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है ।
4. प्रकाशन की अवधि जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है ।
5. इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख जनवरी 1996 से दिसम्बर 1996 माह के बीच प्रकाशित हुआ हो ।
6. लेखक को लेख के साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख मौलिक है ।
7. विज्ञान परिषद् से सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते ।
8. वर्ष 1996 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 15 मार्च 1997 है ।
9. पुरस्कार के लिए पक्ष प्रचार करने वाले प्रतिभागियों को इस प्रतियोगिता के लिए उपयुक्त नहीं समझा जायेगा ।

लेख निम्न पते पर भेजें—

सम्पादक 'विज्ञान',
विज्ञान परिषद्,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

प्रकाशक	*सम्पादक*	*मुद्रक*	*सम्पर्क*
डॉ० डी० डी० नौटियाल	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	अरुण राय	विज्ञान परिषद्
प्रधानमंत्री	*सहायक संपादक*	प्रसाद मुद्रणालय	महर्षि दयानन्द मार्ग
विज्ञान परिषद् प्रयाग	डॉ० दिनेश मणि	7 बेली एवेन्यू, इलाहाबाद	इलाहाबाद

उत्तर-प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आँध्र प्रदेश
के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामायिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र यदि किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिंतनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्नस्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु पुस्तक अथवा पत्रिका की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

मूल्य :
आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत : 500 रु० संस्थागत, **त्रिवार्षिक** : 60 रु० : **वार्षिक** 25 रु०
प्रति अंक : 3 रु० 50 पैसे, यह अंक : 7 रु०

प्रेषक : विज्ञान परिषद् प्रयाग,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद -211002

ISSN : 0373 - 1200
जून 1996

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913 : विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

जून 1996 : वर्ष 82 अं क3 मूल्य : यह अं क: 3 रु० 50 पै से

आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत : 500 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 60 रु०, वार्षिक 25 रु० एक प्रति : 3 रु० 50 पैसे

विज्ञान विस्तार

विज्ञान वक्तव्य— प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ... 1

चदरिया झीनी रे झीनी— रतन लाल मेहरा एवं दीपक कोहली ... 2

सहजन : एक बहुउपयोगी वृक्ष— दर्शनानन्द ... 4

डी० एन० फिंगर प्रिन्टिंग— महेन्द्र कुमार सिंह ... 8

गणित और दर्शन के पाश्चात्य संगम के प्रतीक— योगेन्द्र बहादुर सिंह ... 10

यूँ करें फल एवं सब्जियों का संरक्षण—
श्रीमती नलिनी जोशी, श्रीमती कुसुमलता पाण्डे, एवं डॉ० नरेन्द्र कुमार ... 13

रांगा : इतिहास के झरोखे— डॉ० विजय कुमार उपाध्याय ... 16

पर्यावरण को सुगंधित करें (विज्ञान कविता)— दिलीप भाटिया ... 18

सुदूर संवेदक अर्थात् अनूठी ऑखें—ज्ञानेन्द्र सिंह ... 19

■ ■ ■

विज्ञान वक्तव्य

'विज्ञान' का जून 1996 आपके हाथों में है । अप्रैल-मई अंक और जून अंक देखने के बाद मुझे विश्वास है कि आप भी अब आशा करने लगे होंगे कि 'विज्ञान' समयबद्ध और नियमित प्रकाशन की ओर अग्रसर है ।

आमतौर से 5 जून को सारे संसार में विश्व 'पर्यावरण दिवस' के रूप में मनाये जाने के कारण हम जून अंक में पर्यावरण से संबंधित सामग्री देते हैं पर इस बार यह अंक आम अंकों की तरह से ही है । पर्यावरण पर विशेषांक निकालने का हमारा प्रयास किसी और अंक के माध्यम से फलीभूत होगा । वैसे 5 जून को विज्ञान परिषद् में हमने पर्यावरण पर एक संगोष्ठी कराई भी है।

इस बीच विज्ञान संबंधी कुछ रोचक और युगांतकारी खोजें भी सामने आई । इनकी ओर आपका भी ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा ।

लॉस एंजलीस से प्राप्त कर ताज़े समाचार के अनुसार एक 7 वर्षीय बालिका, जो हँस नहीं सकती थी, के गालों का ऑपरेशन करके डॉक्टरों ने बालिका को नया जीवन दिया है । इस बात की संभावना अब बलवती हो गई है कि यह बालिका अब हँस सकेगी ।

कहते हैं यह बालिका जन्म के समय एक ऐसे रोग से ग्रसित थी, जिसके कारण वह हँस नहीं सकती थी । इसे चिकित्सा विज्ञान की भाषा में 'मीबियस सिंड्रोम' कहते हैं । जन्म के समय इस बच्ची के चेहरे में 'क्रैनियल नर्व' नहीं था और इसी कारण वह मांसपेशियाँ काम नहीं कर पातीं जिससे चेहरे पर मुस्कुराहट या हँसी के लक्षण दिखते हैं । और तो और कुछ शब्दों के उच्चारण में भी कठिनाई होती है ।

ऑपरेशन के दौरान चिकित्सकों ने किया यह कि उन्होंने बालिका की जांघों से 'नर्व' निकाल कर उसके बायें और दायें गालों में 'ट्रांसप्लांट' कर दिया । बायें गाल पर पहला आपरेशन पिछले दिसंबर माह में हुआ था और दायें गाल का आपरेशन अप्रैल के अंत में हुआ । चिकित्सकों को पूरा विश्वास है कि बालिका अब हँस सकेगी ।

आप सभी इस तथ्य से अवश्य परिचित होंगें कि मनुष्य के अतिरिक्त किसी भी जानवर में हँसने की नैसर्गिक क्षमता नहीं होती । यहाँ एक प्रश्न उठता है कि क्या कभी चिकित्सा विज्ञानियों को जानवरों को भी, किसी प्रकार के विशेष ऑपरेशन के द्वारा, हँसी या मुस्कुराहट देने में सफलता मिलेगी ?

विज्ञान की एक और उपलब्धि । लंदन के दैनिक समाचारपत्र 'टेलीग्राफ' के अनुसार जेनेटिक इंजीनियरी के क्षेत्र में वैज्ञानिकों ने कमाल ही कर दिया है ।

नॉटिंघम यूनिवर्सिटी के **डॉ० ग्रियर्सन,** जो पादप कार्यकी के प्रोफेसर हैं, ने अपने दल के वैज्ञानिकों के साथ 25 ऐसे 'जीनों' (Genes) को खोज निकाला है, जो फलों के पकने, रूप-रंग आदि से संबंधित हैं । इस खोज के परिणाम दूरगामी होंगे । फलों की खेती में इससे क्रांति ही आ जायेगी । इन फलों में पादप रोगों से लड़ने की क्षमता होगी । इनमें विटामिनों की मात्रा अधिक होगी । एक फल के विटामिन को दूसरे फल में प्रवेश कराया जा सकेगा । इनकी खेती में कम उर्वरक प्रयुक्त होगें और फ़सल शीघ्र तैयार होगी । इस प्रकार यदि आपको बाज़ारों में लाल केले, नीले सेब, पीले टमाटर मिलने लगें तो आश्चर्य क्या।

मुझे विश्वास ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आने वाले समय में अनेक ऐसी वैज्ञानिक खोजें की जा सकेंगी जो मानवता के हित में होंगी ।

शेष अगले अंक में ।

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

चदरिया झीनी रे झीनी

❑ रतन लाल मेहरा एवं दीपक कोहली

बीरबल साहनी पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान,
53, विश्वविद्यालय मार्ग, लखनऊ-226007

हमारा वायुमंडल गैसों, ठोसों एवं द्रव कणों से निर्मित है जो पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुआ है। यह स्थल एवं जलमंडल की ही भांति पृथ्वी का एक अंग है। वायुमंडल एक ऐसा आवरण है जो दिन में तो सूर्य की प्रखरता से रक्षा करता है तथा दूसरी ओर रात को पृथ्वी को अत्यधिक ठंडी होने से बचाता है।

वायुमंडल में 99% भाग नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, आर्गन और कार्बन डाइऑक्साइड जैसी गैसों का है और अन्य गैसों में निआन, हीलियम, मीथेन, क्रिप्टॉन, हाइड्रोजन, नाइट्रस ऑक्साइड और जीनोन का अल्प प्रतिशत है।

वायुमंडल को मुख्यतः चार परतों में विभाजित किया गया है : (प्रथम) क्षोममंडल, (द्वितीय) समताप मंडल, (तृतीय) मध्यमंडल एवं (चतुर्थ) तापमंडल।

इनमें क्षोभमंडल वायुमंडल की सबसे निचली परत है। वायुमंडल के कुल परिणाम का तीन चौथाई भाग क्षोभमंडल पर निर्भर करता है। इस मंडल में ऊँचाई के साथ-साथ तापमान में कमी आती जाती है।

समताप मंडल में ऊँचाई के साथ तापमान में बहुत कम परिवर्तन होता है। इसकी मोटाई अधिकतर ध्रुवों पर होती है जबकि विषुवत रेखा पर इसका अस्तित्व कभी-कभी होता भी नहीं है।

मध्यमंडल में पहले तो तापमान बढ़ता है परन्तु बाद में पुनः कम होता जाता है। तापमंडल में तापमान 1700° सें० ग्रे० तक पहुँच ज़ाता है और इसकी कोई निश्चित सीमा नहीं होती।

समताप मंडल में ही ओज़ोन से परिपूर्ण एक ओज़ोन परत है जिसे ओज़ोन मंडल की संज्ञा दी गयी है। यह ओज़ोन मंडल पृथ्वी से 20-25 किलोमीटर की ऊँचाई पर सर्वाधिक है और लगभग 75 किलोमीटर की ऊँचाई पर यह न के बराबर हो जाता है।

जब सूर्य की पराबैंगनी विकिरणें वायुमंडल में ऑक्सीजन के साथ क्रिया करती हैं तो प्रकाश विघटन के कारण ओज़ोन की उत्पत्ति होती है और यही ओज़ोन की परत सूर्य की पराबैंगनी विकिरणों को अवशोषित कर जीवजगत की इन घातक विकिरणों से रक्षा करती है।

प्राणवायु (ऑक्सीजन) अपने तीन परमाणुओं से मिलकर ओजोन गैस बनाती है। जिसकी थोड़ी सी मात्रा भी प्राणी के लिये मृत्यु का आमंत्रण होती है। परन्तु यह जीवजगत के लिये हर्ष का विषय भी है कि यह समताप मंडल में एक छतरी का कार्य करती है जो कि पूरे जैवमंडल के लिये ओज़ोन का सुरक्षा कवच कहलाता है।

मानव ने अपनी सुविधा के लिये विश्व में विज्ञान की सहायता से नये-नये आविष्कार किये। उन आविष्कारों की वजह से औद्योगिकीकरण को बढ़ावा मिला। उन्हीं आविष्कारों से मोटरों, तापबिजलीघरों, रेलगाड़ियों, उद्योगों तथा वायुयानों का जन्म हुआ। इन सबसे भारी मात्रा में नाइट्रिक ऑक्साइड, हाइड्रोकार्बन के यौगिक,

कार्बन डाइऑक्साइड एवं कार्बन मोनोऑक्साइड का निर्माण होता है। ओजोन गैस सभी के साथ शीघ्र क्रिया करती है। नाट्रिक ऑक्साइड सूर्य की किरणों के साथ क्रिया करके ऑक्सीजन को ओजोन में बदल देती है तथा उच्च वोल्टता ट्रांसफार्मर ऑक्सीजन को सीधे ओजोन में बदल देते हैं। इससे भी ऑक्सीजन की कमी होती है। कार्बन डाइऑक्साइड एवं कार्बन मोनोऑक्साइड के कारण भी ओजोन मंडल में ऑक्सीजन की कमी होती है। अधिक ऊँचाई पर उड़ने वाले सुपरसोनिक विमान अपने इंज़न से इतनी गर्मी उत्पन्न करते हैं कि इनके द्वारा छोड़ी गई नाइट्रोजन ऑक्साइड ओजोन को नष्ट करती है एवं ओजोन की चादर (परत) झीनी होने लगती है।

मानव ने अपनी सुविधाओं के लिये रैफ्रीजिरेटर तथा एअरकंडीशनर का भी आविष्कार किया। इन दोनों तकनीकों में जो शीतलक काम आते हैं उन्हें क्लोरोफ्लोरोकार्बन कहते हैं। ये फ्लोरीन एवं कार्बन के गौगिक होते हैं।

प्रारम्भ में इन रसायनों का अन्धाधुन्ध प्रयोग किया गया। परन्तु वैज्ञानिक सदैव इसके वायुमंडल पर प्रभाव के विषय में विचार करते रहे।

सन् 1972 में अमेरिकी वैज्ञानिक **रोलैंड** ने परीक्षणों द्वारा ज्ञात किया कि उत्तरी व दक्षिणी गोलार्द्धों के वायुमंडल में क्लोरोफ्लोरोकार्बन के कण पाये गए हैं। इसी के साथ-साथ प्रयोगों द्वारा यह भी सिद्ध हो गया कि ये क्लोरोफ्लोरोकार्बन अंटार्कटिका के ऊपर ओजोन परत को झीनी कर रहे हैं। क्लोरोफ्लोरोकार्बन अणु निष्क्रिय होने के साथ-साथ स्थायी भी होते हैं जो कि सैकड़ों वर्षों तक वायुमंडल में उपस्थित रह सकते हैं। ये अणु पराबैंगनी विकिरणों से क्रिया करके क्लोरीन मुक्त करते हैं जो ओजोन को ऑक्सीजन में विघटनित कर देते हैं एवं क्लोरीन के ऑक्साइड बनते हैं। यह क्लोरीन ऑक्साइड पुनः एक मुक्त ऑक्सीजन परमाणु के साथ मिलकर ऑक्सीजन और एक क्लोरीन परमाणु बना देते हैं तथा वह क्रम इसी प्रकार चलता रहता है। वैज्ञानिक रोलैंड के अनुसार एक क्लोरीन परमाणु ओजोन के लगभग एक लाख अणुओं को नष्ट कर सकता है।

जब से दक्षिण ध्रुव स्थित अंटार्कटिका में ओजोन परत में छिद्र का पता चला है, वैज्ञानिक पृथ्वी के पर्यावरण को लेकर चिंतित हो गए हैं क्योंकि ओजोन की यह परत पृथ्वी का रक्षा-कवच है।

अमेरिका के सभी राज्यों, कनाडा, पश्चिमी यूरोप, रूस, चीन और जापान के ऊपर ओज़ोन की परत 3 प्रतिशत झीनी हो गई है। अलास्का तथा स्कैण्डीनेविया में इसका ह्रास 6 प्रतिशत है। ओजोन परत के एक प्रतिशत ह्रास से त्वचा कैंसर एवं आँख व त्वचा के ट्यूमर में 5 से 7 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त ऊतक वर्धन, थकावट व मानसिक विकार, फेफड़ों, हृदय एवं आँखों के रोग भी इसी का परिणाम हैं।

पराबैंगनी किरणों की मार फ़सलों को भी नुकसान पहुँचाती है। अधिक विकिरणों के कारण पौधों में प्रकाश संश्लेषण दर में परिवर्तन, भूमंडल के तापमान एवं वर्षा की दशाओं में परिवर्तन आदि आ जाते हैं। इस प्रकार आँधी, तूफान और बवण्डर आने की आशंका बनी रहती है। ओजोन की परत झीनी होने से वायुमंडल में होने वाले परिवर्तनों से पृथ्वी का तापमान निरंतर बढ़ रहा है जिसे 'ग्रीन हाऊस प्रभाव' कहते हैं। अगर तापमान इसी तरह बढ़ता रहा तो आने वाले समय में पृथ्वी के मौसम में कई बदलाव आ सकते हैं; यथा रेगिस्तान और उपजाऊ क्षेत्र अपनी जगह से खिसकर कहीं और पहुँच जायेंगे, समुद्र तल ऊँचा हो जायेगा, जिसके कारण पूर्वी एवं खाड़ी के समुद्र तटों पर बाढ़ आ सकती है। आधा बम्बई समुद्र निमग्न हो जायेगा और साथ में डूबेंगे एक तिहाई फ्लोरिडा नगर (अमेरिका), पूरा पर्थ (आस्ट्रेलिया), नीदरलैण्ड के कुछ भाग और बहुत से समुद्रतटीय प्रदेश। तापमान बढ़ने से हो सकता है कि कनाडा की भूमि सोवियत संघ से अधिक उपजाऊ हो जाये और मध्य पश्चिम क्षेत्र में धूलि ही बचे जिसके कारण लोगों को अपनी अजीविका के लिये उत्तरी क्षेत्रों में जाना पड़े।

अतः समय रहते हमें ओज़ोन परत के झीनी होने की समस्या के प्रति सचेत हो जाना चाहिए। ■■

सहजन : एक बहुउपयोगी वृक्ष

❑ दर्शनानन्द

उपनिदेशक उद्यान, इलाहाबाद मण्डल

सी० 67, गुरू तेग बहादुर नगर, इलाहाबाद

सहजन भारत (मालाबार) का देशज है । यह दक्षिण केलिफोर्निया और संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिणी भागों में उगता है । अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका तथा एशिया के उष्ण (ट्रॉपिकल) और उपोष्ण (सब-ट्रॉपिकल) क्षेत्रों में भी सहजन उगता है ।

सहजन के वृक्ष हिमालय की तलहटी में चिनाव नदी से अवध क्षेत्र तक उगते हुए पाये जाते हैं । फिर भी भारत के सम्पूर्ण भाग में, विशेष कर मैदानी क्षेत्रों में, सहजन का उत्पादन व्यापक स्तर पर किया जाता है । दक्षिणी भारत में सहजन के वृक्ष घर-घर लगाये जाते हैं । उत्तरी भारत में भी विशेष कर उत्तर प्रदेश में ये खूब लगाये जाते हैं । इलाहाबाद, प्रतापगढ़, वाराणसी, कानपुर, रायबरेली, सहारनपुर आदि जनपद इनमें प्रमुख हैं, जहाँ सहजन के वृक्ष उगाये जाते हैं ।

सहजन का वृक्ष बहुत ही सहिष्णु होता है । यह सूखे और नम दोनों ही वातावरण में फूलता-फलता है । यह कम उपजाऊ तथा किसी भी प्रकार की मिट्टी में पैदा हो सकता है । किन्तु उसरही और दलदली भूमि में नहीं लगाना चाहिए । फिर भी अच्छे जलनिकास वाली बलुई दोमट मिट्टी सहजन के लिए सबसे अच्छी होती है । इसमें कोई विशेष देखभाल की आवश्यकता नहीं होती ।

सहजन के पौधे का प्रसारण इसकी डंठले गाड़ कर तथा बीज से भी करते हैं । इसके वृक्ष खाली, परती भूमि में, सड़कों के किनारे, रेल की पटरियों के किनारे, नहरों के किनारे, बाग-बगीचों में, गाँवों के चरागाहों में, गृह वाटिकाओं में, मधु-उत्पादन वाले क्षेत्रों में, मलिन बस्तियों में तथा झोपड़-पट्टियों में बड़ी सरलतापूर्वक लगा सकते हैं.। इसका वृक्ष क्षेत्र का वातावरण शुद्ध करने के अतिरिक्त वहाँ के निवासियों को सब्जी, बीज, शुद्ध पेय जल, पत्ती, चारा, लकड़ी, औषधि व अन्य उपयोगी सामग्रियाँ प्रदान करता है ।

सहजन की फलियाँ बेलनाकार होने के अतिरिक्त कुछ तिकोनी, घुमावदार और पेंचदार भी होती है । जाफना या सीलोन सहजन की एक उत्तम किस्म है, जो बारहमास भी होती है ।

विभिन्न संदर्भ में सहजन को अंग्रेजी में ड्रमस्टिक (Drum stick) के बजाय या अतिरिक्त अथवा समकक्ष हॉर्स रेडिश (Horse radish) भी इंगित किया गया है । इसे **मोरिंगा** वंश और मोरिंगेसी कुल का वृक्ष बताया गया है, जबकि वास्तव में हॉर्स रेडिश अलग ही पौधा है, जो सहजन (ड्रमस्टिक) से बिल्कुल ही भिन्न है । यह क्रूसीफेरी कुल से सम्बन्धित है, तथा एक शाकीय बहुवर्षी पौधा है । हॉर्स रेडिश का जन्म स्थान भी भारत नहीं है, बल्कि यूँरोप का पूर्वी शीतोष्ण भाग है । इसकी मांसल जड़े खाद्य सामग्रियों को सुंगधित करने में प्रयोग की जाती है । फिर भी वास्तविक हॉर्स रेडिश भारत में भी उगाया जाता है, परन्तु यह केवल दक्षिणी एवं अन्य पर्वतीय अंचलों में ही उगता है । यह इसकी मांसल वेलनाकार जड़ों के लिए उगाया जाता है, जो चरपरी होती हैं तथा जिनमें छीलनों को झोर (सूप) व अन्य खाद्य सामग्रियों को सुगंधित व स्वादिष्ट

बनाने तथा सलाद के साथ प्रयोग करते हैं। यह चरपरापन इनकी मांसल जड़ों में विद्यमान एलाइल आइसो थायोसाइनेट (Allyl Isothiocynate) तथा ब्यूटाइल थायोसाइनेट (Butyl Thiocynate) के कारण होता है, जो सरसों के तेल भी भाँति होता है।

वास्तविक *हॉर्सरेडिश* का वानस्पतिक नाम *आरमोरेसिया रस्टिकाना (Armoracea rusticana)* है। आ० *लैपेथिफोलिया (A. lapathifolia)*या कॉचलीरिया *आरमोरेसिया (Cachlerria armoracea)* भी इसके अन्य वानस्पतिक नाम हैं।

ऐसी धारणा है कि वास्तविक हार्स रेडिश के स्थान पर यदि सहजन (ड्रमस्टिक) की मांसल जड़े प्रयोग की जायें तो कोई अंतर स्वाद एवं सुगन्ध में नहीं मालूम पड़ पाता है। सम्भवतः इसीलिए ड्रमस्टिक (सहजन) को भी कभी-कभी हॉर्स रेडिश कह दिया जाता है।

सहजन को मुनगा, सेंजन, सहिजन, सेंजना, सेंजनी, सोंजनी, स्वानजना, मोनागा और मुरंगई नामों से भी जाना जाता है। *मोरिंगा ऑलीफेरा (Moringa aleifera)* के अतिरिक्त *मो० टेरीगोस्पर्मा (M. pterigosperma), ग्वीलैन्डिना मोरिंगा (Guilandina moringa)* तथा *हाइपेरेन्थेरा मोरिंगा (Hypernthera moringa)* भी सहजन के अन्य वनस्पतिशास्त्रीय नाम हैं।

सहजन के वृक्ष में नवम्बर-दिसम्बर में फूल लगते हैं और खिलते हैं। इसकी फलियाँ दिसम्बर से फरवरी मार्च तक उपलब्ध रहती हैं। प्रायः फलियाँ लेने के पश्चात् होली या बाद में वृक्ष की अधिकांश डाले काट-छाँट के बाद निकाल दी जाती हैं। इन लकड़ियों का उपयोग पौधों के प्रसारण में, खम्भे या सहारा देने अथवा ईंधन के रूप में तथा कागज की लुगदी बनाने में भी करते हैं। कपड़ा और बुनाई उद्योग में इसकी लकड़ी से ढरकी और पिकिंग स्टिक बनाते हैं।

छटाई के 10-15 दिन में वृक्ष फिर हरा-भरा हो जाता है। इसकी पत्तियाँ बड़ी पौष्टिक और विटामिन-ए से भरपूर होती हैं। इनमें विटामिन-सी भी होता है। कोमल पत्तियों और फूल की कलियों की भी सब्जी बनाते हैं। कलियों का अचार भी बनाते हैं। पत्तियाँ उत्तम चारे का कार्य करती हैं। इनमें औषधीय गुण भी होते हैं। सहजन के वृक्ष से गोंद भी निकलता है, जो छींट की छपाई में उपयोगी रहता है। गोंद औषधीय गुणों वाला भी होता है। सहजन के फूलों से रस संचय कर के मधुमक्खियाँ अत्यन्त पौष्टिक और स्वादिष्ट मधु का निर्माण करती हैं। सहजन का मधु सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, जिसके पश्चात् सबसे अच्छी शहद नीम की होती है। क्यों न अधिक से अधिक सहजन के वृक्ष तैयार कर पर्यावरण शुद्ध करें और खूब लाभ उठायें।

जल चाहे पीने में या विभिन्न भोज्य सामग्रियाँ पकाने में, अथवा फसलों की सिंचाई में प्रयोग हो, इसका प्रदूषण मुक्त रहना प्रत्येक दशा में अत्यन्त आवश्यक है। पीने के लिए स्वच्छ जल ही ग्रहण करना चाहिए, इसमें दो राय नहीं। पेयजल प्रदूषित रहने पर, यह हैजा, अतिसार, मतली, उल्टी, गला खराब होना, पेचिश, टाइफायड, आंत्रशोथ तथा विभिन्न प्रकार के घातक व संक्रामक रोगों को जन्म देता है। कुआँ, ट्यूबवेल, हैण्डपाइप, नदी और झरने पेय जल के मुख्य स्रोत हैं। झरनों के पानी स्वच्छ और शुद्ध होते हैं, जो पर्वतीय स्थानों में उपलब्ध होते हैं।

कुँआ और हैण्ड पम्प के पानी भूमि के भीतर से सीधे जल स्रोत से प्राप्त होते हैं। फिर भी वर्षा ऋतु में नदियों का पानी भूमि के भीतर ही भीतर पहुँच कर जल-स्तर ऊँचा कर देता है। इस प्रकार कुँए और हैण्ड पाइप के पानी में नदियों के पानी भी मिल जाते हैं।

यद्यपि ट्यूबवेल में भी पानी सीधे जलस्रोत से प्राप्त होता है, परन्तु इसमें भी जलस्तर की स्थिति उसी प्रकार हो जाती है। इसके अतिरिक्त ट्यूबवेल और नदियों के पानी बिजली की मोटर से खींच और चढ़ा कर जी० आई० (जस्ता चढ़ाया हुआ लोहे की) पाइप द्वारा ले जाए जाते हैं, जिनकी सम्पूर्ति टोटियों द्वारा की जाती है। इन पाइपों के भीतर भी सीसा (लेड) की पर्त चढ़ी रहती है। सीसा एक हानिकारक पदार्थ है। इनके अलावा ये जल सम्पूर्तियाँ भी कभी ताज़ा और कभी टंकियों में एकत्रित करने के पश्चात् की जाती हैं।

नदियों के पानी कल-कारखानों से निकले विषैले रसायन (अपशिष्ट) बह कर आये हुए मल-मूत्र, मृतक शरीरों, पशुओं के नहाने, कपड़े धुलने, गंदे नालों , सीवेज, कूड़े-कचरों तथा अन्य विषैले व हानिकारक पदार्थों द्वारा प्रदूषित रहते हैं। टोंटियों में उत्पन्न काइयों और चिड़ियों के बीट से गर्द-गुबार आदि (यदि टंकी खुली हो) से तथा अत्यन्त घातक पदार्थ सीसा (लेड) से भी प्रदूषित रहते हैं। यदि पानी काफी समय तक एक स्थान पर रुका रह जाय तो उसमें छोटे-छोटे कीड़े रेंगने लगते हैं। प्रायः जल वितरित की जाने वाली पाइपें सीवर की पाइपों से भी जुड़ जाती हैं, जिससे पेयजल दुर्गंधित तथा और भी अधिक प्रदूषित हो जाता है।

इन्हीं स्रोतों से ही प्राप्त जल मनुष्य को पीने के लिए ग्रहण करना होता है। शासन/प्रशासन द्वारा पेय जल शुद्ध व स्वच्छ दशा में जन साधारण तक पहुँचाने का दायित्व भी निभाया जाता है, जिसके लिए विभिन्न व्यवस्थायें की गई हैं। पिछलें वर्षों में जब अधिकांश व्यक्ति पेयजल का प्रयोग कुंओं द्वारा करते थे, तब समय-समय पर स्वच्छ करने के लिए कुंए के पानी में पोटैशियम परमागनेट या ब्लीचिंग पाउडर के घोल छोड़े जाते थे। फिर भी बचाव की दृष्टि से इन्हें छान कर पीना अधिक उपयुक्त समझा जाता था। परन्तु अब इस प्रक्रिया का कहीं नाम व निशान तक भी नहीं है, जबकि बहुत से कुंए अभी भी प्रयोग में हैं।

जी० आई० पाइपों के द्वारा टंकियों से ताजा या एकत्रित पानी को पीने के लिए वितरित करने के पूर्व क्लोरोनेट (क्लोरीन के प्रयोग से) करके शुद्ध व स्वच्छ करने की प्रक्रिया निर्धारित है। परन्तु किस स्तर तक यह प्रक्रिया वास्तव में व्यवहार में आ पा रही है या लाई जा रही है, यह एक विचारणीय विषय है। इसीलिए प्रशासन द्वारा समय-समय पर आकाशवाणी, समाचारपत्रों और दूरदर्शन के माध्यम से इस बात के लिए सचेत किया जाता है कि पानी को उबाल कर पिया जाये।

पानी उबालने से उसमें मौजूद कीटाणु आदि नष्ट हो जाते हैं। परन्तु इसके पश्चात् भी निथार व छान कर ही प्रयोग करना उपयुक्त होता है। फिर भी छानने के पश्चात् भी इसमें घुले हुए घुलनशील अनावश्यक पदार्थ पूर्ववत् बने रहते हैं।

शुद्ध पेयजल प्राप्त करने की एक अन्य विधि भी है। वर्षा होने के बीच कपड़े की एक चादर हवा में फैला कर इस प्रकार तान दी जाये कि उसके बीच का भाग कुछ ढालूनुमा रहे। चादर की इस ढाल के निचले भाग में नीचे एक घड़ा रख दिया जाये। इस प्रकार वर्षा का जो पानी छन कर घड़े में एकत्रित होगा, वह स्वच्छ और शुद्ध होगा- ऐसी धारणा है। परन्तु इसमें भी वातावरण में उपलब्ध गर्द-गुबार के कण चादर द्वारा छने हुए वर्षा के पानी में भी उपलब्ध रहेंगे। किन्तु 'फिल्टर' नामक संयंत्र द्वारा प्राप्त जल शुद्ध पेय जल बताया जाता है।

यद्यपि नदियों के व अन्य पेयजल शुद्ध करने की अनेक विधियाँ व तकनीकें अपनाई जाती हैं, फिर भी विश्व भर में अभी 1.2 करोड़ व्यक्ति शुद्ध पेय जल से वंचित रह जाते हैं - ऐसा अनुमानित है।

शुद्ध पेय जल की समस्या प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों एवं मलिन बस्तियों में अधिक विद्यमान रहती है। वर्तमान समय में पेय जल को फिटकरी (एल्म्यूनीयम सल्फेट : एलम) के प्रयोग से जल शुद्ध करने की प्रक्रिया अपनाई जाती है। परन्तु फिटकरी इतनी मंहगी है कि एक विकासशील देश में इतना अधिक धन व्यय करना सम्भव नहीं हो पाता। यदि फिटकरी की व्यवस्था करने का प्रयास भी किया जाता है, तो इतनी अधिक मात्रा में यह उपलब्ध भी नहीं हो पाता। इसका भाव प्रति किलोग्राम लगभग 25 रु० रहता है।

इसके अतिरिक्त इन स्थानों पर पेय जल को शुद्ध करने की जो वर्तमान तकनीक है, वह इतनी कठिन बताई जाती है, कि इसके लिए प्रयोग करने वाले को बाहरी वैज्ञानिकों पर ही निर्भर करना पड़ता है। वे यथासमय व यथास्थान उपलब्ध नहीं हो पाते।

श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति (आंध्रप्रदेश) के वैज्ञानिक **डॉ० पी० प्रताप मौली** ने अपने अन्य वैज्ञानिक सहयोगियों के साथ अम्ब्रामिन्श जल

तकनीक संस्थान, इथिओपिया (पूर्वी अफ्रीका) में शोध कार्यों के फलस्वरूप यह पता किया कि सहजन का बीज फिटकरी की भाँति पानी का गंदलापन आसानी से दूर कर सकता है। सहजन (*मोरिंगा ऑलीफेरा* कुल मोरिंगेसी) एक बहुवर्षीय वृक्ष है, जिसकी फलियों के पके बीज जल शुद्ध करने में बड़े उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इसीलिए सहजन का महत्व दिन प्रतिदिन और भी अधिक बढ़ता जा रहा है। सहजन को अंग्रेजी में ड्रमस्टिक कहते हैं। सहजन का बीज पानी में डालने पर उसके अनावश्यक सूक्ष्म कण बंध जाते हैं। इन कणों के साथ जीवाणु व विषाणु भी लिपट जाते हैं। इन्हें निथार व छान कर अलग कर के जल स्वच्छ किया जा सकता है।

ली सेन्टर एवं मलावी विश्वविद्यालय (ब्रिटेन) में सम्बन्धित शोध कार्यों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया कि जब सहजन के बीज पानी में छोड़े गये तो बीज में उपलब्ध पानी में घुलनशील प्रोटीन-गंदले पानी के अशुद्ध कणों को बाँध कर उनके पिण्ड बना देता है। इन्हीं के साथ पानी के जीवाणु और विषाणु भी थक्कों में लिपट जाते हैं। धीरे-धीरे ये थक्के नीचे बैठ जाते हैं। इसके लिए सहजन के पके व सूखे बीजों को कूट कर पानी में डालने की आवश्यकता होती है।

सहजन के बीजों में पानी के जीवाणुओं को निष्क्रिय करने तथा उनकी प्रजनन-क्रिया को रोकने की भी क्षमता होती है। इस दिशा में विषाणुओं से सम्बन्धित कार्य भी प्रगति पर है। 'पोलियो' तथा कुछ अन्य रोग फैलाने वाले विषाणुओं पर भी अध्ययन कार्य जारी है। कभी-कभी तो सहजन के बीज का प्रभाव फिटकरी से भी अच्छा पाया गया, विशेषकर उस समय, जब पानी बहुत गंदला हो।

सहजन के बीज से एक पारदर्शक तेल निकलता है, जो छोटी मशीनों और घड़ियों के पुर्जे साफ करने तथा चिकनाई प्रदान करने में उपयोगी रहता है। इसके तेल में उड़नशील इत्रों एवं सुगन्धियों की महक को देर तक स्थिर रखने की क्षमता होती है। सहजन का तेल अनेक सौन्दर्य प्रसाधनों के निर्माण में प्रयोग किया जाता है। यह गठिया और वात तथा कमर के दर्द में औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है।

इसके बीज से तेल निकालने के बाद प्राप्त खली बड़ी उपयोगी होती है। इसे भूमि को उपजाऊ बनाने में जैविक खाद के रूप में भी प्रयोग करते हैं। ■■

गतिशील पंखों वाला विमान

नासा के वैज्ञानिकों तथा मेरी लैंड विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने इंजीनियरों द्वारा "फ्रीविंग एअरक्राफ्ट" नामक गतिशील पंखों वाले विमान का निर्माण किया है यह विमान वायु दिशासूचक यंत्र के सिद्धान्त पर कार्य करेगा। इसके पंखे पक्षियों के पंखों की तरह ऊपर-नीचे, आड़ी-तिरछी दिशा में वायु के प्रवाह की दिशा के अनुसार अपने को स्वयं ही समायोजित कर लेंगे। समायोजित करते समय विमान को कोई झटका या क्षति नहीं होगी बल्कि इससे विमान में विभिन्न कारणों से होने वाले झटकों या दुर्घटनाओं से बचा जा सकेगा। वायु के किसी भी दिशा में बहने से इन पर कोई अवरोध नहीं उत्पन्न होगा। वायुयान के उतरते या उड़ान भरते समय इन पंखों को हुक द्वारा स्थिर या सीधा रखा जा सकेगा। परीक्षण काल में इस विमान को दो सीटों वाला बनाया गया था। परीक्षण सफल हो जाने से कई अमेरिकी कंपनियां इसके निर्माण में रुचि ले रही हैं। यह विमान, वर्तमान विमानों की अपेक्षा अधिक गति से उड़ सकेगा। इस विमान को अधिक यात्री क्षमता वाला बनाने का डिजाइन पूर्ण हो चुका है तथा वास्तविक निर्माण कार्य भी प्रारंभ हो चुका है।

डी० एन० ए० फिंगरप्रिन्टिंग

❑ महेन्द्र कुमार सिंह

जैवरसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-2

"डी० एन० ए० फिंगरप्रिन्टिंग", - ये शब्द पिछले तीन-चार वर्षों में कई बार समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं आदि में प्रकाशित हुए हैं, विशेषकर स्व० **श्री राजीव गाँधी** की नृशंस हत्या के उपरान्त एवं हाल ही में घटित तंदूर हत्याकांड के संदर्भ में इस शब्द से लगभग हर कोई रूबरू हुआ है।

आज से लगभग दसेक वर्षों पूर्व विकसित इस तकनीक का प्रयोग आजकल अपराध विज्ञान में, मातृत्व एवं पितृत्व सम्बन्धी विवादों को सुलझाने एवं आनुवंशिक रोगों के लिए उत्तरदायी 'जीनों' का पता लगाने में हो रहा है। परन्तु इस तकनीक में निहित वैज्ञानिक सिद्धान्तों के बारे में यह जानने से पूर्व आणविक जीव-विज्ञान के मूलभूत सिद्धान्तों को जानना आवश्यक हो जाता है। प्रत्येक मानव कोशिका में स्थित केन्द्रक (Nucleus) में 46 गुणसूत्र (Chromosoms) होते हैं जो मूलतया डी० एन० ए० (डी ऑक्सीरिबोन्यूनिक्लिक अम्ल) के बने होते हैं। डी० एन० ए० ही वह प्रमुख रसायन है जो जीव के विकास एवं क्रियात्मकता को नियंत्रित करता है। डी० एन० ए० में डबल हेलिक्स, अर्थात् एक घुमावदार सीढ़ी की भाँति दो परस्पर गुँथे हुए रज्जु (Strands) होते हैं। प्रत्येक डी० एन० ए० रज्जु के घटक के रूप में 4 अणु होते हैं, **एडिनीन, थायमीन, साइटोसीन एवं ग्वानीन**। एक रज्जु (Strand) पर स्थित एडिनीन अर्थात् A, दूसरे रज्जु पर स्थित थायमीन अर्थात् T से तथा ग्वानीन (G) साइटोसीन (C) से हाइड्रोजन बंध द्वारा जुड़े होते हैं। किन्हीं दो व्यक्तियों के डी० एन० ए० की यदि तुलना की जाय तो उनमें अनुमानतः 90 प्रतिशत डी० एन० ए० समान होता है परन्तु शेष 10 प्रतिशत डी० एन० ए० अलग-अलग होगा। इस 10% हिस्से में नत्रजनीय क्षार (Nitrogenous Base) के अणु एक अद्वितीय क्रम (Unique Sequences) में व्यवस्थित होते हैं। डी० एन० ए० फिंगरप्रिंटिंग में डी० एन० ए० अणु के उन्हीं हिस्सों का अध्ययन करते हैं जो एक दूसरे से अलग संरचना वाले होते हैं।

इस तकनीक का आविष्कार, लीसेस्टर विश्वविद्यालय, इंग्लैण्ड में कार्यरत **डॉ० एलेक जेफ्री** ने 1984-85 में **मायोग्लोबिन** के जीन का अध्ययन करने के दौरान किया था। उन्होंने देखा कि इस जीन के कुछ हिस्से उक्त प्रोटीन के निर्माण हेतु आवश्यक सूचना से विहीन थे। वास्तव में इस बेस युग्मों के क्रमों (Base pair Sequences) में कुछ बेस युग्मों की असामान्य तरीके से पुनरावृत्ति हुई थी। बाद में पाया गया कि इस प्रकार सीक्वेंस मात्र डी० एन० ए० के उस विशेष हिस्से पर नहीं अपितु सम्पूर्ण डी० एन० ए० में कई स्थानों पर पाया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति में इस प्रकार के रिपीटेड बेस सीक्वेंसेज होते है परन्तु प्रत्येक व्यक्ति में इनकी संख्या भिन्न होती है, मात्र आइडेंटिकल जुड़वाँ लोगों में इनकी संख्या समान होगी। डी० एन० ए० में स्थित इस विशेष क्षेत्र को वी० एन० टी० आर (Variable Number Tandem Repeats) कहते हैं। हममें से प्रत्येक व्यक्ति इन वी० एन० टी० आर० को अपने माता-पिता से (कुछ माता से एवं कुछ पिता से) आनुवंशिक तौर से प्राप्त करते हैं।

अपराध-विज्ञान में डी० एन० ए० फिंगरप्रिन्ट का सर्वाधिक प्रयोग हो रहा है। इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम अपराध-स्थल पर शेष रह गये अपराधी के रक्त के धब्बे, वीर्य के धब्बे (यदि अपराधी बलात्कारी है तो) या बालों के टुकड़ों से डी० एन० ए० विगलित करते हैं। परन्तु चूँकि यह डी० एन० ए० मात्रा में बहुत अल्प होता है अतएव पी० सी० आर० (Polymerase Chain Reaction) नामक तकनीक का प्रयोग करके वांछित मात्रा में डी० एन० ए० प्राप्त कर लिया जाता है। अब इस डी० एन० ए० को रेस्ट्रिक्शन इण्डोन्यूक्लियेज नामक एन्ज़ाइम द्वारा विभिन्न लम्बाइयों के कई टुकड़ों में काट लेते हैं। अब इन टुकड़ों को अगारोज जेल स्लैब पर रखकर "जेल इलेक्ट्रोफोरेसिस" की प्रक्रिया द्वारा गुजरने दिया जाता है। परिणामस्वरूप जेल के ऊपर डी० एन० ए० के टुकड़ों के कई बैण्ड प्राप्त होते हैं। इसके उपरान्त कुछ रसायनों का प्रयोग करके प्रत्येक बैण्ड में स्थित डी० एन० ए० के दोनों रज्जुओं (Strands) को एक दूसरे से विगलित कर लिया जाता है। अब नायलॉन-पेपर पर ब्लाटिंग तकनीक द्वारा इस डी० एन० ए० बैण्ड की प्रतिलिपि प्राप्त कर ली जाती है। इस प्रक्रिया को 'सदर्न ब्लाटिंग' (Southern Blotting) कहते हैं। इधर दूसरी तरफ प्रयोगशाला में कृत्रिम रूप से 'डी० एन० ए० क्लोनिंग' द्वारा तैयार किये गये डी० एन० ए० प्रोब (D. N. A. Probe) को लेते हैं जो ब्लाटिंग द्वारा प्राप्त डी० एन० ए० (अपराधी के रक्त, वीर्य या बाल के टुकड़ों से विगलित) के टुकड़ों पर रिपीट सीक्वेंसेज से बंध बना लेता है। चूँकि ये प्रोब रेडियोधर्मी (रेडियोएक्टिव) होते हैं, अतः डी० एन० ए० का वह हिस्सा जहाँ प्रोब जाकर जुड़ते हैं, आटोरेडियोग्राफी (Autoradiography) द्वारा एक्स-रे फ़िल्म पर गाढ़ी पट्टियों (Bands) के रूप में दिखाई पड़ने लगता है। इन्हीं पट्टियों को 'डी० एन० ए० प्रोफ़ाइल' या 'डी० एन० ए० फिंगरप्रिन्ट' कहते हैं। इस प्रकार प्राप्त डी० एन० ए० फिंगरप्रिन्ट पर हल्के एवं गाढ़े कई बैण्ड या पट्टियाँ होती हैं। अब संदेहास्पद एवं आरोप-युक्त व्यक्ति के डी० एन० ए० एवं घटना-स्थल के प्राप्त डी० एन० ए० का तुलनात्मक विश्लेषण करने पर यदि दोनों नमूनों से प्राप्त बैण्ड अलग-अलग व्यक्तियों के हैं परन्तु यदि यही बैण्ड जेल पर समान स्थानों पर पाये जायें तो निश्चय ही वे दोनों नमूने एक ही व्यक्ति के हैं और वही व्यक्ति अपराधी भी होता है।

ठीक इसी भाँति पितृत्व विवाद को सुलझाने में भी यह सिद्धान्त प्रयुक्त होता है। दरअसल एक बच्चे में आधे डी० एन० ए० उसकी माता से एवं शेष आधे उसके पिता से आनुवंशिक तौर पर आते हैं। अतः बच्चे के डी० एन० ए० फिंगरप्रिन्ट में वे बैण्ड जो उसकी माता से नहीं मिलते हैं वे उसके पिता से मिलने चाहिए।

डी० एन० ए० फिंगरप्रिन्टिंग का उपयोग केवल यहीं तक सीमित नहीं है बल्कि इस तकनीक के अन्य क्षेत्रों में भी लाभकारी उपयोग हो रहे हैं। जैसे प्राणि-उद्यानों में जन्तुओं के उन जोड़ों का भी पता लगाया जा सकता है जो कि पैतृक रूप से एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं अतः उनके परस्पर संयोग से प्राप्त संतानें जैवविविधता युक्त हो सकेंगी।

इसी प्रकार रक्त-कैंसर के वर्तमान एवं एकमात्र इलाज में प्रयुक्त अस्थि-मज्जा (Bone-Marrow) स्थानान्तरण की प्रक्रिया में भी यह तकनीक सहायक सिद्ध हो रही है।

विकास के संदर्भ में कुछ अनुत्तरित प्रश्नों का समाधान भी डी० एन० ए० फिंगरप्रिंटिग द्वारा किया जा रहा है। उदाहरणार्थ **क्वाजा** नामक एक जन्तु जो **जेब्रा** से मिलता-जुलता है, वर्ष 1883 में पृथ्वी से समाप्त हो गया था। जन्तु-संग्रहालय में सुरक्षित उसके शव से प्राप्त डी० एन० ए० की तुलना जब जेब्रा के डी० एन० ए० से इसी विधि द्वारा की गई तो दोनों के पूर्वज एक ही पाये गये।

भारत में डी० एन० ए० फिंगरप्रिन्टिग की सुविधा 'कोशिकीय एवं आणविक जीव विज्ञान केन्द्र, हैदराबाद" में मौजूद है। इसी संस्थान के वैज्ञानिक **डॉ० लालजी सिंह** ने कड़े परिश्रम के उपरान्त स्वयं अपनी विधि से करैत साँप द्वारा प्राप्त डी० एन० ए० से डी० एन० ए० प्रोब विकसित करने में सफलता प्राप्त की है। ■■

गणित और दर्शन के पाश्चात्य संगम के प्रतीक

❑ योगेन्द्र बहादुर सिंह
सम्पादक 'आहट'
प्रवक्ता, गणित, के० एन० आई०, सुल्तानपुर

1. थेल्स (Thales : 624-550 BC)

थेल्स का जन्म ग्रीस के छोटे से राज्य माइलेटस में हुआ था। प्राचीन यूनानी दर्शन का आरम्भ थेल्स से ही माना जाता है। गणितज्ञ दार्शनिक होने के साथ ही साथ थेल्स महान ज्योतिषी तथा राजनीतिज्ञ भी थे। थेल्स के दर्शन के अनुसार विश्व का परम् तत्व जल है। जल से ही जगत् की उत्पत्ति होती है। थेल्स 'माइलेशियन मत' के दार्शनिक थे। इस मत में संख्याओं को वस्तुओं का द्रव्य माना जाता था।

2. पाइथागोरस (Pythagoras : 570-500 BC)

प्राचीन यूनानी दर्शन के द्वितीय स्तम्भ महान् गणितज्ञ **पाइथागोरस** थे, जिनका जन्म सामोस नामक शहर में हुआ था। गणितज्ञ दार्शनिक होने के साथ ही साथ पाइथागोरस धार्मिक मार्गदर्शक भी थे। पाइथागोरस ने दर्शन में संख्या-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उन्होंने संख्याओं को 'वस्तुओं के सिद्धान्त' के रूप में लिया न कि 'वस्तुओं के मूल द्रव्य' के रूप में। यही माइलेशियन मत और पाइथागोरियन मत में अन्तर है। पाइथागोरियन दर्शन के अनुसार संख्याओं में सम और असम का भेद होता है। ये असम और सम ससीम और असीम, परिमित तथा अपरिमित के सार हैं। इनके अनुसार चूँकि प्रकृति स्वतः विरोधों का संगठन है, अतः वह सम और असम संख्याओं का एक रूप है। बिन्दु एक, रेखायें दो, आकार तीन तथा ठोस चार की संख्या के साथ जुड़े हुए हैं। उन्होंने भौतिक जगत् की संख्यात्मक व्याख्या प्रस्तुत किया। इतना ही नहीं, पाइथागोरस ने नीतिशास्त्र के मूल्यों (जैसे कि प्रेम, मित्रता, न्यास, सद्गुण, निष्ठा आदि) को भी संख्यात्मक धरातल दिया। उदाहरणार्थ, प्रेम और मित्रता आठ (8) की संख्या के समान सामंजस्यपूर्ण हैं। पाइथागोरियन दर्शन को संख्या रहस्यवाद की संज्ञा दी जाती है, जिसने प्राकृतिक नियमों को गणितीय अभिव्यक्ति देने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

3. डेमोक्रीटस् (Democritus : 460-370 BC)

डेमोक्रीटस् का जन्म अबेदरा नामक शहर में हुआ था। वे महान दार्शनिक **ल्यूसियस** के शिष्य थे। उन्होंने 'परमाणुवाद नामक दर्शन की नींव डाली। इस दर्शन के अनुसार-सत्ता में छोटे-छोटे परिमाणात्मक भेद वाले अपरिवर्तनशील परमाणु होते हैं। इन परमाणुओं में गति स्वतः निहित होती है। पूर्ण परिवर्तन को इन्होंने असम्भव माना। डेमोक्रीटस के अनुसार परमाणु 'गणित का बिन्दु' नहीं है। डेमोक्रीटस ने अपने दर्शन में भौतिकवाद (परमाणुवाद) तथा सुखवाद (बौद्धिक आनन्दवाद) के मध्य सामंजस्य स्थापित करने का सफल प्रयास किया।

4. प्लेटो (Plato : 427-346 BC)

सुविख्यात दार्शनिक **सुकरात** के शिष्य यूनानी दार्शनिक **प्लेटो** का जन्म ईजना क्षेत्र के सामंत परिवार में

हुआ था । **हेरेक्लाइटस** की तरह प्लेटो भी स्वभाव के असमझौतावादी थे । जन्म से कुलीन प्लेटो चिन्तन से आदर्शवादी थे । प्लेटो ने ग्रीक दर्शन को चरम पर पहुँचाया.। दस वर्षों तक विदेश-भ्रमण के बाद प्लेटो ने एथेन्स में 'एकेडेमी' नामक प्रसिद्ध संस्था की स्थापना की.। इस संस्था में वे गणित तथा दर्शन की विभिन्न शाखाओं पर शिक्षा देते थे । प्लेटो का 'प्रत्यय-सिद्धान्त' ('Doctrine of Ideals') उनकी मौलिक कृति है । इस आदर्श सिद्धान्त (विज्ञानवाद) के लिए **पाइथागोरस** के 'संख्या-रहस्यवाद' ने मार्ग प्रशस्त किया । इस सिद्धान्त के अनुसार- प्रत्यय असीम संख्या में विद्यमान है । प्रत्यय मूल द्रव्य है । प्रत्यय मानसिक नहीं होते, वे सार्वभौम होते हैं । इनके अतिरिक्त प्लेटो ने गणित की शाखा- सृष्टि विज्ञान (Cosmology) में भी अपने दर्शन दिये । प्लेटो का दर्शन बुद्धिवादी, यथार्थवादी, ईश्वरवादी और द्वैतवादी है ।

5.रेने देकार्त (Rene Descartes : 1596-1650 A.D.)

फ्रान्स के टूरेन नामक शहर में जन्मे महान गणितज्ञ रेने देकार्त को आधुनिक पाश्चात्य दर्शन का जनक माना जाता है । इन्होंने बुद्धिवाद, अन्तर्क्रियावाद, प्रकृतिवाद तथा वैचारिक स्वातंत्र्य आदि प्रवृत्तियों को दर्शन में गणितीय विधि, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, व्यावहारिकता, मन तथा शरीर में अपनाया । पाइथागोरस के बाद दर्शन को गणितीय कसौटी पर कसने का सबसे सफल प्रयास रेने देकार्त ने ही किया । उनके अनुसार- दार्शनिक मत इस तरह प्रतिपादित किये जायें जिससे कि उनमें गणित जैसी निश्चितता एवं स्पष्टता हो ताकि ठोस निष्कर्मों का आलिंगन किया आ सके । **गणित ही एक ऐसा विषय है जिसमें निश्चित तथा स्वयंसिद्ध युक्ति वाक्य मिलते हैं ।** दो और दो मिलकर चार होते हैं अथवा किसी त्रिभुज के तीनों अन्तःकोणों को योग 180 अंश के बराबर होता है- ये बातें निर्विवाद हैं । यदि दर्शन में ऐसे स्वयं-सिद्ध सिद्धान्तों की खोज कर ली जाय तो अनेक वाद-विवादों तथा अन्तर्द्वन्दों का अन्त हो जायेगा । गणित में कुछ ऐसे स्वयं-सिद्धान्त होते हैं जिन्हें हर व्यक्ति समझता है और मानता भी है । इन्हीं सिद्धान्तों के धरातल पर अन्य तर्क-वाक्यों के आबद्ध सिद्धान्तों की उत्पत्ति होती है । इस प्रकार गणित के रोगन से रंगे गये दर्शन के माध्यम से हम साधारण तर्क-वाक्यों से प्रारम्भ होकर मिश्रित तर्क-वाक्यों तक पहुँच सकते है । यह पद्धति संश्लेषणात्मक अथवा निगमनात्मक कहलाती है । **"मैं चिन्तन करता हूँ, इसलिए मेरा अस्तित्व है"- यह देकार्त के दर्शन का प्रथम स्वयं-सिद्ध युक्ति-वाक्य है ।**

6. बेनेडिक्ट स्पिनोजा (Benedict Spinoza : 1632-1677 A.D.)

एक तत्ववाद, नियतिवाद अथवा नियंत्रणवाद की स्थापना करने वाले इस महान आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिक का जन्म हालैण्ड के एक यहूदी परिवार में हुआ था । दर्शन के साथ-साथ उन्हें गणित में भी गम्भीर अध्ययन की रुचि थी । **देकार्त** की ही तरह **स्पिनोजा** ने भी दर्शन के क्षेत्र में गणितीय विधि का अनुसरण करने का प्रयास किया । स्पिनोजा का दर्शन परिभाषाओं तथा सिद्धान्तों से प्रारम्भ होकर युक्तिवाक्यों पर जाकर स्थापित हो जाता है- जैसा कि रेखागणित में होता है । जगत् को रेखागणित की समस्याओं से जोड़ने का अथक प्रयास करते नज़र आते हैं - स्पिनोजा । उनके अनुसार रेखागणित की प्रस्तावनाओं द्वारा अपनी तार्किक मान्यताओं के अनुसरण के समान प्रत्येक पदार्थ विश्व के प्रथम सिद्धान्तों से अनुसरित होता है । जिस प्रकार गणित के निगमन में जो निष्कर्ष निकलते हैं, वे मात्र अनित्य प्रभाव न होकर नित्य परिणाम होते हैं, उसी प्रकार प्रथम कारण (ईश्वर) से वस्तुओं का काल की दृष्टि से विकास नहीं होता बल्कि शाश्वत रूप से उनका अवतरण होता है । जिस प्रकार रेखागणित के प्रदर्शन में कोई युक्ति-वाक्य अन्य युक्ति-वाक्य का अनिवार्य परिणाम होता है, उसी प्रकार प्रकृति में हर एक वस्तु किसी अन्य वस्तु का अनिवार्य कार्य होता है ।

7. गॉटफ्राइड विल्हेल्म लाइबनित्ज (Gottfried Wilhelm Leibnitz : 1646-1716 A.D.)

लौकिक बड़प्पन के प्रेमी, अतिसूक्ष्म गणना के सिद्धान्त के आविष्कारक, विज्ञान, दर्शन, राजनीति और

कानून में रुचि रखने वाले महान गणितज्ञ- **लाइबनित्ज** का जन्म पूर्वी जर्मनी के लाइपजिग नगर में **न्यूटन** के जन्म के तीन साल बाद हुआ था । **स्पिनोजा** के एक-तत्ववाद तथा **देकार्त** के द्वैतवाद की जगह **लाइबनित्ज ने बहुतत्ववाद का प्रतिपादन किया तथा आगमनात्मक गणितीय पद्धति के मिश्रित रूप को स्वीकार किया । जिस प्रकार एक तथा शून्य के मेल से सभी संख्यायें बनतीहैं उसी प्रकार ईश्वर (एक) ने 'कुछ नहीं'** (शून्य) से समूची सृष्टि रची है- लाइबनित्ज का यह दर्शन संगणकों में प्रायोगिक हो चुका है । लाइबनित्ज के अनुसार- तर्कशास्त्र और रेखागणित के सत्य शाश्वत और अनिवार्य होते हैं, नैतिक सिद्धान्त सदैव स्पष्ट नहीं होते, अतः रेखागणित की प्रस्तावनाओं के प्रदर्शन की भाँति उनका प्रमाण देने की आवश्यकता होती है । गणित तथा तत्वज्ञान ही मौलिक विज्ञान है और प्रदर्शनात्मक पद्धति ही दर्शन की सच्ची पद्धति है, विश्व एक सामंजस्यपूर्ण सम्पूर्णता है जो गणित तथा तर्क के सिद्धान्तों द्वारा संचालित होती है । इन्द्रिय अनुभव के बिना भी सार्वभौम तथा अनिवार्य युक्तिवाक्य प्राप्त हो सकते हैं जैसा कि गणित में होता हैं।

8. डेविड ह्यूम (David Hume : 1717-1786 A.D.)

संदेहवादी तथा अज्ञेयवादी दार्शनिक **डेविड ह्यूम** का जन्म इंग्लैण्ड के एडिनबरा नामक स्थान में हुआ था । हालाँकि ह्यूम गणितज्ञ तो नहीं थे फिर भी उन्होंने दर्शन के बहुत से तथ्यों को गणितीय आधार प्रदान किया । **ह्यूम के अनुसार- गणित में मूल परिभाषाओं के आधार पर जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं, उनके मिथ्या होने का प्रश्न ही नहीं उठता ।** दो और दो मिलकर चार होते हैं- इस प्रकार के युक्ति वाक्यों का अन्वेषण चिन्तन द्वारा ही होता है, चाहे जगत् में उनका अस्तित्व हो अथवा न हो । प्रकृति में वृत्त या त्रिभुज नहीं होता तो भी **यूक्लिड** द्वारा प्रदर्शित सत्य सदैव निश्चित तथा स्वयं सिद्ध रहते हैं ।

9. इमैनुएल काण्ट (Imanuel Cant : 1724-1804 A.D.)

आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिक -गणित, नीति, धर्म, भूगोल, विज्ञान तथा दर्शन के शिक्षाविद् **इमैनुएल काण्ट** का जन्म कानिग्सबर्ग (जर्मनी) में हुआ था । उन्होंने अनुभववाद तथा बुद्धिवाद की समीक्षा करके 'आलोचनात्मक -समीक्षावाद' के दर्शन की बुनियाद रखी जिसका बड़ा ही ऐतिहासिक महत्व है । काण्ट के अनुसार - काल और दिक् का वस्तुओं की तरह अस्तित्व नहीं होता। दिक् और काल हमारे दृष्टिकोण होते हैं जिनसे संवेदनाओं को देखा जाता है । दिक् समस्त वस्तुओं के प्रत्यक्ष की अनिवार्यपूर्ण शर्त है । बुद्धि समस्त वस्तुओं को कुछ निश्चित काल-सम्बन्धों की नज़र से देखती है । बुद्धि लगातार एक को एक से जोड़ती है । इस प्रकार उसे 'संख्या' की उपलब्धि होती है । संख्या की यह क्रिया- एक में एक जोड़ना - काल के रूप में अभिव्यक्त परिमाण की श्रेणी की व्यवस्था है । गणित की अनिवार्यता दिक्-प्रत्यक्ष पर निर्भर है तथा अंकगणित प्रागनुभव काल-प्रत्यक्ष को व्यक्त करने वाली संख्या की धारणा पर आधारित है । गणित और भौतिक विज्ञान का हमें सार्वभौम और अनिवार्य ज्ञान हो सकता है परन्तु यह ज्ञान मात्र प्रपंचात्मक वस्तुओं, दृश्य-जगत्, उसके रूप और व्यवस्था का ही हो सकता है । **लाइबनित्ज** दिक् और काल के बीच सम्बन्ध की सम्भावना को स्वीकारते थे जबकि **न्यूटन** दोनों के बीच स्वतंत्रता को मानते थे । बाद के कालों में **आइंस्टीन** ने सापेक्षिकी में दिक् और काल के बीच सम्बन्धों की व्याख्या की ।

■■

यूँ करें फल एवं सब्ज़ियों का संरक्षण

❑ श्रीमती नलिनी जोशी, श्रीमती कुसुमलता पाण्डे एवं डॉ० नरेन्द्र कुमार

रक्षा अनुसंधान प्रयोगशाला, हल्द्वानी, नैनीताल (उत्तर प्रदेश) -263136

मौसमी फलों एवं सब्जियों का संरक्षण करना एक वैज्ञानिक कला है। अब प्रश्न उठता है कि संरक्षण क्या है ? इसमें क्या प्रक्रिया होती है ? तकनीकी ज्ञान से संरक्षण करने का मतलब है कि फलों एवं सब्जियों को सड़ने से बचाना एवं अधिक समय तक सुरक्षित बनाये रखना। भोजन जैसा कि हम जानते हैं कार्बनिक पदार्थों का बना होता है। कार्बनिक पदार्थ का यह गुण होता है कि वह निश्चित समय बाद सड़ने लगता है। सड़ने की प्रक्रिया जीवाणु, यीस्ट फफूंदी, ऑक्सीकरण व निर्जलीकरण द्वारा होती है।

वैज्ञानिक विधि द्वारा संरक्षण किया जाना पूर्णतया सुरक्षित एवं लाभप्रद होता है। साधारणतः घरों में लोग मौसमी फलों एवं विभिन्न सब्जियों को किसी न किसी रूप में सुरक्षित रख कर उपयोग करते हैं तथा उसके स्वाद का आनन्द लेते हैं। हमारी यह चेष्टा है कि उसका स्वाद व ताजगी अन्य मौसम में भी बनी रहे।

साधारणतया हर मौसम में कुछ फल व शाक भाजियों की मात्रा हमारे दैनिक उपयोग में लाये जाने के बाद भी बच जाती है। जो कि संरक्षण का ज्ञान न होने के कारण थोड़े दिनों बाद ही बरबाद हो जाती है। यदि हमें इस तकनीकी का थोड़ी बहुत भी जानकारी हो तो हम इन्हें नष्ट होने से बचा सकते हैं एवं मौसम न होने पर भी भरपूर उपयोग कर सकते हैं।

पहाड़ी क्षेत्रों में भी अलग-अलग मौसम में अनेक प्रकार के फल व सब्जियों की पैदावार काफी मात्रा में होती है मुख्यतया फलों में सेब, नाशपाती, आड़ू, पुल्लम, आम, आलूबुखारा, खुबानी, नीबू, माल्टा, सन्तरा आदि व सब्जियों में लौकी, कद्दू, करेला, टमाटर, मिर्च, बैगन, पालक, शिमला मिर्च, मूली, गाजर, शलगम इत्यादि। इन सभी प्रकार की सब्जियों व फलों को हम आसान विधियों से संरक्षित कर सकते हैं, और इनका उपयोग बेमौसम में कर सकते हैं। घरों में अपनाये जाने हेतु कुछ सामान्य विधियों की जानकारी इस लेख में प्रस्तुत की जा रही है.।

सुखाना

यह सरल तथा काफी प्रचलित विधि है। इस विधि द्वारा हम सब्जियों में कद्दू, मूली, लाई, मैथी, पालक, करेला, फूलगोभी, बन्दगोभी, मिर्च आदि व फलों में सेब, आड़ू, खुबानी इत्यादि को सुखा सकते हैं। इसमें सब्जियों को भली प्रकार साफ कर धोकर काट लेते हैं। अब इन सब्जियों को उबलते पानी में 2 से 5 मिनट तक डुबा रखते हैं, फिर तुरन्त ही ठंडे पानी में डालकर निथार लेते हैं। इस प्रक्रिया को ब्लीचिंग कहते हैं। इस क्रिया से एन्जाइम निष्क्रिय हो जाते हैं तथा सड़ने की प्रक्रिया कम हो जाती है। सब्जियों को सुखा कर भी सब्जियों का प्राकृतिक रंग विद्यमान रहता है।

यह विधि सेब, खूँबानी, नाशपाती, संतरे, अंगूर, रसबेरी इत्यादि फलों को संरक्षित करने में लाई जाती है.।

सब्ज़ियाँ

सब्जियों को बोतलबंद करना काफी महंगी प्रक्रिया है। अतः उन्हीं सब्जियों को बोतल बन्द करना चाहिए

जो महत्वपूर्ण तथा पैदावार बहुत ही कम समय में हो। जैसे- शिमला मिर्च, सतावर, मीठी मक्की, मटर, बीन आदि.।

इस प्रकार की सब्जियों को बोतल बन्द करने से पहले श्वेतन (ब्लीचिंग) प्रक्रिया की जाती है। इस प्रक्रिया का यह लाभ है कि सब्जियों का प्राकृतिक रंग खराब नहीं होता है तथा सब्जियों का आकार सिकुड़ जाता है जोकि देखने में भला तथा भरते समय आसान रहता है। अब इन बोतलों में गरम ब्राइन घोल भरते हैं।

ब्राइन घोल बनाने की विधि

25 ग्राम नमक को एक लीटर पानी में मिलाया जाता है। प्राकृतिक रंग लाने के लिए आई० एस० आई० मार्क का हरा रंग डालते हैं। इन बोतलों में ब्राइन घोल भरे जाने के बाद बोतलों को ढक्कन लगाते हैं, प्रेशरकुकर में रखते हैं तथा 30 से 50 मिनट तक आँच पर रखते हैं.। बोतलें इस प्रकार जीवाणुरहित हो जाती है। इन बोतलों को पैराफिन वैक्स से सीलबंद कर देते हैं।

घोल द्वारा

इस प्रक्रिया में घोल द्वारा उत्पाद को सुरक्षित किया जाता है। घोल में हम चीनी, नमक, सिरका, तथा अन्य चीजों का उपयोग कर सकते हैं। चीनी के घोल द्वारा हम जैम, जेली, मार्मलेठ, स्वैक्स, शर्बत इत्यादि बना सकते हैं.। नमक का उपयोग आचार, चटनी, टमाटर का जूस, सूप, प्यूरी, सास, नींबू का अचार आदि बना सकते हैं।

सिरका हम विभिन्न प्रकार की चटनियाँ बनाने में इस्तेमाल कर सकते हैं। अभी तक जितने भी तरीके बताये गये हैं वह जंरा मंहगें तथा उन्हें अपनाने के लिए विशिष्ट प्रकार के उपकरण भी चाहिए जो कि आम लोगों की पहुँच के बाहर है।

मगर अब जो विधि यहाँ बताई जायेगी उससे घर पर ही घरेलू उपकरणों के द्वारा सब्जियों को काफी समय तक संरक्षित कर सकते हैं जैसे कि हम जानते हैं कि बोतलबंद तथा हिमीकरण प्रशीतन काफी महंगी विधियाँ हैं तथा उसके लिए उपयुक्त उपकरणों की आवश्यकता पड़ती हैं जिनकी उपलब्धता आम लोगों की पहुँच के बाहर हैं।

इस विधि में सस्ते एवं प्रचलित रसायन का उपयोग करते हैं जैसे कि सिरका का पोटेशियम मेटाबाइसल्फाइट तथा सेलसियल एसिटिक एसिड। चीनी मिट्टी अथवा काँच के बरतन भंडार के लिए अच्छे हैं।

इस क्रिया के बाद सब्जियों को खुली धूप में सुखाया जाता है। धूप की गर्मी से मुक्त जल की मात्रा कम हो जाती है, परन्तु जैविक क्रियायें नियंत्रित रहती हैं जिससे कि उत्पाद खराब नहीं होने पाता। सूखे उत्पाद को पौलीथीन की थैली में सील बन्द कर लेते हैं ताकि सही तरीके से इसकी निथानी (भण्डारण) किया जाए तो उत्पाद की भण्डारण आयु बढ़ जाती है तथा ये जल्दी खराब नहीं होने पाते। इस विधि से हम कम से कम 2 साल तक सब्जियों को संरक्षित कर सकते हैं।

बॉटलिंग तथा कैनिंग

इस प्रक्रिया में सब्जियाँ व विशेषकर फलों को संरक्षित किया जाता है। फलों के लिए चीनी का घोल तथा सब्जियों के लिए नमक के घोल का उपयोग किया जाता है।

विधि

फलो को बोतल बंद करने के लिए जो भी फल लें वे ताजे तथा साफ-सुथरे होने चाहिए। इन फलों को ताजे ठंडे पानी से धो लेना चाहिए। कुछ सरस फल जैसे रसबेरी, ब्लैक बेरी को नमक मिले पानी से धोना चाहिए ताकि कोई भी कीट इत्यादि न रहे। अन्तिम बार ठंडे पानी से धोना चाहिए।

कुछ अन्य प्रकार के फल जैसे नींबू प्रजातियों के फलों का छिलका व गूदा निकाल लेते हैं। सेब व नाशपाती प्रजाति के फलों को गूदा आसानी से निकल आता है। तब टुकड़े करके बोतलों में भरा जाता है।

चीनी का घोल तैयार करने की विधि

चीनी का घोल तैयार करने के लिए निश्चित मात्रा को धीमी आँच पर गर्म किया जाता है। इस घोल को ठण्डा या गर्म दोनों तरह से उपयोग कर सकते हैं। 600 मि० ली० पानी में चीनी की मात्रा 225 ग्राम का घोल बनाना चाहिए। मटर एवं टमाटर को बोतलबंद के लिए नमक चीनी का घोल उपयोग में लाते हैं। इसे बनाने के लिए एक छोटी चम्मच नमक की मात्रा 1 लीटर पानी में डालना होता है।

बोतलों को साफ पानी से धो लेते हैं तत्पश्चात् इन दोनों प्रकार के घोल को बोतलों में डाल देते हैं। घोल भरते समय यह सावधानी रखनी चाहिए कि घोल धीरे डाला जाये ताकि हवा बोतल के अन्दर न रहने पाये। ढक्कन लगाकर इन्हें निश्चित दाब पर प्रेशर कुकर में एक निश्चित समय तक रखा जाता है। प्रेशर कुकर की जगह ओवन या उबलते पानी के बरतन में भी हम रख सकते हैं। पानी में रखने का समय हर एक सब्जियों का अलग-अलग है। समय पूरा हो जाने पर बोतलों को निकाल कर लकड़ी की टेबल में चौबीस घण्टे रखते हैं। इसके बाद इन्हें पैराफिन वैक्स से सील बन्द किया जाता है।

विधि

इस विधि में फूलगोभी, शलगम, मटर इत्यादि सब्जियों को साफ धोकर साफ सुथरे बरतन में ऊपर तक भरना चाहिए।

रासायनिक घोल

500 ग्राम नमक, 1 ग्राम पौटेशियम मेटा बाइ सल्फाइड तथा 12 मि० ली० ग्लेसियल एसिटिक एसिड 1 ली० पानी में मिलाया जाता है।

अब इस तैयार घोल को सब्जियों के भरे जार में डाल दिया जाता है तथा ढक्कन कस कर लगाते हैं। प्रायः सब्जियों की मात्रा से दुगना घोल की जरूरत पड़ती है सिवाय मटर के लिए जिसमें कि बराबर मात्रा में घोल का इस्तेमाल होता है। ढक्कन को मोम द्वारा सीलबन्द कर देना चाहिए। यह इसलिए ताकि सल्फर डाइऑक्साइड जार से बाहर न आ सके। इस भरे जार को ठंडे तथा अंधेरे स्थान में इनका भण्डारण करते हैं जिससे कि सब्जियों का रंग तथा स्वाद बना रहे।

उपयोग करने की विधि

भण्डारण के दौरान सब्जियों में सिरके की वजह से खट्टा स्वाद आ जाता है। यह स्वाद अचार तथा सलाद के रूप में तो चल सकता है मगर पकी हुई सब्जियों में इसको इस स्वाद से मुक्त करना पड़ता है। उसका उपाय भी सरल है। सब्जियों को पकाने से पहले तीन चार घण्टे ठंडे पानी में भिगोया जाये। अगर यह सब्जियाँ तुरन्त पकानी हो तो गर्म पानी से एक दो बार धोने से खट्टापन कम होगा।

यह ध्यान रहे कि सब्जियाँ जार से निकालने के बाद जो खाली स्थान बचता है उसे इस घोल से भर लिया जाये तथा सील बन्द कर देना चाहिए। अगर जार का मूल्य नहीं लगाया जाये, क्योंकि वही जार को हम बार-बार इस्तेमाल कर सकते हैं। एक कि०ग्रा० सब्जियों को संरक्षित करने की लागत करीब 1.75 रु० पड़ती है।

लाभ

1. यह विधि काफी सस्ती एवं सरल है।

2. डिब्बाबंद एवं बाँटलिंग विधि द्वारा सब्जियों को संरक्षित करने एवं जीवाणुरहित करने में ऊष्मा की आवश्यकता होती है, जोकि सब्जियों के आकार को बिगाड़ देती है मगर इस विधि द्वारा सब्जियों का आकार वही रहता है।

3. डिब्बाबंद विधि में हम कृत्रिम रंगों का उपयोग करते हैं, जो कि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। इस विधि में हमें कृत्रिम रंगों का उपयोग नहीं करना पड़ता।

4. सल्फर डाइ ऑक्साइड का उपयोग इस विधि में होता है जो कि सब्जियों में विद्यमान विटामिन 'सी' को नष्ट होने से बचाता है। ■■

रांगा : इतिहास के झरोखे से

❑ डॉ० विजय कुमार उपाध्याय
प्राध्यापक, भूगर्भ, इन्जिनियरी कॉलेज, भागलपुर

रांगा एक बहुत ही उपयोगी धातु है। इसे संस्कृत में वंग या त्रपुस तथा अंग्रेजी में टिन कहा जाता है। रांगे की खोज प्रागैतिहासिक काल में ही हो चुकी थी। मनुष्य ने प्रारम्भ में जिन गिनी-चुनी धातुओं का उपयोग किया उनमें रांगा भी शामिल है। रांगा को ताँबें के साथ मिलाकर प्रसिद्ध मिश्र धातु कांसे का निर्माण किया जाता था। परन्तु आज यह मालूम नहीं है कि उस समय कांसे के निर्माण में जो टिन उपयोग में लाया जाता है वह धात्विक अवस्था में था अथवा टिनयुक्त अयस्क को ही ताँबे के साथ अवकारक परिस्थितियों में मिश्रित कर कांसा बनाया जाता है।

प्रारम्भिक हिब्रू, ग्रीक तथा लैटिन साहित्य में जो 'टिन' शब्द व्यवहार में लाया जाता था, उसका अर्थ आज से भिन्न था। ऐतिहासिक साक्ष्यों से पता चलता है कि टिन को सर्वप्रथम पूर्वी देशों जैसे भारत, चीन इत्यादि में उपयोग में लाया गया है। भारत में ईसा के लगभग 3000 वर्ष पूर्व कांसे को उपयोग में लाये जाने के प्रमाण मिलते हैं। हडप्पा तथा मोहन जोदड़ों के भग्वावशेषों की खुदाई से कांसे के आभूषण तथा बर्तन प्राप्त हुए हैं। ये सब सभ्यतायें, जिन्हें सिन्धुघाटी की सभ्यताओं के नाम से पुकारते हैं, आज से लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व में अस्तित्व में थीं। 'महाभारत' काल में अन्य धातुओं के साथ कांसे को उपयोग में लाये जाने के वर्णन मिलते हैं। अनुमान है कि महाभारत की लड़ाई भी आज से लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व लड़ी गयी थी। मौर्य तथा गुप्त साम्राज्य में भी अन्य धातुओं के साथ-साथ कांसे का काफी अधिक उपयोग किया जाता था। गुप्त काल में कांसे से बर्तन तथा मूर्तियाँ बनायी जाती थीं। इसके अतिरिक्त इस काल में कांसे से सिक्के भी बनाये जाते थे। गुप्त काल में निर्मित कांसे की मूर्तियाँ भारत में कई स्थानों पर की गई खुदाई से पायी गयी हैं। बिहार के भागलपुर जिले के बरेसर स्थान नामक पहाड़ पर प्राचीन काल के कुछ अवशेष मिले हैं जिनमें कांस्य मूर्तियाँ भी शामिल हैं। ये मूर्तियाँ पाल एवं गुप्त काल की बतायी जाती हैं। इन मूर्तियों में शामिल हैं - ध्यान तथा भूमि स्पर्श मुद्रा के गौतम बुद्ध की कांस्य प्रतिमायें। इसी काल की कुछ कांस्य प्रतिमायें भागलपुर जिले के ही अन्य स्थान सुलतानगंज में की गयी खुदाई से प्राप्त हुई हैं। कहा जाता है कि चीन में भी ईसा से लगभग 1800 वर्ष पूर्व कांस्य उद्योग काफी पनप चुका था। चीन में कई स्थानों पर की गयी पुरातात्विक खुदाइयों से लगभग 1800 वर्ष ई० पू० में निर्मित कांसे की कई चीजें जैसे दैनिक उपयोग में आने वाले कुछ औजार, बर्तन आदि मिले हैं। मिस्र में एक स्थान पर की गयी पुरातात्विक खुदाई से 3700 वर्ष ईसा पूर्व में निर्मित कांसे की एक छड़ मिली है। इसके रासायनिक विश्लेषण से पता चला है कि इसमें 9.1% टिन की मात्रा उपस्थित है। मिस्र में ही **ईसा** से 600 वर्ष पूर्व लेड एवं चाँदी रहित टिन की चादर का उपयोग मृत शरीर को लपेटकर कब्र में दफनाये जाने के लिए किये जाने के प्रमाण मिले हैं।

ईस्वी सन् की दूसरी शताब्दी में भारत में **चरक** जैसे आयुर्वेद के महान ज्ञाता हुए, जिन्होंने वंग भस्म (टिन ऑक्साइड) को औषधि निर्माण के लिए उपयोगी पाया। पश्चिमी यूरोप के कई स्थानों में टिन का खनन एवं व्यापार

कई शताब्दियों से चलता रहा है। 'बाइबिल' में वर्णित 'टिन' शब्द हिब्रू शब्द बेधिल के अर्थ में आया है। बेधिल शब्द का उपयोग ताँबें तथा टिन के मिस्र धातु के लिए किया जाता है था। यूनान के महान कवि **होमर** ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'इलियड' में कांसे तथा टिन को अलग अलग धातुओं के रूप में माना है। होमर का जन्म 1102 वर्ष ईसा पूर्व में हुआ था। शुद्ध टिन धातु से निर्मित सर्वप्रथम जो वस्तुएँ मिली हैं उनमें शामिल हैं - अंगूठी तथा तीर्थयात्रियों द्वारा उपयोग में लायी जाने वाली बोतलें। ये वस्तुएं मिस्र में अनेक स्थानों पर की गयी खुदाई के दौरान पायी गयी हैं। ये चीजें लगभग 1500 वर्ष ईसा पूर्व में निर्मित बतायी जाती हैं। टिन मिस्र में कहीं नहीं पाया जाता अतः यह निष्कर्ष आसानी से निकाला जा सकता है कि यहाँ टिन का आयात अन्य देशों से किया जाता था। ऐसा माना जाता है कि भूमध्य सागरीय क्षेत्रों के देशों में जो टिन के सामान मिले हैं उन्हें एशिया के देशों से मंगाया जाता था। लगभग 15वीं शताब्दी ईसा पूर्व ब्रिटेन में भी टिन का खनन प्रारम्भ किये जाने के संकेत मिले हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि स्पेन तथा इंग्लैण्ड में कार्नवाल की खानों से टिन का खनन होता था। फिर उस टिन को पूर्वी भूमध्य-सागरीय क्षेत्र के देशों में स्थित धातुकर्म केन्द्रों पर पहुँचाया जाता था। उपलब्ध अभिलेखों से पता चलता है कि 500 वर्ष ईसा पूर्व तक कार्नवाल की खानों से लगभग 30 लाख टन टिन का खनन किया गया। उस काल में ब्रिटेन से प्रति वर्ष लगभग एक हजार टन टिन का निर्यात दूसरे देशों को किया जाता था।

प्राचीन काल में टिन का उपयोग प्रायः कांसे के निर्माण के लिए होता था तथा कांसे से दैनिक उपयोग के समान जैसे औजार, हथियार तथा बर्तन एवं आभूषण इत्यादि बनाये जाते थे। मध्य काल में कांसे का उपयोग घंटियों के निर्माण में भी किया जाने लगा। टिंन में कुछ विशेष गुण उपलब्ध हैं। जैसे इसमें जंग नहीं लगता। यह धातवर्धनीय है, तथा इसका द्रवणांक भी कम है। ये सभी गुण मिलकर टिन को काफी उपयोग बना देते हैं। **प्लिनी** नामक वैज्ञानिक ने सन् 79वीं में बताया था कि टिन तथा लेड के मिश्रधातु को आसानी से पिघलने वाले सोल्डर के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है। रोमवासी अपने ताँबें के बर्तनों पर रांगे की कलई किया करते थे। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य इंग्लैण्ड में रांगे से कलई किये गये इस्पात का निर्माण किया जाने लगा। रांगे में यह विशेषता है कि यह हवा में रहने पर ऑक्सीजन के संयोग से अपने चारों ओर टिन ऑक्साइड की एक बहुत ही सूक्ष्म परत का निर्माण कर लेता है। यह परत स्थायी होती है जो पानी, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, कार्बनडाइऑक्साइड तथा अमोनिया आदि से प्रतिक्रिया नहीं कर सकती।

भूपटल में टिन सिर्फ 0.004 प्रतिशत उपस्थित है। यह प्रायः ग्रेनाइट के साथ पाया जाता है। ग्रेनाइट की एक पट्टी दक्षिण पूर्व एशिया,चीन, मलाया, इन्डोनेशिया तथा पूर्वी आस्ट्रेलिया होकर गुजरती है, जिसमें रांगे के अयस्क पाये जाते हैं। यूरोप में रांगायुक्त ग्रेनाइट सैक्सोनी, चेकोस्लोवाकिया, इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा स्पेन में पाया जाता है। दक्षिणी अमेरिका में रांगायुक्त ग्रेनाइट बोलीविया में मिलता है। अफ्रीका में नाइजीरिया तथा कांगों में रांगायुक्त ग्रेनाइट पाये जाते हैं। टिन के उत्पादन में मलयेशिया का योगदान सबके अधिक है। इसके अलावा अन्य प्रमुख टिन उत्पादक देश हैं - रूस, बोलीविया, इन्डोनेशिया, चीन, थाईलैण्ड तथा आस्ट्रेलिया। नीदरलैण्ड में भी काफी टिन मिलता है।

भारत में टिन-खनन के प्रयास प्रागैतिहासिक काल से ही चलते रहे हैं। उस समय भारत में रांगे का प्रमुख उपयोग था कांसे का निर्माण, परन्तु अनुमान है कि ये सभी खनन छिटपुट ढंग से तथा गृह उद्योग स्तर पर किये जाते थे। उस काल में भारत के किसी भी क्षेत्र में रांगा के विस्तृत पैमाने पर खनन किये जाने के संकेत नहीं मिलते। **मौक्लीलैन्ड** नामक भू-वैज्ञानिक ने सन् 1849 ई० में पारसनाथ के निकट पुरगों नामक स्थान में कैसीटेराइट नामक रांगे के खनिज का लौह भट्ठी में प्रगलन कुटीर उद्योग के स्तर पर होते देखा था। **फर्मर** ने सन् 1906 ई० में बताया कि पुरगों क्षेत्र में कैसीटेराइट ग्रेनुलाइट की एक पतली परत लगभग 15 सेंटीमीटर मोटी है जिसमें कैसीराइट 30 से 50 प्रतिशत तक रहता है। यूरोप के

किसी व्यवसायी ने सन् 1867 ई० में इस स्थान पर खनन का प्रयास किया था परन्तु उसे सफलता नहीं मिली थी। उसके पुनः सन् 1891-92 में खनन का प्रयास किया। उस समय 185 मीटर गहरा एक चानक खोदा गया। फिर उस चानक की गहराई 200 मीटर तक बढ़ाई गयी। इस स्थान पर रांगे के अयस्क की 15 से 33 सेंटीमीटर मोटी परत पाय गयी। कुछ समय के बाद आर्थिक कठिनाइयों के कारण खनन कार्य बन्द कर देना पड़ा।

बिहार में ही गया जिले के धनकरास एवं धनहवा पहाड़ियों में कैसीटेराइट नामक टिन अयस्क की प्राप्ति के समाचार हाल ही में मिले हैं। यहाँ पर अयस्कयुक्त चट्टान की पट्टी लगभग 4 किलोमीटर लम्बी तथा 0.36 किलोमीटर चौड़ी है। हजारीबाग जिले के अनेक स्थानों पर भी कैसीराइट पाया जाता है।

अभी भारत की टिन की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति आयात द्वारा होती है। भारत में टिन का सबसे अधिक आयात मलेशिया से किया जाता है। सन् 1980-90 के बीच लगभग साढ़े चार हजार टन रांगे का आयात प्रतिवर्ष अपने देश में हुआ। ■■

विज्ञान कविता

पर्यावरण को सुगंधित करें

■ *दिलीप भाटिया*
टाइप-5, अणुकिरण कालोनी,
रावतभाटा, भाभानगर-323307

पर्यावरण की हो अगर रक्षा
हमें मिलेगी सम्पूर्ण संरक्षा।
पेड़ लगाएं, पौधे लगाएं,
मन में यह संकल्प जगाएं॥
प्रदुषण से मिले हमें मुक्ति,
प्रकृति की गोद में है संतुष्टि
वायु एवम् जल हो शुद्ध,
नहीं हो कभी परमाणु-युद्ध॥

प्रगति की राह पर हम चलें,
परायों को भी गले लगाते चलें।
प्राकृतिक सम्पदा हो सुरक्षित
रहें हम सदा आनन्दित॥
मन से यही संकल्प करें,
पर्यावरण को सुगन्धित करें।
प्रगति होगी, विकास होगा,
हर चेहरे पर निखार होगा॥ ■■

सुदूर संवेदक अर्थात् अनूठी आँखें

❑ ज्ञानेन्द्र सिंह

रक्षा प्रयोगशाला, जोधपुर

किसी भी देश के सुव्यवस्थि विकास के लिए देश में विद्यमान विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों के बारे में सही व पर्याप्त सूचनायें प्राप्त करना आवश्यक है। भारत में इन संसाधनों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए पुरानी प्रणालियों पर निर्भर रहना पड़ता था जिसमें समय तो अधिक लगता ही था सूचनाएं भी विश्वसनीय नहीं होती थी। पृथ्वी को आकाश से देख कर अब ऐसे प्राकृतिक संसाधनों के बारे में सटीक और बहुत कम समय में सूचनायें प्राप्त की जा सकती हैं। इसके लिए दूर से ही जानकारी प्राप्त करने वाले यंत्र काम में लिये जाते हैं जिन्हें "सुदूर संवेदक" कहते हैं। इन्हें उपग्रहों, वायुयानों और धरातल पर ही ऊँची तिपाही पर स्थापित किया जाता है। वस्तु से संवेदक तक ऊर्जा के आवागमन का माध्यम वायुमण्डल है। वायुमंडल में ऊर्जा का क्षीणन (Attenuation) होता है। क्षीणन की मात्रा कुछ क्षेत्रों में कम होती है। न्यूनतम क्षीणन तरंग क्षेत्रों को वायुमण्डलीय खिड़कियाँ (Atmospheric Windows) कहा जाता है। ये वायुमण्डलीय खिड़कियाँ ही सुदूर संवेदन के लिए उपयुक्त हैं। इन विभिन्न वायुमण्डलीय खिड़कियों को ध्यान में रखकर विभिन्न सुदूर संवेदक काम में लिए जाते हैं।

पृथ्वी से उत्सर्जित या परावर्तित विकिरण से ही संकेत प्राप्त करने वाले संवेदक को निश्चेष्ट (Passive) संवेदक कहते हैं। जो संवेदक उत्सर्जित या परावर्तित ऊर्जा का उपयोग न करके यन्त्र द्वारा उत्पन्न विद्युत-चुम्बकीय विकिरण द्वारा पृथ्वी एवं उसके आस-पास की वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं उन्हें यथेष्ट (Active) संवेदक कहा जाता है।

कार्यप्रणाली के आधार पर संवेदकों को दो भागों में बाँटा गया है :

1. प्रकाशीय अवरक्त संवेदक (Optical Infrared Sensors)
2. सूक्ष्म तरंग संवेदक (Microwave Sensors)

1. प्रकाशीय अवरक्त संवेदक : प्रकाशीय अवरक्त तंत्र में फोटो संसूचक (Photo detector) की अहम् भूमिका होती है। संसूचक की संवेदनशीलता के आधार पर ही युक्ति का अभिकल्प (Design) तैयार किया जाता है। प्रकाशीय अवरक्त संवेदक निम्नलिखित चार प्रकार के होते हैं :-

1. फोटोग्राफिक कैमरा (Photographic Camera)
2. टेलिविजन कैमरा (T.V. Camera)
3. प्रकाशीय यांत्रिक परिलोकन यन्त्र (Optical Mechanical Scanner)
4. रेखिक प्रतिबिम्ब स्वयं परिलोकन संवेदक (Linear Imaging Self Scanner Sensor)

फोटोग्राफिक कैमरा

ये कैमरे सुदूर संवेदन हेतु सर्वाधिक काम में लाये जाते हैं। इन्हें हवाई जहाजों, गुब्बारों, मानव सहित एवं मानव रहित उपग्रहों में काम में लिया जाता है और एरियल कैमरा के नाम से जाना जाता है। ये कैमरे साधारण कैमरे से बड़े एवं भारी होते हैं। साधारण कैमरे में वस्तु या स्थल को फोकस पर और एरियल कैमरे में वस्तु या स्थल को अनन्त पर रखा जाता है। लेकिन

कार्यप्रणाली में कोई अन्तर नहीं होता । प्रतिबिम्ब बनाने के लिए एक लैंस (Lense) होता है, लैंस के आगे शटर लगा रहता है जो निश्चित समयान्तर से खुलता बन्द होता है और खुलने पर प्रकाश कैमरे में प्रवेश कर फोटोग्राफिक फिल्म पर प्रतिबिम्ब बना देता है (देखिये चित्र -1) ।
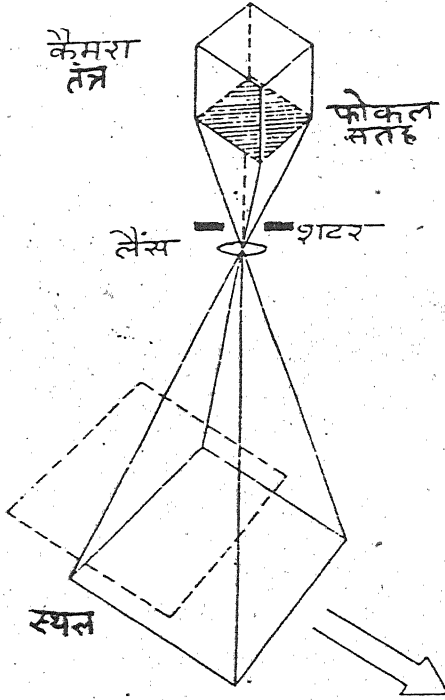
सुदूर संवेदन में के वर्षीय कैमरों (Single Band Cameras) के साथ-साथ बहुवर्णीय कैमरे (Multi Band Cameras) भी काम में लिये जाते हैं । बहुवर्णीय कैमरों से एक ही स्थल के चित्र को अलग-अलग वर्णक्रमों (Bands) में लिया जाता है । बहुवर्णीय कैमरो में प्रत्येक वर्णक्रम (Spectral band) का अलग लैंस होता है और छन्ना (Filter) होता है । चित्र विभिन्न वर्णक्रमों में के ही बड़ी फोटोफिल्म पर आते हैं, परन्तु इन कैमरों से प्राप्त चित्र इलेक्ट्रॉनिक स्वरूप में नहीं होते इसलिए आंकिक (digital) विश्लेषण तुरन्त नहीं हो पाता एवं मानवरहित अन्तरिक्षयान में फिल्म बदलना जटिल होता है ।

टेलीविजन कैमरा

टेलिविजन कैमरे में प्रकाशीय तन्त्र (Optical System) ऐसा बना होता है जिससे धरातल का चित्र फोटो चलित (Photo Conductive) सतह पर फोकस होता है । कार्यप्रणाली के अनुसार ये दूरदर्शन कैमरे दो प्रकार के होते हैं -

(क) विडिकॉन कैमरा (Vidicon Camera)

(ख) परावर्तन पुन्ड विजिकान कैमरा (Return Beam Vidicon Camera)
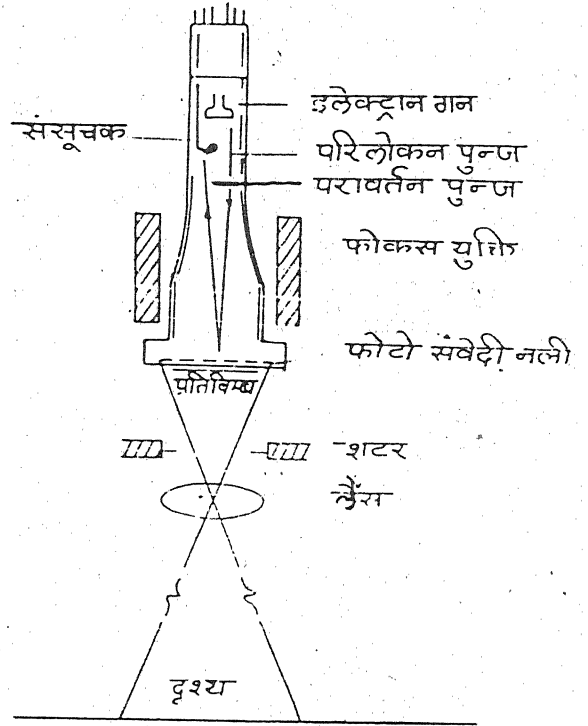
विडिकान कैमरे में प्रकाशीय तन्त्र धरातल के चित्र को फोटो-चलित सतह पर फोकस करता है जिससे आपतित फोटॉन (Incident Photon) प्रकाश तीव्रता के परिमाण के

अनुपात में परिवर्तन करते हैं। एक इलेक्ट्रॉन पुन्ज (Electron beam) फोटो-चलित सतह को पीछे की तरफ से परिलोकन (Scan) करता है और परिणाम स्वरूप इलेक्ट्रॉन पुन्ज की धारा में सतह चालकता में परिवर्तन के अनुपात में परिवर्तन होता है। इस प्रकार प्राप्त संकेत को प्रवर्धन (amplify) करके अंकित (record) या निर्गत (iransmit) किया जाता है। परावर्तन पुन्ज विडिकान (RBV) कैमरों में भी विडिकान कैमरों की तरह धरातल अथवा वस्तु का प्रतिबिम्ब फोटो चलित सतह पर फोकस करते हैं जिससे सतह चालकता में वस्तु अथवा धरातल से आने वाले प्रकाश तीव्रता के अनुपात में परिवर्तन होता है लेकिन संकेत फोटो चलित सतह से परावर्तित पुन्ज फिर इलेक्ट्रॉन गुणक (Electron multiplier) द्वारा प्रवर्धित किया जाता है। इस तरह से इन कैमरों की विडिकान कैमरों की अपेक्षा संवेदनशीलता अधिक होती है (देखिये चित्र-2)।
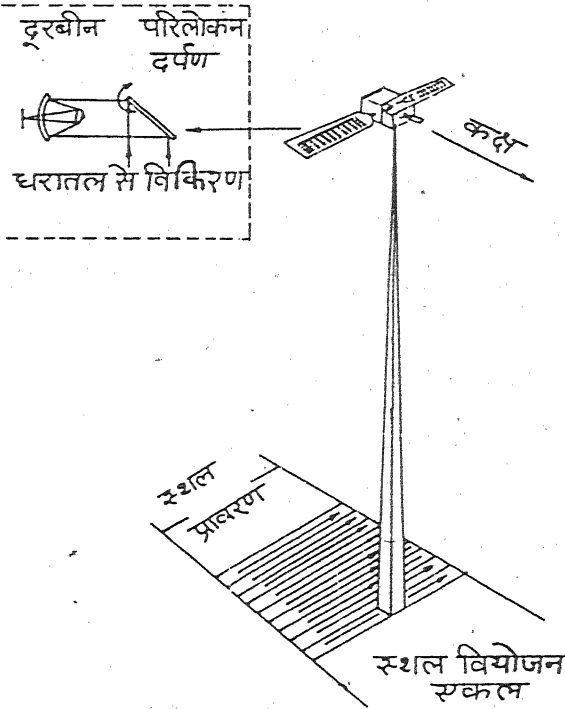
टेलिविजन कैमरों की संवेदनशीलता फोटोग्राफिक कैमरों की तरह दृश्य क्षेत्र (Visible region) एवं निकट अवरक्त क्षेत्र (Near infrared region) तक ही सीमित है।

प्रकाशकीय यान्त्रिक परिलोकन यन्त्र

उपरोक्त लिखित तन्त्र दृश्य क्षेत्र के साथ-साथ अवरक्त क्षेत्र में भी आंकड़े एकत्रित करते हैं। परिलोकन यन्त्र के तीन मुख्य भाग होते हैं।

(क) 45% पर पूर्ण दर्पण

(ख) प्रकाशकीय तन्त्र के साथ संसूचक और

(ग) अभिलेखक (recorder)।

पृथ्वी की सतह से प्राप्त ऊर्जा अथवा विकिरण दर्पण पर फोकस कर एकत्रित की जाती है और फिर प्रकाशीय तन्त्र द्वारा दर्पण द्वारा ऊर्जा को संसूचक तक पहुँचाया जाता है। संसूचक प्राप्त ऊर्जा (विकिरण) के अनुपात में विद्युत संकेत उत्पन्न करता है और प्रवर्धन कर चुम्बकीय टेप (Magenetic tape) में आंकिक अथवा चित्रित रूप में संकेत को एकत्रित कर लिया जाता है। ये यन्त्र एक प्रकाशीय बैण्ड (Optical band) में आँकड़े एकत्रित करने के अतिरिक्त अनेक बैण्डों में एक साथ आँकड़े एकत्रित करने की क्षमता रखते हैं। रात्रि के समय भी इनसे चित्र प्राप्त किये जा सकते हैं (देखिये चित्र -3)।

रैखिक प्रतिबिम्ब स्वयं परिलोकन संवेदक

इस तन्त्र में संसूचकों (detectors) को रैखिक क्रम में लगाया जाता है। ये संसूचकों का क्रम फोटो डायोडों (Photo Diodes), फोटो ट्रांजिस्टरों (Photo transistors), आवेश-संयुक्त-युक्तियों (Charge coupled devices) द्वारा बनाया जाता है। अनेक संसूचकों को रैखिक क्रम में लगाने के कारण ही इसका नाम रैखिक प्रतिबिम्ब स्वयं परिलोकन संवेदक (Linear Imaging Self Scanning Sensor) पड़ा जिसे संक्षिप्त में लिस (LISS) कहा जाता है। शेष कार्यप्रणाली एवं क्षमता वही है जो प्रकाशीय यान्त्रिक परिलोकन यन्त्र की है। फ्रान्स के स्पाट (SPOT) नामक उपग्रह में यही सुदूर संवेदक लगा है जो बहुवर्णीय

(Multibands) और एक वर्णीय (Single band) रूपों में कार्य करता है। भारतीय सुदूर संवेदन उपग्रह (Indian Remote Sensing Satellite) आई० आर० एस०-1 में भी इसी प्रकार के संवेदक लगे हैं (देखिये चित्र -4)।

2. सूक्ष्म तरंग संवेदक

ये संवेदक विद्युत-चुम्बकीय वर्णक्रम (Electromagnetic Spectrum) के सूक्ष्म तरंग क्षेत्र (Microwave Region) अर्थात् कुछ मि० मी० से कुछ से० मी० तक की तरंग लम्बाई वाले क्षेत्र के लिए अभिकल्पित किये जाते हैं। विद्युत-चुम्बकीय वर्णक्रम का सूक्ष्म तरंग क्षेत्र निम्नलिखित आवृति बैण्ड (Frequency Band) में वर्गीकृत किया जाता है।
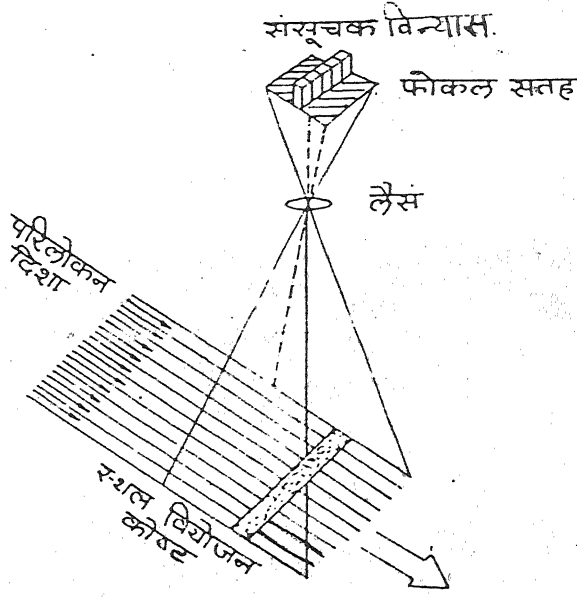
बैंड का नाम	तरंग लम्बाई (λ) से० मी०	आवृति (γ) गीगाहर्ट्ज
Ka	0.8 से 1.1 तक	40.0 से 26.5 तक
K	1.1 से 1.7 तक	26.5 से 18.0 तक
Ku	1.7 से 2.4 तक	18.0 से 12.5 तक
X	2.4 से 3.8 तक	12.5 से 8.0 तक
C	3.8 से 7.5 तक	8.0 से 4.0 तक
S	7.5 से 15.0 तक	4.0 से 2.0 तक
L	15.0से 30.0 तक	2.0 से 1.0 तक
P	30.0 से100.0 तक	1.0 से 0.3 तक

सूक्ष्म तरंग संवेदक मुख्यतया चार प्रकार के होते हैं -

1. पार्श्व अवलोकन वायुवाहित रडार (Side Looking Airborne radar) SLAR

2. संश्लेषी रन्ध्र रडार (Synthetic Aperture Radar) SAR

3. सूक्ष्म तरंग विक्षेपणमापी (Microwave Scatterometer)

4. सूक्ष्म तरंग विकिरण मापी (Microwave Radiometer)

पार्श्व अवलोकन वायुवाहित रडार

इस रडार का उपयोग सुदूर संवेदन और टोह (Reconnaissance) लेने के लिए किया जाता है। इसमें निर्गतकारक (Transmitter) होता है जो उच्च शक्ति स्पन्दित सूक्ष्म तरंग ऊर्जा (Pulsed Microwave Energy) को एन्टीना के माध्यम से निश्चित आवृत्ति पर निर्गत कर इच्छित भूभाग व वस्तु पर केन्द्रित करता है। भूभाग या वस्तु से इस ऊर्जा का परावर्तन होता है और ऊर्जा विक्षेपित (Scatter) भी होती है। इस परावर्तित ऊर्जा को वही एन्टीना ग्रहण कर अभिग्राही (Receiver) में भेज देता है।

अभिग्राही द्वारा प्राप्त संकेतों से चित्र तैयार कर लिया जाता है । संकुचित निर्गत स्पन्द (Narrow Tramitted Pulse) से पथ की आड़े दिशा में और संकुचित एन्टीना पुन्ज (Narrow Antenna Beam) से पथ की समानान्तर दिशा में चित्र का अच्छा वियोजन प्राप्त होता है जिन्हें निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया जाता है-

पथ के आड़े वियोजन (Rac) = CT/2, Cos γ

पथ के समानान्तर वियोजन (Ral) = R β

यहाँ C प्रकाश गति, γ आपतित कोंण (Incident angle,) T स्पन्द चौड़ाई, R रडार से लक्ष तक की परास (Range) और β एन्टीना पुन्ज की चौड़ाई । पुन्ज चौड़ाई, तरंग लम्बाई और एन्टीना लम्बाई पर निर्भर करती है क्योंकि β = l/L (देखिये चित्र -5) । एन्टीना लम्बाई जितनी अधिक होती उतना ही अच्छा पथ के समानान्तर वियोजन (Ral) होगा । परन्तु अधिक लम्बाई वाले एन्टीना को प्रयोग में लेते समय सीधा और सही दिशा में रखना समस्या होती है ।
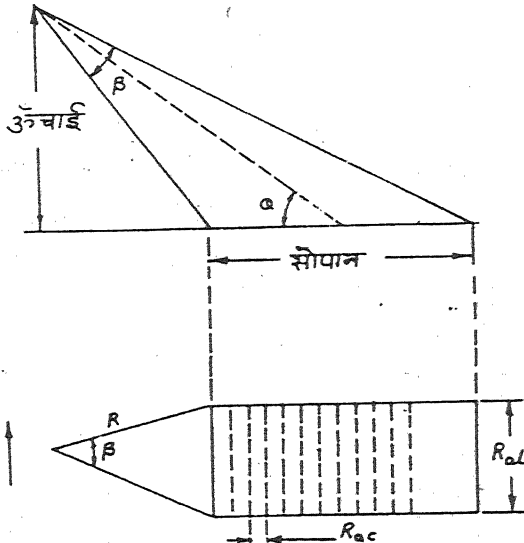
β — पथ के समानान्तर दिशा मे एन्टीना पुञ्ज चौड़ाई
a — आपतित कोण R — परास
Rac — पथ के आड़े वियोजन
Ral — पथ के समानान्तर वियोजन

संश्लेषी रंध्र रडार (SAR)

संश्लेषी रंध्र रडार डोपलर सिद्धान्त (Doppler Principle) पर आधारित है जिससे वियोजन (Resolution) एन्टीना लम्बाई पर निर्भर नहीं करता । इसमें एक छोटा एन्टीना चौड़ा पुन्ज निर्गत कर डोपलर सिद्धान्त के अनुसार लम्बे एन्टीना का कार्य करता है । इस रडार तन्त्र में बहु परावर्तित स्पन्दों (Multiple Return Pulses) के डौपलर विस्थापन (Doppler Shift) के आधार पर आँकड़े एकत्रित किये जाते हैं । अच्छे चित्र के लिए संकेत संसाधन (Signal Processing) तकनीक काम में ली जाती है । पार्श्व अवलोकन वायुवाहित रडार की तुलना में संश्लेषी रंध्र रडार की विषमता यही है कि वियोजन (Resolution) परास (Range) पर निर्भर नहीं करता ।

सूक्ष्म तरंग विक्षेपणमापी (Scatterometer)

यह भी रडार का दूसरा रूप है । यह वस्तु या वस्तु के किसी भाग द्वारा विक्षेपित ऊर्जा का विक्षेपण गुणांक (Scattering Coefficient) नापता है । विक्षणमापी में एक विकिरण निर्गत कारक (Transmitter) एक अभिग्राही (Receiver), एन्टीना, रडार नियन्त्रण इकाई, कोंण सूचक इकाई एवं एक छोटे गणक सहित आँकड़े एकत्रण इकाई होती है । निर्गत कारक (Transmitter) स्पन्दी संकेतों को निर्गत करता है । निर्गत किये गये संकेत अभिग्राही (Receiver) द्वारा ग्रहण कर संसाधित किये जाते हैं और गणना कर विक्षेपण गुणांक ज्ञात किया जाता है ।

सूक्ष्म तरंग विकिरणमापी (Radiometer)

विकिरणमापी अत्यधिक संवेदनशील अभिग्राही होते हैं । विभिन्न प्रकार के अभिग्राही सूक्ष्म तरंग क्षेत्र के लिए काम में लिये जाते हैं जिनमें डिके विकिरणमापी सर्वाधिक प्रयोग में आता है । विकिरणमापियों में मौलिक रूप में तीन उपतन्त्र (Subsystems) होते हैं -

(क) एक एन्टीना और परिलोकन उपतन्त्र जो साधन से विकिरण ग्रहण करता है,

(ख) एक विकिरण मापी अभिग्राही और

इलेट्रॉनिक्स उपतन्त्र जो संकेत का पता कर प्रवर्धन करता है और

(ग) एक आँकड़े और नियंत्रण उपतन्त्र जो उपयोगी विकिरण को निर्गत करता है ।

विकिरणमापी निश्चेष्ट (Passive) सूक्ष्म तरंग संवेदक है । इनका उपयोग भूभौतिक और मौसम सम्बन्धी आँकड़े प्राप्त करने के लिए किया जाता है । अधिक बड़े क्षेत्र के आँकडें प्राप्त करने के लिए परिलोकन एन्टीना (Scanning Antenna) प्रयोग में लाया जाता है ।

सूक्ष्म तरंग संवेदक प्रत्येक मौसम में काम आते हैं.। बादलों की पतली सतह भी इनकी कार्यक्षमता पर प्रभाव नहीं डालती । अतः सूक्ष्म तरंग संवेदकों द्वारा धरातल से बाधा रहति आँकड़े प्राप्त होते रहते हैं ।

■■

वर्मी कम्पोस्ट बनाकर कचरे का समाधान

इलाहाबाद, 25 अप्रैल । स्थानीय विज्ञान परिषद में पृथ्वी दिवस के अवसर पर 'धरती पर बढ़ता कचरा-समस्या और निपटान' विषय पर सं गोष्ठी का आयोजन किया गया । इसकी अध्यक्षता शीलाधर मृदा विज्ञान संस्थान के भूतपूर्व निदेशक प्रो० शिवगोपाल मिश्र ने की । गोष्ठी के आरम्भ में डॉ० सुनील दत्त तिवारी ने बताया कि जनसंख्या और सभ्यता विकास दोनों ही कचरे की समस्या के कारण हैं । इसका निपटान वर्मी कम्पोस्ट बनाकर या भस्मकों में जलाकर ही संभव है.।

दूसरे वक्ता डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय ने बताया कि जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ रही है वैसे-वैसे कचरे की समस्या भी बढ़ती जा रही है जिससे स्वास्थ्य व इसके निपटान की समस्या भी विकट रूप में सामने आ रही है.। इस समस्या के निराकरण के लिए यह आवश्यक है कि जन समुदाय संसाधन के बाद ही उसे फेंके तो इस समस्या से काफी हद तक निपटा जा सकता है ।

डॉ० दिनेश मणि, संयुक्त मंत्री की अनुपस्थिति में उनका लेख 'विज्ञान' मासिक के सम्पादक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव द्वारा पढ़ा गया । इस लेख में विभिन्न शहरों में उत्पादित होने वाले कचरे का विवरण प्रस्तुत किया गया जिससे प्रतिवर्ष बढ़ रहे कचरे की भयावहता स्पष्ट होती है । गोष्ठी के अध्यक्ष डॉ० शिव गोपाल मिश्र ने कहा कि कचरे को बेकार नहीं जाने देना चाहिए तथा इसका प्रयोग ऊर्जा उत्पादन व कम्पोस्टिंग में करके कचरे से कंचन की भावना को चरितार्थ करना चाहिए । उन्होंने बताया कि अब हमारे देश का प्रत्येक नागरिक जागरूक है और उसे उसकी उपयोगिता को बताकर इस समस्या को काफी हद तक नियन्त्रित किया जा सकता है ।

अन्त में गोष्ठी के संचालक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने सभी वक्ताओं एवं श्रोताओं को गोष्ठी में उनकी भागेदारी के लिए कृतज्ञता व्यक्त की ।

(अमृत प्रभात 26 अप्रैल 1996 से साभार)

विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा आयोजित अखिल भारतीय

विज्ञान लेख प्रतियोगिता 1996

व्हिटेकर पुरस्कार

दो सर्वश्रेष्ठ लेखों को पाँच-पाँच सौ रुपयों के दो पुरस्कार

शर्तें

1. लेख विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
2. केवल प्रकाशित लेखों पर ही विचार किया जायेगा।
3. लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।
4. प्रकाशन की अवधि जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
5. इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख जनवरी 1996 से दिसम्बर 1996 माह के बीच प्रकाशित हुआ हो।
6. लेखक को लेख के साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख मौलिक है.।
7. विज्ञान परिषद् से सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।
8. वर्ष 1996 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 15 मार्च 1997 है।
9. पुरस्कार के लिए पक्ष प्रचार करने वाले प्रतिभागियों को इस प्रतियोगिता के लिए उपयुक्त नहीं समझा जायेगा.।

लेख निम्न पते पर भेजें–

सम्पादक 'विज्ञान',
विज्ञान परिषद्,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

प्रकाशक	*सम्पादक*	*मुद्रक*	*सम्पर्क*
डॉ० डी० डी० नौटियाल	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	अरुण राय	विज्ञान परिषद्
प्रधानमंत्री	*सहायक संपादक*	प्रसाद मुद्रणालय	महर्षि दयानन्द मार्ग
विज्ञान परिषद् प्रयाग	डॉ० दिनेश मणि	7 बेली एवेन्यू, इलाहाबाद	इलाहाबाद

उत्तर-प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आँध्र प्रदेश
के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामायिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफ़ाफ़ा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र यदि किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिंतनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्नस्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु पुस्तक अथवा पत्रिका की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन की दरें निम्नवत् हैं।

भीतरी पूरा पृष्ठ 200.00 रु०, आधा पृष्ठ 100.00 रु० चौथाई पृष्ठ 50.00

आवरण : *द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ* 500.00 रु०।

मूल्य :
आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत : 500 रु० संस्थागत, **त्रिवार्षिक** : 60 रु० : **वार्षिक** 25 रु०
प्रति अंक : 3 रु० 50 पैसे, यह अंक : 7 रु०

प्रेषक : विज्ञान परिषद् प्रयाग,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद -211002

डॉ० गोरख प्रसाद जन्मशती अंक
ISSN : 0373 - 1200
जुलाई-अगस्त 1996
विज्ञान
कौंसिल ऑफ साइंटिफिक
एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च,
नई दिल्ली के आंशिक
अनुदान द्वारा प्रकाशित
विज्ञान
विज्ञान परिषद् प्रयाग
विज्ञान परिषद्
प्रयाग
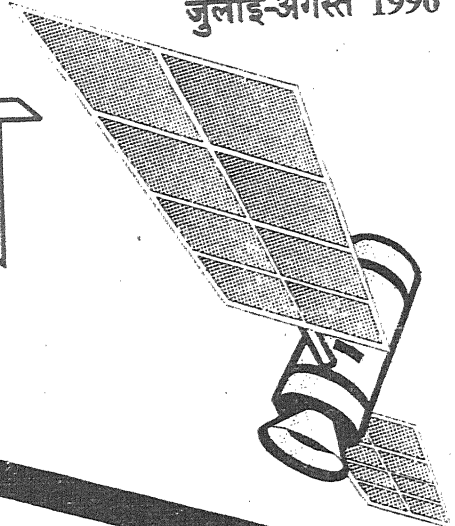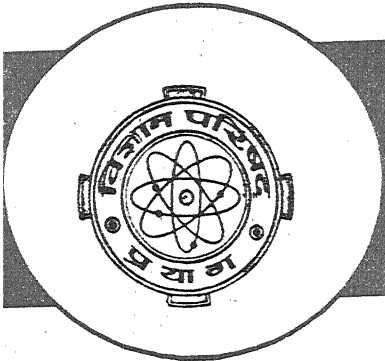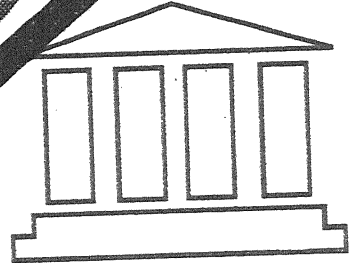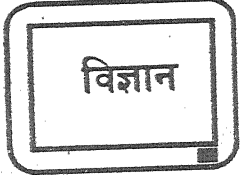
विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913 : विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

जुलाई-अगस्त 1996 : वर्ष 82 अंक 4-5; मूल्य : यह अंक : 7 रु०

आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत : 500 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 60 रु०, वार्षिक 25 रु०, एक प्रति : 3 रु० 50 पैसे

विज्ञान विस्तार

विज्ञान वक्तव्य—प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ... 1

यह गोष्ठी क्यों ?— डॉ० शिवगोपाल मिश्र ... 2

विज्ञान लेखन एवं सम्पापद में असमंजस की स्थिति— डॉ० शिवगोपाल मिश्र ... 4

हिन्दी में विज्ञान लेखन : समस्या का मूल विश्लेषण— स्वामी आत्मानन्द परमहंस ... 7

हिन्दी में विज्ञान लेखन : आवश्यकता एक सर्वस्वीकृत शब्दावली की— डॉ० दिनेश मणि ... 9

हिन्दी माध्यम में लेखन द्वारा विज्ञान लोकप्रियकरण : कुछ सुझाव— डॉ० सुनील दत्त तिवारी ... 11

विज्ञान लेखन और पत्रकारिता—विजयजी ... 13

'विज्ञान' के सम्पादन से संबंधित मेरे अनुभव— प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ... 15

विज्ञान लेखन, संपादन और प्रकाशन वर्तमान सन्दर्भ में विज्ञान परिषद्— डॉ० रामकृष्ण पाराशर ... 20

भारत में विज्ञान की शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधानकर्त्ताओं की समस्यायें— प्रो० दिव्य दर्शन पंत ... 23

गंगा के मैदानी भाग का एक अद्‌भुत वैज्ञनिकतीर्थ— डॉ०रमेश चन्द्र श्रीवास्तव ... 27

वार्षिक रिपोर्ट 1995-96— डॉ० डी० डी० नौटियाल ... 32

■ ■ ■

प्रकाशक	*सम्पादक*	*मुद्रक*	*सम्पर्क*
डॉ० शिवगोपाल मिश्र	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	अरुण राय	विज्ञान परिषद्
प्रधानमंत्री	*सहायक संपादक*	प्रसाद मुद्रणालय	महर्षि दयानन्द मार्ग
विज्ञान परिषद् प्रयाग	डॉ० दिनेश मणि	7 ए, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद	इलाहाबाद

प्रिय सुहृद !

'विज्ञान' का जुलाई-अगस्त 1996 अंक आपके हाथों में है। "विज्ञान" पत्रिका में हो रहे सुधार को आप सब ने भी देखा होगा। परिषद् का चुनाव सम्पन्न हो गया है। कुछ नये लोग चुन लिए गये हैं और कुछेक पुराने लोग भारमुक्त हो गये हैं। मैं मुक्त नहीं किया गया। नये पदाधिकारियों का स्वागत है, अभिनन्दन है। किन्तु जो लोग पदभार से मुक्त हो गए हैं उनका वरदहस्त, उनका सहयोग हमें प्राप्त है। अपने कार्य काल में उन्होंने परिषद् की अमूल्य और निःस्वार्थ सेवा की है। हम सब आभारी हैं।

'परिषद् का पृष्ठ' और 5 जून को 'विश्व पर्यावरण दिवस' पर सम्पन्न संगोष्ठी "पर्यावरण और हम" की संक्षिप्त रिपोर्ट इसी अंक में अलग से प्रकाशित है। इससे आपको परिषद् की गतिविधियों की झलक मिलेगी।

5 जून को 'विश्व पर्यावरण दिवस' की संगोष्ठी में पर्यावरण को और अधिक क्षत-विक्षत होने से बचाने के उद्देश्य से वक्ताओं ने एक स्वर से वनीकरण और वृक्षारोपण पर बल दिया। किन्तु प्रकृति के आगे किसकी चली है। जो नहीं होना था वह हो गया।

इलाहाबाद में 5-6 जून की रात में अति तीव्र गति से आँधी-पानी आया और वर्षों पुराने हजारों वृक्ष या तो जड़ से उखड़ गये अथवा उनकी मोटी-मोटी शाखायें टूट कर धराशायी हो गईं।

6 जून को सुबह का दृश्य हृदय विदारक था। गिरे वृक्षों ने अपने साथ बिजली और टेलीफोन के तार को तोड़े ही साथ ही बिजली के खम्भे और ट्रांसफारमर्स भी टूट गये। बिजली-पानी एकदम बंद।

किन्तु जीवन कभी रुका है क्या ? धीरे-धीरे स्थितियाँ सामान्य हो रही हैं। हाँ, एक बात साफ उभर कर सामने आयी और वह यह कि वृक्षारोपण करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वृक्ष कहाँ लगाये जायें और बिजली के तार और खम्भे कहाँ। सब कुछ विशेष 'प्लैनिंग' के तहत होना चाहिए। आँधी से होने वाले नुकसान की भरपायी शीघ्र तो नहीं हो पायेगी। आज 19 जून है और विज्ञान परिषद् की बिजली अभी तक भी ठीक नहीं हो पायी है। कमोवेश यही स्थिति शहर के कुछेक दूसरे मुहल्लों की भी है। वैसे लगभग ऐसी ही विभीषिका वाराणसी और गोरखपुर में भी सुनने में आई है। कुछ पशु-पक्षी तो मरे ही, कुछ आदमियों को भी जान से हाथ धोना पड़ा। मैं पिछले 33 वर्षों से इलाहाबाद में अध्यापन कर रहा हूँ, किन्तु आँधी-पानी का ऐसा 'ताण्डवनृत्य' मैंने इसके पूर्व कभी नहीं देखा था।

अतएव पिछले वर्षों के विपरीत 'विश्व पर्यावरण दिवस' से संबंधित अनेक कार्यक्रम और संगोष्ठियाँ जो एक सप्ताह तक चलती रहती थीं, इस बार 'राहत कार्य' में बदल गई।

कुछेक दुःखद समाचार और भी हैं। "विज्ञान" पत्रिका और "विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका" के मुद्रक श्री अरुण राय जी की माता जी का निधन हो गया। अरुण राय जी की माता जी परिषद् के पूर्व उपसभापति प्रो० चंद्रिका प्रसाद जी की बड़ी बहन और परिषद् के एक पूर्व कर्णधार स्वर्गीय डॉ० गोरख प्रसाद जी की पुत्री थीं। परिषद् के अन्य हितैषी डॉ० बी० बी० एल० सक्सेना जी की पत्नी का भी स्वर्गवास हो गया।

इलाहाबाद नगर क्या देश के जाने-माने अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के नेत्र-चिकित्सक डॉ० बी० बी० चन्द्रा का भी निधन हो गया। इस दृष्टि से पिछले कुछ दिन अच्छे नहीं रहे।

इस अंक में पढ़िए 'डॉ० गोरख प्रसाद जन्मशती' के अवसर पर आयोजित संगोष्ठी में प्रस्तुत आलेख।

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

यह गोष्ठी क्यों ?

❑ डॉ० शिवगोपाल मिश्र

संयोजक, डॉ० गोरखप्रसाद जन्मशती संगोष्ठी

पूर्व निदेशक, शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद

विगत 40 वर्षों से हिन्दी में विज्ञान लेखन तथा सम्पादन का दायित्व निभाते हुए मुझे लागातार ऐसा लगता रहा कि चाहे हिन्दी का विज्ञान लेखन हो या सम्पादन-- इसमें से कोई भी उस स्तर को प्राप्त नहीं कर पाया, जिसकी आशा की जाती थी। सम्भवतः स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद हिन्दी लेखकों तथा सम्पादकों में असमंजस की स्थिति बनी रही है। वे अपने दायें मराठी, बँगला, तेलगु आदि भाषाओं में रचित वैज्ञानिक साहित्य से या उनमें प्रकाशित पत्रिकाओं से तथा अपने बायें अंग्रेजी की प्रखरता से आतंकित होते रहे हैं। फिर भी, अनेक उत्साही युवा हिन्दी विज्ञान-लेखक आगे बढ़कर लेखन-सम्पादन में अपने को लगाकर दुस्साहस का परिचय देते रहे हैं।

वस्तुतः लेखन-सम्पादन कभी भी अरण्यरोदन नहीं रहा। लेखकों के समानान्तर प्रकाशक तथा पाठक वर्ग भी सदा से रहा है। शायद प्रकाशक के पास आकर्षण (चारा) है किन्तु पाठक वर्ग से लेखक को वितृष्णा ही मिलती रही है। यदि प्रकाशक के मोह-जाल में आकर लेखक अपने अहं की तुष्टि कर भी ले तो उसे मनवांछित अर्थ-प्राप्ति नहीं हो पाती क्योंकि पाठकवर्ग में अभी भी पठन-रुचि नहीं जग पाई है। इसीलिए प्रकाशक प्रायः लेखक को भ्रम-जाल में डालता रहा है।

इस देश में वैज्ञानिक परिवेश उत्पन्न करने तथा वैज्ञानिक मनोवृत्ति को बढ़ावा देने की बातें नेहरू जी के समय से हो होती आई हैं किन्तु हिन्दी को कभी राष्ट्रभाषा, कभी राजभाषा, तो कभी सम्पर्क भाषा का दर्जा देकर आम जनता की ही नहीं, प्रबुद्ध वर्ग की भी भावनाओं को कुंठित किया जाता रहा है। उसकी प्रतिक्रिया रह रहकर हिन्दी में विज्ञान लेखन तथा सम्पादन पर होती रही है। फिर हिन्दी समाचारपत्रों के सम्पादकों के नाम गर्व के साथ लिये जाते हैं किन्तु विज्ञान पत्रिका के सम्पादक का नाम लोगों की जबान पर शायद ही आता हो ? ऐसा क्यों?

इसी तरह क्या किसी ने कभी किसी के मुख से विज्ञान की पुस्तक की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कभी सुना ? इन पुस्तकों की समीक्षाएं क्या कभी छपीं ? क्या किसी ने उन्हें पढ़कर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की ? यदि ये पुस्तकें पुरस्कृत न हों तो इन्हें कोई जाने ही नहीं। किन्तु पुरस्कार किस तरह मिलते हैं, इसकी चर्चा न ही की जाय तो अच्छा है। पुरस्कृत लेखकों को भी कम ही लोग जानते हैं। ऐसे पुरस्कारों से घर वाले ही पुलकित होते हैं।

बात यह है कि अभी तक जो भी विज्ञान-पुस्तकें हिन्दी में लिखी गई हैं या पत्र-पत्रिकाओं में जितने भी लेखकों की रचनाएँ छपी हैं उससे यही निष्कर्ष निकाला जाता रहा है कि कुछेक लेखक ही इसी बहाने अपनी जीविका चला रहे हैं। उनके कर्त्तव्य का राष्ट्रीय उपयोग क्या है, औचित्य क्या है, उससे हिन्दी की साहित्य की कितनी अभिवृद्धि हुई है-- इन बातों की चर्चा भी नहीं

चलती । यदि किसी निर्देशिका में स्वलिखित परिचय (जो प्रायः बढ़ा चढ़ा कर लिखा जाता है) छप जाता है तो उसकी एक प्रति आधे मूल्य पर मिल जाने से लेखक अपने मित्रों को दिखाता फिरता है– इसमें प्रायः लेखों की संख्या सैकड़ों में, पुस्तकों की संख्या दर्जनों में, कभी तो एक सौ से भी ऊपर अंकित मिलती है तो लगता है कि इन होनहार विज्ञान लेखकों का सम्मान क्यों नहीं होता ? शायद नौकरी मिलने में ये उपलब्धियाँ कभी-कभी उपयोगी साबित होती हैं अन्यथा लेखन-जगत में धाक जमती हो ऐसा मैं नहीं समझता । फिर भी जो प्रश्न अनुत्तरित रहा जाता है वह यह है कि यदि सचमुच इतना अधिक लिखा गया है और छपा है तो हमारा यह रोना क्यों रहता है कि हिन्दी में स्तरीय विज्ञान साहित्य अभी तक उपलब्ध नहीं हो पाया।

शायद चर्बित चर्वण का प्राधान्य है– विपुल लेखन की तह में । हिन्दी में एक बयार बहती है– कुछ वर्षों तक 'ऊर्जा' पर, फिर 'पर्यावरण' पर, तो फिर 'वन्य जीवन संरक्षण' पर । इस कुज्झटिका में हजारों नये लेखक हाथ साफ करते रहे हैं और प्रकाशक 'बयार' को भुनाते रहे हैं । इसे सामयिक लेखन कहना ठीक होगा किन्तु एक विषय की तमाम पुस्तकें पढ़ जाइये—वही ढाक के तीन पात । सबों में वही सामग्री । इसे आप साहित्य की अभिवृद्धि कहेंगे या दिवालियापन ? अभी तक 'नीम' पर एक भी पुस्तक क्यों नहीं लिखी गई ? और बहुचर्चित 'सूर्य ग्रहण' पर कोई प्रामाणिक कृति नहीं छपी ? नये लेखक ताक में हैं कि कहीं कोई पुस्तक छप जाये तो वे भी लिखें ।

अतः लेखकों को अपने दिलों को टटोलना है । अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक बनना है । पुस्तकालयों तथा प्रयोगशालाओं की दीर्घाओं में चक्कर लगाना है । चोटी के वैज्ञानिकों से इंटरव्यू लेना है, किसानों से मिलना है, जनरुचि का पता लगाना है, पारिभाषिक शब्दावली को आत्मसात् करना है और प्रामाणिक साहित्य से अपना नाता जोड़ना है, विभिन्न साहित्य शैलियों का अभ्यास करना है।

हमारे बहुत से विज्ञान लेखक 'फ्रीलांसर' हैं । यह कोई बुरी बात नहीं प्रत्युत शुभलक्षण है और ऐसे लेखकों ने जी-जान से अनेक पुस्तकें लिखी भी हैं । लेकिन स्मरण रहे विपुल लेखन यदि गुणात्मकता में खरा न उतरे तो किसी भी दृष्टि से हिन्दी की श्रीवृद्धि नहीं हो सकती ।

स्वतन्त्रतापूर्वक थोड़े से विज्ञान लेखकों ने अपने दायित्व का निर्वाह करते हुए जितनी भी पुस्तकें लिखीं वे आज भी पठनीय एवं प्रशंसनीय हैं । किन्तु क्या वर्तमान लोकप्रिय पुस्तकों के बारे में ऐसा कहा जा सकता है ?

यदि लेखक अपनी रुचि के विषय पर ही कलम चलावें, यदि वे अपने क्षेत्र को व्यापक बनावें, यदि वे रचना को कालजयी बनाने का प्रयास करें तो भी बात बन सकती है । यदि हर प्रौढ़ लेखक एक नये लेखक को प्रशिक्षित करे, हर लेखक हिन्दी दिवस पर एक पुस्तक पूरी करे और हर पाठक प्रतिमास एक पुस्तक खरीदे तो लेखक, प्रकाशक, पाठक में अच्छा सम्बन्ध उत्पन्न हो सकेगा ।

मैंने कतिपय समस्याओं का तथा उनके निराकरण की एक चलताऊ झाँकी ही प्रस्तुत की है । आशा है आज की संगोष्ठी में समागत लेखक एवं सम्पादक मुख्य समस्याओं पर विस्तार से विचार विमर्श करेंगे और हिन्दी में विज्ञान लेखन तथा सम्पादन को नई दिशा प्रदान करेंगे। इसकी आज नितान्त आवश्यकता है । ■ ■ ■

विज्ञान लेखन एवं सम्पादन में असमंजस की स्थिति

❑ डॉ० शिवगोपाल मिश्र

पूर्व निदेशक, शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान
इलाहाबाद-211002

हिन्दी साहित्य के इतिहास में हिन्दी में विज्ञान लेखन एवं सम्पादन को विशिष्ट स्थान प्राप्त नहीं है। इसलिए विज्ञान लेखक तथा सम्पादक दोनों ही अममंजस की स्थिति में रहते आये हैं। फिर भी किसी भी पत्र-पत्रिका का सम्पादक अपेक्षतया सुदृढ़ आधार पर होता है–उसे नियमित वेतन मिलता है जिससे वह परिवार का भरण-पोषण कर सकता है किन्तु विज्ञान लेखक बेचारा दीनहीन ही बना रहता है। हाँ, यदि वह प्रारम्भ में तपस्या कर लेता है, यदि वह अपनी लेखनी को परिमार्जित कर चुका होता है, यदि वह विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों से अच्छे सम्बन्ध बना चुका होता है, यदि वह प्रकाशकों को अपनी मौलिकता या अपनी लेखन-कुशलता से प्रभावित कर चुका होता है तब तो वह अपने लेखन के बल पर जीवन-यापन कर सकता है और लेखन-कार्य पर अडिग रह सकता है। इसलिए पूर्णकालिक लेखन शायद अधिक कठिन है, अपेक्षा सम्पादक बन कर लेख या पुस्तकें लिखते रहने के या कॉलेजों, विश्वविद्यालयों या अन्य नौकरियों में रहते हुए लेखन करने के।

शायद **अध्ययन या शोध** कार्य करते हुए नवीन विषयों पर विज्ञान लेखन-निबन्ध, पुस्तिका अथवा पाठ्य-पुस्तकें लिखना सुगम तथा सुविधाजनक होता है क्योंकि पुस्तकालय से लगातार सम्बन्ध बना रहता है। इसमें सम्पादन का कार्य भी सुचारु रूप से चल सकता है.।

लेखकों की सूची देखने से पता चलता है कि अध्यापकों ने पाठ्य-पुस्तकों के लेखन या अनुवाद में काफी रुचि ली है किन्तु लोकप्रिय लेखन के प्रति उनमें झुकाव कम है। शायद इसलिए कि पहले प्रकार का लेखन उनके व्यवसाय से मेल खाता है, धन भी मिलता है किन्तु विडम्बना यह है कि वे हिन्दी लेखक होकर भी अंग्रेजी में व्याख्यान देते हैं। पता नहीं क्यों, हिन्दी उनके कण्ठ से फूट नहीं पाती, यद्यपि अब के अधिकांश अध्यापक इण्टर तक हिन्दी में विज्ञान की शिक्षा पाए हुए हैं। वे न तो हिन्दी पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग में दृढ़ दिखते हैं, न भाषा की व्याकरणिक शुद्धता के मामले में। वर्तनी की जैसी अधोगति आज है वैसी कभी नहीं थी, प्रायः पाठ्य-पुस्तकों में भी ऐसी त्रुटियाँ कम्पोजीटर से लेकर प्रूफरीडर तथा लेखक तक हिन्दी वर्तनी के प्रति सतर्क नहीं रहे। यह किसी भी भाषा के लिए शोचनीय है।

पुस्तकें लिखते समय हिन्दी **पारिभाषिक शब्दों** के साथ-साथ अंग्रेजी पर्यायों के बारम्बार प्रयोग या लिखे जाने की दलील देना बहुत लाभप्रद नहीं है। 50 वर्षों के बाद भी क्या इसकी आवश्यकता है ? यदि कोई संकल्प नहीं किया जावेगा तब तो अंग्रेजी चलती ही रहेगी और उस मन्तव्य की पूर्ति न होगी जिसके लिए हिन्दी में विज्ञान लेखन, पठन तथा पाठन को प्रोत्साहन दिया जाता रहा है तथा जिसके लिए हमारे वरिष्ठ लेखकों को काफी संघर्ष करना पड़ा था।

विज्ञान लेखन में आजकल **संयुक्त लेखन** की प्रवृत्ति बढ़ी है । इसके दो कारण हो सकते हैं– एक तो कनिष्ठ लेखक को प्रशिक्षित करना तथा वरिष्ठ लेखक द्वारा अपने अनुभव के आधार पर सन्दर्भ ग्रन्थों का निर्देशन कर कनिष्ठ लेखक से, जो प्रायः हिन्दी लेखन में पटु होता है, अच्छा स्तरीय निबन्ध तैयार कराना । पुस्तक लेखन में भी ऐसी सहभागिता दिखती है । इससे पुस्तकों की विषय वस्तु तथा गुणता में सुधार हुआ है । किन्तु इसका दुरुपयोग भी हो सकता है । दो में से जो लेखक प्रकाशक को प्रभावित कर सकता हो वह घटिया पुस्तक भी छपवा सकता है । अच्छा होगा कि विभिन्न अध्याय लेखकों की अपनी-अपनी योग्यता के आधार पर लिखे जायँ, भले ही उनका संशोधन दो में से कोई एक कर दे । प्रायः शोध पत्रों में यही शैली अपनाई जाती है इसीलिए वे उच्चस्तरीय होते हैं ।

ऐसे लेखन में **लेखक का उत्तरदायित्व** प्रमुख होता है । विषय का गम्भीर अध्ययन, अंग्रेजी ग्रन्थों से सहायता, संगत सन्दर्भों का एकत्रीकरण–कई बार लेखन, परिष्करण एवं वाचन होने के बाद पुस्तक छपे । तब कोई कारण नहीं कि जो हिन्दी कृति आवेगी वह अंग्रेजी या अन्य किसी भाषा की समानधर्मा कृति से होड़ ले सकेगी । अन्यथा यह आक्षेप ज्यों का त्यों बना ही रहेगा कि हिन्दी की पुस्तकें अंग्रेजी की पुस्तकों की तुलना में हल्की या सतही होती हैं.। इसलिए अनुभवी लेखकों को ही इस क्षेत्र में कलम उठानी चाहिए ।

हिन्दी लेखन में अभी तक विभिन्न **शैलियों** पर ध्यान नहीं दिया था । प्रायः निबन्ध शैली रूढ़ बन चुकी है किन्तु नाटक, रूपक, कथा-शैलियाँ भी रोचक हो सकती हैं । इसी तरह उपमाओं, रूपकों या प्राचीन उद्धरणों को स्थान मिलना चाहिए । इससे एकरसता टूटेगी, लेखन में रस आवेगा । रस की बात चली है तो सुझाव है कि हास्य-व्यंग्य को रचनाओं में स्थान दिया जाना चाहिए । वैज्ञानिक विषय वैसे भी नीरस होते हैं । उनमें हास्य-व्यंग्य से सरलता लाई जा सकती है ।

प्रायः हिन्दी में **विज्ञान कथाओं** के अभाव की ओर इंगित किया जाता है । ऐसा नहीं है कि लेखकों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया । किन्तु विदेशी लेखकों के समतुल्य हिन्दी में अभी भी लेखक नहीं हैं । मराठी के लेखक नार्लिकर अब हिन्दी में पदार्पण कर रहे हैं लेकिन हिन्दी क्षेत्र से कोई विज्ञान कथाकार आगे क्यों नहीं आता ? इसका प्रमुख कारण है कि हमारे अधिकांश लेखकों को वह उच्चस्तरीय ज्ञान नहीं है जो वैज्ञानिक उपन्यासों के लिए अपेक्षित है । कोरी कल्पना या केवल अध्ययन, अनुकरण से विज्ञान कथा का लेखन सम्भव नहीं । इस क्षेत्र में देश के उच्च स्तरीय वैज्ञानिकों को कलम चलानी होगी । और परिष्कार तो धीरे-धीरे होगा ।

यह शुभ लक्षण है कि **निबन्ध संग्रह तथा संकल्प संकलन** प्रकाश में आने लगे हैं किन्तु ऐसे निबन्धों पर ध्यान नहीं गया जो विचार-प्रधान हों । बर्ट्रेण्ड रसेल या रामन जैसे निबन्धों का अभाव अभी भी है । हिन्दी की महनीयता ऐसे निबन्धों द्वारा सिद्ध की जा सकती है ।

प्रायः **पुरस्कार** के लोभ में नये लेखक छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ लिखने लगे हैं जिनकी विषय वस्तु बहुज्ञात रहती है और उस विषय में बाजार में पहले से तमाम पुस्तकें उपलब्ध रहती हैं । ऐसा सस्ता लेखन हिन्दी के लिए शुभ नहीं । मार्च के आस पास प्रतिवर्ष ऐसी सैकड़ों पुस्तकें छपती रहती हैं । नये लेखक पुरस्कृत भी होते हैं, वे अपनी ऐसी रचनाओं की स्वयं खरीद कर अपनी ग्रांट का उपयोग करते हैं ।

यह सर्वविदित है कि हिन्दी में **विज्ञान पत्रिकाओं** की कमी है इसीलिये नये लेखकों को समाचार पत्रों से लिखना शुरू करना होता है । कभी-कभी कुछ उत्साही लेखक नई पत्रिकाएं भी निकालते रहते हैं लेकिन ये अल्पकाल में कालकवलित हो जाती हैं क्योंकि लोगों में पढ़ने के प्रति अन्यमनस्कता है । पढ़ने की आदत का न होना पत्रिकाओं की मृत्यु का कारण है । जब घर-घर में एक विज्ञान पत्रिका आने लगेगी तो लेखकों के लेखन के लिए मुक्त क्षेत्र मिलेगा और उनकी लेखनी परिष्कृत होगी.। तभी पाठकगण अपनी अभिरुचि से उन्हें अवगत भी करा सकेंगे । अभी तो लेखक जो कुछ लिखता है वह पाठकों को पढ़ना पड़ता है । जब लेखक अपने पाठकों की रुचि

से अवगत हो जावेंगे तो उनका लेखन सामयिक और सार्थक होगा । लेकिन सबसे बड़ी आवश्यकता है तमाम लेखकों में से अच्छे लेखकों का **चुनाव** एवं उनकी रचनाओं का समय-समय पर **मूल्यांकन** । यदि सम्पादकगण तथा प्रकाशकगण विज्ञान संस्थाओं से पत्र-व्यवहार करके लेखकों की सूची मँगाते रहें, यदि वे सारे लेखों एवं पुस्तकों की पाण्डुलिपियां विशेषज्ञों के पास उनकी सम्मति जानने के लिए भेजते रहें तो कोई कारण नहीं कि अच्छी पुस्तकें प्रकाश में न आवें । इसी प्रकार **पुरस्कारों** के लिए भी एक उच्चस्तरीय समिति बने जो पुस्तकें पर विचार करके लेखकों को पुरस्कृत करे । प्रायः विशिष्ट विषयों पर लिखित पुस्तकों पर विचार हो । प्रोत्साहन पुरस्कार भी दिये जायें किन्तु ऐसे व्यक्ति को पुरस्कार न दिया जाय जो उस विषय का विशेषज्ञ न हो या एक ही व्यक्ति को बार-बार पुरस्कृत न किया जाय ।

वर्तमान स्थिति से उबरने का शायद एक अन्य उपाय भी है– **विज्ञान पत्रकारिता** । लेखन के लिए यह प्रशिक्षण आवश्यक बना दिया जाय । प्रकाशक इसके बिना लेखकों की पुस्तकें न छापें । यही नहीं, विज्ञान लेखक हिन्दी कुशलता का भी प्रमाण-पत्र प्राप्त करें, व्याकरण पुष्ट कराने एवं थोड़े बहुत संस्कृत-ज्ञान कराने के लिए प्राथमिक कक्षाएँ चलाई जायें । इसके लिए **विज्ञान लेखक संघ** समुचित उपाय कर सकता है ।

देश में विज्ञान लेखन/सम्पादन का स्तर दिनोंदिन ऊपर उठे इसके लिए मिलजुल कर जल्दी से जल्दी प्रयत्न होने चाहिए । यहीं पर विज्ञान सेवी संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका आती है । ■■■

5 जून 'विश्व पर्यावरण दिवस' पर : 'पर्यावरण और हम' संगोष्ठी

आज 'विश्व पर्यावरण दिवस' के अवसर पर विज्ञान परिषद् के सभागार में जाने-माने पुरावनस्पतिविद् प्रो० डी० डी० पन्त जी की अध्यक्षता में 'पर्यावरण और हम' विषय पर एक संगोष्ठी सम्पन्न हुयी । इस संगोष्ठी में भाग लेने वालों में प्रमुख थे– प्रो० शिवगोपाल मिश्र, प्रो० डी० डी० नौटियाल, श्री दर्शनानन्द, प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, डॉ० चन्द्र विजय चतुर्वेदी, डॉ० सुप्रभात मुकर्जी, श्री विजय जी, डॉ० दिनेश मणि, डॉ० राज कुमार दुबे, श्री के० सी० मौर्य, डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय, श्री संजीव त्रिपाठी श्री अरुण कुमार सिंह, श्री विनोद कुमार पाण्डेय ।

संगोष्ठी के प्रारम्भ में विज्ञान परिषद् के नवनिर्वाचित सभापति प्रो० डी० डी० पन्त का स्वागत प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव द्वारा किया गया । बाद में प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने गोष्ठी का विषय प्रवर्तन करते हुए पर्यावरण के कुछेक चिंतनीय विषयों की ओर ध्यान आकृष्ट किया । धार्मिक आस्था के कारण आज भी बहुत से वृक्ष एवं वनस्पतियाँ सुरक्षित और संरक्षित हैं । अतएव इस पक्ष पर भी पुनः विचार करने की आवश्यकता है ।वक्ताओं ने भारत के बिगड़ते पर्यावरण, वायु, जल एवं स्थल प्रदूषण, निर्वनीकरण, औद्योगिकीकरण पर चिन्ता व्यक्त करते हुये इस बात पर बल दिया कि जहाँ तक हो सके हमें पर्यावरण को क्षति पहुँचाने वाली तकनीकों एवं उपकरणों से बचना चाहिये । आज पर्यावरण-मित्र तकनीकी विकसित करने की नितान्त आवश्यकता है ।संगोष्ठी की अध्यक्षता कर रहे प्रो० डी० डी० पंत ने अपने अध्यक्षपदीय उद्‌बोधन में बताया कि चीन जैसे देश जहाँ जनसंख्या-विस्फोट अपने आप में एक समस्या है, वहाँ भी पर्यावरण को सुरक्षित रखने के प्रति अधिक चेतना है.। इसके प्रमाण हैं–जगह-जगह सुन्दर वृक्षों और वनस्पतियों के बाग़-बगीचे और स्वच्छता पर विशेष ध्यान ।

इस संगोष्ठी में वक्ताओं ने यह महसूस किया कि पर्यावरण की शिक्षा की व्यवस्था बालक-बालिकाओं के लिये छोटी उम्र से ही होनी चाहिये ।

संगोष्ठी का संचालन "विज्ञान" के सहायक सम्पादक डॉ० दिनेश मणि ने किया तथा संगोष्ठी के आयोजक एवं 'विज्ञान' के सम्पादक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने अध्यक्ष सहित सभी श्रोताओं एवं वक्ताओं को धन्यवाद देते हुये बताया कि अभी भी बहिरादेव वनस्थली (आजमगढ़) जैसी अनेक वनस्थलियाँ अपने देश में विद्यमान हैं, जिनकी जैवविविधता का संरक्षण होना चाहिये । ■■■

हिन्दी में विज्ञान लेखन : समस्या के मूल का विश्लेषण

❑ स्वामी आत्मानन्द परमहंस
प्रयुक्त गणित विभाग, प्रौद्योगिक संस्थान
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-5

आज से लगभग चार दशक पूर्व की बात है जब लेखक इण्टरमीडिएट कक्षा का छात्र था, उन दिनों शासनादेश के कारण अंग्रेजी माध्यम से विज्ञान पठन-पाठन की अनिवार्यता समाप्त कर दी गयी थी। किन्तु यह कार्य अंग्रेजी माध्यम से ही किया जाता था। हिन्दी माध्यम से विज्ञान की पुस्तकें उपलब्ध करायी जाने लगी थीं। उनमें कुछ तो विदेशी लेखकों की ही पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद रूप थीं और कुछ हिन्दी में मौलिक ढंग से लिखी गयी थीं। अध्यापन अंग्रेजी माध्यम में होने के कारण यद्यपि अध्ययन में सुविधा अंग्रेजी माध्यम की पुस्तकों से ही थी तथापि आस्थावश मातृभाषा में लिखी कुछ विज्ञान पुस्तकें लेखक द्वारा खरीदी गयीं। डॉ० गोरख प्रसाद जी के द्वारा प्रणीत कैलक्यूलस भी उनमें से एक था। रुचि न बन पाने के कारण इस माध्यम की कुछ पुस्तकें थोड़े ही दिन में वापस या विक्रय कर दी गयीं किन्तु डॉ० साहब के द्वारा लिखित पुस्तक ने न केवल चलनकलन सिखाया बल्कि इस बात का भी अन्तःकरण पर एक गहरी छाप बना दिया कि चिन्तन और भावाभिव्यक्ति का माध्यम यदि हिन्दी हो तो हिन्दी में भी प्रभावकारी एवं सरस विज्ञान लेखन हो सकता है। अतः उनके जन्मशती समारोह के अवसर पर हिन्दी में विज्ञान लेखन तथा सम्पादन –समस्यायें तथा समाधान' विषय पर विचार के लिए एक सत्र विज्ञान परिषद् के द्वारा आयोजित होना एक बड़ी सूझबूझ का कार्य लगा। इसके लिए परिषद् के अधिकारी धन्यवाद के पात्र हैं।

एक उल्लेखनीय तथ्य है कि प्राचीन काल में जब इस देश के मनीषियों के चिन्तन-मनन एवं भावाभिव्यक्ति का माध्यम मातृभाषा थी उस समय विज्ञान तथा गणित एवं अनेकानेक अन्य ज्ञानविधाओं का अंकुरण एवं विकास इसी भूमि पर हुआ जैसे अंकगणित एवं जयमिति का[1]। यहां उदाहरण के रूप में बीजगणित की विशेषरूप से चर्चा की जाएगी। बीजगणित का भी जन्म इसी भूमि पर हुआ जब एक आकृति वाली यज्ञवेदी (जैसे कि आयताकार) को बिना क्षेत्रफल बदले अन्य आकृति वाली (जैसे वर्गाकार) वेदी में परिवर्तित करने की समस्या वेदी निर्माताओं के सामने आयी।

इन समस्याओं को (बीजगणितीय) समीकरण [2] हल करना कहा जाता था। पहले यह विधि हिन्दुओं के द्वारा उपयोग तो की जाती थी ः व्यवस्थित रूप से कोई ग्रन्थ इस पर न था। पांचवीं शताब्दी के आर्यभट्ट प्रथम ने अपने आर्यभटीय के गणितपाद में इस पर स्पष्ट रूप से कुछ चर्चा की थी। सातवीं शताब्दी में प्रारम्भ में ऋणात्मक संख्याओं के आविष्कर्ता भारतीय गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त ने अपने ग्रन्थ 'ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त' में इस पर विवेचन किया। मुहम्म इब्न मूसा अल्ख्वारिज़्मी नामक अरबी विद्वान् इस बीजगणितीय समीकरण हल करने की विधि को नवीं शताब्दी में अरब ले गये। उन्होंने एक ग्रन्थ लिखा "Hisab al-jabra w'al muqabala"[3]। इनसाक्लोपीडिया ब्रिटानिया से यह स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ या तो ब्रह्मगुप्त (625) अथवा

एक दूसरे समकालीन भारतीय गणितज्ञ भट्टबलभद्र की कृति का अनुवाद था, अथवा उनकी कृत्तियों पर आधारित था4। इनसाइक्लोपीडिया स्पष्टतया लिखती है कि हिन्दुओं के पास 'बीजगणित' नाम का विज्ञान पहले से था जो कि अरबी बीजगणित का मूल स्रोत है। इटली का एक व्यापारी इसे अरब से इटली ले गया और इस प्रकार इसका प्रवेश योरप में हो गया। बारहवीं शताब्दी में इसका लेटिन में दो बार अनुवाद "Liber algebrae almugabala" नाम से हुआ और वहां इसने इतनी प्रसिद्धि प्राप्त की कि इस विधा का ही नामकरण "algebra" कर दिया गया जो कि "al-jebra w'al-muqabala" (जो कि हिन्दुओं के समीकरण के आधार पर बना था) का संक्षिप्तीकरण है।

ज्ञातव्य है कि द्विघातसमीकरण पर्यन्त हिन्दुओं ने अपना वर्चस्व बनाये रखा। किन्तु बाद में ये अनेकानेक झंझावतों में उलझ गए। इनके चिन्तन का माध्यम भीषण रूप से विघ्नित हुआ। इतना ही नहीं चिन्तन करना भी दूभर हो गया। जो समाज अपने अस्तित्व के लिये ही संघर्ष करता रहे वह चिन्तन क्या कर पायेगा? फलतः समीकरण विज्ञान की धारा पश्चिम की ओर ही मुड़ी और त्रिघात समीकरणों को हल करने का श्रेय सोलहवीं शताब्दी के इटली के गणितज्ञों निकोलो टार्टग्लिया और जेरोलामो कार्डानो को गया। चतुर्घात समीकरणों को हल करने का श्रेय भी उसी ओर के गणितज्ञों को गया। गाउस (1777-1855) ने बीजगणित का मूल प्रमेय (Fundamental Theorem of Algebra) दिया। व्यापक पंचमघातीय समीकरणों के हल के प्रयास में उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पेरिस के गणितज्ञ गैलवा और नार्वे के गणितज्ञ आबेल ने आधुनिक बीजगणित (Modern Algebra) की नींव डाल दी जो कि गणित की लगभग सभी शाखाओं को व्यवस्थित करने के लिए आज उसी प्रकार महत्वपूर्ण है जैसे स्वयं गणित अन्याय विज्ञान की शाखाओं को भाषा देने के लिए। इस प्रकार हम देखते हैं कि समीकरण-समाधान-विज्ञान, जिसकी नींव अपनी मातृभाषा में चिन्तन करने वाले भारतीय मनीषियों ने अति प्राचीनकाल में रखी थी, आज कहां से कहां तक पहुंच चुका है।

आज 'रूसी भाषा में विज्ञान लेखन', 'जापानी भाषा में विज्ञान लेखन', 'चीनीभाषा में विज्ञान लेखन' आदि पर 'समस्यायें और समाधान' जैसे विषयों पर गोष्ठियों की चर्चा नहीं सुनाई पड़ती और न ही 'हिन्दी भाषा में राजनीति लेखन', 'हिन्दी भाषा में दर्शन लेखन' आदि 'समस्यायें और समाधान' जैसे विषयों पर कभी गोष्ठी की चर्चा सुनाई पड़ती हैं। क्योंकि रूसी, चीनी, जर्मन, फ्रेंच आदि भाषाओं में वहां के मनीषी विज्ञानचिन्तन करके उन्हीं भाषाओं के माध्यम से भावाभिव्यक्ति करते हैं। इसी प्रकार हमारे देश के राजनीति एवं दर्शनादि विषयों के चिन्तक मनीषी हिन्दी माध्यम से चिन्तन और भावाभिव्यक्ति करने के आदी हैं। अतः 'समस्यायें और समाधान' का प्रश्न कहां? अतएव यदि हम लोग स्वदेशी भाषाओं के माध्यम से विज्ञान-चिन्तन एवं भावाभिव्यक्ति की आदत डालें तो यह कोई समस्या नहीं रह जाएगी।

संदर्भ

1. हिन्दू गणित शास्त्र का इतिहास, प्रो० बी० बी० दत्त एवं प्रो० अवधेष नारायण सिंह द्वारा विरचित तथा प्रो० के० एस० शुक्ल द्वारा अनूदित। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित (1974)। अथवा वर्तमान लेखक द्वारा प्रणीत "Foundations of Indian Mathematics, Geometrical Ideas in the Sulb Sutras, Vedic Mathematics and Astronomy" इण्डियन कौंसिल आफ फिलासाफिकल रिसर्च, नई दिल्ली द्वारा शीघ्र प्राकाशय "Project of History of Indian Science, Philosophy and Culture." नामक ग्रन्थ के अन्तर्गत प्रकाशनाधीन।

2. सम पूर्व कृ से अभूततद्भाव में 'च्वि' प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुए 'समीकरण' शब्द का अर्थ है दो राशियों को बराबर करना।

3. इसका भी लगभग वही अर्थ है जो 'समीकरण' का।

4. ब० ल० उपाध्याय कृत 'प्राचीन भारतीय गणित', विज्ञान भारती नई दिल्ली (1978) में पृ० 191-192 पर उद्धृत।

हिन्दी में विज्ञान लेखन : आवश्यकता एक सर्वस्वीकृत शब्दावली की

❑ डॉ० दिनेश मणि
व्याख्याता, रसायन विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-2

वैज्ञानिक ज्ञान के महत्व को नये सिरे से बताना यहाँ आवश्यक नहीं है। बस इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि आपको यदि वैज्ञानिक, डॉक्टर, इंजीनियर तकनीशियन ही नहीं अपितु एडवोकेट या किसी प्रतिष्ठान का मैनेजेर, लेक्चचर आदि भी बनना है तो विज्ञान का अध्ययन आपकी कार्यक्षमता, निर्णयक्षमता तथा निपुणता में वृद्धि ही करेगा। बिना प्रचार-प्रसार के विज्ञान का व्यापक अध्ययन सम्भव नहीं है, यह सभी जानते हैं। किन्तु विज्ञान का प्रचार-प्रसार कैसे हो, यह कम लोग जानते हैं और विज्ञान के प्रचार-प्रसार की उपयुक्त रीति क्या हो, यह और भी कम लोग जानते हैं।

विज्ञान के प्रचार-प्रसार में 'प्रिण्ट मीडिया' का अपना अलग ही महत्व है। शिक्षकों के पश्चात् पुस्तकों का ही स्थान आता है। वैज्ञानिक ज्ञान के प्रचार-प्रसार से सम्बन्धित साहित्य के सृजन में मुख्य रूप से दो बातें होनी चाहिये—

1. एक तो पुस्तक में विषयों के तत्व का स्पष्टीकरण थोड़े ही शब्दों में भलीभाँति होना चाहिये।
2. दूसरी यह कि जो बातें विशेष रूप से सिखानी हैं उनका बार-बार उल्लेख होना चाहिये और उन विषयों को भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रतिपादित करने चाहिये।

वैज्ञानिक विषयों पर प्रामाणिक पुस्तकें तैयार करना आसान कार्य नहीं क्योंकि ऐसी पुस्तकें तैयार करने के लिये विषय का वैज्ञानिक ज्ञान तथा भाषा-सम्बन्धी ज्ञान दोनों में पारंगत विद्वान की आवश्यकता होती है यानि 'टू इन वन'। और यदि कोई 'टू इन वन' नहीं मिलता तो दो ऐसे व्यक्तियों (एक वैज्ञानिक ज्ञान वाला और दूसरा भाषा-ज्ञान वाला) की खोज कर उनसे कार्य सम्पादित कराया जाये।

विज्ञान-लेखन करने वाले लेखकों को चाहिये कि वे वैज्ञानिक ज्ञान को न सिर्फ लेख या 'फीचर' रूप में बल्कि कविता, कथा-कहानी, नाटक, पहेलियों, चुटकुलों इत्यादि रूप में लिखकर समाचारपत्रों, पत्रिकाओं में भेजें और प्रकाशकों को चाहिये कि वे शुद्ध साहित्य की तरह विज्ञान साहित्य को भी प्रकाशित करने में रुचि प्रदर्शित करें। इसके लिये समाचारपत्र एवं पत्रिकाओं को "जैसा ग्राहक वैसा माल" जैसी परम्परा से अलग हटकर कार्य करना होगा।

विभिन्न वैज्ञानिक शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्थानों द्वारा विज्ञान एवं तकनीकी से सम्बन्धित हिन्दी में प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं को नियमित रूप से कम अन्तराल पर प्रकाशित करवाना चाहिये जैसे— आई० आई० टी०, दिल्ली के हिन्दी कक्ष से प्रकाशित पत्रिका 'जिज्ञासा' को अर्द्धवार्षिक की जगह मासिक तथा आई० आई० टी०, बम्बई (मुम्बई) से प्रकाशित पत्रिका 'क्षितिज' को त्रैमासिक

की जगह मासिक कर देना चाहिये ताकि अधिकृत वैज्ञानिकों तथा तकनीशियनों के अधिक से अधिक उत्कृष्ट लेख पढ़ने को मिल सकें । इसी प्रकार 'भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र', मुम्बई की हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद् से प्रकाशित पत्रिका 'वैज्ञानिक', वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग दिल्ली से प्रकाशित पत्रिका 'विज्ञान गरिमा सिंधु'; केन्द्रीय हिन्दी सचिवालय परिषद्, दिल्ली से प्रकाशित पत्रिका 'विज्ञान गंगा' को भी त्रैमासिक के स्थान पर मासिक कर देना चाहिये ।

विज्ञान से सम्बन्धित पत्र-पत्रिकाओं का मुख्य उद्देश्य विज्ञान की उपलब्धियों को हिन्दी के माध्यम से सरल भाषा में जन-साधारण तक पहुँचाना तथा उनके अन्दर वैज्ञानिक मानसिकता का अंकुरण करना होना चाहिये । विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से समाज का एक बड़ा वर्ग आज भी अछूता है । बहुत से लोग आज भी नयी उपलब्धियों को वैज्ञानिकों के शोधकार्य का परिणाम न मानकर उन्हें एक जादू या चमत्कार समझता है । ऐसा वैज्ञानिक मनोवृत्ति के अभाव से होता है । प्रायः यह देखा गया है कि जन-साधारण किसी भी परिवर्तन को, चाहे खेती-बाड़ी की नयी विधि हो या व्यवसाय को उन्नत बनाने की नई प्रणाली, या जीवन को सुविधा प्रदान करने का उपाय हो, स्वीकार करने में काल्पनिक आशंकाओं का शिकार बनता है । अतः जनसाधारण को इन आशंकाओं से मुक्ति दिलाने के लिये लोगों में वैज्ञानिक चेतना जाग्रत करना अति आवश्यक हो जाता है । इस प्रयोजन हेतु प्रकाशकों, लेखकों तथा प्रचार-प्रसार कार्यकर्ताओं सभी को अपने-अपने उत्तरदायित्व को बखूबी निभाने की आवश्यकता है ।

वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, विभिन्न ग्रन्थ अकादमियों, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद्, राष्ट्रीय अनुसंधान एवं विकास निगम, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद, विभिन्न विज्ञान एवं प्रौद्योगिक केन्द्रों तथा विभिन्न विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक एवं तकनीकी साहित्य को हिन्दी में सृजित करने के प्रयास हो रहे हैं, किन्तु विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में जिस दर से प्रगति हो रही है उस अनुपात में हिन्दी में इन सूचनाओं के प्रकाशन/सृजन का कार्य, नहीं हो पा रहा है । जब पहले कोई सामग्री अंग्रेजी में प्रकाशित हो जाती है तो उसका बाद में हिन्दी में भी अनुवाद कर लिया जाता है, किन्तु सभी जानते हैं कि अनुवाद में भाषा का स्वाभाविक सौन्दर्य नहीं आ पाता, मूल भाषा का प्रवाह नहीं रह पाता तथा भाषा में बनावटीपन या कृत्रिमता की झलक देखने को मिलती है । अतः मौलिकता लाने के लिये विज्ञान सम्बन्धी नवीनतम शोधों को हिन्दी में सृजित करने की अविलम्ब आवश्यकता है ।

हिन्दी में विज्ञान एवं तकनीकी लेखन को उत्कृष्टता देने के दृष्टिकोण से सर्वप्रथम सर्व-स्वीकृत शब्दों के प्रचलन पर जोर देना होगा । इसके लिये माप तौल की इकाइयों, प्रतीकों को अन्तर्राष्ट्रीय सर्वमान्य रूप में ही लिखना चाहिये । रासायनिक तत्वों तथा सूत्रों का हिन्दी अनुवाद नहीं करना चाहिये । अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच आदि भाषाओं के ऐसे विदेशी शब्द जो भारतीय भाषाओं में प्रचलित हो गये हैं, उन्हें उसी प्रकार अपना लेना ही हितकर होगा । विभिन्न कोशों की सहायता से अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी के उपयुक्त शब्दों को ही लिखना चाहिये ।

यद्यपि प्रारम्भ में इन निर्देशों को व्यवहार में लाने पर थोड़ी कठिनाई अवश्य होगी किन्तु कालान्तर में हमारा हिन्दी में रचा गया वैज्ञानिक साहित्य मौलिक होने के साथ-साथ प्रामाणिक भी होगा तथा नयी पीढ़ी को अंग्रेजी भाषा में सृजित वैज्ञानिक साहित्य के विकल्प के रूप में हमारा यह हिन्दी में सृजित वैज्ञानिक साहित्य उपलब्ध हो सकेगा । ऐसा होने से विद्यार्थियों का अधिक से अधिक समय, श्रम तथा धन बच सकेगा और वे इसका उपयोग और अधिक वैज्ञानिक एवं तकनीकी जानकारी हासिल करने में कर सकेंगे । ■■■

हिन्दी माध्यम से लेखन द्वारा विज्ञान लोकप्रियकरणः कुछ सुझाव

❑ डॉ० सुनील दत्त तिवारी

औद्यानिक प्रयोग एवं प्रशिक्षण केन्द्र

खुशरूबाग, इलाहाबाद (उ० प्र०)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश में आर्थिक नियोजन द्वारा विकास के रास्ते को प्रशस्त किया गया। भारत ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति की। हमारा देश संसार के 10 औद्योगिक देशों की श्रेणी में आता है। कृषि-क्षेत्र में भी हरित-क्रान्ति के द्वारा नयी कृषि तकनीकों के उपयोग से खाद्यान्न उत्पादन में न केवल आत्मनिर्भरता ही प्राप्त की गयी है, अपितु अब इनका निर्यात भी होने लगा है।

इतना सब कुछ होते हुए भी एक बात स्पष्ट है कि हमारे देश में वैज्ञानिकों और तकनीशियनों की संख्या जितनी है उस अनुपात में विकास कार्यक्रमों और अनुसंधान की सफलताएँ निश्चित रूप से कम हैं। फिर भी जो कुछ उपलब्धियाँ हैं, उनकी उपयोगिता तभी है जब वे जन-सामान्य के लिए सुलभ हों। इस कार्य में संचार के माध्यम– रेडियो, दूरदर्शन, पत्र-पत्रिकाएँ आदि– महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जहाँ तक विज्ञान के क्षेत्र में पत्रकारिता की बात है वह बहुत पुराना नहीं है। भारत में 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' द्वारा अप्रैल 1915 में **'विज्ञान'** मासिक पत्रिका के प्रकाशन के साथ ही इसकी शुरूआत कही जा सकती है। आज हिन्दी का भण्डार विज्ञान से सम्बन्धित साहित्य से समृद्ध-सा लगता है। अनेक प्रकार के वैज्ञानिक कोश, विविध विषय, अनुसंधान पत्रिकाएँ, जनसामान्य के लिए लोकप्रिय पत्रिकाएँ आज भरपूर मात्रा में उपलब्ध हैं।

आज के वैज्ञानिक युग में विज्ञान के ज्ञान को जनसाधारण तक पहुंचाने का कार्य कितना महत्वपूर्ण है इसके दुहराने की आवश्यकता नहीं है। विज्ञान लेखन में जन-सामान्य की भाषा के विरोध में यह तर्क किया जाता है कि उच्चतम ज्ञान भण्डार अंग्रेज़ी में ही सबसे ज्यादा बढ़ रहा है। फिर भी यह कहना गलत न होगा कि विज्ञान के सरल ज्ञान को जन-जन तक पहुँचाना विदेशी भाषा के द्वारा नहीं हो सकता और न ही विकास का मार्ग ही प्रशस्त हो सकता है– इस सन्दर्भ में **भारतेन्दु हरिश्चन्द्र** की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।

बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय के शूल॥

आज वैज्ञानिक साहित्य के अंग्रेजी के अनेक शब्दों के पारिभाषिक शब्द गढ़ लिये गये हैं। उच्च कोटि के वैज्ञानिक साहित्य के सृजन में ये शब्द उपयोगी भी हैं। ऐसे साहित्य का अध्ययन तौर मनन करने वाला भी एक सुशिक्षित व्यक्ति ही होगा। कहीं-कहीं ये पारिभाषिक शब्द इतने दुरूह हैं कि उनके समानार्थी शब्दों की भी आवश्यकता पड़ जाती है। इन शब्दों के साथ अंग्रेजी के शब्द भी देने पड़ते हैं। ऐसा साहित्य सामान्यतः जनसामान्य

की समझ से परे होता है ।

हमारी भाषा की शब्दावली में संस्कृत शब्दों की प्रधानता है । कारण यह है कि प्राचीन काल में अपना देश आयुर्विज्ञान, ज्योतिष, दर्शन, नाट्यशास्त्र, गणित आदि विषयों की दृष्टि से अग्रणी था । और अधिकांश शब्द इन्हीं संस्कृतनिष्ठ विषयों से लिये गये हैं । परन्तु आम भाषा तो कुछ और ही है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि व्याख्यात्मक शब्द अपेक्षाकृत अधिक सरल और सुबोध होते हैं । और उन्हें ही लेखन में प्रमुखतः दी जानी चाहिए । परन्तु कहीं-कहीं ऐसे भी शब्द होते हैं जो व्याख्यात्मक तो हैं परन्तु तकनीकी अर्थ को स्पष्ट नहीं करते । जब तक हमें इनकी व्याख्या या परिभाषा का पता न हो तब तक इनके वैज्ञानिक अर्थ का बोध नहीं होता । कहीं-कहीं व्याख्यात्मक शब्दों के साथ संक्षिप्त संस्कृतनिष्ठ शब्दों का उपयोग ठीक रहता है जैसे--अंग्रेजी शब्द 'मेन्टीनेन्स' । इसके लिए हिन्दी में 'अनुरक्षण' के साथ 'रख-रखाव' शब्द का उपयोग किया जा सकता है । साथ ही लेखन में वे शब्द भी उपयोग में लाये जा सकते हैं जो अन्य अनेक भाषाओं के हैं और जनसामान्य की बोली में समाहित हो चुके हैं जैसे-- स्टेशन, सिग्नल, रेडियो, अखबार, टिकट । सच तो यह है कि पाठकों को ध्यान में रखकर जनसामान्य की भाषा में ही हम अपनी बात कहें । यदि कोई तकनीकी शब्द है तो उसको सामान्य भाषा में समझा कर लिखना अच्छा होगा साथ ही उस तकनीकी शब्द का भी उपयोग किया जाय.। इससे यह होगा कि पाठक लेखक की बात भी समझ जायेगा और इससे उसे ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में प्रयोग होने वाले नये शब्दों और उनसे सम्बन्धित अन्य बातों की भी जानकारी होगी । और इन सबके लिए आवश्यक है-- विषय वस्तु की स्पष्ट समझ और व्यापक ज्ञान का होना । विज्ञान साहित्य की एकरसता भी पठन के आनन्द को किरकिरा कर देती है । इसको दूर करने का उपाय यही है कि पाठक और विषय वस्तु के बीच सम्बन्ध स्थापित किया जाय । इसके लिए लेखक को चाहिए कि वह पाठक के मानसिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पक्षों को समझ कर उसके अनुसार विषयवस्तु को शैली में ढाले । जिस प्रकार से हिन्दी साहित्य में भावपक्ष और कला-पक्ष द्वारा समृद्धि लाई जाती है, उसी तरह से विज्ञान लेखन में भी भावपक्ष और कलापक्ष का पुट देकर पाठक को बाँधकर रखा जा सकता है ।

आज अनुसंधानकर्ताओं द्वारा ऐसे तथ्यों और शब्दों का पता चल रहा है जिन्हें जनसामान्य की भाषा में व्यक्त ही नहीं किया जा सकता, जैसे-- क्वांटम सिद्धान्त, पार्टिकिल फ़िज़िक्स अथवा वनस्पति विज्ञान में पौधों के वर्गीकरण से सम्बन्धित शब्द--मालवेसी, कुकुरबिटेसी, क्रूसीफेरी, अम्बेलीफेरी आदि । ऐसे शब्दों को हिन्दी के किसी विशेष शब्द द्वारा नहीं समझाया जा सकता । अतः इनको यदि जनभाषा में व्यक्त करना है तो इनका ज्यों का त्यों प्रयोग करने में हिचक नहीं होनी चाहिए । वैसे प्रचलित शब्दों का प्रयोग हो भी रहा है यथा, हारमोन, विटामिन, एक्सरे, अल्ट्रासाउन्ड, परमाणु ऊर्जा, कम्प्यूटर जैसे शब्द जनसामान्य के स्तर तक पहुँच गये हैं ।

किन्तु कहने का कदापि यह तात्पर्य नहीं है कि केवल पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग द्वारा ही विज्ञान को जनसामान्य तक पहुँचाया जा सकता है । इसके लिए कुल मिलाकर निम्न बातें ध्यान में रखनी होंगी ।

1. लेखक को विषयवस्तु का पूर्ण ज्ञान हो ।
2. लेखक पाठक के मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा बौद्धिक स्तर का भी ध्यान रखें ।
3. भाषा सरल, सुबोध तथा जनसामान्य के समझ की हो.।
4. दुरूह पारिभाषिक अथवा संस्कृतनिष्ठ शब्दों, जो सामान्य व्यक्ति की समझ से परे हैं, प्रयोग से यथासम्भव बचें ।
5. तकनीकी शब्दों का प्रयोग यदि बाध्यकारी हो जाय तो उसके साथ सामानार्थी शब्द दिये जायें अथवा उन्हें समझाकर लिखा जाय ।
6. विषय वस्तु के प्रारम्भिक ज्ञान के अभाव में उन्नत ज्ञान की जानकारी पाठक के लिए कोई अर्थ नहीं रखती.। इसलिए लेखन इस प्रकार का हो कि उसे प्रारम्भिक ज्ञान से विशिष्टता की ओर अग्रसर किया जाय ।

(शेष पृष्ठ 14 पर)

ग्राम्य जन-जीवन के संदर्भ में

विज्ञान लेखन और पत्रकारिता

❑ विजय जी

स्वतंत्र पत्रकार, घूरपुर, इलाहाबाद-211003

विज्ञान लेखन और पत्रकारिता, साहित्य की अपेक्षाकृत कई विधाएँ हैं, जिनका विकास विज्ञान के विकास के साथ-साथ हुआ है। विज्ञान जितनी तेजी से विकसित हो रहा है सामाजिक परिवर्तन की रफ्तार भी उतनी ही तेज है। यह अलग बात है कि समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा इस दौड़ में लगातार पिछड़ता जा रहा है। उदाहरण स्वरूप गांव के परिवेश को लिया जा सकता है, वहां विकास की नई अवधारणा के कारण पुरानी परंपराएं और मूल्य तो खत्म हो रहे हैं लेकिन नई वैज्ञानिक दृष्टि विकसित नहीं हो पा रही है।

आम तौर पर गांवों की तस्वीर खींचने वाले ग्रामीणों को जाहिल गंवार और गांवों के परिवेश को गंदा और अस्वास्थ्यकर बताया करते हैं जबकि वास्तविकता ऐसी नहीं है। परंपरागत जीवन शैली पर दृष्टि डालने पर हमें पता चलेगा कि औसत ग्रामीण औसत शहरी से अधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाला होता है। सुबह उठना चाहिए, शारीरिक श्रम करना चाहिए, मोटे अनाज और ताजी सब्जियां खानी चाहिए, मोटे कपड़े पहनने चाहिए, रसोई घर में जूते पहनकर न घुसना चाहिए, गर्भावस्था में शारीरिक श्रम करना चाहिए जैसे अनगिनत बातें विज्ञान सम्मत हैं और इन्हें औसत ग्रामीण अपनाता भी है। वृक्ष लगाना चाहिए, दरवाजे पर नीम और आंगन में तुलसी रोपना चाहिए जैसी बातों को गांव वालों को बताने की जरूरत नहीं है। नीम का गुणगान वैज्ञानिकों ने करना शुरू किया है लेकिन भारतीय गांवों के लोग नीम के गुणों से हजारों सालों से परिचित हैं।

खेती-बारी को ही ले लें। कृषि विज्ञान बहुत उन्नत हो चुका है। खेत में फ़सल को पानी चाहिए या नहीं इस बात की जानकारी के लिए भी विदेशों में कम्प्यूटर का प्रयोग होने लगा है। लेकिन भारतीय किसान इतना अनुभवी होता है कि वह बीज, खाद, पानी, निराई, गुड़ाई आदि का कब और कितना प्रयोग करना है जैसी बातों को अपने अनुभव से जान पाता है। अंधविश्वास के मामले में भी गांवों की बड़ी विकृत तस्वीर खींची जाती है। पहले की बात मैं नहीं कहता, लेकिन वर्तमान में स्थिति ऐसी नहीं है। बल्कि मैं तो कहता हूँ शहरों के पढ़े-लिखों की अपेक्षा गांव के औसत आदमी में अंधविश्वास कम ही है। इस बात की पुष्टि के लिये मैं एक उदाहरण देना चाहूँगा। कुछ माह पूर्व देश के अनेक महानगरों, नगरों और कस्बों में गणेश मूर्तियों द्वारा दूध पीने की घटना को चमत्कार का रूप देकर प्रचारित किया गया। गणेश प्रतिमा को दूध पीता देखने वालों में अधिकांश पढ़े-लिखे लोग तो थे ही, बड़े-बड़े अधिकारी तक इस अंधविश्वास में शामिल देखे गये। अखबारों में बड़े-बड़े सचित्र फोटो छपे। लेकिन

कहीं किसी गांव का जिक्र हमने अखबारों में नहीं पढ़ा जहां ग्रामीणों ने गणेश प्रतिमाओं को दूध पिलाया हो ।

इन सब के बावजूद मैं यह मानता हूँ कि गांव के लिये विज्ञान लेखन और विज्ञान पत्रकारिता की आवश्यकता आज सबसे ज्यादा है । ऐसा मैं इसलिये नहीं कहता कि गांव के लोग अज्ञानी या अंधविश्वासी हैं बल्कि आवश्यकता इसलिये है कि विकास के नये "मॉडल" को गांव वाले समझ नहीं पाये हैं । परंपरागत रहन-सहन और खेती के तौर तरीकों में भारी बदलाव आया है । खेती में उर्वरक और कीटनाशकों का उपयोग जरूरी हो गया है । कौन सा उर्वरक किस मिट्टी में कब और कितना डालना चाहिए यह किसान नहीं जानता । कीटनाशकों का कहां कितना दुष्प्रभाव हो रहा है, यह भी किसान नहीं जानता.। ईंट-भट्ठे खुलने से आप की फ़सल तो चौपट हो ही रही है और भी अनेक दुष्प्रभाव हो रहे हैं । पहले साबुन और डिटर्जेंटों का उपयोग नहीं होता था लेकिन अब गांवों में भी इनका व्यापक उपयोग हो रहा है । इस तरह की अनगिनत बातें हैं जिनके कारण आज गांव वालों की जीवन शैली भी पूरी तरह बदल गयी है । इस बदले परिवेश के विज्ञान को गांव का आम आदमी नहीं जानता । आज इसी को बताने के लिये विज्ञान पत्रकारिता की आवश्यकता है.।

संचार माध्यमों के व्यापक प्रचार-प्रसार के कारण अब कोई गांव कहीं अलग-थलग नहीं रह गया है । यदि कहीं अखबार नहीं पहुंचता तो रेडियो तो होगा ही । दूरदर्शन भी अब देश के अधिकांश गांवों में पहुंच चुका है । लेकिन वर्तमान में सर्वाधिक घरों तक रेडियो की ही पहुँच है । रेडियो, टीवी और अखबारों के माध्यमों से विज्ञान सम्बन्धी जानकारियाँ गांव गांव पहुंचायी जा सकती है । सबसे स्वस्थ माध्यम अखबार हो सकते हैं क्योंकि रेडियो और टीवी सरकार द्वारा नियंत्रित होते हैं । अखबारों में अब विज्ञान सम्बन्धी बातों इके लिये काफी जगह ही दा जा रही है । आवश्यकता है इन्हें ग्रामोन्मुखी बनाने की ।

ग्रामीण विज्ञान पत्रकारिता बहुआयामी विषय है जिनमें लेखन की असीम संभावनाएं हैं । कृषि, स्वास्थ्य, पर्यावरण, प्रदूषण, रहन-सहन, परंपराओं आदि पर व्यापक वैज्ञानिक लेखन किया जा सकता है । लेकिन सबसे बड़ी आवश्यकता है विज्ञान लेखकों और विज्ञान पत्रकारों की । आज पहली बात तो यह है कि विज्ञान लेखक और विज्ञान पत्रकार ही इने गिने हैं । और जो हैं भी उन्हें ग्रामीण जनजीवन की सम्यक जानकारी नहीं है । इस सम्बन्ध में प्रतिभाशाली ग्रामीण युवक-युवतियों को आगे आना चाहिए और अब विज्ञान पत्रकारिता के माध्यम से गांवों की सेवा करने के लिये कमर कस लेनी चाहिए ।

■■■

(पृष्ठ 12 का शेषांश)

7. लेखन में विषयवस्तु की नीरसता और शैली की क्लिष्टता से बचा जाय ।
8. किसी गूढ़ वैज्ञानिक विषय पर लिखते समय यदि सुपरिचित हिन्दी शब्दों में से कोई समानार्थक पारिभाषिक शब्द मिलता है तो उपयोग किया जाय.।
9. वाक्य बहुत अधिक लम्बे न हों । ऐसे वाक्य एकरसता, एवं उबाऊपन उत्पन्न करते हैं ।

इसमें सन्देह नहीं कि उपर्युक्त बातों का ध्यान रखते हुए विज्ञान लेख की रचना की जाय तो उससे आम पाठक की जहाँ एक ओर विज्ञान में रुचि जाग्रत होगी वहीं देश में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रचार-प्रसार में निश्चित रूप से सहायता मिलेगी । ■■■

'विज्ञान' के सम्पादन से संबंधित मेरे अनुभव

❑ प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

सम्पादक 'विज्ञान', विज्ञान परिषद् प्रयाग,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

आदरणीय सभाध्यक्ष जी एवं विद्वतजन !

महामानव और ख्यातिप्राप्त गणितज्ञ एवं ज्योतिष विज्ञानी स्वर्गीय डॉ० गोरख प्रसाद जी की जन्मशती समारोह के पुनीत अवसर पर मैं 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' की ओर से और अपनी ओर से आप सभी का हृदय से स्वागत करता हूँ, अभिनन्दन करता हूँ और आप सभी को प्रणाम करता हूँ। मेरा नमन स्वीकार करें।

वैसे एक बात मैं प्रारंभ में ही साफ़-साफ़ कह दूँ कि मैं यहाँ कोई व्याख्यान देने नहीं आया हूँ। बस, आपसे कुछ बातें करने आया हूँ। आप सभी के साथ अपने अनुभव बाँटने आया हूँ।

'विज्ञान परिषद् प्रयाग' की स्थापना 10 मार्च 1913 को हुई थी और "विज्ञान" मासिक पत्रिका का प्रकाशन अप्रैल 1915 से हो रहा है। इस प्रकार 82 वर्ष पूरे होने वाले हैं। इस अवधि में विज्ञान विषयक अनेक पत्रिकायें काल कवलित हो गईं। इनमें विज्ञान जगत्, विज्ञान लोक, लोक विज्ञान, विज्ञान डाइजेस्ट, ज्ञान-विज्ञान, विज्ञान दूत, विज्ञान भारती, विज्ञान वैचारिकी, पर्यावरण दर्शन, वानस्पतिकी, विज्ञान वीथिका का नाम लिया जा सकता है।

किन्तु 'विज्ञान' का प्रकाशन अभी भी हो रहा है, अनेकानेक कठिनाइयों के बावजूद। यह हमारे लिये संतोष का विषय हो सकता है, किन्तु हमें कठिनाइयों से बराबर जूझते रहना पड़ता है। अतएव इस पत्रिका से संबंधित व्यक्तिगत रूप से मुझे जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है और पड़ रहा है, मेरे जो अनुभव हैं, उन्हीं के संबंध में आपसे बात करना चाहूँगा।

पत्रिका के प्रकाशन से संबंधित पहलुओं में सबसे पहला है आर्थिक पहलू, दूसरा पत्रिका को स्तरीय बनाये रहना और तीसरा पहलू है पत्रिका का समय से प्रकाशन।

'विज्ञान' पत्रिका का आर्थिक पक्ष सवैद दुर्बल रहा है। इसका कारण है सरकारी अनुदान पर निर्भरता। इस समय 'विज्ञान' पत्रिका को सी० एस० आई० आर०, नई दिल्ली से 30 हजार और उत्तर प्रदेश सरकार से 2 हजार रुपयों की सहायता मिलती है। पहले तो दिल्ली से मिलने वाली सहायता राशि और भी कम थी। इस प्रकार वर्तमान में कुल 32 हजार रुपयों की वार्षिक सहायता हमें मिल रही है। पत्रिका मासिक और 32 पृष्ठों की। इस प्रकार एक माह की पत्रिका के प्रकाशन के लिए 3 हजार से भी कम धन उपलब्ध है। और तो और, यह राशि भी हमें विलम्ब से मिलती है। वास्तविकता तो यह है कि पूरे वर्ष हम कागज़ वाले, मुद्रक, बाइण्डर आदि के कर्ज़दार बने रहते हैं और राशि मिलने पर भी कर्ज़ से पूर्णरूपेण मुक्त नहीं हो पाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि पत्रिका के प्रकाशन के लिए हमें पूरी तरह से मुद्रक के ऊपर निर्भर

रहना पड़ता है। फिर तो पत्रिका के प्रकाशन के संबंध में हमें विवश होकर ही क़दम-क़दम पर समझौते करने पड़ते हैं। ऐसी दशा में पत्रिका वर्ष में अनेक बार समय से प्रकाशित नहीं हो पाती है और तब हमें संयुक्तांक निकालने पड़ते हैं। चाहते हुए भी न तो हम कागज़ की गुणवत्ता में सुधार कर पा रहे हैं, न कवर को आकर्षक बना पा रहे हैं और न ही लेखों के साथ आवश्यक चित्र दे पा रहे हैं।

यहाँ एक बात मैं और कहना चाहूँगा और वह यह कि हम लेखों के लिए लेखकों को कोई मानदेय नहीं दे पाते। बीच में लेखकों को मानदेय के रूप में 25 रुपये से लेकर अधिकतम 40 रुपये प्रति लेख तक देते थे, किन्तु बाद में कागज, मुद्रण, चित्र, ब्लाक आदि बनवाने में इतना अधिक खर्च बढ़ गया कि लेखों पर मानदेय देना बंद कर देना पड़ा।

किन्तु इसके बावजूद भी हमें लेखकों से लेख प्राप्त होते रहे। इसका कारण संभवतः यह हो सकता है कि विज्ञान परिषद् प्रयाग से जुड़े व्यक्ति परिषद् के प्रति, स्वर्गीय स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी के शब्दों में सदैव—'समर्पित व्यक्ति' रहे हैं।

लेखों की उपबल्धता के विषय में हम सदैव भाग्यशाली रहे हैं। जब भी हम 'विज्ञान' का कोई विशेषांक निकालते हैं तो उसके लिए हिन्दी के चोटी के लब्धप्रतिष्ठ विज्ञान लेखकों का सहयोग हमें बराबर मिलता रहा है, चाहे डॉ० रमेश दत्त शर्मा हों, श्री प्रेमानन्द चन्दोला हों, श्री तुरशनपाल पाठक, श्री श्याम सुन्दर शर्मा, श्री राम लखन सिंह अथवा वयोवृद्ध लेखक श्री श्याम सरन अग्रवाल 'विक्रम' हों। इस तरह से 'विज्ञान' पत्रिका के लिए लेख भेजने वालों की काफी लम्बी सूची है। इसका कारण यह है कि शायद ही कोई ऐसा हिन्दी विज्ञान लेखक हो जो विज्ञान परिषद् अथवा 'विज्ञान' पत्रिका से जुड़ा हुआ न महसूस करता हो।

जब भी परिषद् में राष्ट्रीय स्तर की कोई संगोष्ठी होती है तो लेखक-सम्पादक यहाँ पधार कर परिषद् की गरिमा बढ़ाते हैं। 'ईस्वा' फीचर और 'सम्प्रेषण' से हमें बराबर लेख प्राप्त होते रहते हैं। किन्तु बार-बार 'विज्ञान' के प्रत्येकि अंक के लिए स्थापित लेखकों से लेख माँगना अच्छा नहीं लगता। दूसरी बात यह है कि विज्ञान परिषद् प्रयाग और 'विज्ञान' पत्रिका का उद्देश्य नये लेखकों को 'जन्म देना' भी है। आज के अनेक सुपरिचित एवं स्थापित हिन्दी विज्ञान लेखकों की पहली रचना 'विज्ञान' प्रत्रिका में ही प्रकाशित हुई है। 'विज्ञान' ने नये उत्साही लेखकों को मंच देकर उन्हें सदैव प्रोत्साहित किया है।

इस दृष्टि से मुझे अपने कार्य से संतोष मिला है। मेरे सम्पादन के काल में विज्ञान में लेखिकाओं और विज्ञान कविता लिखने वालों की संख्या में वृद्धि, विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

इस प्रकार 'विज्ञान' के स्तर को निरंतर ऊपर ले जाने का हमारा दृष्टिकोण कभी नहीं रहा, क्योंकि 'विज्ञान' पत्रिका व्यावसायिक पत्रिका नहीं है और न ही विज्ञान की किसी अन्य पत्रिका से हमारी कोई प्रतिस्पर्धा ही है। वास्तविकता तो यह है कि हम चाहते हैं कि अन्य सरकारी अथवा गैर सरकारी संस्थान हिन्दी में विज्ञान विषयक श्रेष्ठ पत्रिकाओं का प्रकाशन करें ताकि हिन्दी लेखकों को और भी मंच मिलें।

किन्तु स्तरीय लेखों की उपलब्धता के बावजूद कुछ खट्टे अनुभव भी हैं। एक समस्या जो कभी-कभार सामने आती है, वह है कुछ लेखकों द्वारा किसी छपी हुई रचना ज्यों का त्यों अथवा मामूली फेरबदल कर 'विज्ञान' में प्रकाशनार्थ भेज देना। जब भी ऐसी रचना मेरे सामने आई है और संयोग से पकड़ ली गई है तो मैंने लेखक को पत्र लिखा है, किन्तु कभी कभार नकल की हुई रचना छप भी गई है। इससे मुझे पीड़ा हुई है। वैसे इस प्रकार का अनुभव अन्य सम्पादकों को भी अवश्य ही हुआ होगा। ऐसी घटनाओं से जो मैंने सीखा है वह यह कि सम्पादक को दूसरी पत्रिकाओं को भी अवश्य ही पढ़ते रहना चाहिए और प्रकाशन योग्य रचनाओं का चुनाव करते समय विशेष सावधानी बरतनी चाहिए।

नकल करके "छपास" का शौक पूरा करने वालों के लिए मैं डॉ० सी० वी० रामन (जिनकी 'रामन प्रभाव'

की खोज के उपलक्ष्य में 'राष्ट्रीय विज्ञान दिवस' मनाया जाता है) के जीवन से संबंधित एक घटना का उल्लेख करना चाहूँगा।

एक बार उन्होंने कुछ प्रत्याशियों को 'रिसर्च असिस्टेंट' के पद के चुनाव के लिए बुलाया था। उन्होंने एक व्यक्ति का चुनाव कर लिया और जो चुने नहीं गए उन्हें यात्रा भत्ता आदि देकर चले जाने को कहा। शाम के समय एक प्रत्याशी पुनः उनके पास आया। रामन साहब ने उसे देखते ही कहा-- "तुम्हें तो मैंने बता दिया था कि तुम चुने नहीं गए हो। फिर तुम पुनः क्यों आये?" उस व्यक्ति ने कहा-- "सर, आपका एकाउन्टेन्ट चला गया है और गलती से उसने मुझे कुछ अधिक रुपये दे दिए हैं। मैं रुपये लौटाने आया हूँ।" यह सुनकर डॉ० रामन ने कहा-- "क्या हुआ तुम्हें फ़िज़िक्स कम आती है। किन्तु चूँकि तुम आदमी ईमानदार हो इसलिए रिसर्च असिस्टेंट के पद पर मैंने तुम्हें भी चुन लिया। तुम आकर अपना काम सँभाल सकते हो।"

अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए मैं फिर से 'विज्ञान' पत्रिका के विशेषांकों की चर्चा करना चाहूँगा।

लगभग हर वर्ष के प्रारंभ में 'विज्ञान' के एक विशेषांक के प्रकाशन की परम्परा रही है। दो या तीन माह की 'विज्ञान' पत्रिका का एक संयुक्तांक निकालते रहे हैं, जो सामान्य अंकों से कुछ हट कर होता है। ये विशेषांक प्रायः उन विषयों पर होते हैं जो आमतौर से 'भारतीय विज्ञान काँग्रेस' का मुख्य विषय होता है। अथवा कभी-कभी किसी अत्यधिक सामयिक, चर्चित एवं महत्वपूर्ण विषय पर भी आधारित होते हैं। परिषद् को यदि किसी स्रोत से आर्थिक सहायता की अतिरिक्त राशि मिल गई है तो ये विशेषांक और भी अच्छे ढंग से निकले हैं। इन विशेषांकों में राष्ट्रीय विज्ञान गोष्ठी के अवसर पर प्रस्तुत आलेखों का संकलन 'वैज्ञानिक अभिरुचि' प्रसिद्ध विकासवादी वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन की जन्मशती पर 'डार्विन जन्मशती विशेषांक', प्रदूषण विशेषांक, ऊर्जा विशेषांक, डॉ० आत्माराम स्मृति विशेषांक, विज्ञान तकनीकी और पर्यावरण 2001, अमृत महोत्सव स्मारिका, भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन, बदलता पर्यावरण, प्रो० बीरबल साहनी जन्मशती अंक, जनसंख्या विस्फोट और पर्यावरण, मानवकृत एवं प्राकृतिक आपदायें आदि। इसमें से अनेक विशेषांक तो इतने लोकप्रिय हुए हैं, कि उनकी प्रतियाँ परिषद् में भी उपलब्ध नहीं हैं। इनमें डॉ० आत्माराम स्मृति विशेषांक, विज्ञान तकनीकी और पर्यावरण 2001, प्रदूषण विशेषांक के नाम लिए जा सकते हैं।

'विज्ञान' पत्रिका का स्तर ऊँचा करने की दृष्टि से कुछ प्रयोग भी किए गए हैं। कम्प्यूटर से कम्पोजिंग करवाई गई। अंक साफ सुथरे निकले किन्तु खर्च बढ़ गया और विवश होकर फिर से हैण्ड कम्पोजिंग पर वापस आना पड़ा। किन्तु 'विज्ञान' का वर्ष 1996 का जनवरी-मार्च अंक संयुक्तांक है। मैं आशा करता हूँ कि अंक जल्दी ही प्रकाशित हो सकेगा और मुद्रक महोदय की कृपादृष्टि पर हम उसी प्रकार आँखें गड़ाये हुए हैं जैसे चातक स्वाती की बूँद की ओर। किन्तु मुद्रक महोदय भी क्या करें। उनका भारी कर्ज़ हमें अभी भी चुकाना शेष है।

दो शब्द पुरस्कारों के संबंध में। विज्ञान पत्रिका में प्रकाशित लेखों में वर्ष के तीन सर्वश्रेष्ठ लेखों पर 'डॉ० गोरख प्रसाद विज्ञान लेखन पुरस्कार' प्रदान किया जाता है। पुरस्कार की राशि मात्र 250 रु० है, किन्तु जिस महामानव के नाम पर यह पुरस्कार दिया जाता है उसके कारण इस पुरस्कार का विशेष महत्व है।

इसके अतिरिक्त भारतीय मूल के कनाडा में बसे भौतिकीविद् 'डॉ० वाई० पी० वार्ष्णेय ने हमें 10,000 रुपयों की एक राशि प्रदान की है और इस राशि के ब्याज से प्रतिवर्ष 500-500 रुपयों के दो पुरस्कार किसी भी पत्र-पत्रिका में छपे हुए लेखों पर दिए जाते हैं। बस शर्त है कि लेख किसी वैज्ञानिक की जीवनी अथवा विज्ञान के इतिहास पर आधारित होना चाहिए। यह पुरस्कार 'ह्विटेकर पुरस्कार' के नाम से जाना जाता है। मेरा अपना विचार है कि इन पुरस्कारों से नये लेखकों को निश्चित रूप से प्रोत्साहन मिलता है। किन्तु साथ ही मैं यह भी अनुभव करता हूँ कि लेखों पर मानदेय की समुचित

व्यवस्था और पुरस्कार की राशि में वृद्धि से पत्रिका के प्रति लेखकों का आकर्षण बढ़ेगा । पत्रिका के लिए यदि नये आर्थिक स्रोत ढूँढ़े जा सकें अथवा सरकार द्वारा सहायता राशि में वृद्धि हो सके तो पत्रिका के स्तर को सुधारने में मदद मिलेगी । मैं तो सिर्फ निवेदन मात्र कर सकता हूँ ।

अपने संपादन की अवधि में सम्पादन के अतिरिक्त कुछ और कार्य भी मैंने किए हैं और मेरा बड़ा ही सुखद अनुभव रहा है । स्थानीय स्तर की संगोष्ठियां का आयोजन किसी प्रसिद्ध वैज्ञानिक के जन्म दिन पर, पुण्य तिथि पर अथवा राष्ट्रीय विज्ञान दिवस, विश्व स्वास्थ्य दिवस, विश्व पर्यावरण दिवस, धरती दिवस, वन्य जीवन सप्ताह जैसे अवसरों पर संगोष्ठी आयोजित करना, समाचार पत्रों में इसकी सूचना भेजना, संगोष्ठी सम्पन्न होने के बाद उसकी रिपोर्ट पुनः समाचार पत्रों को प्रकाशनार्थ भेजना आदि आदि ।

इस दौरान में मैं अनेक लेखकों और सम्पादकों के सम्पर्क में आया हूँ और हिन्दी विज्ञान लेखन के क्षेत्र में परिचय बढ़ा है । अब तो लेखकों और पाठकों का मेरा काफी बड़ा परिवारि है । परिषद् के कार्यों में डूबे रहकर छोटी-छोटी पारिवारिक कठिनाइयों की ओर भी ध्यान नहीं जाता और इस प्रकार मानसिक संकटों से भी बचा रहता हूँ । इसी दौरान अनेक महान विभूतियों के सम्पर्क में भी आया हूँ, जिनसे मैंने बहुत कुछ सीखा है । और अब ऐसा लगता है कि यदि मैं परिषद् से न जुड़ता तो जीवन के कितने बड़े आनन्द से वंचित रह जाता है । मुझे संतोष है कि मैंने अपना काम मनोयोग से किया है । मुझसे जो लोग उम्र में बड़े हैं मुझे उनकी अनुकम्पा मिली है और जो उम्र में छोटे हैं उनका स्नेह । एक पंक्ति में कहूँ तो मुझे अपने काम में बड़ा मजा आया है । अपनी बात समाप्त करने के पूर्व मैं यह सब इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि जो आनन्द मैंने पाया है मैं चाहता हूँ मेरे युवा मित्र भी परिषद् से गहरे जुड़कर इस आनन्द को उठायें । इन शब्दों के साथ मैं एक बार पुनः स्वर्गीय डॉ० गोरख प्रसाद जी की स्मृति को प्रणाम करता हूँ और श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ ।

'विज्ञान' के विशेषांक	मूल्य
1. उद्योग व्यवसाय अंक अप्रैल 1936	1.50
2. श्री रामदास गौड़ अंक दिसम्बर 1937	0.25
3. रजत जयंती अंक 1938	1.00
4. शिलान्यास अंक 1956	
5. डॉ० गोरख प्रसाद स्मृति अंक जून-जुलाई 61	2.00
6. खन्ना स्मृति अंक फरवरी 1966	1.00
7. अंतरिक्ष विज्ञान विशेषांक दिसम्बर 1975	1.50
8. वैज्ञानिक परिव्राजक 1976 (विज्ञान और अनुसंधान पत्रिका का संयुक्तांक)	10.00
9. बाल विशेषांक फरवरी 1979	1.50
10. वैज्ञानिक ऋषि 1979	4.00
11. प्रदूषण विशेषांक 1981	2.00
12. डार्विन 100 वर्ष बाद दिसम्बर-जनवरी 1981-82	3.00
13. ऊर्जा विशेषांक 1983	3.00
14 डॉ० आत्माराम स्मृति अंक मार्च 1984	3.00
15. विज्ञान कथा विशेषांक नव०-जन० 1984-85	4.00
16. विज्ञान, तकनीकी और पर्यावरण 2001 जनवरी 1986	6.00
17. पर्यावरण पर विशेष सामग्री जून-जुलाई 1990	5.00
18. पर्यावरण पर विशेष सामग्री अगस्त-सितम्बर 1990	5.00
19. बदलता पर्यावरण (समीर विशेषांक) जन०-मार्च 1991	50.00
20. पर्यावरण संरक्षक राजीव गाँधी स्मृति अंक जून 1991	2.50
21. प्रो० साहनी जन्मशती अंक नव० 1991	10.00

22. मानवकृत एवं प्राकृतिक आपदायें जुलाई 91	4.00	25. अमृत जयंती समारोह दिसम्बर 1988	3.50
23. जनसंख्या पर्यावरण विकास जन०-मार्च 92	8.00	26. भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन नवम्बर 1989	10.00
24. पादप रोग विज्ञान पर विशेष सामग्री नवम्बर 1992	2.50	27. मरु विशेषांक अगस्त 1995	150.00

'विज्ञान' के सम्पादक

नाम	कार्यकाल	नाम	कार्यकाल
1. श्री श्रीधर पाठक तथा लाला सीताराम	1915-1917	10. डॉ० हीरालाल निगम	1950-1956
2. प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव	1917-1926	11. डॉ० देवेन्द्र शर्मा	1956-1959
3. प्रो० ब्रजराज	1926-1930	12. डॉ० शिवगोपाल मिश्र	1959-1971
4. डॉ० सत्य प्रकाश तथा प्रो० ब्रजराज	1927-1933	13. डॉ० हरिमोहन	1971-1973
5. श्री रामदास गौड़	1933-1937	14. डॉ० शिवप्रकाश	1973-1979
6. डॉ० सत्यप्रकाश	1937-1941	15. डॉ० जगदीश सिंह चौहान	1979-1987
7. डॉ० गोरख प्रसाद	1941-1944	16. प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	1987
8. डॉ० सन्त प्रसाद टण्डन	1944-1946	17. डॉ० दिनेश मणि (सहायक सम्पादक)	1994
9. डॉ० रामचरण मेहरोत्रा	1947-1949		

■■■

(पृष्ठ 31 का शेषांश)

6. **बरनोनिया प्रजाति**
7. **एजेरेटम कॉनीज्वायडिस**
8. दूब (**सायनोडॉन डैक्टीलॉन**)
9. भंगरैया (**एक्लिप्टा एल्बा**)
10. **यूरेना लोबाटा**
11. **साइपेरस प्रजाति**
12. **फिम्ब्रीस्टायलिस प्रजाति**
13. **ग्लेफेलिअम प्रजाति**
14. **कन्वाल्वुलस नुमुलेरिअस**
15. **इवाल्वुलस एल्सीन्वायडिस**
16. **रियूमेक्स डेन्डेटस**
17. मकोय (**सोलेनम नाइग्रम**)
18. **पालीगोनम प्लेबेजम**

पर्णांग (टेरिडोफाइटा)

1. **मार्सीलिया माइन्यूटा**
2. **साल्वीनिया**
3. **एज़ोला**

■■■

विज्ञान लेखन, संपादन और प्रकाशन वर्तमान सन्दर्भ में विज्ञान परिषद्

❑ डॉ रामकृष्ण पाराशर
निदेशक, वैज्ञानिक प्रकाशन प्रतिष्ठान,
पटपड़गंज, दिल्ली-91

हिन्दी विज्ञान के लेखन, पत्रिका प्रकाशन, शोध और सन्दर्भ ग्रंथों के निर्माण में विज्ञान परिषद् सन् 1913 से अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती आई है । इस दिशा में वाराणसी की नागरी प्रचारिणी सभा, गुरुकुल कांगड़ी विश्व विद्यालय ज्वालापुर, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का योगदान भी उल्लेखनीय है परन्तु हिन्दी के विज्ञान लेखक विज्ञान कोशकार, विज्ञान पत्रकार, विज्ञान शिक्षक, विज्ञान समीक्षक, विज्ञान अनुवादक, विज्ञान के इतिहासकार, विज्ञान संपादक एवं विज्ञान पुनरीक्षक और विज्ञान मुद्रक तथा विज्ञान प्रकाशक तैयार करने का जो अद्वितीय कार्य विज्ञान परिषद् ने अब तक किया है वह अन्य संस्थाओं के लिए अनुकरणीय और प्रेरणा का विषय है । हिन्दी के लिए गौरव का विषय है ।

इस वर्ष सन् 1996 में 28 मार्च को विज्ञान परिषद् के द्वारा सुप्रसिद्ध गणितज्ञ एवं विज्ञान लेखन के कीर्तिमान स्तम्भ डॉ० गोरख प्रसाद की जन्म शताब्दी के अवसर पर विज्ञान के लेखकों, संपादकों, अनुवादकों, पत्रकारों तथा प्रकाशकों के अतिरिक्त डॉ० गोरखप्रसाद जी समकालीन विद्वानों तथा उनके शिष्यों को आमंत्रित कर एक भव्य संगोष्ठी का आयोजन किया था । इस संगोष्ठी में इलाहाबाद के अतिरिक्त वाराणसी, लखनऊ, दिल्ली के विविध पीढ़ियों के विज्ञान के लेखक, पत्रकार, वैज्ञानिक, मुद्रक, प्रकाशक, अनुवादक, शिक्षक और संपादक एवं संवाददाताओं ने पूरी अभिरुचि से भाग लिया और दोनों दिन पूरी गम्भीरता और तत्परता से परस्पर विचार विनिमय चलता रहा । सभी वक्ताओं ने अपने अपने निजी अनुभवों के आधार पर विज्ञान लेखन संपादन और प्रकाशन की समस्याओं पर प्रकाश डाला और अपने अपने बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किए.। अलग अलग क्षेत्रों के लेखकों और संपादकों की समस्याएँ अलग प्रकार की पाई गई और एक को दूसरे क्षेत्र की बात सुनकर पर्याप्त समस्याएँ आपसी विचार विमर्श से हल हो गई । कुछ समस्याएँ ऐसी उभरी जिनके समाधान के लिए 'विज्ञान परिषद्' जैसी राष्ट्रीय स्तर की संस्था की पहल की आवश्यकता का सबने अनुभव किया उनमें से कुछ सुझाव निम्न लिखित हैं :–

1. विज्ञान और प्रौद्योगिकी के दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति में गहराई से प्रविष्ठ होने से विज्ञान विषयक सूचनाओं को पढ़ने, समझने और जानने की तीव्र जिज्ञासा जन जीवन में तीव्रता से बढ़ रही है । इसलिए दैनिक समाचार पत्रों में सप्ताह में एक दिन निश्चित रूप से विज्ञान चर्चा प्रकाशित होने लगी है और सामयिक घटनाओं से सम्बन्धित विज्ञान पर विशेष लेख भी प्रायः प्रकाशित होने लगे हैं । इसी प्रकार रेडियो और दूरदर्शन में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का वर्चस्त बढ़ने लगा है परन्तु

प्रामाणिक सामग्री के अभाव से कभी कभी इन कार्यक्रमों को बड़ा धक्का लगता है। जहाँ समाचारपत्रों में विज्ञान सम्वाददाता विमुक्त नहीं हो पाए हैं, उनके लिए कुछ फीचर सेवाएँ विज्ञान सामग्री को उपलब्ध कराने को प्रयत्नशील हैं। अभी सबका स्तर सन्तोषप्रद नहीं कहा जा सकता है हालाँकि कुछ फीचर सेवाएँ और कुछ समाचार सेवाएँ अच्छा कार्य कर रही हैं। इससे विज्ञान लेखकों को अच्छी आय हो जाती है और उनकी सामग्री का व्यापक स्तर पर उपयोग भी होता है। यदि यह कार्य विज्ञान परिषद् अपने हाथ में ले सके, उससे विज्ञान लेखन को नई दिशा भी मिल सकती है और विज्ञान लेखकों को पर्याप्त प्रोत्साहन भी प्राप्त हो सकता है। इस कार्य को शुरू करने लिए भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग से विज्ञान परिषद को आर्थिक सहयोग भी मिल सकता है। इस कारण मेरा सुझाव है कि विज्ञान परिषद् इस दिशा में पहल करे, तो स्थानीय विज्ञान लेखकों की पर्याप्त समस्याओं का सही समाधान हो सकता है।

2. उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश तथा विहार राज्यों में प्रौढ़ शिक्षा विभागों और रक्षा मंत्रालय की ओर से बड़ी संख्या में पुस्तकों की खरीद की जाती है। इन सभी विभागों द्वारा विज्ञान की पुस्तकें बड़ी संख्या में क्रय की जाती हैं। इसी प्रकार राजा राममोहन राय पुस्तकालय और केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा बड़ी संख्या में पुस्तकों का क्रय किया जाता है। यदि इस दिशा में विज्ञान परिषद् विज्ञान लेखकों से रायल्टी के आधार पर पुस्तकें लिखाकर कुछ प्रकाशकों के सहयोग से या सरकारी सहयोग से प्रकाशित करने की दिशा में विचार करे तो विज्ञान लेखन और संपादन के साथ साथ प्रकाशन का स्तर भी ऊँचा उठ सकता है और पाठकों को कम मूल्य पर प्रामाणिक पुस्तकें उपलब्ध हो सकती हैं। इससे पुस्तक लेखन और कार्यशालाओं के आयोजन के लिए सरकारी अनुदान केन्द्रीय तथा राज्य स्तर पर उपलब्ध हो सकता है। यह कार्य विज्ञान परिषद् डॉ० गोरख प्रसाद के समय से करती आ रही है। अतएव इस दिशा में पुनः प्रयास करने से विज्ञान लेखन और प्रकाशन को बल मिलेगा।

3. इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि भाषा का विकास स्वतः होता है परन्तु यह भी एक तथ्य है कि भाषा के विकास को विविध राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ नए मोड़ देती आई हैं। इसलिए समय समय पर भाषा का संस्कार करना भाषा के विकास को सही दिशा में मोड़ने के लिए उसके अपने अस्तित्व की दृष्टि से आवश्यक पाया गया है। आज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का जिस तीव्रता से विकास हो रहा है उसी तीव्रता से हमें अपनी भाषा की विज्ञान शब्दावली के पुनरीक्षण, परिवर्धन और निर्माण की आवश्यकता है। हमारी विज्ञान शब्दावली का पिछले सौ सवा सौ वर्षों में जिस क्रम से जिन सिद्धान्तों पर विकास हुआ है आज उनके बारे में लेखन के सन्दर्भ में विचार-विमर्श की महती आवश्यकता है। जो विज्ञान लेखन उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से हिन्दी में जनसाधारण के लिए आरम्भ हुआ था आज वह विश्वविद्यालय स्तरीय पाठ्यपुस्तकों, शोध प्रबन्धों तथा सन्दर्भ ग्रंथों तक की दूरी तय कर चुका है। जनसाधारण के लिए लिखे जाने वाले विज्ञान की शब्दावली, शैली, विषय वस्तु की गहराई, विधा आदि पाठ्य पुस्तकों और सन्दर्भ ग्रंथों से भिन्न होती हैं। इस अन्तर को आज स्पष्ट करने की महती आवश्यकता है। इस दृष्टि से विज्ञान लेखन, संपादन तथा प्रकाशन सम्बन्धी संगोष्ठियों में चर्चा का आयोजन यदि लेखन को वर्गीकृत करके किया जाए, तो अधिक उपयोगी हो सकता है अन्यथा सारी चर्चा जनसाधारण के लिए विज्ञान लेखन या विज्ञान प्रसार के इर्द गिर्द सिमट कर रह जाती है, ऐसी मेरी धारणा है। यदि वक्ता कम हों तो भी अलग-अलग वक्ताओं से यदि अलग-अलग स्तर के लेखन की चर्चा हेतु आमंत्रित करने से अलग-अलग स्तर के लेखकों को शब्दावली, लेखन-शैली, विधा-चयन, विषय-वस्तु, गहराई आदि की विशिष्टताओं की सीमाओं पर चर्चा करने का और अपने में स्पष्ट होने का उचित अवसर प्राप्त होता है।

4. हिन्दी में विज्ञान लेखन जब आरम्भ हुआ था तो हिन्दी के विद्वान या भाषाविद् लेखकों ने अंग्रेजी से हिन्दी में विज्ञान लिखा। धीरे-धीरे अंग्रेजी माध्यम से पढ़े वैज्ञानिकों ने हिन्दी में विज्ञान लिखना शुरू किया, उसका

भाषाविद् संपादकों के द्वारा संशोधन किया जाता रहा और अब कई तरह की भाषायी पृष्ठभूमि के वैज्ञानिक हिन्दी में विज्ञान लेखन कर रहे हैं। वाक्य रचना, पारिभाषिक शब्दावली के प्रयोग, विराम तथा वर्तनी सम्बन्धी अनेक त्रुटियाँ उनके लेखन स्तर की गरिमा के प्रतिकूल होती हैं जिससे हिन्दी भाषा की प्रकृति पर कुठाराघात होता है और भाषा-भ्रष्टता को प्रोत्साहन मिलता है। इसलिए इस दिशा में भी विज्ञान परिषद् को लेखकों का मार्ग दर्शन करना चाहिए जिससे विज्ञान लेखन व्याकरण सम्बन्धी भूलों के शिकार न हो सके। जो वर्तनी भारत सरकार द्वारा निर्धारित की गई है उसका प्रयोग उनके कार्यालय में न होना एक मखौल बन रहा है। इस ओर सी० एस० आई० आर० का ध्यान आकृष्ट करना विज्ञान परिषद् का दायित्व होता है।

5. विज्ञान लेखन गद्य के अतिरिक्त पद्य में किए जाने के कुछ प्रयोग पिछले वर्षों से होते आयें हैं। यह हर्ष का विषय है कि परमाणु और आनुवंशिकी जैसी विज्ञान शाखाओं के वैज्ञानिक कविताओं के माध्यम से बड़े रोचक ढंग से परमाणु विखंडन और मेंडल के आनुवंशिकी के सिद्धान्त को समझाने का प्रयास कर रहे हैं। इस सन्दर्भ में मेरा यह निवेदन है कि विज्ञान को गद्य और पद्य दोनों की लगभग 20 विधाओं में लिखा जा सकता है और लिखा भी जा रहा है परन्तु किस विधा का चयन किस स्तर के किन पाठकों के लिए किया जाय यह जानकारी विज्ञान लेखकों को कराने का दायित्व विज्ञान परिषद् का है।

6. पिछले लगभग 82 वर्षों से लगातार प्रकाशित हो रही मासिक पत्रिका 'विज्ञान' अब भी प्रकाशित हो रही है यह अपने आप में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस पत्रिका को सरकारी अनुदान से मुक्त करके आत्म निर्भर बनाने के लिए सन्दर्भित गोष्ठी में डॉ० बनवारीलाल जी शर्मा ने कुछ व्यवहारिक सुझाव दिए। उनके सुझावों में से जिन सुझावों के कार्यान्वयन में कुछ खर्च नहीं होगा उनको ही विज्ञान परिषद् को तुरन्त लागू करने का निर्णय करना ही चाहिए। इन सुझावों में लेख सूची में स्तम्भों का समावेश किया जाना और विज्ञापन की सस्ती दरों का पत्रिका में उल्लेख न करना उचित प्रतीत होता है। मेरा एक और सुझाव यह है कि पत्रिका की आर्थिक परतंत्रता तोड़ने और उसके नियमित प्रकाशन की पहचान को बनाए रखने के लिए पत्रिका के वर्ष में बारह अंक प्रत्येक मास की निर्धारित तिथि पर प्रकाशित करने की प्रतिबद्धता से विज्ञान परिषद् को कोई समझौता नहीं करना चाहिए। यदि आप कोई विशेषांक दो महीनों के संयुक्तांक के रूप में अधिक पृष्ठों का निकालना चाहते हैं तो आप दो अलग अलग महीनों में ही खंड 1, खंड 2 करके भले निकालिए लेकिन उसके प्रति मास प्रकाशन की प्रतिबद्धता नहीं तोड़ना चाहिए, यदि यह सम्भव नहीं तो उसे द्वैमासिक या त्रैमासिक घोषित करके प्रकाशित कीजिए जिससे पाठकों को विश्वास हो कि पत्रिका उन्हें अमुक महीने की अमुक तारीख को प्राप्त होगी। आवरण पृष्ठ भी एक रंग का आकर्षक डिजाइन का बहुत सस्ता भी छप सकता है। यह आश्चर्य का विषय है कि इतनी पुरानी पत्रिका को अभी तक भारत सरकार के विज्ञापन तक प्राप्त नहीं हो सके। लगता है कि इस दिशा में प्रयास ही नहीं किए गए हैं।

भारत सरकार के विज्ञापन प्राप्त करने के कार्य में मैं अपनी सेवाएँ निःशुल्क परिषद् को देने की वचनबद्धता दोहराता हूँ और विज्ञापन दरें 1000 रु० प्रति पृष्ठ करने और अन्तिम पृष्ठ 2000 करने का सुझाव देता हूँ। यदि आप 6 महीने लगातार प्रकाशित करके अंक मुझे उपलब्ध करा सके तो 2 महीने के भीतर विज्ञापन दिलाने का आश्वासन दे सकता हूँ।

■■■

भारत में विज्ञान की शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधानकर्ताओं की समस्याएँ

❑ प्रो० दिव्यदर्शन पन्त

अवकाशप्राप्त अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-211002

भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों और विद्यालयों से प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में युवक-युवतियाँ वनस्पति विज्ञान की डिग्रियां लेकर अपने जीवन में अग्रसर होते हैं। इनमें से बहुत से स्नातकोत्तर छात्र उत्तीर्ण होते हैं और अनेक डॉक्टरेट उपाधि से विभूषित रहते हैं। परन्तु जब वे जीवन में आगे बढ़ते हैं तो उन्हें अपने वनस्पति शास्त्र के ज्ञान का उपयोग करने के लिए कोई अवसर नहीं मिल पाता। फलतः ये छात्र जीविका की खोज में या तो इधर उधर भटकते दिखायी देते हैं या विभिन्न सरकारी नौकरियों की प्रतियोगी-परीक्षाओं की तैयारी में जुटे रहते हैं। उनमें से केवल थोड़े ही उत्तीर्ण होते हैं और अधिकांश अनुत्तीर्ण रहते हैं। इनकी दशा दयनीय प्रतीत होती है। विज्ञान के अन्य विषयों में भी स्थिति शायद इतनी ही गम्भीर है। इसका अनुमान मैं इससे लगाता हूँ कि भटकने वालों की संख्या किसी भी विषय में कम नहीं है।

इन भटकने वालों की संख्या बढ़ने का एक कारण यह है कि हमारे शिक्षा संस्थान केवल डिग्रियाँ देने के लिए युवक-युवतियों की भर्ती करते हैं और किसी प्रकार उन्हें डिग्रियां देकर छोड़ देते हैं। शिक्षा की उत्तमता पर बल नहीं दिया जाता, न ही यह देखा जाता है कि अपने जीवन में वे क्या करेंगे। क्या हमारी शिक्षा का इस प्रकार का कोई उत्तरदायित्व ही नहीं है ?

हमारे विश्वविद्यालयों और विद्यालयों में शिक्षा का एक ही ध्येय रह गया है कि किसी प्रकार इनमें स्नातकों की भर्ती होती रहे और ये स्नातक किसी प्रकार डिग्रियां लेकर बाहर निकलते रहें। पठन-पाठन का उद्देश्य नहीं रहा। छुट्टियाँ अधिक और पढ़ाई के दिन कम। तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी अधिक, रोजाना कर्मचारियों को भी इतवार की और अन्य छुट्टियां। स्नातक पढ़ें या न पढ़ें उन्हें परीक्षा में बैठने पर कोई रोक नहीं। शिक्षक पढ़ावें या न पढ़ायें उनके वेतन में तथा पदों में उत्तोत्तर वृद्धि। इस बात को कोई देखने वाला ही नहीं रहा कि हमारी शिक्षा कहाँ जा रही है।

विश्वविद्यालय के कुलपतियों का स्तर भी नीचे गिरा है। वे धन तथा सत्ताधिकार के लिए किसी न किसी सत्ताधिकारी ही की खुशामद करके यह यह पद पाते हैं। उनका उद्देश्य धन तथा गलत ढंग से अपनी सत्ता बनाए रखना और मनमाने ढंग से काम करना होता है। इसके विपरीत एक समय था जबकि हमारे देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों के कुलपति देश-विदेश में ख्यातिप्राप्त विद्वान होते थे, जो विश्वविद्यालय को ऊपर उठाने के लिए इस पद पर आते थे, वे कोई भी गलत काम नहीं होने देते थे। उस समय के कुलपतियों में अग्रगण्य हैं– सर आशुतोष मुखर्जी, सर गंगा नाथ झा, डॉ० अमरनाथ झा, डॉ० ताराचन्द, सर राम स्वामी मुदलियार, सर

मोरिसग्वायर आदि जिन्होंने कलकत्ता, इलाहाबाद, मद्रास तथा दिल्ली जैसे विश्वविद्यालयों का स्तर संसार प्रसिद्ध कर दिया।

इसी प्रकार एक समय था जब हमारे देश के विश्वविद्यालयों के विभिन्न संकायों के प्रायः प्रत्येक विभाग को देश-विदेश में ख्यातिप्राप्त सुशोभित करते थे। हमारे विश्वविद्यालयों के विज्ञान संकायों को तो विशेषकर अनेक विश्वख्यातिप्राप्त विद्वान सुशोभित करते थे।

धीरे धीरे ये वैज्ञानिक अपनी जीवन-संध्या में जा पहुँचे किन्तु नई पीढ़ी में से इनका स्थान लेने वाले वैज्ञानिकों की कमी होने लगी। ब्रिटिश शासन काल में हमारे कुछ आदर्श थे और हम उन आदर्शों की पूर्ति के लिए त्याग-भावना से काम करते थे। पर अंग्रेजों के हटने से हममें स्वार्थ-भावना प्रबल होने लगी। ब्रिटिश सत्ता के काल में हमारे देश में अनेक विश्वविख्यात वैज्ञानिक हुए जिनमें से प्रमुख हैं बोस, रामन, साहा, साहनी, भाभा, कृष्णन, भाल, पी० सी० राय, नीलरत्न धर, आत्माराम आदि। पर इनके बाद इनका स्थान लेने वाले वैज्ञानिकों की कमी होने लगी। देश तथा प्रदेश के शिक्षा मन्त्रालयों, वैज्ञानिक अकादमियों, शिक्षा संस्थाओं ने इन सब बातों की ओर से अपनी आंखें मूँद लीं। इनमें से किसी ने भी यह नहीं सोचा कि हमारे विज्ञान की उच्च शिक्षा का अधःपतन क्यों हो रहा है। इस व्याख्यान में मैं अपनी बुद्धि के अनुसार देश में विज्ञान के पतन के कारणों का विश्लेषण इस प्रकार कर रहा हूँ :—

1. हमने नेहरू जी के नेतृत्व में विज्ञान की अनेक राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं तथा खण्ड प्रयोगशालाओं की स्थापना की। ये प्रयोगशालाएँ, जैसे राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला और राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला, इतनी वृहदाकार हो गयीं कि इनका निदेशन करना किसी एक वैज्ञानिक के लिए असम्भव सा हो गया और निदेशक के पद को सँभालने वाले वैज्ञानिकों को विज्ञान छोड़कर राजनीति का उपासक बनना पड़ा।

2. आधुनिक विज्ञान के लिए जब उपकरणों की आवश्यकता बढ़ी तो धन के बँटवारे के लिए वैज्ञानिकों ने अपने अपने विषय के अनुसार गुट बनाना शुरू किया तथा अपने अपने विषय के लिए धन खींचना आवश्यक हो गया।

3. फिर धन खींचने के तरीकों या ढंगों का आविष्कार हुआ। कुछ वैज्ञानिकों ने आधुनिक और पुरातन विषयों में विज्ञान की शाखाओं को बाँटा और कुछ अन्य ने उपयोगी और अनुपयोगी विषयों में। इन विभाजनों का कोई तर्कसंगत आधार नहीं था वरन् इसके पीछे भी धन के बँटवारे के लिए स्वार्थी गुटबाजी। परमाणविक अनुसंधानों जैसे हानिकारक तथा विध्वंसकारी विषयों के लिए अपार धन का वितरण हो गया और एक परमाणवीय ऊर्जा कमीशन का गठन हुआ पर साथ ही इस ऊर्जा को अत्यन्त हानिकारक भी बताया गया और परमाणु बमों और परमाणु विस्फोटों की जाँच पर प्रतिबन्ध लगाया गया।

4. कुछ अन्य वैज्ञानिकों ने थ्रस्ट क्षेत्रों (आगे बढ़ने वाले) या बढ़ाये हुए विषयों को अथ्रष्ट क्षेत्री विषयों से अलग किया। इस वर्गीकरण के लिए किसी तर्क की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। अब थ्रष्ट क्षेत्री विषयों के आर्थिक स्रोत यह कहकर कम कर दिये गए कि इनमें इतने अधिक अनुसन्धान हो चुके हैं कि अब इनमें आगे अनुसन्धानों की आवश्यकता नहीं रही।

एक अमेरिकी वैज्ञानिक ने इन क्षेत्रों की तुलना एक पेट्रोलियम के कूप से की जिसमें से बहुत सा तेल निकाला जा चुका है और अब तेल निकलने की आशा नहीं रही। दुःख का विषय है कि तेल निकलना बन्द होने के बदले बढ़ गया परन्तु इन क्षेत्रों के आर्थिक स्रोत सुखा दिये गये और तेल के बिना चुके तेल निकालने की क्षमता समाप्त कर दी गयी।

5. वैज्ञानिक अनुसंधानों के कुछ विषयों में आवश्यकता से अधिक धन का नियतन और कुछ अन्य विषयों में इसकी भारी कमी कर दी गयी। इसका एक परिणाम यह हुआ कि अनेक वैज्ञानिक उन पर उन विषयों में अनुसंधान करने लगे और अनुसंधान का निदेशन करने लगे जिनमें वे विशेषज्ञ होने के बदले प्रारम्भिक ज्ञान ही रखते थे। इसका अर्थ यह हुआ कि "न हुआ बाँस और

न बाजी बाँसुरी" । अनुसंधान परियोजनाओं की रिपोर्ट निधिकरण सत्ताधिकारियों के पास पहुँच गयी और उनकी फाइलों में बन्द हो गयी । इनसे विज्ञान की क्या प्रगति हुई, किसी ने नहीं देखा । इस नियतन का दूसरा परिणाम यह हुआ कि अनुसंधान करने वाले छात्र छात्रवृत्ति के लोभवश लाडले विषयों में अनुसंधान करने के लिए प्रेरित हो गये ।

एक और परिणाम इस अधिक धन के नियतन का यह हुआ कि जिन वैज्ञानिकों को उपकरणों के लिए धन मिला उन्होंने लाखों और करोड़ों रुपये लगाकर उपकरण तो जमा कर दिए और इसके बाद अनुसंधान के समय उनका उत्साह "टाँय टाँय फिस" हो गया या उन्हें उन उपकरणों का इस्ते माल ही नहीं ज्ञात हो पाया ।

7. एक समय था जब अनुसंधान के इच्छुक युवक और युवतियां किसी विद्वान विशेषज्ञ के पास उसकी विद्या का कुछ अंश सीखने की इच्छा से जाते थे । किन्तु अब वे केवल आजीविका के लिए डिग्री अर्जित करने के लिए सस्ते में डिग्री देने वाले किसी अध्यापक के पास आने लगे । पहले के अनुसंधानकर्ता अपने गुरु के नाम से जाने जाते थे । अब इसका कोई सवाल ही नहीं रहा फलतः उच्च स्तर के वैज्ञानिकों और वैज्ञानिक शोधों के होने की क्या कोई आशा की जा सकती है ?

8. हमारे विज्ञान के सत्ताधारी नेताओं ने उच्चस्तर के वैज्ञानिक उत्पन्न करने के अनेक अन्य उपायों का भी आविष्कार किया । इन उपायों की सूची इस प्रकार है–

(अ) सन् 1965 से 1984 तक यू० जी० सी०, सी० एस० आई० आर०, डी० एस० टी०, आई० सी० ए० आर०, आदि निधिकरण एजेन्सियां ख्यातिप्राप्त वैज्ञानिकों को अनुसंधान करने के लिए जूनियर और सीनियर रिसर्च फेलोशिप का नियतन करती थीं । इन फेलोशिप को देने के लिए राष्ट्रीय स्तर की कोई परीक्षा या नम्बरों का नियतन नहीं था । यह केवल रिसर्च निदेशक के सन्तुष्ट होने पर निर्भर रहता था.। लेकिन सन् 1984 से ये फेलोशिप राष्ट्रीय स्तर की यू० जी० सी०, सी० एस० आई० आर० की प्रतियोगी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने पर मिलने लगी जिससे रिसर्च निदेशक के सन्तुष्ट होने का सवाल ही नहीं रहा । फलतः अनुसंधान के स्नातक मनमाना करने लगे । यही नहीं, एक बार प्रतियोगी परीक्षा में बैठकर उत्तीर्ण होने के बाद रिसर्च छात्रों को प्रतियोगी परीक्षा में बैठने का चस्का लगने लगा और वे विभिन्न राजकीय नौकरियों की प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठकर उनमें सफल होकर सरकारी नौकरियों में जाने लगे.। इस प्रकार उनकी स्नातक काल की जीविका का खर्च मिला रिसर्च निधिकरण एजेन्सियों से किन्तु वे गये सरकारी नौकरियों में । इसमें किसी प्रकार की रोक नहीं लगी । रोक लगे भी कैसे क्योंकि अनुसंधानकर्ताओं के लिए जीविका के सारे स्रोत बन्द हो गये और अनुसंधान करने वाले अच्छे लोग मारे मारे भटकने लगे । यह स्थिति कितनी गम्भीर हो चुकी है इसका पता एक दृष्टान्त से लगता है जब कतिपय वनसपति शास्त्र में डॉक्टरेट उपाधि प्राप्त पठन-पाठन के उत्तम श्रेणी वाले युवक किन्हीं यू० जी० सी० चेयरमैन के पास गये और उनसे अपने बेकार होने की समस्या बताई तो चेयरमैन साहब ने उनसे अपने लिए कोई रोजगार आरम्भ करने के लिए कहा । जब इन लोगों ने उनसे रोजगार के बारे में पूछा तो उत्तर मिला "जैसे साइकिल की मरम्मत करने की दुकान" । इस दृष्टान्त को सुनने के बाद आप केवल "धन्य हो, धन्य हो" ही कह सकते हैं ।

(आ) दूसरा उपाय जो हमारे विज्ञानी रानीतिज्ञों ने निकाला वह अल्पवयस्क या युवा वैज्ञानिकों के लिए पुरस्कार अधिसदस्यता और अन्य उपहारों का आरक्षण । इसके लिए 35 वर्ष की आयु को लक्ष्मण रेखा बना दिया गया । पुरस्कार देने के निर्णय करने वालों का उनके इस कार्य के लिए योग्यता और अपनों के चयन को रोकने के लिए कोई नियम नहीं निर्धारित किए गये । लगभग 20 या 30 वर्ष से इन पुरस्कारों को पाने वाले युवा वैज्ञानिकों में कितने विश्वख्याति के अनुसंधान करने वाले वैज्ञानिक निकले इसको किसी ने नहीं देखा ।

(इ) शोधकर्ताओं और शिक्षकों के चयन करने के लिए चयन-समितियां बनायी जाती हैं जिनमें ख्यातिप्राप्त विशेषज्ञों का नामांकन होता है । परन्तु ये विशेषज्ञ प्रत्याशियों या अभ्यर्थियों के विषय से अनभिज्ञ होते हैं उदाहरणार्थ, एक बार वनस्पति विज्ञान के प्रोफेसर की चयन समिति के विशेषज्ञ जीव विज्ञान के प्रोफेसर थे और दो अन्य विशेषज्ञ भी एक ख्यातिप्राप्त अभ्यर्थी के विषय और अनुसंधानों से पूर्णतया अनभिज्ञ थे ।

(ई) बहुधा ये चयन समितियां शोध लेखों के गुणों की अनभिज्ञता में लेखों के संख्यात्मक आधार को महत्व देती हैं और विदेशी पत्रिकाओं में छपवाये हुए लेखों को महत्व देती हैं । इन सबके बदले किसी शोधकर्त्ता तथा उसके शोधों के गुणों का निर्णय शोध पत्रिका और शोध निदेशक के नामों से करना अधिक उपयोगी होगा ।

(उ) कभी कभी डॉक्टरेट डिग्री न होते हुए भी प्रत्याशी उच्च कोटि के कार्य की क्षमता वाला हो सकता है । अतः डॉक्टरेट डिग्री अनिवार्य नहीं होना चाहिए ।

(ऊ) हमारे विज्ञान के अधःपतन का एक मुख्य कारण शोधकर्ताओं और विज्ञान के शिक्षकों का अनुपयुक्त चयन है । जब द्वितीय या तृतीय श्रेणी के अध्यापक और वैज्ञानिक सत्ता में आ गए तब वे अपने से अच्छे शोधकर्ताओं का चयन कैसे कर सकते हैं ? अच्छे लोगों के चयन को रोकने के लिए एक और अघोषित नियम बना, वह हुआ एक ही गुरू के शिष्य या एक ही जगह पढ़े और एक ही विषय के शिक्षक चयनित नहीं हो सकते । किन्तु यह किसी ने नहीं देखा कि अनुसंधान के स्कूल एक ही विषय या एक ही गुरु के शिष्यों के बिना नहीं बन सकते तथा प्रखर बुद्धि के शोधकर्ता किसी भी विषय में अनुसंधान और अध्यापन का कार्य कर सकते हैं ।

'नोबेल पुरस्कार' विजेता सर हैन्स क्रैन्स ने एक बार कहा था कि लोग एक ही गुरु शिष्यों के बढ़ने की बात करते हैं किन्तु में पूछता हूँ कि वे लोग बताएं कि कौन सा रिसर्च स्कूल बिना एक ही गुरु के शिष्यों और एक ही विषय के वैज्ञानिकों के बना हैं ?

अनेक योग्य युवा एवं प्रौढ़ वैज्ञानिक अपनी योग्यता के अनुरूप शोध पद प्राप्त न होने एवं उचित स्थान पर चयन न होने पर निराशापूर्ण अवस्था में विदेशोन्मुख हो जाते हैं या विज्ञान को छोड़कर किसी अन्य व्यवसाय को या सरकारी नौकरी को अपनी जीविका का साधन बना लेते हैं । यह देश के सत्ताप्राप्त नीति निर्धारकों के मानसिक दिवालियेपन का द्योतक है तथा देश के दुर्भाग्य का कारण है । देश की योग्यता का निर्यात भी हमारे विज्ञान के अधःपतन का मूल कारण है ।

अन्त में मैं इस सभा में उपस्थित वैज्ञानिकों से निवेदन करता हूँ कि हमारे विज्ञान तथा शिक्षा संस्थानों की समस्याएँ इतनी गहन हैं और इनका स्तर इतना नीचे गिर गया है कि हमें इसके लिए देशभर में विचार गोष्ठियाँ आयोजित करनी चाहिए और इसके उपचार के उपाय सोचने चाहिए । ■■■

गंगा के मैदानी भाग का एक अद्‌भुत् वानस्पतिक तीर्थ

❑ डॉ० रमेश चन्द्र श्रीवास्तव

उपनिदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण,
10 चैयम लाइन्स, इलाहाबाद-211002

डॉ० रमेश चन्द्र श्रीवास्तव 'भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण' के एक वरिष्ठ अधिकारी हैं और पिछले लगभग 2 दशकों से वनस्पतियों के सर्वेक्षण का कार्य निष्ठापूर्वक कर रहे हैं। भारत के नम क्षेत्रों के सर्वेक्षण के दौरान आप 'बहिरादेव सैक्रेड-ग्रोव' के नाम से विख्यात एक वनस्थली तक पहुँच गए। पढ़िए 'बहिरादेव सैक्रेड ग्रोव' का रोचक वर्णन डॉ० रमेश जी की कलम से। यह मात्र यात्रा वृतांत ही नहीं है। इस लेख में आपको इस वनस्थली की जैव-विविधता की एक झाँकी मिलेगी। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि इस वनस्थली की जैव-विविधता का ठीक से अध्ययन किया जाय (जो एक यात्रा अथवा एक मौसम में अध्ययन से संभव नहीं है) तो इस वनस्थली में निश्चित रूप से शैवालों, कवकों, शैवाकों (लाइकेन्स), ब्रायोफाइटा समूह के पौधे और अनेक प्रकार के फर्न, नग्नबीजी और बीजी पादपों की अनेक प्रजातियों एवं प्राणि प्रजातियों के मिलने की पूरी संभावना है। अतएव पहली आवश्यकता है इस वनस्थली को संरक्षित रखने की और दूसरी आवश्यकता है, जाड़ा, गर्मी और बरसात के मौसमों में यहाँ की जैव-विविधता का विस्तृत अध्ययन। इस बात की भी संभावना है कि कुछ जीव जातियाँ, जो लुप्त जीव जातियों की सूची में शामिल कर ली गई हैं, में से कुछेक यहाँ सुरक्षित हों। —सम्पादक

भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता अनादि काल से अरण्य-प्रधान रही है। वन ही ऋषि-मुनियों की कर्म-स्थली थे। आश्रम-व्यवस्था के अन्तर्गत मनुष्य जीवन का तीन चौथाई भाग (ब्रह्मचर्याश्रम, वानप्रस्थाश्रम तथा संन्यासाश्रम) वन में ही व्यतीत करने का नियम था। भारत के प्राचीन अमरग्रंथों का सृजन इन्हीं वनों से वृक्षों की छाया तले ही हुआ था।

संभवतः हमारे पूर्वज इस वैज्ञानिक सत्य से भली-भाँति परिचित थे कि इस धरती पर जीवन की डोर के धारक पेड़-पौधे और वनस्पतियाँ ही हैं। इसीलिए तो वनों और वृक्षों के संरक्षण हेतु बनाए गए नियमों को धर्म के साथ जोड़कर जीवन-दर्शन का अंग ही बना दिया गया था। उदाहरणार्थ पुराणों में वृक्षों के अंग-प्रत्यंगों में देवताओं का वास बताया गया है जैसा कि निम्न उदाहरण से विदित है।

मूले ब्रह्मा, त्वचा विष्णु, शाखायाम् महेश्वरः।
पत्रम सर्वदेवानाम, वृक्ष देव नमोस्तुते।

परन्तु जहाँ हम उपर्युक्त सत्य पर गर्व कर सकते हैं वहीं यह भी निर्विवाद सत्य है कि इस धरती पर मनुष्य जाति के प्रादुर्भाव से लेकर आज तक की मानव-सभ्यता का इतिहास इस बात का साक्षी है कि मानव कभी भी प्रकृति का मित्र नहीं रह सका। मनुष्य की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई आकांक्षाओं और भौतिक सफलताओं ने आज मानव जाति को विनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि मनुष्य को अपनी सुख-सुविधाओं की पूर्ति के लिए साधन नहीं विकसित करने चाहिए, विडम्बना यह है कि प्राकृतिक संसाधनों में जितना हिस्सा मनुष्य के लिए नियत है, या था, उससे कहीं अधिक लेना प्रारंभ कर दिया और यह भूल गया कि उसके अपने अस्तित्व के लिए भी प्राकृतिक सामन्जस्य आवश्यक है।

मानव-जाति की वर्तमान् उपलब्धियों को अद्वितीय नहीं माना जा सकता, क्योंकि कम से कम भारतवर्ष का इतिहास इस बात का साक्षी है कि इससे पूर्व भी वैज्ञानिक प्रगति अपनी चरम-सीमा पर पहुँच चुकी थी। परन्तु प्राकृतिक संसाधनों का जिस प्रकार अतिदोहन एवं विनाश इस समय हो रहा है, उतना कभी नहीं हुआ। रामायण एवं महाभारत-काल की युद्ध-विभीषिकाएँ इस बात के प्रमाण हैं कि उस समय के आग्नेय-अस्त्र आदि, आज के परमाणु-अस्त्रों, मिसाइलों आदि से कहीं अधिक सक्षम एवं घातक थे, फिर भी इस धरती पर उस काल में वनों का ऐसा अभाव न था, जैसा कि वर्तमान में दिखता है।

अपने खोजी जीवन के विगत 18 वर्षों में मुझे पूर्वोत्तर भारत, मध्य-भारत, पश्चिमी-भारत, पूर्वी हिमायली प्रक्षेत्र आदि के वानस्पतिक-सर्वेक्षणों के दौरान अनेक बार रोमांचकारी अनुभव हुए हैं। कुछेक सुखद अनुभूतियों एवं अनेक हृदय विदारक दृष्यों का सामना करना पड़ा है। यहाँ मैं मात्र कुछ घटनाओं का ही उल्लेख करना चाहूँगा।

1978 में मेघालय की अपनी प्रथम यात्रा के दौरान खेती की 'झूम पद्धति' के अन्तर्गत् संध्या काल में हरे-भरे वनोच्छादित खासी पहाड़ियों के बीच लाल-लाल अग्नि की लपटें मुझे किसी हत्यारें के रक्त-रंजित कुठार जैसी प्रतीत हुई, जो एक-दो नहीं वरन् एक संपूर्ण पादप समूह की हत्या का प्रत्यक्ष प्रमाण थीं। ऐसा ही दृष्य मुझे 1991 में सिक्किम में चुंगथांग से हेग्यायांग के रास्ते पर देखने को मिला। मेरी तो आत्मा रो उठी, जब मैंने उत्तरी सिक्किम के कटाऊ प्रक्षेत्र 'वुरांस' **(रोडोडेन्ड्रान)** के मीलों फैले वन देखे जिनका सड़क बनाने के लिए सफाया करने के लिए उन पर निरंतर कुल्हाड़ियाँ चल रहीं थीं। इससे भी अधिक हृदय विदारक दृष्य था उत्तरी सिक्किम में 'युमथांग वैली' के पास जहाँ शंकुधारी वन के **एबीज डेन्सा** प्रजाति के सैकड़ों ठूंठ ऐसे खड़े थे जैसे मुण्डविहीन मानवों को एक लाइन में संहारोपरान्त प्रदर्शन हेतु खड़ा कर दिया गया हो। इस महाविनाश का कारण यह था कि वहाँ पर एक व्यक्तिगत अतिथिगृह बनाया जाना था। मैं यह बात आज भी नहीं समझ सका हूँ कि जिन वृक्षरूपी-संतानों को (Climax forest types) पालने-पोसने में प्रकृति को सदियाँ लग गईं, उन्हें क्षणमात्र में जीवन-विहीन करने का हमें अधिकार है क्या ?

किन्तु इन्हीं यादों में कई सुखद अनुभूतियाँ भी हैं और इन्हीं सुखद अनुभूतियों में विगत अप्रैल (1996) में गंगा के मैदानी भाग में आस्था द्वारा रक्षित वन अर्थात् "सैक्रेड-ग्रोव" की खोज भी है। गंगा के मैदानी भाग, विशेष रूप से उत्तर प्रदेश के मैदानी भाग में "सैक्रेड-ग्रोव" की बात भी करना एक मज़ाक लगता है, क्योंकि निरंतर बढ़ती जनसंख्या के दबाव के कारण अब तो वनों का अस्तित्व ही समाप्त हो रहा है। परन्तु सौभाग्य से इसी क्षेत्र में पहुँच गया, "प्रथमदेव (बहिरादेव) सेक्रेड-ग्रोव" में। पूर्वी उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ ज़िले में, आज़मगढ़-फैज़ाबाद मार्ग पर, 36 कि० मी० की दूरी पर मुख्य सड़क के बाँए बाँसगाँव मोड़ से 1.5 कि० मी० पर, छोटी सरजू के दक्षिण, बगरदी ताल के उत्तर तथा बहिरादेव ताल के पूरब में तीन ओर तालों एवं नदीं से घिरी हुई एक अति प्राचीन वनस्थली है जिसे 'प्रथमदेव' या 'बहिरादेव वनस्थली' की संज्ञा दी गई है। इस आश्रम या वनस्थली की आज भी बड़ी मान्यता है। इसका अपना इतिहास है। कहते हैं कि राक्षसों के उपद्रवों से अपने तप

की रक्षा करने हेतु **महर्षि विश्वामित्र,** जब अयोध्या से **भगवान राम** एवं **लक्षण** को साथ लेकर चले थे तो रास्ते में यहीं पर उनका पहला पड़ाव पड़ा था। उनके प्रथम विश्राम-स्थल होने के कारण ही इस स्थान का नाम 'प्रथम देव' पड़ा तथा वहाँ एक पूजनीय आश्रम की स्थापना हुई। 'प्रथम देव' का मंदिर आज भी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में विद्यमान है।

लगभग दो शताब्दी पूर्व इस आश्रम में एक **सिद्ध संत बाबा मुसईदास** का पदार्पण हुआ। यह स्थान उन्हें इतना प्रिय लगा कि वे यहीं के होकर रह गए। बाबा एक परमयोगी एवं सिद्ध पुरुष थे। उनके जीवन काल में इस आश्रम एवं यहाँ के जीवों एवं वनस्पतियों को पूर्ण संरक्षण मिला। स्थानीय लोग बताते हैं कि आज से मात्र 25 वर्ष पहले यह वन अभेद्य था, जिसका कारण था यहाँ की जनता में पनपी यह धारणा कि जो इस वन के जीवों या पौधों की किसी प्रकार का नुकसान पहुँचाएगा, उसका अनिष्ट हो जाएगा। स्थानीय लोग ऐसे अनेक दुष्टान्त बताते हैं। कहानी जो भी हो, इस आस्था-रक्षित वन की जैव-विविधता स्वयं इसका प्रमाण है। इन्हीं सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं के कारण सदियों से यह वन सुरक्षित रहा। सदियों पुराने पलास वृक्षों का इतना बड़ा समुदाय मुझे तो किसी अन्य स्थान पर देखने को नहीं मिला, जितना कि यहाँ।

लगभग 500 एकड़ में फैला हुआ वन तथा उसको तीन ओर से घेरे हुए बगरदी एवं बहिरादेव ताल तथा छोटी सरयू नदी, वस्तुतः जीवों एवं वनस्पतियों का स्वर्ग है। अप्रैल की तपती गर्मी में जब कि तापमान लगभग 44° से० के आस-पास पहुँच रहा था, इस प्रक्षेत्र की नम भूमि में शांत लेटे अजगर (Python) जिसे स्थानीय बोली में 'चिन्तायन' कहते हैं, के जोड़े को देखना एक अत्यन्त ही रोमांचक अनुभव था। यहाँ तथा पास के गाँवों मदियापार एवं डमूडीह में इनकी संख्या काफी बताई जाती है। हमारा राष्ट्रीय पक्षी मोर *(Pavo cristatus)*, फेटार *(Naja Naja)*, कराइत *(Bungarus coeruleus)*, डोट्ठहा *(Styas mucosus)*, धामिन, गोजर, जोंक, केचुए, तरह-तरह के घोंघे एवं सीप *(Molluscs)*, खरहा, खरगोश, साही, लोमड़ *(Vulpus bengalensis)*, सिआर *(Canis aureus)*, भेड़िया, नीलगाय *(Boselaphus tragocamelus)*, बुबबुल, तोता, गौरैया, कबूतर *(Columbia livia)*, तीतर *(Francolines pondicirionus)*, बटेर *(Coturnix communis)*, हारिल, फ़ाख्ता *(Streptopella decaocta)*, गिद्ध, चील, उल्लू, बगुला, कौआ, मखोहा, टिटहरी, गिलहरी, किलहटी, केउटिन या पेंघा, आदि जीव यहाँ स्वच्छन्द बिहार करते हैं। छोटी-बड़ी अनेक मछलियाँ भी बहुतायत से पायी जाती हैं।

परन्तु विगत 4-5 वर्षों से पानी लगभग पूर्णतया सूख जाता है (पास के डुहिया ताल को छोड़कर), जलीय एवं नम पौधे समाप्त हो जाते हैं, तथा मछलियाँ मर जाती हैं। लगभग प्रत्येक गर्मी में पानी के अभाव से 10-12 नीलगाएं मरी पायी जाती हैं।

वनस्थली के आस-पास निवास करने वाले लोगों से ज्ञात हुआ कि वर्षा के पश्चात् जब तालों में पानी भर जाता है और बरसाती वनस्पतियाँ पुनर्विकसित हो जाती हैं, उस समय यह क्षेत्र, पेड़-पौधों से भरा-पूरा, एक अभेद्य क्षेत्र हो जाता है। अप्रैल में मुझे लगभग 84 प्रजातियों के फूलवाले पौधे और 3 जातियों के पर्णांग (टेरिडोफाइटा) दिखे। इस पवित्र-वन की संपूर्ण पादप-संपदा का सही आकलन तो कम से कम आगामी अक्टूबर में इस क्षेत्र का वनस्पतिक सर्वेक्षण करने के पश्चात् ही किया जा सकेगा, परन्तु वर्तमान में जो भी दिखा वही इस वन की वनस्पतिक-संपदा का सूचक है। अप्रैल 1996 में इस क्षेत्र में पुष्पित पौधों की सूची तालिका-1 में दी गई है।

यहाँ एक बात का उल्लेख मैं अवश्य करना चाहूँगा और वह यह कि लगभग 20 वर्ष पूर्व 115 एकड़ क्षेत्रफल का भाग इस आश्रम के कार्यकर्ताओं द्वारा उत्तर प्रदेश वन विभाग को इस आशा और विश्वास के साथ दिया गया कि इस 'सैक्रेड-ग्रोव' का विकास और वनीकरण वन विभाग करेगा, किन्तु संभवतः इस 'सैक्रेड-ग्रोव' की महत्ता को न समझ पाने के कारण वनीकरण एवं विकास योजना के अन्तर्गत् यहाँ अत्यधिक संख्या में सफेदा **(यूकेलिपटस)**,

विलायती बबूल (**प्रोसोपिस**), साम केसिया (**कैसिया सियामिया**), **आकेसिया आरीकुलीफार्मिस** लगा दिए गए, जिनमें से सफेदा व विलायती बबूल तो आज पूर्ण विकसित होकर इस वन के प्राकृतिक रूप को नष्ट कर रहे हैं। वन-विभाग की एक पौध-शाला भी विकसित की गई है, जिसमें हजारों की संख्या में सागौन की पौधें दिखीं। यदि ये सभी इस क्षेत्र में रोपित कर दिए गए तो निश्चय ही आगामी दशक में यह वन एक कृत्रिम व्यापारिक वन होकर रह जाएगा क्योंकि टीक वृक्षों की विशेषता होती है कि उनके नीचे अन्य शाकीय पौधे फल-फूल नहीं पाते हैं।

अतएव आज इस पवित्र-वनस्थली को संरक्षण की नितांत आवश्यकता है। इसके आस-पास के जलस्रोत यहाँ तक कि ताल एवं नदी भी, गर्मी में सूख जाने से यहाँ की जैव-विविधता पर कुप्रभाव पड़ा रहा है। अतः इस वन के आस-पास की संकुचित होती नम-भूमि एवं तालों के पुनरोद्धार की आवश्यकता है जिससे यहाँ की जैव-संपदा सुरक्षित रह सके। साथ ही आवश्यकता इस बात की है कि विदेशी-पादप प्रजातियों का रोपण तुरन्त बंद किया जाय और इस समूचे क्षेत्र को राष्ट्रीय संरक्षण प्रदान किया जाय।

यहाँ एक और पादप-संरक्षण का अनोखा दृष्टान्त उद्धृत करना उचित होगा। इसी "सैक्रेड-ग्रोव" के पास के एक गाँव शेखपुरा में **श्री राम वशिष्ठ लाल** के परिवारवालों द्वारा पीढ़ियों से एक पीपल वृक्ष संरक्षण पा रहा है, जिसकी आज की आयु लगभग 200 वर्ष बताई जाती है। इस वृक्ष को 'दैंत बाबा' की संज्ञा दे दी गई है तथा गांव के लोग इसकी पूजा करते हैं। सदियों से इस वृक्ष की एक टहनी भी किसी ने तोड़ने की हिम्मत नहीं की है। फलस्वरूप यह प्राचीन पीपल (**फाइकस रेलिजिओसा**) सदियों से निर्वाधगति से फलता-फूलता, वृद्धि करता हुआ आज एक विशालकाय वृक्ष के रूप में खड़ा है। वृक्षों को सामाजिक-संरक्षण प्रदान करने की यह एक अनूठी मिसाल है। इस पीपल वृक्ष को संरक्षण पाने के मूल में हो सकता है 'बहिरादेव सैक्रेड-ग्रोव' के संरक्षण की प्रेरणा ही हो।

तालिका-1

'प्रथमदेव (बहिरादेव) सैक्रेड-ग्रोव' में अप्रैल 1996 में देखी गयीं वनस्पति प्रजातियां निम्नलिखित हैं--

वृक्ष

1. अर्जुन (**टरमिनेलिया अर्जुना**)
2. लहटोरा (**कैरिया आरबोरिया**)
3. पलास (**ब्यूटिया मोनोस्पर्मा**)
4. पीपल (**फाइकल रेलिजिओसा**)
5. बरगद (**फाइकस बेंघालेंसिस**)
6. बबूल (**आकेसिया निलोटिका**)
7. आम (**मैंजीफेरा इन्डिका**)
8. जामुन (**यूजेनिया जैम्बोलिना**)
9. महुआ (**मधुका लांगीफोलिया** भेद **लैटीकोलिया**)
10. नीम (**एज़ाडिरैक्टा इन्डिका**)
11. पाकड़ (**फाइकस वाइरेन्स**)
12. गूलर (**फाइकस रेसीमोसा**)
13. बेल (**एगिल मारमेलास**)
14. कंजी (**पोंगामिया पिन्नाटा**)
15. अमरूद (**साइडियम गुआजावा**)
16. सहजन (**मोरिंगा ओलीफेरा**)
17. सागौन (**टेक्टोना ग्रैंडिस**)-**रोपित वृक्ष**
18. शीशम (**डलबर्जिया सिसू**)
19. चिलबिल (**होलोप्टेलिया इन्टेग्रीफोलिया**)
20. इमली (**टेमेरिन्डस इन्डिकस**)
21. जंगल जलेबी (**पिथेकोलोबियम डल्सी**)
22. सेमल (**बाम्बेक्स सीबा**)
23. सिरिस (**अल्बीजिया लेबेक**)
24. ताड़ (**बोरेसस फ्लेबेलीफर**)

25. खजूर (**फोएनिक्स सिलवेसट्रिस**)

26. बड़हर (**आर्टोकोर्पस लकूचा**)

27. कटहल (**आटोकार्पस हेटरोफिला**)

28. आछी

29. बेहरी

30. लालटेन

31. सिंघोर

32. भलुआ बांस (**अरुन्डिनेरिया प्रजाति**)

33. कटबासी

34. सफेदा

35. विलायती बबूल (**प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा**)

36. पापुलस (**पापुलस सिलिऐटा**)

37. सामकेसिया (**कैसिया सियामिया**)

38. सुबबूल (**ल्यूसेना ल्यूकोसिफेला**)

लताएँ

1. अमरबेल (**कसकुटा की प्रजाति**)
2. **डाएस्कोरिया पेन्टाफिला**
3. घुमची (**एवस प्रिकेटोरिएस**)

झाड़ियाँ

1. अकाइचा (**कैपेरिस जिलेनिका**)
2. कंटीला भयोइचा (**कैपेरिस स्पाइनोसा**)
3. करौंदा (**कैरिसा केरेन्डस**)
4. अडूस (**एडाटोडा वैसिका**)
5. वंघनखा (**मार्टीनिया एनुआ**)
6. मदार (**कैलोट्रोपिस गिगेन्शिया**) (**श्वेत-पुष्पी एवं बैंगनी पुष्पधारी**)
7. करौनी (**जैन्यिम स्ट्रेमेरियस**)
8. बेहया (**आइपोमिया कॉर्निया**)
9. बेर (**जिजिफस मार्सिआना**)
10. जंगलीबेर (**जिजिफस ओइनोपलिया**)
11. सरपत
12. मूँज
13. कुश

शाकीय पौधे

जलीय नम भूमि वाले पौधे

1. सेवार (**एपैमोजिटॉन**)
2. सेवार (**पोटैमोजिटॉन**)
3. सेवार (**हाइड्रिला**)
4. जलकुम्भी या गढ़ापाट (**इकार्निया क्रेसीपिस**)
5. तीनी (**ओराइजा प्रजाति**)
6. पुरइन (**नीलम्बो न्यूसीफेरा**)
7. **निम्फवायडिस**
8. नरई (**सिप्पस**)
9. **सिरपस मारिटिमस**
10. **कैरेक्स फेडिया**
11. **लुडवीजिआ एडसेन्डेन्स**
12. **आटेलिया एलिसमवाएडिस**
13. **वैलिसनेरिया स्पाइरोलीना**
14. **यूट्रिकुलेरिया आरिया**

स्थलीय पौधे

1. **लिप्पया नूडीफ्लोरा**
2. ब्राह्मी (**सेन्टेला एसिआटिका**)
3. मुंडी (**स्फेरेन्थस इंडिकस**)
4. वनगोभी (**लानिया एसप्लेनीफोलिया**)
5. **ब्लूमिया आक्सीडान्सा**

(शेष पृष्ठ 19 पर)

वार्षिक रिपोर्ट-1995-96

विज्ञान परिषद् के 83 वर्ष पूरे हो चुके हैं। इस वर्ष परिषद् ने कुछ महत्वपूर्ण कार्य किये। प्रतिवर्ष की तरह 6 अप्रैल, 1996 को "डॉ० आत्मा राम स्मृति व्याख्यान" रहा। यह व्याख्यान सुप्रसिद्ध पुरावनस्पतिविद् **डॉ० डी० डी० पन्त** द्वारा दिया गया। 29 मार्च 1996 को "डॉ० गोरख प्रसाद स्मृति व्याख्यान" दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति **प्रो० जे० एन० कपूर** द्वारा दिया गया। 23 फरवरी 1996 को "डॉ० रत्नकुमारी स्मृति व्याख्यान" विज्ञान विदुषी **श्रीमती डॉ० राधा पन्त** ने दिया, जिसकी अध्यक्षता प्रयाग की साहित्यविदुषी **श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया** ने की।

'विज्ञान प्रसार', डी० एस० टी०, नई दिल्ली एवं 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' के संयुक्त तत्वावधान में "स्वतन्त्रता पूर्व विज्ञान लोकप्रियकरण के व्यक्तिनिष्ठ प्रयास" विषय पर द्विदिवसीय (28-29 जनवरी 1996) शोध संगोष्ठी आयोजित की गयी जिसमें 17 लेख प्रकाश में आये। ये सभी लेख 'विज्ञान प्रसार', नई दिल्ली द्वारा पुस्तकाकार प्रकाशित किए जायेंगे। इस संगोष्ठी के लिए 'विज्ञान प्रसार' ने 42,000/- रुपयों की एक राशि परिषद् को प्रदान की।

'विज्ञान परिषद् प्रयाग' और 'वैज्ञानक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद्' नई दिल्ली के तत्वावधान में "डॉ० गोरख प्रसाद जन्मशती समारोह" विषय पर द्विदिवसीय (28-29 मार्च, 1996) संगोष्ठी आयोजित की गयी। इस संगोष्ठी के लिए सी० एस० आई० आर०, नई दिल्ली ने 10,000/- रु० की राशि दी।

परिषद् में इस समय आजीवन सभ्यों की संख्या 500 के ऊपर पहुँच गयी है, किन्तु वार्षिक सदस्यों की संख्या संतोषजनक नहीं है। पहले से कुछ घटी ही है।

आलोच्य वर्ष में "विज्ञान" एवं "विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका" का प्रकाशन नियमित हो गया है। "विज्ञान" एवं "अनुसंधान पत्रिका" को मिलने वाली अनुदान राशि में 10,000/- (प्रत्येक के लिए) की वृद्धि की गयी है।

"विज्ञान" पत्रिका में उत्कृष्ट लेखन के लिए प्रोत्साहन स्वरूप दिया जाने वाला "डॉ० गोरख प्रसाद विज्ञान लेखन पुरस्कार" वर्ष 1991-1995 तक की घोषणा कर दी गई है और विजेताओं को प्रमाण-पत्र और पुरस्कार की राशि भेज दी गई है।

व्याख्यानशाला के साउण्डप्रूफ का कार्य लगभग पूरा हो चुका है एवं उसमें छः पंखे लगा दिये गये हैं। ठेकेदार को रु० 1,55,000 = 00 (एक लाख पचपन हजार) भुगतान कर दिया गया है, किन्तु अर्थाभाव के कारण अभी पूरा भुगतान नहीं किया जा सका है।

श्रीमती डॉ० राधा पंत ने 1,000 (एक हज़ार रुपये) दानस्वरूप दिए। इस वर्ष स्व० स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती कोष के लिए **प्रो० चन्द्रिका प्रसाद जी** ने 5000/- रु० (पाँच हज़ार रुपये) दिए। "डॉ० गोरख प्रसाद लेखन पुरस्कार" के लिए **श्री अरुण जी** ने 3,000/- (तीन हजार रुपये) दिए और यह निश्चय किया गया कि प्रत्येक विजेता को 100/- (एक सौ) रु० की राशि भेजी जाये।

कुछ दुःखद समाचार भी हैं। इस वर्ष **डॉ० रामदास तिवारी, डॉ० बी० बी० एल० सक्सेना जी की धर्मपत्नी** तथा "विज्ञान" एवं "विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका" के मुद्रक **श्री अरुण जी की माता जी** का निधन हो गया। दिवंगत आत्माओं को परिषद् की भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

प्रसन्नता की बात है कि महाराजा सायाजीराव विश्वविद्यालय बड़ौदा के वनस्पति विभाग के व्याख्याता **डॉ० अरुण आर्य** के सद्प्रयत्नों से बड़ौदा में 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' की शाखा "बड़ौदा शाखा" 1 जनवरी 1996 से स्थापित हो गई है । इसके लिए डॉ० अरुण आर्य जी साधुवाद के पात्र हैं ।

इस प्रकार परिषद् के लिए यह वर्ष हर्ष और विषाद् का मिला-जुला वर्ष रहा ।

—डॉ० डी० डी० नौटियाल
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद्

विज्ञान परिषद्

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-2

वर्ष 1996-97 के नवनिर्वाचित पदाधिकारियों एवं अन्तरंग सभा के सदस्यों की सूची

1. प्रो० डी० डी० पन्त	सभापति
2. डॉ० एस० के० जोशी	पदेन उपसभापति
3. श्री राम सहाय	"
4. प्रो० कृष्ण जी	"
5. डॉ० रामचरण मेहरोत्रा	"
6. प्रो० यशपाल	"
7. श्री गजानन्द	"
8. प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी	उपसभापति
9. डॉ० रामगोपाल	"
10. प्रो० शिवगोपाल मिश्र	प्रधानमन्त्री
11. डॉ० अशोक कुमार गुप्ता	मन्त्री (भवन)
12. डॉ० दिनेश मणि	संयुक्त मन्त्री
13. डॉ० राजकुमार दुबे	"
14. प्रो० डी० डी० नौटियाल	कोषाध्यक्ष
15. श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	सम्पादक, विज्ञान
16. डॉ० दिनेश मणि	सहायक सम्पादक, विज्ञान
17. प्रो० ईश्वर चन्द्र शुक्ला	पुस्तकालयाध्यक्ष
18. श्री दर्शनानन्द	आय-व्यय निरीक्षक
19. प्रो० पी० सी० गुप्ता	स्थानीय अन्तरंगी
20. प्रो० चन्द्रिका प्रसाद	"
21. प्रो० जगदीश सिंह चौहान	"
22. श्री विजय जी	"
23. डॉ० श्रवण कुमार तिवारी वाराणसी	बाह्य अन्तरंगी
24. डॉ० रमेश दत्त शर्मा, दिल्ली	"
25. डॉ० ओम प्रभात अग्रवाल, रोहतक	"
26. डॉ० आई० सी० गुप्ता, जोधपुर	"
27. डॉ० निरंजन पन्डा, भुवनेश्वर	"
28. डॉ० ए० के० बसु, मैसूर	"
29. डॉ० एस० एन० पाण्डेय, कलकत्ता	"
30. डॉ० राजशेखर भूसनूरमठ, धारवाड़	"
31. डॉ० देश दीपक, बैलाडीला	"
32. डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय, फैजाबाद	"
33. डॉ० जे० एन० कपूर, दिल्ली	"

उत्तर-प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आँध्र प्रदेश
के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें ।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामायिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों ।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें ।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र यदि किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी ।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा । उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है ।
6. हमें चिंतनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है । कृपया छोटे निम्नस्तरीय लेख हमें न भेजें ।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है ।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु पुस्तक अथवा पत्रिका की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए । समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी ।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है । विज्ञापन की दरें निम्नवत् हैं ।

भीतरी पूरा पृष्ठ 200.00 रु०, आधा पृष्ठ 100.00 रु० चौथाई पृष्ठ 50.00

आवरण : *द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ* 500.00 रु० ।

मूल्य :

आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत : 500 रु० संस्थागत, **त्रिवार्षिक** : 60 रु० : **वार्षिक** 25 रु०
प्रति अंक : 3 रु० 50 पैसे, यह अंक : 7 रु०

प्रेषक : विज्ञान परिषद् प्रयाग,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद -211002

ISSN : 0373 – 1200

सितम्बर 1996

विज्ञान

कौंसिल ऑफ साइंटिफिक
एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च,
नई दिल्ली के आंशिक
अनुदान द्वारा प्रकाशित
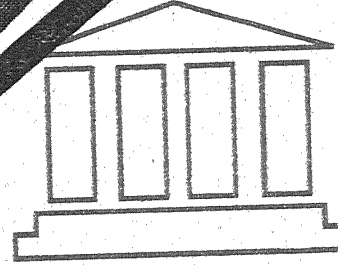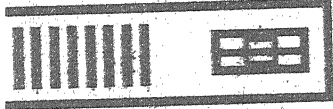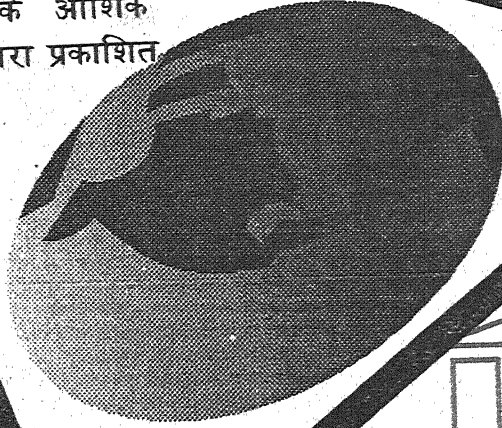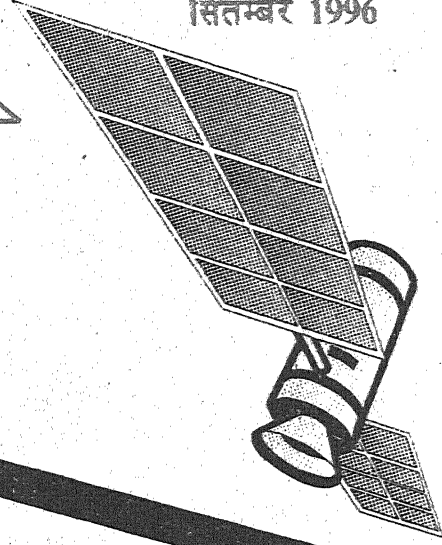
विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913 : विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

सितम्बर 1996 : वर्ष 82 अंक 6; मूल्य : यह अंक : 3.50 रु०

आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत : 500 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 60 रु०, वार्षिक 25 रु०, एक प्रति : 3 रु० 50 पैसे

विज्ञान विस्तार

विज्ञान वक्तव्य—प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ... 1

नई किरण विज्ञान की — हरिराम आचार्य ... 2

शैवालों के आधुनिक उपयोग — एन० के० बोहरा ... 3

धान क्रांति के लिए वरदान : नील हरित काई — सुशील कुमार राय ... 5

लहसुन खायें, स्वस्थ रहें — प्रदीप शर्मा ... 6

कृत्रिम बुद्धि — वाई० एन० टी० शेषगिरि राव ... 9

कुछ विचित्र कवक — डॉ० अरुण आर्य ... 12

मरु क्षेत्र के वैकल्पिक खाद्य स्रोत— नवीन कुमार बोहरा ... 15

वन और हमारा पर्यावरण — संजय कुमार "गम्भीर" ... 17

पशु चिकित्सा में देशी औषधियों का महत्व बढ़ रहा है — आर० बी० चौधरी ... 21

पुस्तक समीक्षा — डॉ० सुनीलदत्त तिवारी ... 23

परिषद् का पृष्ठ : परिषद् के प्रधानमंत्री की कलम से — डॉ० शिवगोपाल मिश्र ... 24

प्रिय पाठकगण !

मैं आपका ध्यान दो समस्याओं की ओर आकृष्ट करना चाहूँगा। बी०एस-सी० भाग तीन के लड़के-लड़कियों की विश्वविद्यालय की परीक्षाएँ हो चली हैं। किन्तु अधिकतर चेहरे प्रफुल्लित नहीं दिखते। इसकी वजह इम्तहान न होकर यह एहसास है कि अब बी०एस-सी० कर लेने के बाद आगे क्या करेंगे। वास्तविकता यह है कि अधिकांश जो आगे पढ़ नहीं सकते वे नौकरी तलाशना शुरू कर देंगे। पर इतनी नौकरियाँ हैं कहाँ? विज्ञान के स्नातक के लिए नौकरी की तलाश खज़ाने की तलाश से कम नहीं। किसी भाग्यशाली को इन दिनों नौकरी मिल जाये तो उसे ऐसा ही लगेगा जैसा आर्किमिडीज को अपनी खोज से लगा होगा।

इन दिनों चूँकि पर्यावरण को बचाने पर विशेष बल दिया जा रहा है इसलिए विज्ञान के स्नातकों, विशेष रूप से जीव विज्ञान के स्नातकों के लिए आशा की क्षीण रेखा दिखाई देने लगी है। विज्ञान के स्नातकों को मेरा सुझाव है कि यदि वे चाहें तो अपने लिए ऐसे "कैरियर" का चुनाव कर सकते हैं जिसके द्वारा वे नौकरी के साथ ही साथ पर्यावरण को बचाने का भी आनन्द उठा सकते हैं। ऐसे स्नातक जिनकी रुचि पर्यावरण में हो वे अपने लिए 'पर्यावरण मित्र कैरियर' का चुनाव कर सकते हैं। इस संबंध में जवाहर लाल विश्वविद्यालय, नई दिल्ली और चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ का नाम लिया जा सकता है, जहाँ एम०एस-सी० की पढ़ाई के लिए एक विषय पर्यावरण का अध्ययन भी है। एम० एस-सी० में प्रवेश के लिए बी०एस-सी० में प्रथम श्रेणी और भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान तथा जीव विज्ञान विषय होने चाहिये। चुनाव लिखित परीक्षा द्वारा होता है।

इनके अतिरिक्त वानिकी में एम० एस-सी० की पढ़ाई के लिए डॉ० वाई० पी० यूनिवर्सिटी ऑव हार्टिकल्चर एण्ड फॉरेस्ट्री, सोलन; तमिलनाडु एग्रीकल्चरल यूनिवर्सिटी, कायम्बटूर; जी०बी० पंत यूनिवर्सिटी ऑव एग्रीकल्चर एण्ड टेक्नॉलाजी, पंतनगर; और हरियाणा एग्रीकल्चरल यूनिवर्सिटी, हिसार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। भोपाल में स्थित द इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑव फॉरेस्ट मैनेजमेंट दो वर्ष का स्नातकोत्तर डिप्लोमा का कोर्स वानिकी प्रबंधन में चलाता है। वे विद्यार्थी जिनकी रूचि वन्यजीवन में हो वे अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी; मद्रास यूनिवर्सिटी; सौराष्ट्र यूनिवर्सिटी (राजकोट); और भारतीदासन यूनिवर्सिटी (तिरुचिरापल्ली) से वन्यजीवन में एम०एस-सी० का उपाधि के लिए प्रवेश ले सकते हैं।

और तो और, जिन विद्यार्थियों ने विज्ञान की विधिवत शिक्षा न ग्रहण की हो वे सालिम अली स्कूल ऑव इकॉलोजी, पाण्डिचेरी यूनिर्वसिटी और वाइल्ड लाइफ इंस्टीट्यूट ऑव इण्डिया, देहरादून में वानिकी से संबंधित कोर्स का अध्ययन कर सकते हैं।

आजकल जिधर निगाह जाती है गाजर घास ही नज़र आती है। इसे काँग्रेस घास या चटक चाँदनी भी कहते हैं। इसका वैज्ञानिक नाम *पर्थिनियम हिस्ट्रोफोरस* है। इसके बीज पी०एल० 480 स्कीम के साथ अमेरिका से भारत आये। यह कम्पोजिटी (नया नाम एस्टेरेसी) कुल का पौधा है। यह खरपतवार है। इसके एक पौधे से औसतन 650 अंकुरण योग्य बीज प्राप्त होते हैं। यह पौधा 'शोषक' के रूप में उभर रहा है। वनस्पति विज्ञान की भाषामें शोषक के रूप में उभरने को 'एलिलोपैथी' कहते हैं। इसकी जड़ से 'इक्वीडेर' स्रावित होता है, जो मिट्टी को खराब करता है।

इसके परागकण वायु को दूषित करते हैं। यह श्वास रोग और चर्म रोग उत्पन्न करता है। मनुष्यों में दमा, खाँसी, बुखार, एलर्जी पैदा करता है। इस घास को खानेवाले पशुओं का दूध 'कडुवा' होता है। इस संबंध में एक शुभ समाचार है। *कैसिया सीरेसिया* नामक पौधा गाजर घास का नियंत्रण करता है। शेष फिर

आपका
प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

नई किरण विज्ञान की

❑ हरिराम आचार्य *

नई दृष्टि हो,
नई सृष्टि हो,

नूतन अनुसन्धान की।

इस गुलाब-नगरी से उभरे,
नई किरण विज्ञान की।

यह धरणी है चरक, आर्यभट, मिहिर-भास्करों की धरणी,
बोस,रमण, रामानुज, शेखर और खुराणा की जननी।

तपस्वियों ने परम सत्य का अन्तर्दर्शन यहीं किया।
'अंक', 'दशमलव' के तत्वों का इसी देश ने दान दिया।

कदम बढ़ायें,
फिर दुहरायें,

गाथा उस अभियान की।
इस गुलाब-नगी से उभरे, नई किरण विज्ञान की।

★ ★ ★ ★

राग, अभाव, प्रदूषण, जड़ता का कितना परिहार किया?
क्रान्ति-सूत्र कितने रच पाये, क्या-क्या आविष्कार किया?
कितना चले, कहाँ तक पहुँचे, इस पर आज विचार करें।
जनमानस में अधुनातन के चेतन का संचार करें।

निशा मिटायें,
धुंध हटाये,

सदियों के अज्ञान की।
इस गुलाब-नगरी से उभरे, नई किरण विज्ञान की।

★ ★ ★ ★

मंथन नये विचारों का यह संगम है नव चिन्तन का,
इसका शंखनाद बन जाये स्वर कल के अभिनन्दन का।
अनल सिन्धु से ग्रहमंडल तक ऊर्जा के अभियान चलें,
जीवन सजे, खेत लहरायें, यंत्रों में उद्योग ढलें।

शक्ति जगायें,
कीर्ति बढ़ायें,

वैज्ञानिक वरदान की।
इस गुलब-नगरी से उभरे, नई किरण विज्ञान की।

---

* बुलेटिन ऑव द यूनिवर्सिटी ऑव राजस्थान, जयपुर, 81 वें विज्ञान सम्मेलन (1995) सेशन, आई०एस०सी० से साभार

शैवालों के आधुनिक उपयोग

❑ एन० के० बोहरा

प्लाट नं० 389. स्ट्रीट नं० 10
मिल्क मैन कॉलोनी, पाल रोड
जोधपुर (राजस्थान)

शैवालों को आम भाषा में 'सेवार' या 'काई' कहा जाता है तथा अंग्रेजी में इसे 'एल्गी' कहा जाता है । यह धागे या फीते जैसे शरीर वाले (थैलोफइटा) निम्न कोटि के पैधें हैं । शैवाल मुख्यतया जलीय होते हैं तथा इनमें पर्णहरित तथा अन्य प्रकाश-संश्लेषी रंजक विद्यमान होते हैं। शैवालों का उपयोग भिन्न-भिन्न रूप में कई सदियों से हो रहा है । आठवीं सदी ई० पू० में जापानी एवं चीनी लोग आंत की गड़कबड़ियों एवं अन्य रोगों के उपचार में समुद्री शैवालों का प्रयोग करते थे । जलोदर, मासिकधर्म सम्बन्धी परेशानियों, पेट व आंत की गड़बड़ियों, फोड़ों और कैंसर तक के उपचार में शैवालों का उपयोग होता रहा है । इसके अतिरिक्त शैवाल का उपयोग मुख्य रूप से पशु-चारे, खाद तथा विभिन्न खनिज पदार्थों के स्रोत के रूप में होता रहा है । ये एककोशीय अथवा बहुकोशीय तंतुओं या रेशों के रूप में तालाबों, नदियों एवं समुद्र की सतह अथवा नीचे पाये जाते हैं ।

आधुनिक युग में शैवालों पर किये गये विभिन्न अनुसंधानों के उत्साहजनक परिणाम प्राप्त हुए हैं तथा यह स्पष्ट हो गया है कि इसे भोजन, चारे, खाद, ओषधि-मल-उद्धारक आदि असंख्य कार्यों में उपयोग में लिया जा सकता है । वर्तमान में नई तकनीकों द्वारा बड़े पैमाने पर इसकी खेती करने के प्रयास किये जा रहे हैं ।

भारत जैसे विकासशील देशों में जहाँ अधिक आबादी और कम भोजन, विशेष रूप से प्रोटीनयुक्त भोजन, के अभाव में कुपोषण की समस्या बहुत ही व्यापक है, ये शैवालें बहुत ही सहायक सिद्ध हो सकती हैं । शैवाल के लिए आवश्यक धूप, कार्बन डाइऑक्साइड, खाद व पानी की मात्रा भारत में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है । अतः इसकी बड़े पैमाने पर खेती हेतु भी आदर्श परिस्थितियाँ हैं । शैवाल का उपयोग वैकल्पिक खाद्य के रूप में करने से कुपोषण की समस्या से भी निजात मिल सकती है ।

शैवाल सम्बन्धी अनुसंधान

भारत में शैवालों का कृषि में एवं खाद्य के रूप में महत्व को जानकर नई दिल्ली में डॉ० वैंकटरमन के नेतृत्व में एक दशक से भी अधिक समय से किये गये अनुसंधानों के परिणाम आशाजनक मिले हैं । इसी प्रकार केन्द्रीय नमक एवं समुद्री रासायनिक अनुसंधान संस्थान, भावनगर (गुजरात) में समुद्री शैवालों पर प्रोटीन की मात्रा सम्बन्धी अनुसंधान जारी है । ऐसा अनुमान है कि ये प्रोटीन-युक्त शैवालें बढ़ती आबादी के लिए तथा अंतरिक्ष यात्रियों एवं अंटार्कटिका जैसे स्थानों पर भी उत्तम तत्वों वाले भोजन के रूप में इस्तेमाल की जा सकेंगी ।

विभिन्न शैवालों में विटामिन ए, बी, सी तथा थाइमीन एवं राइबोफ्लोविन की मात्रा पाई गई है तथा कुछ शैवालों से तो दाल में मिलने वाले प्रोटीन से कई गुना प्रोटीन पाया गया है । दुधारू पशुओं के चारे में समुद्री शैवालों के प्रयोग से दुग्ध-उत्पादन में वृद्धि हुई । इसी प्रकार मुर्गियों के चारे

में समुद्री शैवाल के इस्तेमाल से अण्डों की मात्र में वृद्धि के साथ केरोटिन तथा आयोडीन की मात्रा में भी बढ़ोत्तरी हो जाती है ।

मानव भोजन के लिए समुद्री शैवालों की खेती जापान में विकसित कर ली गई है । जापान में *क्लोरेला* नामक प्रोटीनयुक्त शैवाल जो प्रचुर मात्रा में खाया जाता है । भारत में भी जाल शैवाल *पोरीफेरा टनेरा* बहुत लोकप्रिय है । इसी प्रकार *लैमिनेरिया* नामक शैवाल जिसे 'कैल्प' भी कहते हैं, से आयोडीन प्राप्त की जाती है ।

शैवाल का कृषि कार्यों में उपयोग

भारत का तटरेखीय प्रदेश बहुत बड़ा है तथा यहाँ के समुद्रतटीय भागों, विशेष रूप से पूर्वी भागों में शैवाल की खेती आसानी से की जा सकती है । शैवालों का आधुनिक युग में उपयोग बायोफर्टिलाइजर या जैविक खाद के रूप में भी किया जाने लगा है । शैवालों की कुछ प्रजातियाँ प्रकाश-संश्लेषण और नाइट्रोजन-स्थिरीकरण बहुत अच्छी तरह करती हैं, इस प्रकार इन शैवालों के इस्तेमाल से नाइट्रोजन-स्थिरीकरण में वृद्धि होती है तथा भूमि की उर्वरा शक्ति में भी वृद्धि होती है । नीलहरित शैवाल विशेषतः हेटेरोसिस्ट नामक संरचना वाले शैवालों में नाइट्रोजन-स्थिरीकरण की अधिक क्षमता होती है । उदाहरण के लिए *नॉस्टॉक, एनाबिना* आदि नीलहरित शैवाल ।

इसी दिशा में आंध्रप्रदेश के तेलंगाना प्रदेश में धान के खेतों में *एज़ोला* नामक जलीय फर्न के संवर्धन के अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं । यह पादप इस क्षेत्र में खरपतवार के रूप में बहुतायत से उगता है । *एज़ोला* में 3 प्रतिशत नाइट्रोजन होती है और इसका प्रयोग 10-15 टन हेक्टेयर की दर से हरी खाद के रूप में किया जाता है । चीन एवं उत्तरी वियतनाम में इसका बहुतायत से उपयोग होता है ।

इस प्रकार के शैवाल और *एज़ोला* कृषि कार्यों में रासायनिक उर्वरकों के संपूरक के रूप में लाभकारी हैं ।

मल-उद्धार

हाल ही में शैवालों की खेती का उपयोग मल-उद्धार में किया जाने लगा है । भारत में वाहित-मल के नियंत्रण की एक बड़ी समस्या है । वाहित-मल के बहकर चले जाने से खाद के इस सक्षम स्रोत का कोई उपयोग नहीं हो पाता है । वर्तमान में इस वाहित-मल में शैवालों को उगाकर इस मल का पुनःरुद्धार किया जाता है । इस वाहित-मल में जैविक पदार्थ अधिक मात्रा में होने के कारण इसमें से दुर्गन्ध आने लगती है अतः सामान्यतः एककोशीय शैवालों को जीवाणुओं के सहजीवन में वाहित-मल में उगाया जाता है । ये वायुकारी जीवाणु जैविक पदार्थों को तोड़कर दुर्गंध में कमी करते हैं । सामान्यतः वाहित-मल वाले स्थानों पर *क्लेमाइडोमोनॉस, क्लोरेला, युग्लेना, नॉस्टॉक, एनाबिना, सेन्डेस्मस* जैसे उपयोगी शैवालों और जलीय फर्न *एज़ोला* को उगाया जा सकता है, जिससे वाहित-मल के उद्धार के साथ-साथ सस्ते प्रोटीन-युक्त खाद्य पदार्थं की प्राप्ति भी हो सकेगी ।

इस प्रकार वर्तमान युग में यदि हम वैचारिक क्रांति लाते हुए इन शैवालों का उपयोग कृषि, खाद, भोजन, चारे आदि के रूप में करें तो इससे निश्चित रूप से देश को आर्थिक विकास के साथ-साथ कुपोषण की समस्या से भी निजात मिल सकेगी । अतः अगली बार जब आप तालाब के किनारे, नाले अथवा किसी टैंक में हरी काई (शैवाल या एल्गी) देखें तो उसे हेय दृष्टि से न देखें, क्योंकि यह 21वीं सदी का पौष्टिक, प्रोटीनयुक्त भोजन है जो कई अन्य कार्यों में भी उपयोगी है ।

■■■

[पृष्ठ 5 का शेषांश]

अतः यदि इस शताब्दी के अन्त तक देश की एक अरब आबादी के भरण-पोषण के लिए 24 करोड़ टन खाद्यान्न (जिसमें 11.5 करोड़ टन चावल) के लक्ष्य को प्राप्त करना है, तो पूरे धान क्षेत्र (42.3 लाख हेक्टेयर में नील-हरित काई जैव उर्वरक का प्रयोग करके देश में दूसरी हरित क्रान्ति लानी होगी। इससे प्रतिवर्ष 1.3 लाख टन नाइट्रोजन (लगभग 2.8 लाख टन यूरिया) की बचत हो सकती है। जिसका वास्तविक मूल्य 105 करोड़ रुपये होगा।

■■■

धान क्रान्ति के लिए वरदान : नील-हरित काई

❑ सुशील कुमार राय

प्रसारण अधिशासी (कृषि एवं गृह), आकाशवाणी, ओबरा, सोनभद्र-231219

रासायनिक उर्वरकों की आसमान छूती कीमतों, बढ़ती माँग की तुलना में कम आपूर्ति लघु एवं सीमान्त कृषकों की सीमित खरीद क्षमता, कार्बनिक खादों के सिमटते स्रोत और सबसे अधिक वर्तमान ऊर्जा संकट के चलते भारतीय कृषि पोषण सम्बन्धी समस्याओं के कटघरे में आ गयी है। ऐसे में पौधों को पोषण के लिए ''समन्वित पोषण आपूर्ति प्रणाली'' के अन्तर्गत एक सस्ता एवं सार्थक विकल्प है - जैव उर्वरक। नील-हरित काई, *एज़ोला* एवं जीवाणुओं की कुछ प्रजातियाँ मुक्त वायुमण्डलीय नाइट्रोजन (79प्रतिशत) का स्थिरीकरण कर मृदा तथा पौधों को पोषण प्रदान करती हैं। इस क्रिया को ''जैविक नाइट्रोजन-स्थिरीकरण'' और इसमें प्रयुक्त सूक्ष्मजीवों को जैव उर्वरक (बायोफर्टिलाइज़र) कहते हैं।

नीक-हरित काई एक प्रकृति उत्पादित जैव उर्वरक है। यह शीजोफाइसी कुल के साइनोफाइसी वर्ग की एक काई है। जीवाणुओं से अधिक समानता होने और कोशिकाओं की संरचना प्रोकेरियोटिक होने के कारण इन्हें ''साइनोबैक्टीरिया'' भी कहते हैं। इसकी लगभग 40 प्रजातियों में नाइट्रोजन यौगिकीकरण पाया गया है, जिसमें *एनाबिना, नॉस्टॉक, आलोसाइरा, साइटोनिमा, सिलेण्डोस्परम* इत्यादि प्रमुख हैं। इनकी संरचना में स्थित एक विशिष्ट कोशिका ''हेटेरोसिस्ट'' में ही नाइट्रोजन-स्थिरीकरण होता है।

धान का खेत नील-हरित काई की अच्छी वृद्धि के लिए सर्वथा उपयुक्त होता है। इसकी वृद्धि के लिए आवश्यक ताप, प्रकाश, नमी और पोषक तत्वों की उचित मात्रा यहां विद्यमान रहती है। काई सूर्य की ऊर्जा से वायुमण्डलीय कार्बन डाइऑक्साइड को शर्करा में परिवर्तित कर देती है, जो इसकी वृद्धि के लिए शक्ति प्रदान करता है।

नील हरित काई जैव उर्वरक की 12.5 किलोग्राम मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से धान की रोपाई के 5-6 दिन बाद स्थिर पानी में बिखेर देना चाहिए। शैवालीकरण के 4-5 दिन बाद तक भी खेत में पानी लगा रहना चाहिए। इससे धान की फ़सल को 25 से 30 किलोग्राम नाइट्रोजन (अर्थात् 65 किलोग्राम यूरिया) का लाभ और 12-13 कुन्तल प्रति हेक्टेयर तक धान की अतिरिक्त उपज प्राप्त हो जाती है। काई वृद्धि-नियंत्रकी (आक्सिन, एस्कार्बिक एसिड इत्यादि) विटामिन बी-12, एमीनो एसिड को भी स्रावित करती है, जिससे धान की फ़सल की अच्छी वृद्धि तथा दानों की गुणवत्ता बढ़ती है।

नील-हरित काई द्वारा स्थिर किया गया नाइट्रोजन फ़सल को काई की जीवित अवस्था में ही या फिर मृत होने के बाद जीवाणुओं द्वारा विघटित होने पर प्राप्त होता है। इससे मिट्टी की भौतिक दशा में सुधार, जलधारण क्षमता, कार्बनिक तत्वों की मात्रा, फॉस्फोरस की उपलब्धता आदि में वृद्धि, सोडियम लवणों को अलग करके क्षारीयता में कमी, अम्लीय भूमि में लोहा आदि तत्वों की विषालुता में कमी तथा भूमि की उपजाऊ शक्ति में वृद्धि होती है।

[शेष पृष्ठ 4 पर]

लहसुन खायें, स्वस्थ रहें

❑ प्रदीप शर्मा

वैज्ञानिक, भारत की सम्पदा,
प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय,
हिल साइड रोड, नई दिल्ली-12

लहसुन के विषय में कुछ न कुछ तो आप अवश्य ही जानते होंगे। इसे आपने खाया भी होगा। यह लिलियेसी कुल के अन्तर्गत आती है तथा इसका वानस्पतिक नाम *एलियम सैटाइवम (Allium sativum)* है। वैसे तो इसकी उत्पत्ति मध्य एशिया में हुई, लेकिन आज सम्पूर्ण भारत में इसकी खेती की जाती है।

लहसुन में पाई जाने वाली अति तीव्र गंध 'एलिसिन' नामक डाइएलाइल डाइसल्फाइड जैसे रासायनिक पदार्थ के कारण होती है। यह गंध उस समय अधिक महसूस की जाती है, जिस समय लहसुन की कलियों को छीलकर पीसा जाता है अथवा कुचला जाता है। वास्तव में ऐसा करने पर लहसुन में उपस्थित एलिनिन, एलिनेज (जो कि एक प्रकार का एन्ज़ाइम होता है), की उपस्थिति में अपने आस-पास की ऑक्सीजन से क्रिया करके "एलिसिन" का रूप धारण कर लेता है।

लहसुन में प्रोटीन, वसा, रेशा तथा कार्बोहाइड्रेट तो होते ही हैं साथ-साथ कैल्सियम, फॉस्फोरस, लौह जैसे खनिज भी विद्यमान रहते हैं। लहसुन में विटामिनों की भी उपस्थिति पाई गई है। लहसुन के भाप-आसवन से भूरे-पीले रंग का अप्रिय गंध वाला एक वाष्पशील तेल प्राप्त होता है। इस संगध तेल को भैषजिक में अनेक ओषधियों में प्रयोग में लाया जाता है। इसी सगंध तेल का उपयोग अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थों में सुवास देने के उद्देश्य से भी किया जाता है।

लहसुन की अप्रिय गंध को दूर करने के लिये अनेक प्रयास किये जा चुके हैं, पर कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं की जा सकी है। लेकिन जापान में एक दो ऐसी किस्मों का विकास कर लिया गया है जिनमें यह गंध नहीं है।

लहसुन को 'आयुर्वेद' में एक महौषध के रूप में माना गया है। आयुर्वेद में बताया गया है कि इसके प्रयोग से वात, पित्त व कफ के कारण होने वाली अनेक व्याधियाँ दूर हो जाती हैं। रोग-निरोधक शक्ति का जब पोषक तत्वों के उपलब्ध न होने पर ह्रास हो जाता है तब भी लहसुन का उचित मात्रा में सेवन करने पर आशातीत लाभ होता है।

येल विश्वविद्यालय, अमेरिका के अनुसंधानकर्ता मार्विन फॉस्टर लहसुन चूर्ण (गार्लिक पाउडर), जिसे लहसुन से ही बनाया जाता है, को पर्याप्त सान्द्रता युक्त मानते हैं। वे ये भी विश्वास करते हैं कि यदि 'गार्लिक पाउडर' का प्रयोग किया जाए तो रक्त में उपस्थित कोलेस्ट्रॉल में कमी लायी जा सकती है। डेनिस मैक्नामारा, जो अमेरिका के ही तुलेन विश्वविद्यालय से संबंध रखते हैं, मानते हैं कि लहसुन और एस्प्रिन दोनों ही कुछ हद तक समान प्रभाव दर्शाते हैं। अतः वे विश्वास करते हैं कि एस्प्रिन के विकल्प के रूप में लहसुन को प्रयोग में लाया जा सकता है। एस्प्रिन शरीर पर कुप्रभाव भी दर्शाती है, जबकि लहसुन शरीर पर किसी प्रकार का विपरीत प्रभाव नहीं डालती।

आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा-पद्धति में लहसुन को वातहर तथा आमाशय को उद्दीपित करने वाला माना गया है। इसी कारण इसे पाचन में सहायक तथा भोजन का

अवशोषण उचित रूप से करने वाला बताया गया है। बाय होने पर भी लहसुन के प्रयोग की संस्तुति की जाती है। आधुनिक चिकित्सा-पद्धति में भी लहसुन का प्रयोग अनेक ओषधियों में किया जाता है। लिचबर कम्पनी, जर्मनी ने लहसुन से ऐसी गोलियां तैयार की हैं जो गंधहीन हैं और जिन्हें ताज़ी लहसुन की तुलना में अधिक प्रभावकारी बताया जाता है। भारत में भी इसी प्रकार रेनबैक्सी नामक एक भैषजिक कम्पनी ने 'गार्लिक पर्ल' नाम देते हुए ऐसी ही गोलियां (कैप्स्यूल) तैयार की है। 'लैसोना' नामक टेबलेट भी भारत में प्रचलित है।

लहसुन वास्तव में ओषधीय गुणों का खजाना है। 'आयुर्वेद' में यह भी उल्लेख मिलता है कि लहसुन दीर्घायुदायक है। ऐसा इसलिये सम्भव है क्योंकि लहसुन के निरन्तर प्रयोग करने से शरीर की कोशिकाओं की कार्य करने की क्षमता को बल प्राप्त होता रहता है और वे सुदृढ़ बनी रहती हैं। फलतः कोशिकाओं की काल-प्रभावन दर घट जाती है। लहसुन को उद्दीपक, स्वेदकारी, कफ़-निस्सारक, मूत्रल तथा बल्य भी समझा जाता है। इसे कृमि-निस्सारक तथा आर्तवजनक के रूप में भी प्रयोग में लाया जाता है। लहसुन के रस को 'अमीबी पेचिश' सहित पेट के अनेक रोगों में प्रयोग में लाते हैं। लहसुन का प्रयोग 'मिर्गी' तथा 'तपेदिक' (राजयक्ष्मा या टीबी) के उपचार में भी किया जाता है। लहसुन का इस्तेमाल करने से 'हैज़े' की संभावनाएँ भी कम ही रहती हैं। कहते हैं कि लहसुन रक्त में शर्करा के स्तर को भी कम करती है।

ऐसे अनेक प्रमाण सामने आये हैं जिनसे ज्ञात होता है कि लहसुन 'कैन्सर' से सुरक्षा प्रदान करती है। लहसुन में जर्मेनियम काफी होता है। जर्मेनियम रुधिर में ऑक्सीजन के प्रवाह की दर में वृद्धि करता है। इसके अतिरिक्त लहसुन में डाइएलाइल सल्फाइड तथा एसएलाइल सिस्टीम नामक रासायनिक पदार्थ भी विद्यमान होते हैं, जो 'अर्बुद' (कैन्सर) प्रतिरोधी होते हैं। सर्वप्रथम चूहों पर किये गये कुछ परीक्षणों के दौरान इन पदार्थों को अर्बुद-वृद्धि में रुकावट डालने वाला पाया गया। आशा की जाती है कि इन पदार्थों का प्रभाव मनुष्यों पर भी समान ही रहेगा। लहसुन में उपस्थित एलिसिन भी चूहों में कैन्सर के विकास को अवरुद्ध करती है। संश्लेषित एलिसिन का प्रभाव भी समान ही पाया गया है। एलिसिन के धात्विक सम्मिश्र ग्रैम ग्राही एवं ग्रैम अग्राही जीवाणुओं के प्रति सक्रिय होते हैं, इसकी भी सूचना प्राप्त है। ये सम्मिश्र कुछ कवकों के प्रति भी सक्रिय होते हैं। बताया जाता है कि लहसुन के उद्योगों में कार्यरत कर्मचारियों में होने वाले सीसे के विषाक्तन के उपचार में भी प्रयोग में लाया जाता है।

लहसुन का सेवन करने वालों के लिए खट्टे खाद्य पदार्थ अनुकूल ही रहते हैं। अत्यधिक मात्रा में लहसुन के सेवन से जठर और आँतों में उग्रता व विरेचन होने लगता है। घी अथवा शहद के साथ मिलाकर लेने पर लहसुन के दाहक गुणों में कमी आ जाती है। गर्मियों में लहसुन के प्रयोग से पित्त व फोड़े फुंसियों के हो जाने का भय रहता है। कामुक व्यक्तियों को भी लहसुन का सेवन कम ही करना चाहिये क्योंकि इससे कामुकता उद्दीपित होती है। लंबी अवधि तक किसी रोग अथवा वृद्धावस्था के कारण होने वाली कमजोरी के कारण शक्ति यदि मंद पड़ गई हो तो लहसुन का सेवन करने से शरीर बलवान, निरोगी और सुदृढ़ बन जाता है।

लहसुन शरीर में रुधिर वाहिनियों में रुधिर के दबाव पर भी नियंत्रण बनाए रखती है। यह कोलेस्ट्रॉल में कमी लाती है। लहसुन रुधिर-वाहिनियों में रुधिर को पतला बनाए रखती है, जिसके परिणामस्वरूप रुधिर में उपस्थित कोएगुलेंट प्रोटीन में जमाव नहीं आने पाता और हृदय रोग की संभावनाएँ कम हो जाती हैं। लहसुन का उचित मात्रा में निरन्तर सेवन करते रहने से पैरों में होने वाली पीड़ा में भी पर्याप्त रूप से आराम आता जाता है।

लहसुन का प्रयोग केवल भारत में ही नहीं अपितु विश्वभर में किया जाता है। फ्रांस में लहसुन का प्रयोग खाद्य पदार्थों में सुवास लाने के लिए किया जाता है तो जर्मनी में बहुत बड़ी संख्या में लोग इसका अनेक रूपों में इस्तेमाल करते हैं। चीन वासी लहसुन को सिर के ज्वर में उपचार के उद्देश्य से प्रयोग में लाते हैं। वहाँ के औषधशास्त्र में लहसुन को अधिकृत माना गया है।

लहसुन 'कुष्ठ रोग' के उपचार में भी उपयोगी है, ऐसा भी उल्लेख मिलता है। लहसुन स्वयं में एक शक्तिशाली शोधक तथा रोगाणुनाशक है। इसमें उपस्थित एलिसिन ही प्रतिजीवाणु सक्रियता के लिये उत्तरदायी है। लहसुन के निष्कर्ष का प्रतिकवकीय प्रभाव यीस्ट और मोल्ड पर पाया गया है।

लहसुन के निष्कर्ष से एक अत्यन्त प्रभावशाली नाशक जीवनाशी तैयार किया गया है। इसे मच्छरों की अनेक जातियों के लिए प्रभावी पाया गया है। इसे घरेलू मक्खी तथा कुछ अन्य कीट तथा नाशकजीवों के प्रति भी प्रभावी पाया गया है। इस नवीन विकास से डी०डी०टी० जैसे घातक रासायनिक पदार्थ के प्रयोग में कुछ गिरावट आने की संभावना प्रतीत होती है। भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, बम्बई में सक्रिय तत्व की पहचान डाइएलाइल डाइसल्फाइड तथा डाइएलाइलट्राइसल्फाइड के रूप में की गई है। बताया जाता है कि यह 5 भाग प्रति दस लाख पर भी लारवानाशी पाया गया है।

लहसुन के रस को घावों पर लगाने के प्रमाण भी मिलते हैं। इसके रस को तीन चार गुना पानी में मिलाकर एक प्रतिरोधी लोशन तैयार किया जाता है, जिसे जख्मों को धोकर साफ़ करने के लिये प्रयुक्त करते हैं। ऐसा करने से कम समय में ही आराम मिलने लगता है। बताया जाता है कि इस लोशन को लगाने से ऊतकों पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता।

लहसुन का सेवन करने पर उसमें उपस्थित सगंध तेल अवशोषण के पश्चात् सरलता से रुधिर में मिल जाता है। यह एक उपयुक्त प्रतिरोधी तथा उद्‌देष्टरोधी की भाँति कार्य करता है और बाद में श्वसनी तथा फेफड़ों के श्लेष्म के साथ त्याग दिया जाता है। इसीलिये लहसुन को श्वसनी और दमा के रोगों के उपचार के लिये प्रभावकारी पाया जाता है। लहसुन, अपना औषधीय प्रभाव 'निमोनिया' तथा 'डिप्थीरिया' जैसे भयानक रोगों में भी दर्शाती है। 'तपेदिक' के उपचार में भी यह महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

लहसुन का नित्य प्रतिदिन सेवन करने से अनेक प्रकार के असाध्य रोग दूर हो जाते हैं तथा पुनः रोगों के प्रकोप की संभावना समाप्त हो जाती है। रोगों के दूर होने से पाचन में सुधार होता है तथा नींद भी अच्छी आती है और परिणामस्वरूप पूरे शरीर के स्वास्थ्य पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। लहसुन का प्रयोग सर्दियों में बड़ा ही सुखदायी होता है। पूरी सर्दियों में लहसुन का प्रयोग करने से स्वास्थ्य में भारी सुधार होता है। शरीर की निरोगी रहने की क्षमता को अपूर्व बल मिलता है। गर्मियों में लहसुन का प्रयोग कम करने पर और यहाँ तक की बंद करने पर भी यह क्षमता बनी ही रहती है।

जहाँ तक लहसुन की गंध का सवाल है, उसके लिये लहसुन की कलियों को घी में अथवा तेल में तल कर प्रयोग में लाया जा सकता है। ऐसा करने से लहसुन की गंध तो कम हो जाती है पर उसके ओषधीय गुणों पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता। लहसुन की कलियों को सिरके में भिगोकर रखने से सिरके में लहसुन की गंध अच्छी तरह समा जाती है। फिर सिरके में से निकालकर कलियों का सर्दियों भर सेवन किया जा सकता है। लहसुन की एक कली (जवा) सुबह उठते ही पानी के साथ निगलने से भी स्वास्थ्य में सुधार होता है। ऐसा करने से गंध भी कम आती है।

अधिकतर लोग गंध पर जाते हैं लेकिन वे नहीं जानते कि यदि इसकी गंध के साथ सामंजस्य स्थापित कर लिया जाये तो अनेक रोग काफूर हो जाते हैं और स्वस्थ व निरोग रहने के दरवाज़े जीवन में खुल जाते हैं। लहसुन की गंध से कहीं अधिक घातक हैं रोग। रोगों की चिन्ता की जाय न कि लहसुन की गंध की। अंत में मैं यही कहूंगा कि लहसुन खायें, स्वस्थ रहें। ■■■

कृत्रिम बुद्धि

❑ वाई०एन०टी० शेषगिरी राव

वैज्ञानिक, राष्ट्रीय भू-भौतिक अनुसंधान संस्थान
उप्पल रोड, हैदराबाद-500007 (आंध्र प्रदेश)

हमारे जीवन में कम्प्यूटर की एक प्रभावी भूमिका है। इसका प्रभाव व्यापार, विज्ञान शास्त्र, अभियांत्रिकी, संगीत, कला तथा अन्य अनेक क्षेत्रों में दिखाई देता है। कम्प्यूटर में दो प्रकार की प्रक्रियायें होती हैं : संख्यात्मक (न्यूमेरिक) तथा असंख्यात्मक (नॉन-न्यूमेरिक)।

कम्प्यूटर से ऐसे काम करा सकते हैं जो मनुष्य अपनी बुद्धि से कर सकता है। कम्प्यूटर के ऐसे संज्ञानात्मक कार्यों के अध्ययन को कृत्रिम बुद्धि (आर्टीफिशियल इन्टेलीजेंस) कहते हैं। अंग्रेज़ी समझना, दृश्य को पहचानना, वस्तु के पास पहुंचने के लिए रास्ता निकालना, व्यावहारिक ज्ञान कार्य, लक्षण देखकर रोग-निर्णय करना, कम्प्यूटर डिज़ाइन करना, वित्त संबंधी निर्णय लेना, मौसम की भविष्यवाणी करना तथा अन्य निपुण कार्य कृत्रिम बुद्धि के उदाहरण हैं।

कृत्रिम बुद्धि जटिल समस्याओं के समाधान की एक कार्यविधि है। खोज (सर्च) ज्ञान निरूपण (नालेज़ रीप्रेजेन्टेशन) तथा सीखना कृत्रिम बुद्धि के मूल संघटक अंश हैं। बुद्धि कार्य प्रतीक समुदाय तथा उनके परिचालन से संबद्ध है। भौतिक प्रतीक प्रणाली परिकल्पना (फ़िज़िकल सिम्बल सिस्टम हाइपोथेसीस) कृत्रिम बुद्धि के अनुसंधान का केन्द्र है। भौतिक प्रतीक प्रणाली में प्रतीक निर्माण तथा उन प्रतीकों के परिचालक समूह रहते हैं।

कृत्रिम बुद्धि का दूसरा पहलू है, संज्ञानात्मक मनोविज्ञान। वैज्ञानिक इन दोनों क्षेत्रों का विकास कर रहे हैं। कृत्रिम बुद्धि शास्त्रज्ञ, कम्प्यूटर प्रोग्राम बनाने के लिए संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का सहारा ले रहे हैं। संज्ञानात्मक मनोविज्ञान शास्त्रज्ञ, कृत्रिम बुद्धि कम्प्यूटर में मन का एक अच्छा नमूना देख रहे हैं। उससे पता लगता है कि मन की संरचना कैसी है? और वह कैसे काम करता है? दर्शनशास्त्र के साथ भी कृत्रिम बुद्धि का संबंध है। मन के दर्शन (फिलासफी ऑव माइन्ड), ज्ञान, विश्वास आदि क्षेत्रों में भी कृत्रिम-बुद्धि-अनुसंधान चल रहा है।

प्रारंभिक स्थिति

सन् 1842 में एडा अगस्ता, चार्ल्स बाबेज के साथ काम करती थीं, जिन्होंने पहला कम्प्यूटर बनाया। एडा ने सूचना दी थी कि चार्ल्स बाबेज के अंकीय कम्प्यूटर से संख्यात्मक तथा असंख्यात्मक प्रक्रियायें कर सकते हैं।

कृत्रिम कम्प्यूटर बुद्धि के क्षेत्र में कार्य 1950 से प्रारंभ हुआ था। 1950 में ही कम्प्यूटर द्वारा शतरंज खेलने तथा अनेक प्रमेयों को सिद्ध करने के प्रोग्राम उपलब्ध हो गए थे। सन् 1956 में अमेरिका में सुप्रसिद्ध कम्प्यूटर वैज्ञानिक प्रोफेसर मेकार्थी, मिस्की, शैनान आदि ने डार्टमाउथ सम्मेलन में इसकी परिचर्चा की थी। सन् 1960 के प्रारंभ से विविध कार्य करने के लिए कम्प्यूटर प्रोग्राम द्वारा अनेक प्रयत्न किए गए।

समस्या समाधान तथा खोज

समस्या समाधान के तीन मुख्य पहलू होते हैं :

(1) समस्या तथा उसके समाधान के लिए आवश्यक प्रारंभिक तथा अंतिम स्थिति का परिभाषण।

(2) समस्या का विश्लेषण करना तथा विविध विकल्प को उपयोग में लाना।

(3) सबसे अच्छा विकल्प चुनना तथा उस विकल्प को उपयोग में लाना।

खोज बुद्धि का मूल है। कृत्रिम बुद्धि का कम्प्यूटर प्रोग्राम खोज प्रक्रिया पर आधारित है। बहुत कठिन समस्या के समाधान के लिए सबसे अच्छा हल निकालना बहुत दुष्कर कार्य है। ऐसी समस्या के समाधान के लिए कभी-कभी क्रमबद्धता का परित्याग करके स्वानुभाविक खोज का सहारा लेना पड़ता है। स्वानुभाविक खोज से उपयोगी सन्निकट हल निकाला जा सकता है।

विज्ञान निरूपण तथा विवेचन (नॉलेज़ रीप्रेजेन्टेशन एण्ड रीजनिंग)

कृत्रिम बुद्धि में कठिन समस्याओं के समाधान के लिए विस्तृत ज्ञान तथा नई समस्या-स्थितियों को उत्पन्न करना होता है। इस ज्ञान को कम्प्यूटर की स्मृति में एक विशेष रूप में रखना होता है। विज्ञान निरूपण की अनेक पद्धतियां हैं। कम्प्यूटर समस्या के समाधान के लिए ज्ञान को आँकड़ों की संरचना के रूप में सांकेतिक बनाते हैं। उन अनेक पद्धतियों में तीन प्रमुख हैं : विधेय तर्क, अनेकरूपक और संख्यात्मक विवेचन तथा संरचनात्मक निरूपण।

निरूपण में वास्तविकता को औपचारिक रूप देना चाहिए। प्रतिज्ञप्तिक तथा विधेयक तर्क विघटन पर आधारित है।

इस प्रकार की खोज प्रक्रिया को एक निर्देशित लेखाचित्र के रूप में देख सकते हैं, जिसमें हर एक ग्रंथि एक समस्या की स्थिति तथा हर एक पल स्थितियों के बीच के संबंध को दर्शाता है। खोज प्रक्रिया लेखाचित्र द्वारा प्रारंभिक स्थिति से अंतिम स्थिति तक रास्ता निकालती है, लेखा चित्र का निर्माण नियमबद्ध होता है। नियम, समस्या क्षेत्र में समस्या समाधान को निर्धारित करता है।

खोज वृक्ष
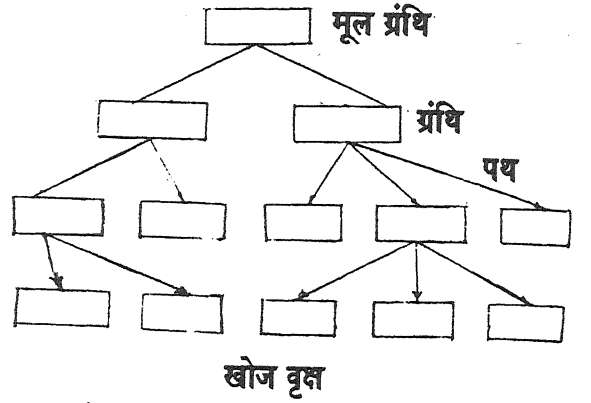
खोज की प्रक्रिया का उत्पादन तंत्र मॉडल दो प्रकार का विवेचन करता है। अग्र विवेचन (फारवर्ड रीजनिंग) तथा प्रतिविवेचन (बैकवर्ड रीजनिंग)।

अग्र विवेचन में वृक्ष के मूल से आगे बढ़ते हुए लक्ष्य स्थिति में पहुँचते हैं। प्रतिविवेचन में लक्ष्य स्थिति से आरंभ होते हुए अंतिम स्थिति को पहुँचते हैं। अनिश्चित तथा अस्पष्ट ज्ञान का उपयोग भी करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में निर्णय संभाव्य सिद्धान्त पर आधारित होता है।

समस्या समाधान के लिए संरचनात्मक ज्ञान दो प्रकार के होते हैं : घोषणात्मक (डिक्लरेटिव) तथा कार्यविधिक (प्रोसीड्यूरल)। घोषणात्मक विधि में ज्ञान निरूपण, तथ्य समुदाय तथा उसका कुशल चालन होता है। कार्य विधिक विधि में विज्ञान निरूपण कार्य प्रक्रिया में होता है। घोषणात्मक संरचनायें पाँच प्रकार के ज्ञान निरूपणों से कर सकते हैं।

(1) विधेय तर्क (प्रेडिकेट लॉजिक)

(2) अर्थ तत्वात्मक (सिमेंटिक्स) जाल में ज्ञान का निरुपण, एक ग्रंथि समूह से तथा ग्रंथियों को जोड़ते हुए पथ द्वारा किया जाता है।

(3) संकल्पनात्मक पराश्रितता - (कांसेप्चुयल डिपेन्डेन्सी) प्राकृतिक भाषा में वाक्यों का अर्थ व्यक्त करने का एक निरुपण सिद्धान्त।

(4) चौखटे (फ्रेम्स) झिरी तथा भराव संरचना (स्लाट एंड फिल्टर स्ट्रक्चर) जिसमें वस्तु की जानकारी रहती है।

(5) लिखावट (स्क्रिप्ट) जो एक विशेष परिस्थिति में एक घटना का रूढ़िबद्ध अनुक्रम (स्टीरियोटाइप्ड सीक्वेंस) में वर्णन करते हैं।

अधिगमन (लर्निंग)

आदमी सीख सकता है। ज्ञान पा सकता है और ज्ञान से नई समस्या का समाधान कर सकता है। जब कम्प्यूटर सीख सकता है तब उसको बुद्धिमान कहते हैं। नई स्थितियों में काम करने के लिए उसको अनुकूलित बनाना होता है।

मनोवैज्ञानिक तथा कृत्रिम बुद्धि वैज्ञानिक दोनों इस विषय पर अनुसंधान कर रहे हैं। अधिगम में ज्ञान का अर्जन तथा समस्या का परिष्कार दोनों ही हो सकते हैं। अधिगम प्रोग्राम दूसरे प्रोग्राम का निर्माण करता है, जो किसी अन्य समस्या का परिष्कार करता है। वह स्वानुभाविक खोज का कार्य सशक्त रूप से करता है। कृत्रिम बुद्धि के अनुसंधान के प्रारंभ काल में इसका अनुप्रयोग खेलों पर केंद्रित हुआ था। दूसरा क्षेत्र संकल्पना अधिगम है। इसमें वस्तु का वर्गीकरण कर सकते हैं। अधिगम प्रोग्राम की संकल्पना से वस्तुओं जैसे घर, मोटर आदि को पहचाना जा सकता है।

एक अधिगम प्रोग्राम समुच्चय सिद्धान्त को सीखकर संख्या सिद्धान्त की प्रमेयों को सिद्ध कर सकता है। इसी प्रोग्राम के विस्तृत रूप के उपयोग से नौ सैनिक ज़हाज़ी बेड़ों की डिज़ाइनों तथा कम्प्यूटर चिप्स का निर्माण किया जाता है।

अग्रवर्ती समस्या समाधान (एडवांस प्राबलम साल्विंग)

असाधारण समस्या समाधान के लिए कुछ मूल समस्या का कौशलपूर्ण योजना के साथ-साथ कुछ ज्ञान निरुपण संरचनात्मक विधि (नॉलेज़ रीप्रेजेन्टेशनल स्ट्रक्चरल मेकेनिज्म) का प्रयोग करना होता है। बड़ी कठिन समस्याओं को विघटित (डिकम्पोज़) करना पड़ता है। बड़ी समस्याओं को अनेक छोटी-छोटी समस्याओं में बाँटना होता है। सभी छोटी समस्याओं का समाधान करने के बाद पूरा समाधान निकालने के लिए सभी समाधानों को जोड़ना होता है।

विघटन दो प्रकार के हैं। योजना (प्लानिंग) तथा ज्ञान विघटन (डिकम्पोजिशन ऑव नॉलेज़) योजना समस्या समाधान के अनेक चरणों की गणना करता है। तत्पश्चात् समस्या परिष्कार के लिए उसको क्रियान्वित करता है। दूसरी विधि में ज्ञान का विभाजन करके कई मॉडयूल का समूह बनाना होता है।

अनुप्रयोग (एप्लीकेशन)

आदमी का बुद्धिमान कार्य का वर्णक्रम बहुत विस्कृत है। इसलिए कृत्रिम बुद्धि का अनुप्रयोग अनेक क्षेत्रों में हो सकता है। इनमें से कुछ क्षेत्र चर्चा योग्य हैं। जैसे चिकित्सा, अभियांत्रिकी, वित्तीय आदि।

निपुण तंत्र (एक्सपर्ट सिस्टम) एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें कृत्रिम बुद्धि को तकनीकी उपयोग में ला सकते हैं। उसके निर्माण को ज्ञान अभियांत्रिकी (नॉलेज़ इंजीनियरिंग) कहते हैं। निपुण तंत्र बनाने के लिए विस्तृत आँकड़ाबद्ध ज्ञान होना चाहिए। कई निपुण तंत्र नियमबद्ध (रूल बेस्ड) भी होते हैं।

अवगम (परसेप्शन)

अवगम बहुत कठिन है। अवगमात्मक समस्या दो तरह की होती हैं : भाषा समझना तथा दृश्य विश्लेष। जब हमको संकेत मिलता है तब हम बोल सकते हैं कि दृश्य क्या है? चित्र तथा भाषा समझने के लिए प्रोग्राम का निर्माण कर सकते हैं। रोबोट निर्माण में इनकी अच्छी भूमिका है।

प्राकृतिक भाषा समझना (नेचुरल लैंग्वेज अंडरस्टैडिंग)

प्राकृतिक भाषा समझने के लिए भाषा विज्ञान तथा जिस विषय पर चर्चा होती है उसका व्यावहारिक ज्ञान भी होना चाहिए। भाषा समझने के लिए विभिन्न ज्ञान निरुपण तकनीकियाँ उपलब्ध हैं। ■ ■ ■

कुछ विचित्र कवक

❑ डॉ० अरुण आर्य

प्रवक्ता, वनस्पति विज्ञान विभाग
विज्ञान संकाय, महाराजा सयाजी राव
विश्वविद्यालय, वडोदरा, गुजरात - 390002

कवक या फफूंद (गुजराती में फूग) को भला कौन नहीं जानता। कवक की कोशाभित्ती कैलोज या काइटिन की बनी होती है। इनमें क्लोरोफिल नामक हरित लवक नहीं पाया जाता अतः ये अपना भोजन स्वयं निर्मित नहीं कर सकते। और यही कारण है कि ये परजीवी या मृतोपजीवी होते हैं। कुछ कवक सहजीवन भी व्यतीत करते हैं।

वेदों में वर्णित 'सोम रस' एक प्रकार के कवक अथवा मशरूम से निर्मित होता था। खमीर और शराब के उत्पादन में सेकेरोमाइसीज (Saccharmyces) अथवा *ईस्ट* और *पेनिसिलिन* नामक एन्टीबायोटिक के उत्पादन में पेनिसिलियम (Penicillium) के योगदान को कौन नहीं जानता। खेतों में *अल्टरनेरिया (Alernaria)* आलू और सरसों पर *करव्यूलेरिया (Curvularia)* और *कोलेटोट्राइकम (Colletctrichum)* नामक कवक ईख या गन्ने पर अनेक बीमारियाँ उत्पन्न करते हुये पाये जाते हैं।

कवक का उपयोग हथियारों की तरह

पापुआ, न्यू गिनी के एक प्रान्त में जो कि अरेमिया नदी के तट पर स्थित था, पत्थरों की कमी थी। यहां पर प्राचीन समय में लोग कवक को पत्थर की जगह एक लकड़ी में लगा कर एक दूसरे को मारने के काम में लाते थे। *लेन्टिनस ट्यूबेरेजियम (Lentinus tuberregium)* नामक कवक के कठोर 'स्कलीरोसिया' को मुग्दर के समान प्रयोग करते थे।

कुछ पक्षी अपने अंडों को सेने के लिये जंगल में एक कवक के ढेर को इकट्ठा करते हैं। यहां के निवासी इसे उटियानी (Utiyani) कहते हैं। इस सूखे कवक में बीच में छेद करके एक हत्थे को लगा दिया जाता है और इस प्रकार तैयार है कवक का मुग्दर।

बात लड़ाई की हो तो बचाव भी करना होगा और बचाव के लिये ढाल बनता है एक पालीपोरस (Polyporus) समूह का कवक *फेलिनस (Phellinus)*। लगभग 2 से 2 1/2 फीट व्यास की कवक संरचनायें गुजरात के शूलपानेश्वर अरण्य विहार में देखने को मिली हैं।

प्राचीन काल में इनका कभी युद्ध में उपयोग हुआ होगा, किन्तु आज तो ये केवल युद्ध-नृत्यों में ही इस्तेमाल की जाती हैं।

स्वादिष्ट खुम्बी

खुम्बी को मोरेल (Morels), *मॉरकेला (Morcheila)* या स्पांज मशरूम (Sponge Mushroom) भी कहते हैं। यह एक प्रमुख स्वादिष्ट कवक है। यह छतरीनुमा होता है। इसमें एक डंठल (Stipe/stalk) और एक कैप (Pileus) होती है। *मॉरकेला (Morchella)* नामक यह कवक 'एस्कोस्पोर' उत्पन्न करता है। *मॉरकेला कोनिका (Morchella conica)* की कैप शंकुकार (Conical) होती है। मोरेल्स जंगलों में, नदी अथवा झरनों के किनारे बहुतायत में उगते हैं। जंगल के उन भागों में जहां पहले आग लगी होती है, खुम्बी खूब उगती हैं। 200 वर्ष पूर्व जर्मनी के कुछ भागों में लकड़ी के

ढ़ेर को इकट्ठा किया जाता था और फिर उसमें आग लगा दी जाती थी। इसके बाद लोग मोरेल्स के निकलने का इन्तजार करते थे। प्रथम विश्व युद्ध के बाद बम्बारी किये हुये मकानों के खण्डहरों से काफी मात्रा में मोरेल्स प्राप्त हुये।

हमारे देश में मोरेल्स काश्मीर एवं हिमांचल प्रदेश से प्राप्त किये जाते हैं। इस अति स्वादिष्ट कवक को कृत्रिम तरीके से उत्पन्न करने के सभी प्रयास निष्फल साबित हुये हैं।

वर्तमान शोध के पश्चात् यह ज्ञात हुआ है कि मोरेल्स (Morels) के साथ एक अन्य कवक संलग्न रहता, और इस सहजीवी कवक के साथ होने पर ही मोरेल्स की फलन सम्भव होता है।

चूहे के कान सृदश कवक

जी हाँ, चूहे के कान के समान होने के कारण ही इसे 'रैट इयर फंगस' या *आरिकुलेरिया (Auricularia)* कहते हैं। अधिक समय तक गर्मी में रहने से यह सूख जाता है, लेकिन फिर पानी में डालने से नरम हो जाता है। भारत के मणिपुर और आसाम प्रान्तों के लोग इसे कच्चा ही या सैन्डविच में ब्रेड के साथ लगाकर चाव से खाते हैं। आज कल लकड़ी में इसका कृत्रिम उत्पादन किया जा रहा है।

झिलमिलाते कवक

प्राचीन चीन के निवासियों ने आज से लगभग 3000 वर्ष पूर्व प्रकाश उत्पन्न करने वाले कीड़े 'जुगनू' की खोज की थी। किन्तु आज जीवाणुओं से लेकर शार्क मछली तक लगभग दर्जनों ऐसे जीवों का पता लगाया जा चुका है जो प्रकाश उत्पन्न करते हैं। यह प्रकाश खाने के समय, मैथुन के समय या खतरों से आगाह करने के लिए विशेष रूप से उत्पन्न होता है।

जैव प्रकाश के विविध उपयोग हैं। 17हवीं सदी में स्वीडेन के किसान खेतों में रखे आनाज को आग से बचाने के लिये प्रकाशवान कवक युक्त लकड़ी वहां रखते थे। दो विश्व युद्धों में सैनिक प्रकाश उत्पन्न करने वाली लकड़ी को अपने हैलमेट्स में और राइफल्स में लगाकर रखते थे, जिससे रात को एक दूसरे से टकरायें नहीं।

बिजली का बल्व जो बिजली के रेजिस्टेन्स से जलता है, इस प्रकाशोत्पादक कवक से भिन्न है। यहाँ 'ल्यूसीफेरिन' नामक प्रोटीन एवं 'ल्यूसीफेरेज' नामक एन्जाइम कार्य करता है। रात्रि के समय जापान के हचीजो द्वीप के जंगल कुकुरमुत्तों के प्रकाश से जगमगा उठते हैं। वे कवक जो प्रकाश उत्पन्न करते हैं उनमें प्रमुख हैं *ज़ाइलेरिया, आरमीलेरिया, क्लाटोसाइबी, कोलीबिया और प्लूरोटस (Xylaria, Armillaria, Clitocybe, Collybia, Pleurotus Oaster mushroom)*।

'रामायण' के उस दृष्टान्त को याद कीजिये जब लक्ष्मण शक्तिबाण से मूर्च्छित हो जाते हैं। तब श्रीलंका के प्रसिद्ध सुषेण वैद्य ने हनुमान से रातोरात 'संजीवनी बूटी' लाने को कहा। इसकी पहचान बताते हुये उन्होंने हिमालय में प्रकाशवान् कवक की बात कही। हनुमान वहाँ कवकों का प्रकाश देखकर भ्रमित हो गये और सम्पूर्ण पर्वत उठा लाये।

आधुनिक अनुसंधानों से ज्ञात होता है कि फ़सलों में जब खाद एवं पानी की कमी होती है या वे किसी कीड़े के आतंक से प्रभावित होते हैं, तो प्रकाश उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार फ़सलों में ऐसे 'जीन्स' (Genes) को प्रवेश करा कर आवश्यकता के समय ही उन्हें पानी या खाद या कीटनाशक दे सकते हैं।

पफ बाल्स एवं अर्थ स्टार

यदि आपने गोल्फ की गेंद के समान *लाइकोपरडॉन (Lycoperdon)* या पफ बाल को हल्के से भी छुआ है तो आपको याद होगा हज़ारों की तादाद में निकलता हुआ 'स्पोर' का वह बादल। बाहर से आने वाले दबाव जो कि चाहे हवा का हो या पानी की बूँदों का, एक पूर्ण विकसित पफ बाल से लाखों की तादाद में स्पोर्स उड़ा ले जाते हैं। पफ बाल की 25 से अधिक प्रजातियाँ पायी जाती हैं। ये ज़मीन के अंदर उगती हैं और पकने पर ऊपर आ जाती हैं। इसकी

बाह्य भित्ति तो रक्षा के कम आती है और दोहरे दीवार वाली होती है। अन्दर 'फर्टाइल ग्लेबा' होता है जिसमें कई कोष्ठ होते हैं। कुछ पफ् बाल्स में काँटे होते हैं। इन्हें कँटीले पफ बाल (Warted Puff Balls, *Lycoperdon perlatum*) कहते हैं। विशाल पफ बाल (Giant Puff Balls) यूरोप और उत्तरी अमेरिका में पाये जाते हैं। *कालवेटिया गाइगैंटिया (Calvatia gigantia)* खाया जाता है और इसमें से एण्टी ट्यूमर पदार्थ 'कैल्वोसिन' निकलता है।

अर्थ स्टार गैस्ट्रोमाइसिटिज ग्रुप का कवक है लेकिन इसमें ऊपरी पेरीडियम फूल की पंखुड़ी के समान खुलकर पीछे को मुड़ जाती है और एक तारे के समान रचना बन जाती है। इन्हें जियेस्ट्रेम (Geastrum) कहते हैं। अधिक ह्यूमस वाली मृदा में ये बहुतायत से मिलती हैं।

परियाँ और कवक

कुछ कुकुरमुत्ते जमीन में एक वृत्ताकार आकार की रचना में (रिंग में) उगते हैं। कभी-कभी तो एक से अधिक 'रिंगूस' हो सकती हैं। कहावत है कि चाँदनी रात में परियाँ नृत्य करती हैं और इन छतरियों पर देवण (Elvesया Angel) बैठकर नृत्य का आनन्द लेते हैं। एक ऐसा ही कवक है *मेरासमियस (Marasmius)*।

वैम : प्रकृति का अनुपम वरदान

आज प्रकृति में अनेक प्रकार के सहजीवी सम्बन्ध मिलते हैं। लाइकेन सहजीवी सम्बन्धों एवं सह अस्तित्व का सबसे अनोखा उदाहरण है। कवकों की पौधों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्धों की बात सर्वप्रथम सन् 1842 में विटाडिनी नामक वैज्ञानिक ने बताई, लेकिन इस प्रकार के सम्बन्धों को 'माइकोराइज़ा' (Mycorrhiza) नाम सन् 1885 में फ्रैन्क ने दिया।

माइकोराइज़ा दो प्रकार का हो सकता है - पहला बाह्य जैसा कि चीड़ में और दूसरा अन्तः जैसे ऑर्किड में। एक तीसरे प्रकार के अन्तः माइकोराइज़ा को वेसीकुलर आरबसकुलर माइकोराइजा (Vasicular Arbuscular Mycorrhiza-VAM) कहते हैं। इसमें कवक पौधे के कार्टेक्स उतक में गुब्बारे के समान संरचनायें (Vesicles) और अंगुलियों के समान (Arbuscular) बनाता है। मिट्टी में ये कवक तन्तु का जाल बनाते हैं, जिस पर बीजाणुओं का निर्माण होता है। वी०ए० माइकोराइज़ा बनाने वाले कवक अपना जीवन परजीवी के रूप में बिताते हैं। आज तक इन्हें संश्लेषित माध्यमों पर संवर्धित करने में कोई सफलता नहीं मिली है।

'वैम' को वास्तव में प्रकृति का वरदान कहा जाना चाहिये। यह पेड़ों को फॉस्फोरस और कॉपर (ताँबा) जैसे तत्वों से युक्त करता है। यह पौधों को सूखे एवं मिट्टी से होने वाली बीमारियों से बचाता है। और तो और, यह कृषि और वानिकी दोनों में समान रूप से उपयोगी है। यदि इस अमूल क्रान्तिकारी जैविक संसाधन की संवर्धन विधि विकसित कर ली जाये तो विश्व से गरीबी और भुखमरी का समूल नाश संभव हो सकता है।

'कवक के रूप अनेक'। इन सभी रूपों का संक्षेप में वर्णन सम्भव नहीं। सबसे पुराने मशरूम *कोप्रीनाइट्स (Coprinites dominicana)* का आकार विशाल हो सकता है। *एस्परजिलस, फ्यूजेरिम एवं ट्राइकोडरमा* से निर्गत प्रोटीन युक्त बायोमास को सी०एल० विल्सन ने 1996 में सिंगल सेल प्रोटीन (SCP) कहा। ब्रेकेट फंजाई को कौन नहीं जानता! पोलीपोरस हो या फेलीनस, कई-कई फीट इनका आकार हो सकता है। लेकिन मशरूम या कुकुरमुत्ते भी 2 फीट के हो सकते हैं। *बोलीटस कोलोसूस (Boletus colossus)* एक फीट ऊँचा और 2 फिट व्यास वाला मशरूम है। यह 6 किलो वज़न का सबसे बड़ा कुकुरमुत्ता है।

कवक कीड़ों को भी पकड़ सकता है। जी हाँ, *आर्थोबोट्रिस* और *डैक्टाइलेला (Arthrobotrys & Dactylella)* ऐसे ही कवक हैं। इनमें छोटी अंगूठी के सदृश संरचनायें बनती हैं, जिनमें सूच्यकृमि (Nematodes) पकड़ लिये जाते हैं और कवक उन्हें हज़म कर जाते हैं। है न कवक का संसार निराला, अनोखा और अनेक आश्चर्यों से भरा! आइये हम इस जैव सम्पदा का भरपूर उपयोग करें। ■

मरु क्षेत्र के वैकल्पिक खाद्य-स्रोत

❑ नवीन कुमार बौहरा

अनुसंधान सहायक (प्रथम)
शुष्क क्षेत्र वानिकी अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

विश्व के प्रमुख रेगिस्तानों में से एक है 'ग्रेट इण्डियन डेजर्ट' अर्थात् थार का रेगिस्तान। यह रेगिस्तान भारत के पश्चिमी भू-भाग से पाकिस्तान के पूर्वी भाग में फैला हुआ है। इसका करीब 61% भाग राजस्थान में तथा शेष भाग गुजरात (19.6%), पंजाब (5%), हरियाणा (4%), आन्ध्र प्रदेश (7%), कर्नाटक (3%) तथा महाराष्ट्र (4%) में फैला हुआ है। इसी थार रेगिस्तान में बसा है, राजस्थान का पश्चिमी मरुक्षेत्र।

राजस्थान के पश्चिमी भाग की जलवायु शुष्क है तथा इस क्षेत्र में वर्षा बहुत ही कम (70-400 मि०मी०) होती है। यह वर्षा भी मुख्यतः वर्षा ऋतु में तथा अनियमित होती है। यहाँ तापमान में भी विभिन्नता पाई जाती है, गर्मी में तापक्रम 45 डिग्री तथा सर्दी में शून्य डिग्री सेल्सियस तक पहुँच जाता है। यहाँ के लोगों को समय-समय पर अकाल का सामना करना पड़ता है तथा (अ) जलकाल : पीने के पानी की कमी, (ब) तिन्काल : चारे की कमी और (स) दुर्भिक्ष : खाने के लिए आवश्यक सामग्री की कमी जैसे शब्द आम बात हैं। धूलभरी आंधियाँ, आग उगलती धरती तथा असहनीय तेज धूप में भी यहां के निवासी हँसी-खुशी, प्राकृतिक स्रोतों से अपना भरण-पोषण करते आ रहे हैं।

संरक्षण, राजस्थान की परम्परा रही है तथा यहां के लोग प्राचीन काल से ही पेड़-पौधों, जन्तुओं तथा अन्य प्राकृतिक तत्वों का संरक्षण करते आ रहे हैं। खेजड़ली में वृक्षों की रक्षा में दिये गये बलिदान की मिसाल विश्व भर में नहीं मिलती है। प्राचीन काल से ही यहाँ के लोग दुर्भिक्ष के लिए अपने आपको तैयार कर उसका सामना अतिरिक्त खाद्य संसाधनों के द्वारा करते आ रहे हैं जो कि प्रकृति द्वारा उन्हें सहज में मिलते रहे हैं। आज भी इन अतिरिक्त खाद्य स्रोतों का उपयोग न केवल ग्रामीण इलाकों में वरन् शहरी क्षेत्रों में भी किया जाता है। राजस्थान में पाये जाने वाले इन अतिरिक्त खाद्य संसाधनों के स्रोतों में कुछ निम्न प्रकार से हैं:

1. खेजड़ी : इसे वनस्पति भाषा में ***प्रोसोपिस सिनेरेरिया*** कहा जाता है। इसके करीब-करीब हर भाग का उपयोग होता है, अतः इसे 'कल्पवृक्ष' भी कहा जाता है। यह लैग्युमिनेसी कुल का पौधा है। इसके हरे फल जिन्हें "सागरी" कहा जाता है, उन्हें उबालकर, सुखाया जाता है तथा खाने में सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता है। इसके पके हुए फल, जिन्हें "खोका" (खोखा) कहते हैं, को बच्चे व बूढ़े चाव से खाते हैं। इसके अतिरिक्त इसकी पत्तियों में करीब 12% तक प्रोटीन होता है तथा वह "लूँग" कहलाती है, को चारे के रूप में उपयोग में लिया जाता है। इसका पुष्पक्रम गर्भावस्था में दवाई के रूप में उपयोग में लिया जाता है।

2. बेर : इसे वानस्पतिक भाषा में ***जिजिफस प्रजाति*** कहा जाता है। इसकी कई प्रजातियों में से ***जिजिफस नुमुलेरिया*** तथा ***जिजिफस मारीशियाना*** प्रमुख रूप से खाने के काम आती हैं। यह रेमैनैसी कुल का पौधा है। इसकी फल-भित्ति का बाहरी गुदा रूपी भाग खाने के काम आता है तथा इसकी पत्तियां, जिन्हें "पाला" कहा जाता है, को चारे के रूप में काम में लिया जाता है।

3. केर : वानस्पतिक भाषा में ***केपेरिस डेसीडूआ*** के

नाम से जाना जाने वाला केर, केपेरेडैसी कुल का पौधा है। केर के अधपे फलों को तोड़कर सुखाया जाता है, जिन्हें सब्ज़ी के रूप में या अचार बनाने में प्रयुक्त किया जाता है। इसके पूर्ण रूप से पके फल जिन्हें "धालू" कहते हैं, को त्रिकाल में कच्चे ही खाया जाता है।

4. कूमट : वानस्पतिक भाषा में इसे ***अकेसिया सेनेगल*** कहते हैं। यह लैग्युमिनेसी कुल का पौधा है। इसके बीज को उबालकर सुखाया जाता है तथा पचकूटे की सब्ज़ी के एक भाग के रूप में उपयोग में लिया जाता है।

5. पीलू/जाल : इसे वानस्पतिक भाषा में ***साल्वेडोरा प्रजाति*** कहते हैं। इसकी दो प्रजातियाँ हैं जिन्हें ***साल्वेडोरा ओलिएडिस*** तथा ***साल्वेडोरा परसिका*** कहा जाता है। इन्हें क्रमशः मीठा जाल, व खारा जाल भी कहा जाता है। इसके स्वादिष्ट फल खाये जाते हैं जिन्हें "पीलू" कहते हैं। यह क्षारीय मृदा में भी उगता है।

6. गूँदा : इसे वानस्पतिक भाषा में ***कोर्डिया प्रजाति*** कहा जाता है यह इहीरेटिएसी कुल का पौधा है। इसके 'बेरी' प्रकार के फल सब्ज़ी बनाने में एवं अचार के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

7. सहजन : इसे वानस्पतिक भाषा में ***मोरिंगा प्रजाति*** कहा जाता है। यह मोरिंगेसी का पौधा है। इसके फल सब्ज़ी के रूप में काम में लिये जाते हैं। इसकी पत्तियों का ओषधि के रूप में भी उपयोग होता है।

8. नीम : ***ऐजाडिरेक्टा इण्डिका*** वानस्पतिक नाम वाले इस बहुपयोगी वृक्ष के फल अकाल में (मई-जून माह में) कच्चे खाये जाते हैं। इसके कई ओषधीय उपयोग भी हैं। इसके भी करीब-करीब प्रत्येक भाग का उपयोग होता है अतः इसे 'आधुनिक कल्पतरु' भी कहा जाता है।

9. फोग : इसे वानस्पतिक भाषा में ***पोलिगोनम पोलिगोनाईडस*** कहते हैं तथा इसके पके हुए फूल व कलियाँ, दही के साथ मिलाकर खाई जाती हैं।

10. जंगल जलेबी : वानस्पतिक भाषा में इसे ***पीथेकोलोबियम प्रजाति*** कहते हैं तथा इसके पके हुए फल फरवरी-मार्च में खाये जाते हैं।

11. बबूल : इसे ***अकेसिया निलोटिका*** कहते हैं। यह लेग्युमिनेसी कुल का पौधा है। इसके बीज भी उबालकर सुखाये जाते हैं तथा अकाल में खाये जाते हैं। इसके कई ओषधीय उपयोग भी हैं।

12. रोंज : इसे वानस्पतिक भाषा में ***अकेसिया ल्यूकोफ्लीया*** कहते हैं। इसके बीज भी उबालकर सुखाये जाते हैं तथा परिरक्षित कर अकाल में खाये जाते हैं।

13. इमली : इसे वानस्पतिक भाषा में ***टेमेरिन्डस प्रजाति*** कहते हैं तथा इसके ऊपरी गूदेदार भाग से स्वादिष्ट चटनी बनाई जाती है। इसके अतिरिक्त इसके बीजों को उबालकर सुखाया जाता है व अकाल में खाये जाते हैं। इसकी पत्तियों से सब्ज़ी भी बनाई जाती है।

14. अन्य : इसके अतिरिक्त कई और मरुस्थलीय पौधे अकाल में अतिरिक्त खाद्य के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं, वे हैं -

अ. सोमा : ***इकाईनोक्लोआ प्रजाति*** के वानस्पतिक नाम वाले इस पादप के बीज चावल के स्थान पर तथा व्रत में 'सहगार' के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

ब. चौलाई : इसे वानस्पतिक भाषा में ***ऐमेरेन्थस प्रजाति*** कहते हैं। इसके बीज खाने के रूप में तथा पत्तियाँ सब्ज़ी के रूप में काम में आती हैं।

स. गून्दी : ***कोर्डिया गैरफ*** के वानस्पतिक नाम वाले इस पादप के बीज सब्ज़ी के रूप में तथा फल अचार में प्रयुक्त होते हैं।

द. ढॉक/पलास : ***ब्युटिया प्रजाति*** के वानस्पतिक नाम वाले इस पादप की जड़ को उबालकर मसालों के साथ छोंक लगाकर खाया जाता है।

य. काचरा/काचरी : इसे वानस्पतिक भाषा में ***कुकुमिस प्रजाति*** के नाम से जाना जाता है। इसके पके हुए फल खाये जाते हैं।

[शेष पृष्ठ 20 पर]

वन और हमारा पर्यावरण

❑ संजय कुमार ''गम्भीर''

शोधकर्ता, खनन पर्यावरण केन्द्र,
भारतीय खनन विद्यापीठ, धनबाद (बिहार)

हमारे देश में आजादी के बाद लगभग 42 लाख हेक्टेयर वनों का सफाया हो चुका है । 1980 के बाद प्रतिवर्ष 15 लाख हेक्टेयर वन नष्ट हो रहे हैं जबकि, प्रतिवर्ष हमारी वन लगाने की अधिकतम सीमा 3 लाख 26 हजार हेक्टेयर है । यही क्रम जारी रहा तो 21 वर्षों में ही सम्पूर्ण वन समाप्त हो जायेंगे । यद्यपि 1952 की 'वन नीति' में देश के क्षेत्रफल के एक तिहाई भाग में वनों का होना आवश्यक बताया गया है तथा पर्वतीय क्षेत्रों में 68 प्रतिशत वनों का होना जरूरी है, परन्तु वन हैं कि घटते ही जा रहे हैं । आज देश में मात्र 19.5% भाग में ही वन हैं । इस पर भी वास्तविक घने वनों का क्षेत्रफल 10.9% भाग में ही है । पर्वतीय क्षेत्रों में वनों का यह क्षेत्रफल 37% है इस पर भी घने वन मात्र 21% भू-भाग में ही रह गये हैं जबकि, बढ़ती जनसंख्या, उद्योग, कारखाने, यातयात, सुविधाओं, निर्माण कार्य एवं अन्य मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वनों की माँग बढ़ती जा रही है । एक सर्वेक्षण के अनुसार भोजन पकाने के लिए 15 करोड़ टन लकड़ी प्रति वर्ष काटी जा रही है, जबकि कुल भण्डार 2 अरब टन आँका जा रहा है और यह मात्र 3 करोड़ टन वार्षिक दर से बढ़ रहा है जो खपत का मात्र 5वां हिस्सा है । अगले 30 वर्षों में हमारी औद्योगिक लकड़ी की माँग प्रतिवर्ष 470 लाख टन मीटर तक होगी, जबकि हम प्रति वर्ष 120 लाख घन मीटर लकड़ी भी उत्पादित नहीं कर पा रहे हैं । यही माँग और पूर्ति के अंतर को पुनरुत्पादित न कर पाने से हमारी धरोहर समाप्त होती जा रही है । दूसरी ओर, ईधनों के अत्यधिक उपयोग से वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड एवं अनेक घातक धातुएं—सीसा, निकेल आदि बढ़ रहे हैं । इस वायु प्रदूषण से ग्रीन हाउस प्रभाव बढ़ रहा है । औद्योगिक कचरों, शहरीमल आदि को नदियों में प्रवाहित करने से जल प्रदूषण की गंभीर समस्या पैदा हो रही है । जल-स्रोतों के प्रदूषण एवं जल के सूखने तथा भूमिगत जल स्तर में निरंतर कमी से सिंचाई जल व पेयजल संकट बढ़ रहा है। सूखा, बाढ़, भूक्षरण, रेगिस्तानीकरण, भूमि का क्षारीकरण एवं जल-भराव आदि समस्याएँ पर्यावरण असंतुलन का संकेत देने लगी हैं ।

पर्यावरण की बात आती है तो वनों की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है । यह शाश्वत सत्य है कि वनों से ही पर्यापरणीय संतुलन नियंत्रित होता है । वनों से मिलने वाली प्राणवायु ऑक्सीजन का प्रवाह हमारी पूरी सभ्यता के रक्त में होता आ रहा है । वनों के बिना मानव का न तो कोई इतिहास रह जाता है और भविष्य । इसलिए संकेतों के कम होने का अर्थ है अतीत की उपलब्धियाँ और भविष्य की संभावनाओं का कम होना । प्राणवायु-संचरण के बाद वनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है— जल-संरक्षण, भूमि-संरक्षण, भूमि की उपजाऊ शक्ति में वृद्धि और जीव-जंतुओं को आश्रय प्रदान करना । वनों के प्रति इस नवीन चिंतन को वैज्ञानिक अध्ययनों ने और पुख्ता किया है ।

वायु प्रदूषण

प्राकृतिक पर्यावरण प्रणालियों का संकट : जंगलों के कटने, खनिज ईंधनों के जलने में हो रही निरंतर वृद्धि से

और परिणामस्वरूप वायु में दिनों दिन बढ़ती कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा से वायु प्रदूषण का गम्भीर संकट पैदा होने लगा है । 'विश्व पर्यावरण एवं विकास आयोग' के अनुसार औद्योगिकीकरण के पूर्व काल में वायु के प्रति दस लाख भाग में 280 भाग कार्बन डाइऑक्साइड थी । यह घनत्व भढ़ते-भढ़ते अस्सी के दशक में 340 पीपीएम तक पहुँच गया है तथा अगली शताब्दी के मध्य से अंत तक इसके 560 पीपीएम तक पहुँचने की संभावना है । इससे हृदय रोगों की संख्या बढ़ रही है ।

ग्रीन हाउस प्रभाव संकट

वातावरण में छोड़ा जाने वाले धुँए में कार्बन डाइऑक्साइड ही नहीं, धातुओं के कण, कार्बन मोनोऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड, धूल जैसे– हानिकारक कई पदार्थों की मात्रा बढ़ रही है । धातुकणों में सीसा, पारा, निकिल, क्रोमियम, ताँबा, कैडमियम आदि होते हैं । 1976 में पश्चिमी जर्मनी में हुए अध्ययन में पाया गया कि व्यस्त सड़कों पर मोटर वाहनों का धुआँ 60 प्रतिशत कम करने से ही आस पास के वातावरण में सीसा का स्तर 50 प्रतिशत गिर जाता है, जो पेट्रोल-चालित वाहनों से अधिक बढ़ता है। सीसे के ज़हर से मानव मस्तिष्कतंतु नष्ट हो जाते हैं । निकेल, क्रोमियम आदि को सांस में लेने से कैंसर जैसी गंभीर बीमारियाँ बढ़ रही हैं । एक राष्ट्रीय अध्ययन के अनुसार, भारतीय वायुमंडल के पारे की मात्रा बढ़ रही है । परिणामस्वरूप 'ग्रीन हाउस प्रभाव' का संकट गंभीर हो सकता है । इससे मौसम परिवर्तन हो रहे हैं, पर्यावरण का तेजाबीकरण बढ़ रहा है और पेड़-पौधे जो इसे नियंत्रित करते हैं, स्वयं प्रभावित हो रहे हैं ।

धरती के रक्षा कवच पर संकट

फोम, रबड़, रेफ्रिजिरेशन, एयरोसोल जैसे कारखानों से निकली दूषित गैसों के कारण अर्थात् क्लोरोफ्लोरोकार्बन से धरती के रक्षा कवच 'ओजोन परत' के टूटने का प्रमाण 1986 में प्रकाश में आया । ओज़ोन परत सूर्य से धरती पर आने वाली घातक पराबैंगनी किरणों से जीवधारियों को सुरक्षा प्रदान करती है ।

उपरोक्त प्रदूषण की रोकथाम के लिए जंगलों को बढ़ाना महत्वपूर्ण है । वास्तव में पेड़-पौधे प्रदूषण दो प्रकार से दूर करते हैं–

1. वृक्ष प्रदूषण के स्रोत को ही समाप्त कर देते हैं, जैसे पेड़-पौधे सल्फर डाइऑक्साइड तथा हाइड्रोजन क्लोराइड की कुछ मात्रा बिना हानिकारक प्रभाव के उपयोग में ले लेते हैं । एक भारतीय अध्ययन के अनुसार 50 वर्ष में एक औसत श्रेणी का वृक्ष 50 हज़ार किलोग्राम ऑक्सीजन (प्राण वायु) देता है ।

2. पेड़-पौधे वातावरण को शुद्ध बनाने में प्राकृतिक छलनी का कार्य करते हैं । वृक्षों की सहायता से वातावरण में उठते धुएँ एवं गैसों के साथ छोटे-छोटे धूल एवं धातु-कणों को वायु में घुलने से रोका जा सकता है । 1980 में एक अध्ययन के अनुसार आम *(Mangifera indiea)* के वृक्ष वातावरण में उठते धुएँ के साथ छोटे-छोटे कणों को छानने में काफी सहायक सिद्ध हुए हैं ।

धरती के बढ़ते ताप का संकट

वायुमण्डल में छोड़ी जाने वाली कार्बन डाइऑक्साइड और कुछेक अन्य गैसों के कारण धरती के तापमान में 1.5 से 4.5 सेंटीग्रेड की वृद्धि होने से दोनों ध्रुवों का तापमन बढ़ने से ध्रुवों की हिम टोपियाँ पिघलेंगी । इससे समुद्र का तल ऊपर उठेगा और सागरतटीय प्रक्षेत्रों के जलमग्न होने से आर्थिक-सामाजिक संकट उत्पन्न होंगे । भूमध्य तथा ध्रुवीय तापमान के अन्तर से चलने वाला वातावरणीय ताप इंजन धीमा पड़ जाएगा । इससे सारा विश्व प्रभावित होगा । इसे नियंत्रित करने में वनों की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जा रही है । साथ ही इसके परिणामों से होने वाली जन-धन की हानि को भी वनों द्वारा कम किया जा सकता है । 1977 में आंध्र के तटीय चक्रवातों के बाद तत्कालीन सिंचाई एवं ऊर्जा मंत्री **डॉ० के० एल० राव** की अध्यक्षता में गठित विशेषज्ञ समिति ने समुद्री चक्रवातों से होने वाली अपार क्षति को कम करने के लिए समुद्र तटों पर तीन किलोमीटर चौड़ी पट्टी पर जंगल लगाने का सुझाव दिया था ।

जल प्रदूषण

वायुमंडल में एकत्रित विषाक्त गैसें, धातुकण वर्षा या हवा के साथ नदियों-समुद्रों में जा मिलते हैं और पानी में प्रदूषणकारी तत्वों को बढ़ाते हैं । दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि महानगरों एवं नगरों में सभ्यता की हर तरह की गंदगी-मृत पशु, सड़ी-गली वस्तुएँ, मल, कचरा, रसायनों को प्रतिबंधों के बावजूद नदियों मे झोंक दिया जाता है । धरती पर डाले गये कीटनाशक भी अंततः नदियों में ही जा मिलते हैं, जिस कारण अधिकांश नदियों में पानी की शुद्धता का स्तर गिरता जा रहा है । 'बायोलॉजिकल ऑक्सीजन डिमांड' (बी ओ डी) जो पानी में मौजूद आर्गनिक पदार्थों का माप है, आदर्श स्थिति में एक लीटर पानी में तीन मिलीग्राम से अधिक नहीं होता, परन्तु मैदानी भागों में कई नदियों में यह 12 मिलीग्राम पाया गया है । पर्यावरण वैज्ञानिकों का मानना है कि मानसून के समय तीव्र बहाव के कारण प्रदूषण की समस्या लगभग नहीं होती, इसलिए सूखे के महीनों में जल प्रदूषण तीव्र होता है । जल बहाव तीव्र होना जरूरी है, जबकि हिमालय की नदियों के जलग्रहण क्षेत्रों में वन एवं वातावरण विनाश से नदियों की अपरदन दर बढ़ती जा रही है जिसमें प्रति वर्ष करोड़ों टन गाद, मोटे कण, पत्थर पर्वतीय क्षेत्रों से बहकर मैदानी भागों में नदियों के तल पर जम रहे हैं । फल स्वरूप, नदियों के तल उथले व चौड़े हो रहे हैं और उनके बहाव में निरंतर कमी आ रही है । **डॉ० खड़ग सिंह वल्दिया** ने अपने अध्ययनों में पाया कि हिमालयी नदियों के बहाव में कमी केकारण मौसम और वर्षा में अत्यधिक अंतर है जबकि घने वन क्षेत्रों से बहने वाली नदियों में यह अंतर कम है ।

पानी का संकट

वन एवं वनावरण की कमी व अनियंत्रित विकास के कारण ही जल-प्रबंध की समसया बढ़ रही है, पानी के स्रोत सूख रहे हैं, भूमिगत जल स्तर गिर रहा है परिणामस्वरूप पेय जल संकट एवं सिंचाई जल संकट बढ़ रहे हैं । 'केन्द्रीय जल आयोग' के अध्यक्ष **माधव राव चितले** के अनुसार 1901 की तुलना में पिछले चालीस वर्षों में पानी की कमी दर 40% रही है । यही कमी की दर कायम रही तो इस शताब्दी के अंत तक प्रति व्यक्ति 14% पानी ही उपलब्ध हो सकेगा । देश के अधिकांश नलकूप, पम्प, हैंडपंप प्रतिवर्ष निष्क्रिय होते जा रहे हैं । इससे महाराष्ट्र, पश्चिमी उत्तर प्रदेश जैसे हरित क्रांति क्षेत्रों में अत्यधिक वृद्धि हुई है । पानी के महत्वपूर्ण स्रोत हिमालय स्थित 1500 ग्लेशियरों में से अधिकांश ताप वृद्धि एवं बर्फ गिरने में आयी कमी के कारण पीछे खिसक रहे हैं । वनों के जल-प्रबंध का प्राकृतिका क्रियाओं में महत्वपूर्ण योगदान होता है। धरती पर पानी प्रायः तीन प्रक्रियाओं से होकर गुजरता है–

1. धरती पर जल का एक भाग ज़मीन के अंदर रिसता है और अंततः भूमिगत जल के रूप में पुनः पानी की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है । रिसाव की इस क्रिया में वनों का सर्वाधिक योगदान होता है । खासकर गहरी जड़ों और चौड़ी पत्ती वाले वृक्षों की जलग्रहण क्षमता अधिक पायी गयी है । हिमालयी क्षेतरों में 75% वर्षा का पानी बह जाता है । केवल 15% ही धरती में समा पा रहा है, जिस कारण पिछले पचास वर्षों में 25 से 75% जल-स्रोत सूख चुके हैं । मैदानी भाग में भूमिगत जल-स्तर गिर रहा है ।

2. ज़मीन में पानी का एक भाग वाष्पन की क्रिया द्वारा वाष्प और अंततः बादल बनकर फिर वर्षा के रूप में प्राप्त होता है । वाष्पन की यह क्रिया तापमान, हवा, वातावरण की कमी से प्रभावित होती है । इन्हें संतुलित करने में वनों का योगदान सराहनीय है ।

3. भूमि में पानी की तीसरी क्रिया सतही प्रवाह है जो नदी-नालों के रूप में प्रवाहित होता है । यह क्रिया भूमि की ढाल, पानी के तत्व और भूमि पर उगे वन एवं वनस्पति पर निर्भर करती है । इस प्रकार वन इस संपूर्ण चक्र को सतत् रूप में चलाते रहते हैं । वन विहीन धरती पर वर्षा की बौछारों से कटकर बहने वाली मिट्टी हिमालयी नदियों की अत्यधिक अपरदन दर के रूप में देखी जा सकती है ।

स्थल प्रदूषण

देश में कोई चार हज़ार करोड़ हेक्टेयर भूमि बाढ़ प्रभावित है, कई भागों में भराव, क्षारीकरण, रेगिस्तानीकरण

बढ़ रहा है । भूस्खलन और भूक्षरण में अप्रत्याशित वृद्धि हो रही है । भूमि की उर्वरा-शक्ति क्षीण हो रही है । अमेरिकी कृषि विभाग के आँकड़ों के अनुसार, वनस्पति की उत्पादित मामग्री द्वारा प्रतिवर्ष कृषि उत्पादन में एक प्रतिशत वृद्धि हो रही है, जिसकी कीमत स्थानीय बाज़ार में एक बिलियन डॉलर है । जंगलों के कटने से हमारे देश में प्रतिवर्ष सात करोड़ टन मिट्टी का क्षरण हो रहा है, इसमें 51 लाख टन नाइट्रोजन, 31 लाख टन के लगभग पोटेशियम की खाद होती है । उर्वरकों की क्षति ही नहीं अपितु बहुमूल्य मिट्टी नष्ट हो रही है । चट्टानों को मिट्टी का रूप देने में प्राकृतिक शक्तियों-- हवा, धूप, पानी आदि को हज़ारों साल लगते हैं. । वन एवं वनस्पतियों के बिना भूमि को उसकी उर्वराशक्ति वापस नहीं की जा सकती । दूसरी ओर वनों अर्थात् लकड़ी के अभाव में देश में लगभग चालीस करोड़ टन गोबर जलाया जा रहा है, जिससे भूमि को वापस मिलने वाले तत्व राख हो रहे हैं ।

जलग्रहण क्षेत्रों में वनस्पति विहीन ढलानों पर वर्षा की तेज़ बौछारों से तीव्र गति से बहता जल भूमि कटाव की प्रक्रिया बढ़ाता है । इससे भूस्खलन, अपरदन बढ़ रहे हैं । मैदानी क्षेत्रों में नदियों के पानी में अत्यधिक गात जमा हो रही है । नदियों के तल उथले होने से बाढ़ की विभीषिका जन्म लेती है । कभी-कभी पहाड़ी क्षेत्रों में भूस्खलन एवं चट्टानों के खिसकने से नदी का प्रवाह रुक जाता है, बना बाँध टूट जाता है और तबाही ढाता है, उपजाऊ घाटियाँ बालू के ढेर में बदल जाती हैं, सिंचाई व्यवस्था चरमरा जाती है आदि आदि ।

वन्य जीवन पर संकट

वन्य जीव, पशु-पक्षियों का तो अस्तित्व ही वनों पर टिका हुआ है, साथ ही जीव-जंतुओं का भी पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान है । भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ने में छोटे से केंचुए के योगदान को नकारा नहीं जा सकता । एक तितली के मर जाने से न जाने कितने फूल परागण से वंचित रह जाते हैं । चूहों के आतंक से त्रस्त देशों को बिल्ली और साँपों के न होने या कम होने का अर्थ मालूम हो रहा है । परन्तु वनों के लगातार कटने से पेड़-पौधों, वनस्पतियों और प्राणियों की अनेक जातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं और कई विलुप्त होने के कगार पर हैं । अतएव धरती के जीवधारियों के कल्याण के लिए हमें न केवल इस धरती पर बचे वनों को सुरक्षित रखना होगा वरन् नये वन भी लगाने होंगे । ■■

पृष्ठ 16 का शेषांश

र. पचकूटा : यह राजस्थान के लोगों की विशिष्ट सब्ज़ी है। इसमें पाँच वनस्पति प्रजाति के सूखे फल तथा बीज प्रयुक्त किये जाते हैं, ये हैं - कूमट *(अकेसिया सेनेगल)* के बीज, केर *(कैपेरिस डेसीडुआ)* के फल, खेजड़ी *(प्रोसोपिस सिनेरेरिया)* के फल। इन सभी को मिलाकर उबाला जाता है एवं मसाले डालकर पकाये जाते हैं। यह बहुत ही स्वादिष्ट, उपयोगी एवं पौष्टिक सब्ज़ी है।

इस प्रकार ये प्राकृतिक स्रोत इस रेगिस्तानी इलाके के लोगो को दुर्भिक्ष में भी जीवन यापन करने में सहायक होते हैं। और तो और, ये लम्बे समय तक संग्रहीत भी रखे जा सकते हैं। □□□

पशु चिकित्सा में देशी औषधियों का महत्व बढ़ रहा है

❑ आर०बी० चौधरी

संपादक, 'पशु पोषण अनुसंधान दर्शन' (हिन्दी त्रैमासिक),
4/227, विकास नगर, लखनऊ- 226020

हमारे देश का एक बड़ा हिस्सा गाँवों में निवास करता है। इन गाँवों में अशिक्षा, गरीबी और संकट से जूझते लोगों के लिए हाँफते हुए पसीना पोछना एक परिभाषा बन गया है। इनके पास ज़मीन हो या नहीं, पर मवेशी जरूर होंगे। वैसे भी खेती-बाड़ी से पशु पालन का सम्बन्ध कोई आज से नहीं बल्कि पुरातनकाल से रहा है। उस समय भी लोग उतने ही अपने पशुओं को रोगमुक्त रखने के लिए प्रयासरत रहते थे, जितना कि आज। आसपास की उपलब्ध सामग्रियाँ ही पेटेन्ट दवायें थीं जो धीरे-धीरे संकलित कर पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहीं। आसान ही क्यों? सस्ती और सुविधाजनक यह परम्परा भले ही आज जैवप्रौद्योगिकी और जेनेटिक इंजीनियरिंग के जादुई छड़ी से कलाबाज़ी दिखाने वाली दवाओं के सामने न टिकें, पर देशी दवाओं की कुछ खास विशेषताओं को भुलाया नहीं जा सका है। बल्कि आज बढ़ती आबादी और पर्यावरणीय प्रदूषण जैसी कठिनाइयों के दौर में इसकी स्थापित पूर्वमान्यतायें एक महत्वपूर्ण अनुसंधान का विषय बन गयी हैं।

पशु-चिकित्सा विज्ञान का मानना है कि शरीर के जैव-अणुओं की क्षमता, स्वभाव और ज़रूरत के हिसाब से देशी ओषधियाँ कार्य करती हैं। यही कारण है बीमारियाँ प्राकृतिक ढंग से समूल नष्ट हो जाती हैं जबकि संश्लेषित रासायनों से तैयार दवाओं के गहन प्रयोग से शरीर-क्रिया पर बुरा असर हो सकता है। पर्यावरणीय प्रदूषण अब एक ऐसा उत्प्रेरक बन गया है कि संश्लेषित दवाओं के गहन प्रयोग वाले पशुओं में बीमारियों से लड़ने की क्षमता घट जाती है। अधिक उत्पादन का लक्ष्य लिये हुए जब पशुपालक संश्लेषित दवायें, कीटनाशी रसायन, ग्रोथ रेगुलेटर्स, हारमोन्स और एन्टीवायोटिक्स का अन्धाधुन्ध प्रयोग करते हैं तो न केवल पशु-शरीर-क्रिया ही कुप्रभावित होती है, बल्कि उसके अवशेष दूध, अण्डे और मांस में भी आने लगते हैं, और मानव स्वास्थ्य भी प्रभावित होता है। कोलम्बिया यूनिवर्सिटी अमेरिका के मेडसिन विभाग के प्रमुख **डॉ० हरिमोहन शर्मा** ने अभी हाल में एक साक्षात्कार में यह बताया है कि मनुष्य या पशु शरीर में "फ्री रेडिकल्स" की मात्रा बढ़ रही है। जब यह मात्रा बढ़कर 80 प्रतिशत से अधिक हो जाती है तो नाना प्रकार की जानलेवा बीमारियाँ घेरने लगती हैं। इस दिशा में एलोपैथ प्रायः निष्फल हैं और देशी दवायें ही मात्र इस समस्या का निदान हैं। डॉ० शर्मा के अनुसार इसका मुख्य कारण यह है कि देशी दवायें शरीर के टॉक्सिन्स (विष) या "फ्री रेडिकल्स" को शोधित कर, घटाने में पूर्णतया सक्षम हैं।

आज पश्चिमी देशों में जीव-जन्तु कल्याण के मुद्दे पर काफ़ी ज़ोर दिया जा रहा है। ब्रिटेन और अमेरिका में क्रूरताविहीन पद्धति पर आधारित शिक्षा और अनुसंधान, विशेषकर चिकित्सा अनुसंधान को अपनाने के लिए आन्दोलन चलाया जा रहा है। इसे कानूनी मान्यता भी दी जा रही है। लोग पर्यावरण सुरक्षा बनाम जीव-जन्तु कल्याण के अन्तर्सम्बन्ध को जताते हुए यह समझाना चाहते हैं कि पशुओं की संवेदना और भावना से उनके स्वास्थ्य, अनुकूलन-क्षमता, कार्य-दक्षता, शरीर-क्रिया और उत्पादन का गहरा सम्बन्ध है। इससे मनुष्य और पर्यावरण का करीब का रिश्ता है। इसके बिखरने से जैवअणुओं की रासायनिक

क्रियायें प्रभावित होती हैं। जीवों की हर तरह से सुरक्षा हमारी नैतिक एवं मौलिक जिम्मेदारी है। अकेले ब्रिटेन में हर साल 1000 लाख पशुओं को विभिन्न चिकित्सा संस्थानों में चलाये जा रहे अनुसंधानों में बलि चढ़ा दिया जाता है। रॉयल सोसायटी ऑव मेडसिन (यू०के०) के **डॉ० बेरनान कोलिमन** के अनुसार किसी दवा की सत्यता-परीक्षण के लिए पशु उतना उपयोगी नहीं है जितना कि उसका बनाया हुआ मॉडल। कारण, पशुओं पर दवा-परीक्षण पशु की भावना और संवेदना पर भी निर्भर करता है। इसलिए जैव-रासायनिक क्रिया को सुचारु रूप से सम्पन्न होने के लिए तमाम प्रयोगशालाओं में मधुर संगीत की धुनों को भी सुनाने और अनुकूल वातावरण बनाये रखने की व्यवस्था की जाती है, जबक देशी जड़ी-बूटियों से तैयार दवाओं के परीक्षण के लिए ऐसी समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ता। ब्रिटेन की आर०एस०पी०सी०ए० और अमेरिका की पी०एफ०ई०टी०ए० जैसी संस्थायें क्रूरताविहीन विधि से तैयार ओषधियों, विशेषकर हर्बल मेडसिन, के प्रयोग पर बल दे रही हैं।

हमारे देश का साधारण किसान आज भी कम पढ़ा लिखा और अंग्रेज़ी भाषा से अनभिज्ञ है। इसलिए नई टेक्नोलॉजी का पता लगाना, समझना और अपनाना उसके लिए एक समस्या है। ऐसे में वह अपनी मन-पसन्द टेक्नोलॉजी को अधिक पसन्द करता है। देखा गया है कि गाँवों में नई टेक्नोलॉजी अपनाने की दर मात्र 30 प्रतिशत है। देशी दवाओं के साथ होती है 'गंवई टेक्नोलॉजी' अर्थात् गाँव का डॉक्टर, दवा-सामग्री और उपकरण भी। सभी कुछ सस्ता ही सस्ता और समय-बचाऊ भी। बस, इस टेक्नालॉजी को थोड़ा आधुनिक बना दिया जाय और संकलित कर सभी को उपलब्ध कराया जाय तो न केवल पशुपालकों/किसानों की स्थिति सुधरेगी, पर्यावरण सुरक्षा संबंधी शिक्षा मिलेगी, बल्कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि भी होगी। और सब ग़रीब किसान भी पशुधन-विशेषज्ञों के द्वारा स्थापित उस मान्य लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे और अपने पशुओं का उत्पादन 20 प्रतिशत तक, मात्र पशुओं को रोगरहित रखकर, बढ़ा सकेंगे। ऐलोपैथिक दवाओं की खोज और विकास पर एक नज़र डालने से प्रतीत होता है कि इन दवाओं की खोज और विकास के लिए एक लम्बा समय और भारी पूँजी की आवश्यकता पड़ती है। केन्द्रीय ओषधि संस्थान (लखनऊ) द्वारा प्रकाशित एक रिपोर्ट के मुताबिक 10,000 पदार्थों की गहरी छान-बीन के बाद कहीं एक दवा तैयार करने का अवसर आता है। एक दवा तैयार करने में कम से कम 10-15 वर्षों की लम्बी अवधि और 100-150 करोड़ रुपये की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार विश्वभर के चिकित्सा विज्ञानी मिलकर साल भर में किसी प्रकार 3-4 संश्लेषित ओषधियों का विकास कर पाते हैं।

यह बड़ी विचित्र बात है कि जिस देश में समूचे विश्व भर के पशुधन का 50 प्रतिशत हिस्सा मौजूद हो और उसमें से अधिकांश अन्नोत्पादन में सहायक हों, करीब एक तिहाई पशु भुखमरी और कुपोषण के शिकार हो रहे हों, और ऊपर से हर साल इस जत्थे में 2-3 प्रतिशत की दर से वृद्धि हो रही तो, आने वाले वर्षों में उस देश के पशुपालकों और पशुओं की दारुण दशा का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार ने वर्ष 1990 में एक सर्वेक्षण से अनुमान लगाया कि वर्तमान सदी के अन्त तक देश में 13,700 कृषि-विशेषज्ञों और पशु-चिकित्सकों की कमी पड़ेगी। ऐसे में सभी के लिए स्वस्थ्य और सस्ता दूध, अण्डा, मांस आदि जुटाने के लिए देशी दवाओं के योगदान को नजरन्दाज़ करना भारी भूल होगी। अतऐव जड़ी-बूटियों और देशी ओषधियों पर अनुसंधान समय की पुकार है। ■■■

पुस्तक का नाम :	टिकाऊ खेती - संतुलित उर्वरक उपयोग
लेखक :	डॉ० के० एन० तिवारी एवं डॉ० अशोक तिवारी
प्रकाशक :	समाधान ग्राम्य विकास संस्थान, कानपुर-208002
वर्ष :	1996, प्रथम संस्करण
मूल्य :	सत्तर रुपये मात्र

173 पृष्ठों की इस पुस्तक में अनुक्रमणिका सहित कुल सोलह अध्याय हैं। अध्याय एक और दो में पोषक तत्व प्रबन्ध के इतिहास तथा उर्वरकों की आवश्यकता एवं महत्व पर प्रकाश डाला गया है। तीसरे से पाँचवे अध्याय तक फसलों के लिए आवश्यक मुख्य पोषक तत्वों - नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटैशियम तथा फ़सल-उत्पादन में उनकी भूमिका, न्यूनता के कारण होने वाली असामान्यताओं आदि का विभिन्न सन्दर्भों सहित विस्तृत वर्णन किया गया है। छठवां अध्याय द्वितीयक पोषक तत्वों का विवेचन प्रस्तुत करता है। आठवें से लेकर ग्यारहवें अध्याय में खादों तथा उर्वरकों की मिट्टी में प्रतिक्रिया तथा फ़सल-उत्पादन में भूमिका पर प्रकाश डालते हुए जैव उर्वरकों की भी चर्चा की गयी है। समस्याग्रस्त भूमियों में पोषक तत्वों के प्रबन्ध की हमारे देश में महती आवश्यकता है, विशेषकर उत्तर प्रदेश में, जहाँ अधिकांश भूमि क्षारीयता से समस्याग्रस्त है। बारहवाँ अध्याय इसी विषय से सम्बन्धित है।

फ़सलें जितना पोषक तत्व मिट्टी से उद्ग्रहीत करती हैं, उतनी पूर्ति मिट्टी में नहीं हो पाती जिससे उद्ग्रहण और पूर्ति के बीच काफी अन्तर हो गया है। मिट्टी की उर्वरता बनी रहे, इसके लिए आवश्यक है कि पोषक तत्वों का एकीकृत प्रबन्ध किया जाय। चौदहवाँ अध्याय इसी से सम्बन्धित जानकारी देता है।

इस पुस्तक में टिकाऊ कृषि के लिए आवश्यक सभी जानकारियाँ व्यवस्थित ढँग से दी गयी हैं। किसी-किसी सारणी में सन्दर्भ दिये गये हैं जो अधूरे हैं जैसे - पृष्ठ संख्या - 22, 23, 24, 28, 29, 39, 40, 57, 67, 70, 112, 117, 125, 126 पर दी गयी सारणियाँ। ये सन्दर्भ पाठ के अन्त में स्पष्टतः दिये जा सकते थे या फिर इनके उल्लेख की आवश्यकता ही नहीं थी।

इसके प्रकाशन में प्रूफ़ सम्बन्धी शुद्धता पर पूरा ध्यान दिया गया है परन्तु कहीं-कहीं एक-दो त्रुटियाँ रह गयी हैं जैसे पृष्ठ 149 में दिए गये शीर्षक - संतुलित उर्वरक प्रयोग : आवश्यकता एवं महत्व।

लेखन शैली अच्छी है परन्तु कहीं-कहीं शब्दों का प्रयोग अटपटा सा लगता है या कहीं-कहीं वाक्य अटपटे लगते हैं। जैसे पृष्ठ - 45 में अन्तिम वाक्य, अतः इन क्षेत्रों की उच्च भूमि में अनाज तथा दलहनी फसलों . . . प्रयोग लाभकारी सिद्ध होगा। आशा है द्वितीय संस्करण में त्रुटियों का परिहार हो जायेगा।

अच्छे किस्म के कागज़ पर अच्छी छपाई के साथ इसका मुखपृष्ठ पुस्तक की सुन्दरता में और वृद्धि कर देता है। उर्वरकों तथा खादों से सम्बन्धित जानकारी की समयानुकूल आवश्यकता को देखते हुए यह पुस्तक अपने आप में एक सराहनीय प्रयास है। यह कृषि विज्ञान के विद्यार्थियों, शोधछात्रों, कृषि प्रसार कार्यकर्ताओं के साथ कृषकों के लिए भी उपयोगी है।

इसके प्रकाशन के लिए लेखकद्वय और प्रकाशक दोनों को साधुवाद।

- डॉ० सुनील दत्त तिवारी
औद्यानिक प्रयोग एवं प्रशिक्षण केन्द्र
खुशरू बाग़, इलाहाबाद - 211001

■■■

परिषद् का पृष्ठ : परिषद् के प्रधान मन्त्री की कलम से

विज्ञान परिषद् के नये पदाधिकारियों का अभिनन्दन

6 जुलाई को विज्ञान परिषद् की कार्यकारिणी समिति की बैठक में परिषद् के नवनिर्वाचित सभापति डॉ० डी० डी० पन्त, कोषाध्यक्ष डॉ० डी० डी० नौटियाल, संयुक्त मंत्री डॉ० राजकुमार दुबे, आय-व्यय निरीक्षक श्री दर्शनान्द तथा प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र का अभिनन्द किया गया। यह आशा व्यक्त की गई कि नये सभापति से, जो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के पुरावनसपतिविद् हैं, परिषद् को नई दिशा मिलेगी।

- यह भी निश्चय हुआ कि विज्ञान परिषद् की विभिन्न व्याख्यान मालाएं समय से शुरू करा दी जावें।
- निश्चय हुआ कि विज्ञान परिषद् की सभी शाखाओं से कार्य विवरण मंगाया जाय और उसे प्रकाशित किया जाय ।
- यह भी निश्चय हुआ कि विज्ञान प्रसार नई दिल्ली के पास आगामी योजनाओं की रूपरेखा भेजी जाय जिससे यथाशीघ्र कुछ संगोष्ठियां सम्पन्न की जा सकें।

वयोवृद्ध विज्ञान लेखक का भाषण

22 जुलाई को परिषद् सभाकक्ष में सागर से आये 87 वर्षीय पं० रामस्वरूप चतुर्वेदी जी का भाषण सम्पन्न हुआ। चतुर्वेदी जी 'विज्ञान' के बहुत पुराने लेखक रहे हैं। 1939 में आपने 'भू-जन्म' नामक निबन्ध लिखा था जिसके प्रकाशित होने से प्रोत्साहित होकर आपने 'ब्रह्माण्ड' विषयक पुस्तकें लिखनी प्ररम्भ की । अपनी दीर्घकालीन वैज्ञानिक अभिरुचि के कारण ही उन्होंने 2000 पृष्ठों का अन्तरिक्ष विषयक साहित्य लिखा जो अलंकार प्रकाशन दिल्ली से 7 खण्डों में प्रकाशित हो चुका है । चतुर्वेदी जी बड़े लगन के व्यक्ति हैं । उन्होंने परिषद् के लिए कयी योजनाएं चलाने का सुझाव दिया है । परिषद् उनका अत्यन्त आभारी है ।

नया अभियान

परिषद् को सबल बनाने के लिए आवश्यक है कि सदस्यता अभियान चलाया जाय । विज्ञान परिषद् के शाखा कार्यालय इसमें विशेष सहायक होंगे । इस वर्ष बड़ौदा में विज्ञान परिषद् की नई शाखा खुल जाने से अब उत्तरी भारत में हिन्दी द्वारा विज्ञान के प्रचार-प्रसार का पूरा-पूरा प्रबन्ध हो चुका है । दक्षिण भारत में भी तीन-चार शाखाएँ स्थापित करने के प्रयास किये जाने हैं ।

बाल विज्ञान सिरीज़

"पुस्तकायन", दिल्ली के सहयोग से परिषद् विगत 10 वर्षों से बाल विज्ञान सिरीज के अन्तर्गत बालोपयोगी बैज्ञानिक पुस्तकों का लेखन कराता रहा है । इस सिरीज में पहले ही 15 पुस्तकें छप चुकी हैं । अगले मास तक छह नई पुस्तकें छप कर आने की आशा है ।

स्वर्गीय प्रो० तिवारी स्मृति अंक

विज्ञान परिषद् के अनन्य सेवी एवं भूतपूर्व सभापति, डॉ० रामदास तिवारी की स्मृति में इसी वर्ष एक स्मृति अंक निकालने की योजना है ।

डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री

■ ■ ■

विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा आयोजित अखिल भारतीय

विज्ञान लेख प्रतियोगिता 1996

व्हिटेकर पुरस्कार

दो सर्वश्रेष्ठ लेखों को पाँच-पाँच सौ रुपयों के दो पुरस्कार

शर्तें

1. लेख विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
2. केवल प्रकाशित लेखों पर ही विचार किया जायेगा।
3. लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।
4. प्रकाशन की अवधि जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
5. इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख जनवरी 1996 से दिसम्बर 1996 माह के बीच प्रकाशित हुआ हो।
6. लेखक को लेख के साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख मौलिक है.।
7. विज्ञान परिषद् से सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।
8. वर्ष 1996 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 15 मार्च 1997 है।
9. पुरस्कार के लिए पक्ष प्रचार करने वाले प्रतिभागियों को इस प्रतियोगिता के लिए उपयुक्त नहीं समझा जायेगा.।

लेख निम्न पते पर भेजें–

सम्पादक 'विज्ञान',
विज्ञान परिषद्,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

प्रकाशक	*सम्पादक*	*मुद्रक*	*सम्पर्क*
डॉ० शिवगोपाल मिश्र	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	अरुण राय	विज्ञान परिषद्
प्रधानमंत्री	*सहायक संपादक*	प्रसाद मुद्रणालय	महर्षि दयानन्द मार्ग
विज्ञान परिषद् प्रयाग	डॉ० दिनेश मणि	7 ए, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद	इलाहाबाद

उत्तर-प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आँध्र प्रदेश
के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामायिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र यदि किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिंतनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्नस्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु पुस्तक अथवा पत्रिका की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन की दरें निम्नवत् हैं।

भीतरी पूरा पृष्ठ 200.00 रु०, आधा पृष्ठ 100.00 रु० चौथाई पृष्ठ 50.00

आवरण : *द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ* 500.00 रु०।

मूल्य :
आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत : 500 रु० संस्थागत, **त्रिवार्षिक** : 60 रु० : **वार्षिक** 25 रु०
प्रति अंक : 3 रु० 50 पैसे, यह अंक : 7 रु०

प्रेषक : *विज्ञान परिषद् प्रयाग,*
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद -211002

Printed at : *Academy Press,*
Daraganj, Allahabad. PHONE : 660970

ISSN : 0373 - 1200

अक्टूबर 1996

विज्ञान

कौंसिल ऑफ साइंटिफिक
एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च,
नई दिल्ली के आंशिक
अनुदान द्वारा प्रकाशित
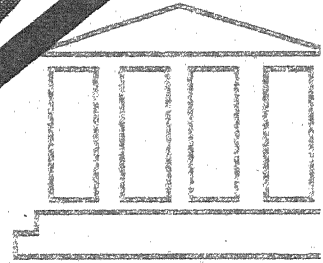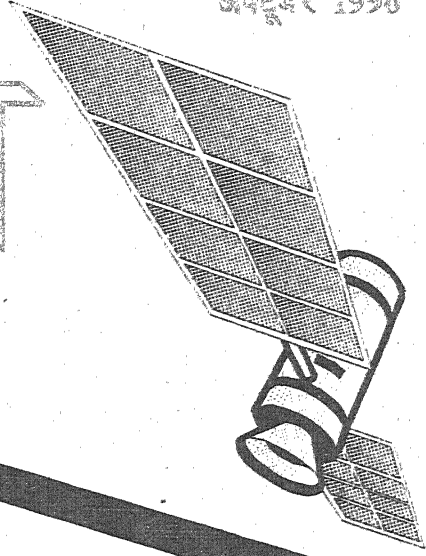
विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913 : विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
अक्टूबर 1996 : वर्ष 82 अंक 7; मूल्य : यह अंक : 3.50 रु०
आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत : 500 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 60 रु०, वार्षिक 25 रु०, एक प्रति : 3 रु० 50 पैसे

विज्ञान विस्तार

स्वामी सत्यप्रकाश : एक विलक्षण व्यक्तित्व—प्रो० चंद्रिका प्रसाद ... 1
ऑप्टिकल फाइबर: यह हकीकत है ख्वाब नहीं—राजेन्द्र कुमार ... 5
बालों में छिपें हैं अनेक रहस्य— डॉ शिवशंकर राय ... 7
विज्ञान परिषद् की बड़ौदा शाखा का शुभारम्भ— डॉ० नीलाद्रि रंजन दास ... 9
क्यों जा बसें हैं वैज्ञानिक सुदूर देशों में —दीप्ति भटनागर ... 11
ओषधि भी है आलू —राजेन्द्र कुमार राय ... 13
साहित्य परिचय —विजय जी ... 15
सभापति प्रो० पंत का अभिनन्दन—प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ... 16
पर्यावरण और मानव —दर्शनानन्द ... 18
सूर्योदय के पूर्व उठिए : स्वस्थ रहिए —डॉ० विश्वनाथ याज्ञिक ... 20
शाकाहार की विशेषता —डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय ... 23

■ ■ ■

स्वामी सत्यप्रकाश : एक विलक्षण व्यक्तित्व

❑ प्रो० चंद्रिका प्रसाद

7 बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

24 अगस्त स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी का जन्मदिनहै। यह संतोष का विषय है कि परिषद् स्वामी सत्यप्रकाश स्मृति व्याख्यान-माला का प्रारंभ स्वामी जी के जन्मदिन से प्रारंभ करने के अपने प्रयत्न में सफल हुआ। प्रथम व्याख्यानदाता प्रो० चंद्रिका प्रसाद जी अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के गणितज्ञ हैं। आप स्व० स्वामी जी के अभिन्न मित्र स्व० डॉ०गोरख प्रसाद जी के सुपुत्र हैं और लगभग 5-6 दशकों तक स्वामी जी के निकट सम्पर्क में रह चुके हैं। आपने कृपा करके अपना व्याख्यान लिखित रूप में "विज्ञान" पत्रिका में प्रकाशनार्थ दिया है। प्रस्तुत है प्रो० चंद्रिका प्रसाद जी के शब्दों में स्वामी जी के अनूठे व्यक्तित्व की एक झाँकी-सम्पादक

क्या आपने एक ऐसे धर्म-प्रचारक को निकट से जाना है, जो एक कुशल वैज्ञानिक भी रहा हो ? क्या आपकी भेंट एक ऐसे सन्यासी से हुई है, जो देश-विदेश में रसायन-शास्त्र के भाषण देने जाता हो ? स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती एक ऐसे ही व्यक्ति थे, और यह मेरा सौभाग्य था कि मैं उन्हें अपनी काफी छोटी उमर से ही जानता था।

स्वामी सत्यप्रकाश जी का जन्म 24 अगस्त 1905 को एटा ज़िले में बिजनौर में हुआ था। इनके पिता पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय और माता श्रीमती कला देवी थीं। 1918 में ये प्रयाग आ गये और मैट्रिकुलेशन तथा आगे की इनकी शिक्षा यहीं हुई। 1927 में इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से रसायन शास्त्र में एम० एस-सी० किया और उसके बाद प्रोफेसर नीलरत्न धर के निर्देशन में शोध कार्य प्रारंभ किया। 1932 में आपको डी० एस-सी० की डिग्री मिली। अब आप डॉक्टर सत्य प्रकाश कहलाने लगे।

शोध कार्य के बीच में ही 1930 में आपकी नियुक्ति प्रयाग विश्वविद्यालय के रसायन विभाग में डिमांस्ट्रेटर के पद पर हो गई। पदोन्नति करते-करते 1962 में आप विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए और 1967 में अवकाश प्राप्त करने तक इसी पद पर बने रहे। अपने कार्यकाल में आपने कई विद्यार्थियों के शोध कार्य का निर्देशन किया। इनमें से लगभग 22 ने आपके निर्देशन में डॉक्टरेट की डिग्री ली।

मेरे पिताजी, डॉ० गोरख प्रसाद, प्रयाग विश्वविद्यालय में गणित में प्राध्यापक थे। इसी कारण वे सत्य प्रकाश जी को अच्छी तरह जानते थे। फिर, जिस सड़क के एक सिरे पर मेरा मकान था, उसी के दूसरे सिरे पर सत्य प्रकाश जी ने अपना मकान बनवाया था। हम लोगों का एक दूसरे के यहाँ काफी आना-जाना होता था, जिसके कारण मैं स्वामी जी से छोटपन ही में परिचित हो गया और उन्हें चाचा जी कहा करता था। मुझे याद है कि जब सत्य प्रकाशजी का विवाह हुआ तो पिताजी वहाँ मुझे अपने साथ ले गये थे।

डॉ सत्य प्रकाश जी का विवाह 1935 में रत्नकुमारी जी के साथ हुआ। इनसे भी मेरा अच्छा परिचय हो गया। ये बड़ी शांत और सौम्य प्रकृति की महिला थीं। घर गृहस्थी संभलने के साथ ही आपने आर्य कन्या इंटर कॉलेज के प्रिंसिपल का भी कार्य भार सँभाला। आपके दो पुत्र हुए-

अरविंद प्रकाश और आनंद प्रकाश। इनको भी मैं जानता था, पर उतनी अच्छी तरह से नहीं, क्योंकि ये उम्र में मुझसे काफी छोटे थे।

सन् 1939 में इंटर पास करके मैंने प्रयाग विश्वविद्यालय के बी० एस-सी० कक्षा के प्रथम वर्ष में दाखिला लिया। इत्तफाक से मैं अपने प्रांत की इंटर परीक्ष में उस वर्ष प्रथम स्थान पर रहा। मेरे साथ ही कानपुर के श्री रामचरण मेहरोत्रा ने भी प्रथम स्थान प्राप्त किया। वे भी इसी विश्वविद्यालय में भरती होने आये और बाद में विश्वविद्यालय के रसायन विभाग में अध्यापक भी नियुक्त हुए। डॉ० सत्यप्रकाश जी रसायन की प्रयोगशाला में मेरे अध्यापक रहे। यों तो मैंने उन्हें घर पर हमेंशा धोती-कुरता या धोती-बनियाइन में देखा था (कभी-कभी नंगे बदन केवल धोती में ही), पर वे युनिवर्सटी में भी हमेशा धोती-कुरते में ही आते थे। और यह धोती-कुरता हमेशा खादी का रहता था। विशेष मौकों पर वे खादी की टोपी भी पहन लेते थे। इस प्रकार का सादा लिबास युनिवर्सिटी में मैंने बिरले ही अध्यापकों को देखा है।

जिस प्रकार डॉक्टर साहब का पहनावा सीधा-सादा था, उसी प्रकार उनका स्वभाव भी सीधा और सरल था। सहृदयता तो उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। विद्यार्थियों को वो अपने बच्चों की तरह मानते थे। किसी विद्यार्थी को कुछ भी कठिनाई हुई और वह इस कठिनाई को लेकर डॉक्टर साहब के पास गया, तो वे उसे बहुत अच्छी तरह से समझा कर, उसकी कठिनाई का निवारण कर देते थे। यह बात केवल मेरे लिये ही लागू नहीं थी (क्योंकि वे मुझे अच्छी तरह से जानते थे), यह मेरे सभी सहपाठियों के लिये लागू थी। इसीलिये कक्षा में सभी उनका बड़ा सम्मान करते थे– इसलिये भी कि भौतिकी प्रयोगशाला में हमें यह सुविधा नहीं मिलती थी।

मैं 1943 में गणित में एम० एस-सी० करने के बाद फरवरी 1944 में गणित विभाग में अध्यापक नियुक्त हो गया। इस प्रकार मैं डॉक्टर साहब का (और अपने पिताजी का भी) सह शिक्षक बना। उस समय वेतन के नये ग्रेड आये थे, जिसकी प्रारंभिक कड़ी 150 रूपये प्रतिमाह मुझे मिलने लगी। डॉ० सत्यप्रकाश जी को भी, जो पहले 125-175 की ग्रेड में थे, केवल 150 रूपये ही प्रतिमाह मिले। किंतु इसका उन्हें कोई मलाल न था। बाद में यह ग्रेड बदल कर 200-400 हो गयी, तब भी हम दोनों को एक ही वेतन 200 रूपये प्रतिमाह मिले। कुछ और दिनों बाद, जब लंबे अर्से से काम करने वालों को उनके कार्यकाल का लाभ दिया गया, तब जाकर उनकी तनखाह मुझसे अधिक हुई।

मैं 1948 में विश्वविद्यालय से छुट्टी लेकर डॉक्टरेट करने आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी चला गया। दो साल में डॉक्टरेट करने के बाद लौटा और डेढ़ वर्ष, प्रयाग विश्व-विद्यालय ही में बिताये। दिसंबर 1951 में पदोन्नति पर रुड़की विश्वविद्यालय चला गया। जब तक इलाहाबाद में रहा, बर्ष-बीच में डॉक्टर सत्यप्रकाश जी से मिलता रहा, पर कोई विशेष घटना याद नहीं। ऊपर की बात तो इसलिये याद है कि मुझे अच्छा नहीं लगा कि मेरे गुरू और मुझसे उम्र में तथा कार्यकाल में इतने बड़े व्यक्ति को भी वही तनखाह मिले जो मुझे मिल रही थी।

रूड़की में मुझे लगभग दस साल बीते होंगे जब मेरे पिताजी की मृत्यु गंगा में नौका को डूबने से बचाते समय बनारस में हो गयी। बनारस से इलाहाबाद जब आया तो सत्यप्रकाश जी की संवेदना मिली, जिसने बड़ा सहारा दिया। इसके शीघ्र ही बाद मुझे अमेरिका जाने की एक फेलोशिप मिली। अपनी माता जी को यहीं छोड़ कर मैं विदेश चला जाऊँ ? यह भारी प्रश्न था। पर डॉ० सत्यप्रकाश जैसे हित-मित्रों के भरोसे मैं माता जी को इलाहाबाद में छोड़ कर सपरिवार जनवरी 1962 में अमेरिका चला गया, जहाँ से मैं सितंबर 1963 में लौटा।

रुड़की से छुट्टियों में मैं जब घर आता था तो एक बार अवश्य डॉ० सत्यप्रकाश जी से मिलने जाता था। एक बार आने पर पता चला कि डॉक्टर साहब की पत्नी, श्रीमती रत्न कुमारी जी का एकाएक देहांत हो गया है। इस असमय मृत्यु से हम सभी को भारी धक्का लगा। पर संवेदना प्रकट करनें के सिवा हम कर भी क्या सकते थे। सत्यप्रकाश जी ने इस आघात को काफी समभाव से सहन किया, पर शायद उनके हृदय में संसार से विरक्ति तभी से घर कर गयी होगी,

जिसके कारण बाद में उन्होंने संन्यास लिया।

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के प्रसार में सत्यप्रकाश जी ने बहुत पहले से ही रुचि दिखायी थी। प्रयाग के 'विज्ञान परिषद्' से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'विज्ञान' में आपने कई लेख लिखें। 1927 से 1933 तक तथा 1937 से 1941 तक आपने इस पत्रिका का संपादन भी किया। मेरे पिता, डॉ० गोरख प्रसाद जी भी हिन्दी में विज्ञान-लेखन में रुचि रखते थे। वे कई वर्षों तक विज्ञान परिषद् के मंत्री और बाद 'विज्ञान' के संपादक भी रहे। डॉ० सत्यप्रकाश जी का'विज्ञान' के प्रकाशन में भारी सहयोग रहा। जब सत्यप्रकाश जी शोध छात्र थे तब उन्हें एम्प्रेस विक्टोरिया छात्र वृत्ति मिलती थी। और बाद में 'विज्ञान' के संपादक भी रहे। इस छात्रवृत्ति की एक शर्त यह थी कि छात्र को हिन्दी में कुछ वैज्ञानिक सामग्री लिखकर देनी होगी। इसके अंतर्गत सत्यप्रकाश जी ने चार पुस्तकें लिखीं, जिनमें दो रसायन पर थीं, एक गणित पर और एक वैज्ञानिक परिमाण पर। बाद में तो आपने विज्ञान में लेखों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें भी लिखीं, हिन्दी के अलावा अँग्रेजी में कुछ पाठ्यपुस्तकें भी। लिखने के अतिरिक्त उन्होंने रेडियों वार्तायें भी प्रसारित कीं। हिन्दी में विज्ञान के अनुसंधान पत्र भी लिखे जा सकते हैं, इसे उन्होंने विज्ञान परिषद् की अनुसंधान पत्रिका का प्रारम्भ करके दिखा दिया। यह पत्रिका बहुत सफल रही और लगातार छप रही है।

जैसा ऊपर बताया है, उन्होंने अपने कार्यकाल में अनेक शोध किये, शोधछात्रों का निर्देशन किया और शोध-पत्र छपाये। प्रतिवर्ष साइंस कॉंग्रेस का जो अधिवेशन होता है, उसमें वे लगभग हमेशा जाते थे। दो तीन बार जबमैं इन अधिवेशनों में गया हूं, तो उनसे वहाँ भेंट हो जाती थी। 1960 के लगभग साइंस कॉंग्रेस का अधिवेशन रुड़की विश्वविद्यालय में हुआ। तब वे इसमें पधारे थे और मेरे यहाँ ठहरे थे। 1960 की मई में वे तीन महीने के लिये यूरोप की यात्रा में गये थे और कई विश्वविद्यालयों का भ्रमण किया और भाषण भी दिये।

मेरे रुड़की के कार्यकाल के दौरान, डॉ० सत्यप्रकाश जी सरकार द्वारा 1967 में रुड़की विश्वविद्यालय की सिंडिकेट (कार्यकारिणी समिति) के सदस्य मनोनीत कर दिये गये। सिंडिकेट की मीटिंग हर दूसरे महीने होती थी। इसलिये सत्यप्रकाश जी से मिलने के अवसर बढ़ गये। उनकी हमारे ऊपर बड़ी कृपा थी। इसलिये जब भी वे रुड़की आते, मेरे यहां ही ठहरते थे। यों तो सिंडिकेट के सभी बाहरी सदस्यों के लिये युनिवर्तटी ने प्रबंध कर रखा था, पर हम ऐसे सुअवसर को कैसे छोड़ सकते थे, और वे भी हमारे अनुरोध का आदर करते थे।

जब भी वे हमारे यहाँ आते, परिवार के एक सदस्य की तरह ही बर्ताव करते। कोई तकल्लुफ या आडंबर नहीं जिस कारण हम भी संकोच से बरी रहते। मेरे बच्चे भी उनसे पूरी तरह से घुलमिल गये थे। खाने की मेज पर बैठे उनका हंसमुख चेहरा और विनोद पूर्ण बातें अब भी याद आती हैं। अधिकतर बातें प्रातः नाश्ते के समय या रात्रि के भोजन के समय ही हो पाती थीं। प्रोफेसर होने के नाते मैं भी सिंडिकेट का सदस्य था। हम साथ ही चले जाते थे और दिन भर सिंडिकेट की मीटिंग में व्यस्त रहते थे– दोपहर के भोजन का प्रबंध भी विश्वविद्यालय में ही होता था। पिता जी के अभाव की पूर्ति काफी हद तक डॉक्टर साहब के आने से हो जाती थी।

इसी बीच सन् 1971 में सत्यप्रकाश जी ने संन्यास ले लिया। इसका पता हमें तभी लगा जब वे अगली बार हमारे यहाँ आये। संन्यास लेने के बाद भी वे हमारी सिंडिकेट के सदस्य बने रहे, और रुड़की में हमारे यहाँ आते रहे। अब वे गेरूआ वस्त्र ही धारण करते थे और स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती कहलाते थे। बाह्य रूप से चाहे वे बदल गये हों, पर अंदर से उनका रूप बदला नहीं था। वही सरल स्वभाव, वही हँसता-मुस्कराता चेहरा, वही खुल कर बातें करने की आदत।

मेरी पत्नी को स्वामी जी को भोजन कराने में बड़ा आनंद आता था। प्रातः उन्हें काफी अधिक भाती थी। साथ में फल और डबल रोटी के साथ मक्खन और चीज। स्वामी जी को मीठे व्यंजन पसंद थे और मेरी पत्नी को खीर बनाने और उसे स्वामी जी को खिलाने का शौक था। भोजन के टेबुल पर ही मेरी पत्नी धर्म और आध्याल के प्रश्न कर बैठतीं

और स्वामी जी के उत्तर बड़े चाव से सुनती थीं।

स्वामी जी हमेशा से ही आर्य समाज के प्रचार और प्रसार में अग्रणी रहे। इस क्षेत्र में उनकी ख्याति सर्वविदित थी। संन्यास लेने के पहले भी, जब वे रुड़की आते थे तो रुड़की के आर्य समाज के लोग आकर उनसे भाषण के लिये आग्रह करते थे। सन्यास लेने के बाद तो जब भी वे मेरे यहाँ आये, उनके एक, और कभी-कभी दो-दो व्याख्यान तो आर्य समाज मंदिर में अवश्य होते थे। मैं स्वंय उन्हें वहाँ ले जाता था और उनके मधुर संभाषण का लाभ उठाता था। वे सरल भाषा में ज्ञान के गूढ़ तत्वों का ऐसा विवेचन करते थे कि साधारण व्यक्ति भी उसे समझ जाता था।

स्वामी जी के व्याख्यान केवल आर्य समाज पर ही आधारित नहीं होते थे। उनके ज्ञान का भंडार अपार था, और वे स्थिति के अनुकूल आर्य समाज, वैदिक साहित्य, धर्म अथवा आध्यात्म पर बोलते थे। उनके शिष्य और चाहने वाले अनेक स्थानों पर थे, और उनके आग्रह से वे इन स्थानों पर जाया करते थे। तीन-चार बार उन्होंने दक्षिण और पूर्व अफ्रीका की भी यात्रायें कीं, उन्हीं लोगों के बुलाने पर। जहाँ भी वे गये, उनका भव्य स्वागत हुआ।

आर्य समाज के भारी समर्थक होते हुए भी कट्टरता उनमें लेशमात्र भी नहीं थी। वस्तुतः वे संस्कारों से आर्य समाजी थे, पर भीतर से ज्ञानी थे। उनकी प्रवृत्ति आध्यात्म की ओर थी, न कि रीति-रिवाज पर। मेरे यहाँ जब वे आते थे तो प्रातः नहा-धो कर ध्यान में बैठ जाते थे। एक दिन जब आध्यात्म की चर्चा हो रही थी, उन्होंने मुझसे पूछा, "चंद्रिका, तुमने कितने दिनों तक गणित पढ़ी थी," मैंने उत्तर दिया, "लगभग तेरह-चौदह साल।" उन्होंने फिर प्रश्न किया, "क्या तुम्हें सारी गणित का ज्ञान हो गया है?" मेरा उत्तर था— "नहीं। तब उन्होंने कहा क्या बात हैं, लोग छः महीने ध्यान का अभ्यास करके ईश्वर-ज्ञान का सपना देखने लगते हैं ?"

स्वामी सत्यप्रकाश जी एक कुशल लेखक थे। जैसा मैंने पहले बताया है, हिंदी के वैज्ञानिक साहित्य में उनका भारी योगदान रहा है। पर धर्म के साहित्य में भी उनका योगदान कम नहीं रहा है। आर्य समाज पर तो उन्होंने लिखा ही है, स्वामी दयानंद की निर्वाण शती पर 1985 में अनेक लेख लिखवा कर और उनका संपादन कर स्वामी जी ने एक अनूठी पुस्तक प्रस्तुत की है। पातंजलि के राजयोग पर भी उन्होंने एक विशद् पुस्तक (अँग्रेजी में) लिखी है। अपने अंतिम समय में वे चारों वेदों पर टीका लिख रहे थे, जिनमें से एक छपा भाग उन्होंने मुझे दिखाया था। जब वे मेरे पास रुड़की आते थे तो मेरे लिये वे अपनी लिखी एक-न-एक पुस्तक भेंट स्वरूप लाते आते थे। इनमें से दो पुस्तकें जो मुझे बहुत पसंद आई, वे थीं, सत्यमेव जयते और मैन ऐंड हिज रेलिजन। दोनों ही पुस्तकें अँग्रेजी में हैं और मौलिक विचारों से भरी हुई हैं। एक दूसरी पुस्तक-मनुष्य और उसका धर्म एक छोटी पुस्तिका है, जो मुझे इतनी अच्छी लगी कि मैंने इसकी दस प्रतियां मंगा कर अपने मित्रों में बाँटी और यह भी प्रयास किया कि छात्रों के लिये अँग्रेजी में यह पाठ्य-पुस्तक बने।

इस पुस्तक में बड़े सीधे सरल शब्दों में स्वामी जी ने हमें हमारे ब्रह्माण्ड के बारे में जीवों के बारे में, हमारे शरीर के बारे में, और इन सब को बनाने वाले के बारे में बताया है। एक वैज्ञानिक होने के नाते स्वामी जी ने सृजनकर्ता के अस्तित्व के लिये विज्ञान का ही सहारा लिया है। उन्होने बड़े अच्छे ढंग से समझाया है कि यह जो शरीर है वह हम नहीं है। जिसे हम स्व कहें या आत्मा, वह इस शरीर में निवास करके भी उससे भिन्न है। इसी पुस्तक में आगे वे सरल भाषा में धर्म और कर्म के बारे में भी समझाते हैं। मेरी समझ में यह पुस्तक प्रत्येक युवक को पढ़नी चाहिए।

स्वामी जी के जन्मदिवस के इस अवसर पर मैं नत-मस्तक होकर उन्हें प्रणाम करता हूं, और प्रार्थना करता हूं कि जो ज्ञान का दीप उन्होंने जलाया है उसका लाभ आज की युवा पीढ़ी अवश्य ही उठाये।

■■■

ऑप्टिकल फाइबर :-यह हकीकत है ख्वाब नहीं

❑ राजेन्द्र कुमार

सम्पादक : सम्प्रेषण

डी-753, सरस्वती विहार, दिल्ली-110034

आज विकसित देशों में उपभोक्ता एक ही कम्प्यूटर नेटवर्क टर्मिनल से टेलीविजन, केबल, वीडियो लाइब्रेरी, टेलीफोन, कम्प्यूटरडाटा टर्मिनल, शापिंग, बैंक से लेन-देन, आरक्षण आदि की सेवा ले रहे हैं। फिल्म देखनी हो या कहीं घूमने जाना हो, हर सूचना व सहायता आपके पास हर समय मौजूद है। शीघ्र ही अपने देश में भी यह सब संभव होगा। कैसे? आइए जानें बाल जितने पतले रेशे के चमत्कार को।

दुनिया जितनी छोटी परिवहन क्रान्ति से नहीं हुई, उससे अधिक संचार क्रान्ति से हुई है। आज पलक झपकते ही विश्व के किसी भी भाग में सम्पर्क किया जा सकता है। विश्व के एक छोर पर घट रही घटना को हजारों मील दूर अपने घर के एकांत में बैठकर देखा जा सकता है।

शायद आपको यह अविश्वसनीय लगे, परन्तु सत्य तो यही है कि इसे संभव बनाया है बाल जितने महीन प्रकाश तंतु (ऑप्टिकल फाइबर) के जादुई रेशों ने। पूरी दुनिया ही आज इन प्रकाश तंतुओं की गोद में बैठी नज़र आ रही है।

आने वाले दिनों में इन प्रकाश तंतुओं के कारण क्या-क्या चमत्कार होने जा रहे हैं, यह जानने से पहले यह जान लें कि वास्तव में ये प्रकाश तंतु होते क्या हैं?

हम जानते हैं कि प्रकाश की किरणें सीधी रेखा में चलती हैं बशर्ते कि रास्ते में कोई व्यवधान न आ जाए। अपने इसी गुण के कारण दो सीधे बिन्दुओं के बीच संकेतों के आवागमनके लिए यह एक आदर्श साधन है। दरअसल, प्रकाश तंतु प्रकाश के माध्यम से संकेतों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने का काम करता है। इन पर बिजली गिरने, विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्रों, उच्च वोल्टेज की विद्युत लाइनों व 'स्पार्क प्लग' आदि से कोई व्यवधान नहीं पड़ता है।

इसे प्रकाश तंतु क्यों कहते हैं? यदि हम किसी वस्तु को एक ऐसी कांच की नली के द्वारा देखें जिसका व्यास एक सेंटीमीटर होतो वह वस्तु हमें अस्पष्ट दिखाई देगी। इसका कारण है कि वस्तु के विभिन्न क्षेत्रों से परवर्तित किरणें नली से गुजरते समय आपस में मिश्रित हो जाती हैं।

अतः वस्तु की स्पष्ट छवि देखने के लिए यह आवश्यक है कि इसे अलग-अलग नालियों से गुजारा जाए। जब ऐसी अनेक नालियों को एक साथ जोड़कर उस वस्तु को देखेंगे तो उसकी छवि स्पष्ट दिखाई देगी। छवि को और अधिक स्पष्ट करने के लिए नली का व्यास बहुत कम करना होगा। यह नली देखने में बहुत पतली बाल जैसी होगी। इसीलिए इसे 'प्रकाश तंतु' कहा जाता है। तंतु का अर्थ है रेशा या धागा। ये कांच, सिलिका, क्वार्ट्ज या प्लास्टिक के बनाए जाते हैं।

बाल जैसे इन महीन तंतुओं के चमत्कार को देखकर वैज्ञानिक हैरान हैं और यही कारण है कि वे भी इसे नमस्कार कर रहे हैं। दूरसंचार, चिकित्सा, नेटवर्किंग, यातायात से लेकर हर जगह इन प्रकाश तंतुओं का जमकर इस्तेमाल हो रहा है। कई विकसित देशों में उपभोक्ता एक ही कम्प्यूटर

नेटवर्क टर्मिनल से टेलीविजन, केबल, वीडियो लाइब्रेरी, टेलीफोन, कम्प्यूटर डाटा टर्मिनल, शापिंग, बैंक से लेन देन, आरक्षण आदि की सेवा ले रहे हैं। आपको फिल्म देखनी हो या कहीं घूमने जाना हो, हर सूचना व सहायता आपके पास हर समय मौजूद है। आशा की जा रही है कि शीघ्र ही अपने देश में भी ये सब बातें संभव हो जाएंगी।

अभी प्रकाश तंतु का सर्वाधिक इस्तेमाल दूरसंचार के क्षेत्र में ही हो रहा है। इनका एक बड़ा गुण यह है कि एक लम्बी दूरी तय करने के बाद भी इनमें भेजे गए संकेतों को काफी कम नुकसान पहुंचता है। यह धातु के सामान्य केबलों से सस्ते, हल्के व कई गुणा कम जगह घेरते हैं। इससे इसके केबिलों को लाने-ले जाने, उठाने-रखने तथा बिछाने आदि में बहुत सुविधा होती है।

प्रकाश तंतु पूर्ण आंतरिक परावर्तन (टोटल इंटरनल रिफ्लेक्शन) के सिद्धांत के आधार पर दूरसंचार के क्षेत्र में काम करता है। टेलीफोन में आवाज़ को पहले रोशनी में फिर आवाज़ में बदलने की यह पूरी प्रक्रिया होती है।

दरअसल प्रकाश तंतु के दो भाग होते हैं आंतरिक और बाहरी। आंतरिक हिस्सा यानी 'कोर' प्रकाश का वाहक होता है, जबकि बाह्य भाग यानी 'क्लैडिंग' प्रकाश को बाहर आने से रोकने और सुरक्षा कवच का कार्य करता है। बाल जैसे महीन इन तंतुओं को लाखों की संख्या में एक साथ एकत्र करके बंडल बनाया जाता है जिसे लचीले प्लास्टिक या धातु से ढंक दिया जाता है। निर्वात में प्रकाश का वेग तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकेंड होता है, लेकिन प्रकाश तंतु में इसका वेग दो लाख किलोमीटर प्रति सेकेंड हो जाता है।

दूरसंचार के बाद इसका इस्तेमाल चिकित्सा विज्ञान में भी किया जा रहा है। फाइब्रोस्कोप के द्वारा शरीर के उस भीतरी भाग को देखने में सहायता मिली है, जिसे पहले बिना ऑपरेशन के देखना संभव नहीं था। एक साधारण फाइब्रोस्कोप में साढ़े सात लाख प्रकाश तंतु होते हैं। आज फाइब्रोस्कोप से शरीर के किसी भी आंतरिक भाग का प्रतिविम्ब आंख से या टी०वी० स्क्रीन पर आसानी से देखा जा सकता है।

इसी प्रकार प्रकाश तंतुओं का इस्तेमाल खतरे वाले उद्योगों में मशीनों के कल-पुर्जे ठीक करने में भी किया जा सकता है। आजकल अधिकांश प्रकाश तंतु शुद्धतम सिलिकॉन ऑक्साइड के बनाए जा रहे हैं। उनका परावर्ती सूचकांक बदलने के लिए यानी प्रकाश की गति को धीमा करने के लिए उसमें कुछ मात्रा में जर्मेनियम या बोरोन मिला दिया जाता है।

प्रकाश तंतुओं को हाथ से उठाना एक कठिन कार्य है, इसलिए इन्हें प्लास्टिक के सुरक्षित आवरण की आवश्यकता होती है। पहला महीन तंतु सन् १८८७ में **सी०वी० स्वायज** ने बनाया था। आवरणयुक्त तंतु की बात इसके पचास वर्ष बाद सोची गई। इसी समस्या के समाधान के रूप में 'प्रकाश तंतु' सामने आए।

हो सकता है आने वाले दिनों में प्रकाश तंतु का एक पतला रेशा आपके घर तक पहुंच जाए। इस पतले रेशे से आप टेलीफोन, केबल टेलीविजन व डिजिटल डाटा सहित अनेक सुविधाओं का लाभ आसानी से उठाने में सक्षम हो जाएंगे।

इस क्षेत्र में हो रहे अनुसंधानों को देखकर वैज्ञानिक क्षेत्रों में यह कहा जाने लगा है कि शायद शीघ्र ही प्रकाश तंतु उपग्रह दूरसंचार का स्थान ले लें। तब पूरी दुनिया इस पतले महीन रेशे 'प्रकाश तंतु' की गोद में बैठी नज़र आएगी। ■ ■ ■

बालों में छिपे हैं अनेक रहस्य

□ डॉ० शिवशंकर राय

डी-753, सरस्वती विहार, दिल्ली-110034

सर पर कितने बाल हैं से लेकर बालों की खाल निकालने तक, बालों को लेकर अनेक मुहावरे प्रचलित हैं। मुहावरों का अर्थ कुछ भी हो, बालों ने वैज्ञानिकों को आजकल विशेष रूप से आकर्षित किया है।

शिकागो स्थित आरगौन नेशनल लेबोरेटरी में कार्यरत दो वैज्ञानिक **डॉ० विलियम वाल्श** और **डॉ० रोनाल्ड आइसाकर्सन** एक अनोखा प्रयोग कर रहे हैं। वे विभिन्न व्यक्तियों से बालों के नमूने एकत्र कर उन्हें उच्च ताप पर जलाते हैं। इससे उत्पन्न प्रकाश को एक परमाण्विक द्रव अवशोषण स्पेक्ट्रोमीटर से विश्लेषित करके बालों में उपस्थित सूक्ष्म तत्वों का पता लगाते हैं। इससे जुड़ा एक कम्प्यूटर बालों के विभिन्न नमूनों के प्रज्ज्वलन से उत्पन्न स्पेक्ट्रम को रेखांकित करता है। इस रेखांकन का अध्ययन कर ये दोनों वैज्ञानिक एक बेहद कठिन प्रश्न का उत्तर ढूंढने का प्रयत्न कर रहे हैं। ये वैज्ञानिक शोध कर रहे हैं कि कोई व्यक्ति हिंसक क्यों हो जाता हैं या वह अपराधी क्यों बन जाता है?

कई वर्षों के बाद इन वैज्ञानिकों ने अपने शोध अध्ययनों से यह नतीजा निकाला है कि उग्र स्वभाव के व्यक्तियों या अपराधियों के बालों में कई तत्व सामान्य मात्रा से अधिक पाए जाते हैं। ये तत्व हैं जिंक, कॉपर, कोबाल्ट और मैंगनीज। शोधों से यह स्पष्ट हो गया है कि इन तत्वों का शरीर में हो रही कई जैविक क्रियाओं में उत्प्रेरक के रूप में महत्वपूर्ण योगदान होता है। वास्तव में शरीर में इनकी एक सूक्ष्म मात्रा की ही आवश्यकता होती है। उपापचय प्रक्रियाओं में कमी अथवा हारमोनों एवं रसायनों में गड़बड़ी होने पर ये सूक्ष्म मात्रिक तत्व बालों में एकत्र होने लगते हैं। इन तत्वों की बालों में उपस्थित मात्रा के अध्ययन से उपापचय प्रक्रियाओं को समझने के प्रयत्न हो रहे हैं ताकि अपराधी बनने की प्रक्रिया का अध्ययन किया जा सके।

वैज्ञानिकों ने अपनी परिकल्पना के परीक्षण के लिए कुल 96 अपराधियों से प्राप्त बालों के नमूनों की 96 सामान्य नागरिकों से तुलना की। यहां पर आइसाकर्सन व वाल्श ने अपने शोधों में इनके बालों की तुलना करने पर पाया कि अपराधी व्यक्तियों के बालों में सामान्य व्यक्तियों के बालों की अपेक्षा सूक्ष्म मात्रिक तत्वों की उपस्थिति ज़्यादा थी। तो क्या अपराधपन शारीरिक दुष्प्रभावों का परिणाम है?

कई बार 'बायोप्सी' की आवश्यकता पड़ती है। बायोप्सी एक तकलीफदेय प्रक्रिया है। बायोप्सी में शरीर से अस्थि-मज्जा निकालकर उसका परीक्षण किया जाता है। लेकिन शोधकर्ताओं द्वारा आजकल शरीर में उपस्थित विषैले तत्वों की जांच करने के लिए बायोप्सी की अपेक्षा बालों के परीक्षण को अधिक महत्व दिया जा रहा है। शरीर के अन्दर उपस्थित तत्वों का पता लगाने के लिए केवल एक ग्राम बाल पर्याप्त है। दरअसल बालों में कैरोटिन नामक एक महत्वपूर्ण प्रोटीन पाया जाता है। यह प्रोटीन बहुत टिकाऊ होता है। कैरोटिन में डाइसल्फाइड व सल्फाइड्रिल समूह के तत्व काफी मात्रा में उपस्थित होते हैं। ये तत्व अन्य तत्वों और धातुओं को समाहित करने में सक्षम होते हैं। इसके परीक्षण से शरीर में तत्वों की एक निश्चित समय के दौरान बढ़ती-घटती मात्रा का पता लगाया जा सकता है। इन तत्वों के कारण शरीर में हो रहे परिवर्तनों का भी आसानी से पता

चल सकता है। किसी विशेष दवा का शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता हैं, शरीर के बालों से यह भी जाना जा सकता है।

हालांकि बालों के परीक्षण को कई बाहरी तत्व भी प्रभावित करते हैं, लेकिन वैज्ञानिक इस समस्या से निपटने में लगे हैं। परीक्षण को पर्यावरण प्रदूषण भी प्रभावित करता है। आज पूरी दुनिया में प्रदूषण इतना बढ़ गया है कि जनजीवन इससे बुरी तरह प्रभावित हुआ है। शहरों से सुबह की ताज़ी हवा गायब हो गई है। सड़क पर दौड़ते वाहनों के धुएं का ज़हर अपना कहर बरपा रहा है। कल-कारखानों की चिमनियों से निकलने वाला धुंआ तो अलग है। यह प्रदूषण ही है कि कई बार ऐसा देखा गया कि एक व्यक्ति के दो अलग-अलग जगहों के बालों के परीक्षण के नतीजे अलग-अलग निकले। इसलिए अभी यह भी जरूरी है कि बालों के परीक्षण का प्रदूषणरहित तकनीक का विकास किया जाए।

अभी बालों के परीक्षण के दौरान उसमें से प्रदूषक तत्वों को हटाने के लिए कई विधियों को इस्तेमाल में लाया जाता है। बालों की कई प्रकार से धुलाई की जाती है। बालों का धुलाई से पहले और बाद में परीक्षण किया जाता है। परीक्षण के लिए इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप और एक्स-रे स्पेक्ट्रोस्कोप का इस्तेमाल किया जाता है। इसके बाद प्रोटॉन माइक्रोस्कोप के जरिए बालों की परतों में छिपे विभिन्न तत्वों का पता लगाया जाता है।

प्रोटॉन माइक्रोस्कोप एक ऐसा यंत्र है जिससे न केवल बालों में उपस्थित तत्वों का पता लगाया जा सकता है, बल्कि बालों में छिपे सभी प्रदूषणकारी तत्वों को अलग भी किया जा सकता है। दरअसल होता यह है कि प्रोटॉन माइक्रोस्कोप में छोटे कणों को त्वरित करने वाली प्रणाली में कम ऊर्जा वाले प्रोटॉन का प्रवेश कराया जाता है। यहां प्रोटॉन को लाखों वोल्ट आवेश वाले इलेक्ट्रोस्टेटिक क्षेत्र से गुजार कर उनकी गति बहुत तेज कर दी जाती है। फिर ये प्रोटॉन इस प्रक्रिया से गुजरकर एक कुछ किलोमीटर चौड़े पुंज के रूप में बाहर निकल कर आते हैं। फिर बाद में इस प्रकाश पुंज को बालों के एकत्र नमूनों पर डाला जाता है। इस परीक्षण से बालों की संरचना के बारे में पता चलता है।

आजकल ब्रिटेन में भी बालों पर एक रोचक अनुसंधान किया जा रहा है। राजधानी लंदन के सेंट थामस हॉस्पिटल के डॉक्टर वहां के सेंट ब्राइट्स चर्च में जस्ते के ताबूतों में रखे सन् 1810 से 1839 के बीच के कंकालों से मिले बालों के नमूनों का परीक्षण कर रहे हैं। लेकिन बालों के परीक्षण का रास्ता अभी कठिनाइयों से भरा है। सबसे बड़ी बाधा प्रकाश पुंज को नियंत्रित करने की है। वैज्ञानिक प्रोटॉन माइक्रोस्कोप में चुंबक की सहायता से प्रोटॉन प्रकाश पुंज को नियंत्रित करने का प्रयास कर रहे हैं। कुछ शोधकर्ताओं ने प्रोटॉन माइक्रोस्कोप के स्थान पर इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप का इस्तेमाल करने का प्रयास किया था। लेकिन क्योंकि इलेक्ट्रॉन की अपेक्षा प्रोटॉन 1800 गुना ज्यादा भारी होता है इसलिए वैज्ञानिकों को इसमें सफलता नहीं मिली। यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि यह पूरी प्रक्रिया कैसे काम करती है? वास्तव में सर्वप्रथम गतिशील प्रोटॉन, प्रकाश पुंज से निकलते हुए जब किसी पदार्थ की सतह पर गिरते हैं तो वे इलेक्ट्रॉनों और नाभिक से टकराते हैं। इस टक्कर के फलस्वरूप कई अलग-अलग प्रक्रियाएं होती हैं। इनसे ही परीक्षण के लिए चुने गए बालों के नमूनों से उनमें छिपे तत्वों की जानकारी प्राप्त होती है और इसके साथ ही उनकी सम्पूर्ण वृद्धि के दौरान शरीर में हुए परिवर्तनों के बारे में भी पता चलता है।

बालों को लेकर दुनिया भर में और भी कई रोचक शोध अध्ययन जारी हैं। सिर के बाल अभी तक एक वस्तु के अलावा और कोई वस्तु नहीं थे। लेकिन अब वैज्ञानिक उसका भी इस्तेमाल करने में सफल हो जाएंगे। संभव है कई प्रकार के एसिडों व पदार्थों का इस रद्दी बाल से निर्माण किया जा सके। तब बालों का जादू सचमुच सर पे चढ़कर बोलेगा, उस पर केवल उगेगा नहीं। ■■■

परिषद् की बड़ौदा शाखा से

विज्ञान परिषद् की बड़ौदा शाखा का शुभारम्भ

❑ डॉ० नीलाद्रि रंजन दास

प्रकाशन मंत्री, विज्ञान परिषद् बड़ौदा शाखा
प्रवक्ता, भूगोल विभाग, विज्ञान संकाय,
महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ोदरा-390002

'विज्ञान परिषद् प्रयाग' (इलाहाबाद)देश की प्रमुख एवं प्राचीनतम संस्थाओं में एक है जो कि विज्ञान के प्रचार-प्रसार में सतत् संलग्न है। नव वर्ष के दिन सायंकाल आयोजित एक सभा में 'विज्ञान परिषद्'की बडोदरा(बड़ौदा) शाखा का शुभारम्भ हुआ।

महर्षि दयानन्द जिन्होंने प्राचीन भारतीय सनातन हिन्दू धर्म को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया एवं विक्रम साराभाई, जिन्होंने भारतीय अंतरिक्ष विज्ञान को वर्तमान उड़ानदी, की जन्मभूमि गुजरात में वैज्ञानिक चेतना का समुचित अभाव, लम्बे समय से जागरूक नागरिकों की चिन्ता का विषय था, जो सम्भवतया इस शाखा के खुलने से दूर होगी।

अपनी प्रारम्भिक बैठक में उत्साही सदस्यों ने शाखा की भावी कार्यनीति का निर्धारण किया। सदस्यों द्वारा राष्ट्र भाषा हिन्दी एवं अन्य प्रादेशिक भाषाओं में विज्ञान की नवीनतम उपलब्धियों को जन-जन तक पहुँचाने के संकल्प के अतिरिक्त शाखा की मासिक बैठक करना, विज्ञान मेला, प्रदर्शनियाँ एवं विज्ञान-कार्य-शिविर आयोजित करना व समय-समय पर जिले के विभिन्न स्थानों पर अंध विश्वास एवं जनता में व्याप्त भ्रांतिओं को दूर करने हेतु शिविरों का आयोजन करने का निश्चय किया गया। शाखा में महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय के विज्ञान, कला एवं ललित कला संकाय के अध्यापक एवं शोधछात्र सम्मिलित हैं।

परिषद् की पत्रिका 'विज्ञान' के नवम्बर-दिसम्बर 1995 अंक में प्रकाशित 'विज्ञान वक्तव्य'ने हमारे देश में व्याप्त वैज्ञानिक वातावरण का सही आकालन किया है। एक ओर जहाँ हम उपग्रह एवं संचार की तकनीक में अग्रणी देशों में एवं वैज्ञानिक मानव संसाधन की दृष्टि में तीन प्रमुख देशों में हैं, हमारी संकीर्ण मानसिकता विज्ञान से कोसों दूर है। देश को समुचित वैज्ञानिक धरातल प्रदान करने में'विज्ञान परिषद्'जैसी अनेक स्वयंसेवी संस्थाओं को आगे आना चाहिये। रोशनी हमारे बीच हैं, मात्र इसे सही माध्यम द्वारा जन-जन तक पहुँचाने की आवश्यकता है।

विज्ञान परिषद् की बड़ौदाशाखा के वर्ष 1996के पदाधिकारियों का सर्व सम्मति से चयन किया गया। डॉ० योगेश जशराय (सभापति), डॉ० एम० एनियल (उप-सभापति),डॉ० अरुण आर्य (प्रधानमंत्री), डॉ० नीलाद्रि रंजन दाश (प्रकाशनमंत्री)एवं शिव कुमार (कोषाध्यक्ष)चुने गये।

परिषद् की जोधपुर शाखा से

रक्षा प्रयोगशाला, जोधपुर शाखा से हिन्दी सप्ताह का आयोजन 1-6 जुलाई 96 के मध्य अत्यन्त उल्लास के साथ किया गया। विभिन्न कार्यक्रमों के अन्तर्गत राजभाषा कार्यान्वयन, हिन्दी विज्ञान लेखन पर प्रयोगशाला द्वारा किए गए कार्यों का मूल्यांकन किया गया। राजभाषा कार्यान्वयन की दिशा में वैज्ञानिकों और अन्य कर्मचारियों को प्रोत्साहन देने हेतु निम्नलिखित प्रतियोगिताएँ आयोजित की गई :-

(क) **सुलेख प्रतियोगिता-** 1.केवल अहिन्दी भाषियों के लिए एवं 2.अन्य सभी उच्च माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कर्मचारियों के लिए।

(ख) **प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता-** 1.वैज्ञानिकों के लिए एवं 2.वैज्ञानिकों के अतिरिक्त अन्य सभी कर्मचारियों के लिए।

(घ)राजभाषा एवं संगठन पद्धति, रक्षा अनुसंधान विकास संगठन नई दिल्ली द्वारा संगठन पद्धति व राजभाषा कार्यान्वयन पर व्याख्यान एवं खुला प्रश्नोत्तर मंच।

(ङ) मरु पर्यावरण समस्याएँ एवं निराकरण संगोष्ठी के अन्तर्गत शोधप्रबन्धों पर पत्र-वाचन एवं विचार-विमर्श।

(च) मरु परिस्थिति की एंव मरु युद्ध संचालन पर एक निबन्ध प्रयिगोतिता का भी आयोजन किया गया।

हिन्दी सलाहकार समिति रक्षा मंत्रालय द्वारा विभिन्न विभागों से प्रकाशित उत्कृष्ठ गृह पत्रिकाओं के चयन के अन्तर्गत रक्षा प्रयोगशाला जोधपुर के प्रवेशांक-1994को तृतीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया। जिसके अन्तर्गत प्रयोगशाला को रुपये 2000/-का नगद पुरस्कार व संपादक मंडल को प्रशस्ति पत्रों से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर डॉ० संतोष कुमार शर्मा, निदेशक राजभाषा एवं संगठन पद्धति, रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन नई दिल्ली ने एक रजत वैजयन्ती भेंट कर प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों एवं कर्मचारियों को राजभाषा कार्यान्वयन की दिशा में प्रशासनिक कार्यों और उत्कृष्ट विज्ञान लेखन के लिए प्रशंसा की। समापन कार्यक्रम के अंतर्गत 6 जुलाई 1996 की संध्या को कवि सम्मेलन एवं मुशायरा का अत्यन्त सफल आयोजन रहा। प्रयोगशाला में कार्यरत स्थानीय शाखा के सभ्यों ने अत्यन्त उत्साह के साथ भाग लिया एवं महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

—डॉ० रामगोपाल

परिषद् की फैजाबाद शाखा से : सन् 1995 की गतिविधियाँ

15.1.95-डॉ० रामसेवक कनौजिया द्वारा "जन्तुओं एवं वनस्पतियों में लिंग निर्धारण" वार्ता

18.2.95-डॉ० अमरेश चन्द्र पाण्डेय द्वारा "मछलियों में उत्प्रेरित प्रजनन" वार्ता

18.3.95- होली मिलन

16.4.95-कैंसर पर व्याख्यान -डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय

21.5.95डॉ० राम सेवक कनौजिया द्वारा उत्परिवर्तन पर वार्ता

18.6.95 डॉ० चन्द्रहरि मिश्र द्वारा थाईलैण्ड में धान अनुसंधान विषय पर वार्ता

20.8.95 पं० वदरी नरायण "प्रेमधन" जी का जन्मदिन "संपर्क" एवं विज्ञान परिषद् द्वारा मनाया गया।

24.8.95 विज्ञान-परिषद् की सामान्य बैठक

15.10.95 विज्ञान परिषद् की गतिविधियों पर चर्चा

19.11.95 डॉ० माया प्रकाश गुप्त द्वारा Isomerismपर वार्ता

—डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय

क्यों जा बसें हैं वैज्ञानिक सूदूर देशों में

❑ दीप्ति भटनागर

डी-753, सरस्वती विहार,
दिल्ली-34

मनुष्य की ज्ञान पिपासा कभी शांत नहीं होती। हज़ारों वर्षों से वह नए मार्ग, नए आयाम और नई खोज के लिए इधर उधर भटकता रहा है, इसके लिए सही मौके खोजता रहा है। उपयुक्त कार्यक्षेत्र अधिक से अधिक सुविधा, स्वच्छ और विकसित कार्य स्थितियां सभी को आकृष्ट करती हैं और ऐसी ही किसी जगह आकर मनुष्य की तलाश का अंत होता है।

शायद यही कारण है कि वर्तमान में जिज्ञासु मुख्यतः वैज्ञानिक और तकनीकी विशेषज्ञ अपने देश खासतौर पर विकासशील देशों को छोड़कर विदेशों में बसने लगे हैं। प्रतिभा का यह पलायन विकासशील देशों से विकसित देशों की ओर रहा है। यहीं नहीं, हर वह व्यक्ति जो इन देशों के खर्चे बर्दाश्त कर सकता है, अपने बच्चों को पढ़ाई के लिए इन देशों में भेजने को तत्पर रहता है। इस तरह कहीं देश के प्रति भावनात्मक संबंध शायद उत्तम कार्य स्थितियों और उच्च रहन-सहन के स्तर की लालसा के आगे घुटने टेक देता है और विकासशील देशों से हर वर्ष करीब 50,000 से 100,000 चोटी के वैज्ञानिक व अन्य विषयशास्त्री अमेरिका जैसे विकसित देशों में सदा के लिए बस जाते हैं ।

हालांकि आज यह समस्या मुख्यतः विकासशील देशों की है, परन्तु इतिहास गवाह है कि साठ के दशकों में ब्रिटेन, रूस और बेनिन (डाहोमे) जैसे देशों से भारी संख्या में अनेक बुद्धिजीवी अमेरिका में बस गए थे । ब्रिटेन तो आज स्वयं एक विकसित देश है और यहां की उत्तम स्थितियां दूसरों को आकृष्ट करती हैं, परन्तु वर्तमान रूस में आज भी वैज्ञानिकों के अनुसार राष्ट्र का वातावरण उनके शोध और अनुसंधान की तृष्णा को कभी शांत नहीं कर पाएगा ।

पिछले पांच से भी अधिक दशकों से बेनिन निवासी बड़ी तादाद में कभी गुलाम बनकर तो कभी अफ्रीका में प्रशासनिक बन कर या फिर अध्ययन क्षेत्रों में सहयोगी के तौर पर दूसरे विकसित देशों में बसते रहे हैं ।

भारत भी इस समस्या का अपवाद नहीं है । आजादी के लगभग पचास सालों के बाद भी हमारे देश में कार्य स्थितियां सुविधाजनक नहीं है । दिनों दिन बढ़ता भ्रष्टाचार, त्रुटिपूर्ण प्रशासन और आपसी मानसिक तनाव तथा अहं की जड़ें गहराती जा रही हैं । इसी कारण कभी भारत भूमि को मां मानकर पूजने वाले निवासियों के वर्तमान वंशज उच्च तालीम और सही कार्य स्थितियों तथा सुविधाजनक जीवनयापन के लिए प्रतिवर्ष 5550 से 6550 की संख्या में सुदूर विदेशों में जाकर बस रहे हैं ।

सन् 1990 के कुल 40,000 के आंकड़ों के मुकाबले अब यह संख्या बढ़ कर 5,40,000 तक हो जाने का अनुमान है, जिसमें करीब 21,094 इंजीनियर भी शामिल हैं । वैज्ञानिकों में करीब 23 प्रतिशत पश्चिमी एशिया, 30 प्रतिशत अमेरिका तथा 11 प्रतिशत पश्चिमी यूरोप के देशों में हैं ।

इस बर्हिगमन से जहां एक ओर हम प्रतिभावान नागरिकों को खो देते हैं, वहीं दूसरी ओर (अनेक आंकड़ों के अनुसार) आर्थिक रूप से देश को 10 से 13 अरब डालर का नुकसान होता है ।

अमेरिका तथा अन्य देशों में अनुसंधान के सुअवसर अधिक हैं । इसके अलावा विदेशी सहयोगियों से संपर्क का अभाव भी बर्हिगमन की इस समस्या का एक और मुख्य कारण है। विशेष क्षेत्रों में कार्यरत् वैज्ञानिकों को अपने कार्य से संबंधित विचार-विमर्श के लिए परस्पर सम्पर्क की आवश्यकता होती है । इसी कारण भारतीय वैज्ञानिकों का रुझान विदेशों की ओर बढ़ता जा रहा है ।

एक ओर व्यक्तिगत तथा व्यावसायिक रूप से यह बर्हिगमन लाभदायक हो सकता है परन्तु देश के लिए यह ज्ञान व आर्थिक दोनों ही पहलुओं से हानिकारक है । स्वदेश में ही वैज्ञानिकों को सभी उत्तम सुविधाएं प्रदान करने के लिए सन् 1980 में एक रूपरेखा तैयार की गई थी । पर इससे केवल उन क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ा, जहां विशेषज्ञों की संख्या बहुतायत में है । इसी के अंतर्गत शिक्षा के क्षेत्रों में इनामों और मान्यताओं को बढ़ावा मिल रहा है ।

इस समस्या के अंतरराष्ट्रीय समाधान खोजने के भी कुछ प्रयत्न संयुक्त राष्ट्र संघ के 'टाक्टेन' कार्यक्रम तथा 1991 में प्रारंभ यूनेस्को के 'यूनिटविन' कार्यक्रमों के रूप में प्रारंभ किए गए हैं । इन इक्कीस नेटवर्क कार्यक्रमों के माध्यम से विभिन्न विश्वविद्यालयों के बीच संपर्क स्थापित करने के साथ ही विद्यार्थियों की उच्च तालीम के लिए आर्थिक सहायता देने के प्रावधान किए गए ।

इन कार्यक्रमों में करीब 25 गैर-सरकारी संगठन सामूहिक सहायता प्रदान कर रहे हैं । सभी महत्वपूर्ण अध्यापकों और विद्यार्थियों के विभिन्न समूह बनाए गए हैं, जो समय-समय पर इन कार्यक्रमों को हर संभाव सहायता प्रदान करते हैं ।

इन प्रयासों की सफलता के लिए अधिक पूंजी निवेश, अधिक वेतन या उत्तम कार्यस्थल प्रदान करना ही काफी नहीं है, अपितु आम जनता में आसान ढंग से वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान को फैलाना आवश्यक लगता है । विश्वविद्यालयों, अनुसंधान संस्थानों, उद्योगों तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों के वैज्ञानिकों के परस्पर संबंधों का कायम होना भी उतना ही जरूरी है ।

इस समस्या का एक और पहलू है, आंतरिक रूप से बुद्धिमत्ता का सही उपयोग नहीं होता । डॉक्टरेट जैसी उच्च शैक्षिक योग्यताएं हासिल करने के बाद भी लोग प्रशासनिक तथा संचालक सेवाओं की ओर आकर्षित हो रहे हैं । 1990 के दशकों के आंकड़ों के अनुसार केवल भारत में ही नहीं, बल्कि यूरोप तथा अमेरिका में भी विज्ञान के स्नातकोत्तर विद्यार्थियों की संख्या घटती जा रही है । आज के भौतिकवादी संसार में लोग पठनीय विषयों को छोड़ व्यावसायिक विषयों को प्राथमिकता देने लगे हैं ।

इसलिए सबसे पहले विद्यार्थियों और आम जनता की विचारधारा में परिवर्तन लाना होगा । इसके लिए सर्वप्रथम ज्यादा से ज्यादा जनता को शिक्षित करना अनिवार्य है । यही नहीं, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के ऐसे क्षेत्र कायम करने होंगे जो विज्ञान स्नातकों और स्नातकोत्तरों को सुविधापूर्ण जीवन यापन के लिए उचित नौकरियां दे सकें ।

देश से प्रतिभा पलायन के विषय में अनेक कार्य संयोजकों और विशिष्ट व्यक्तियों के दो मत हैं । कुछ के अनुसार इस पर एकदम रोक लगानी जरूरी है तो कुछ अन्य इसे देश से प्रज्ञता के बहिर्गमन के स्थान पर अन्य देशों में प्रज्ञता भंडारण के रूप में देखते हैं ।

खैर, किसी के निजी विचार कुछ भी हों, फिर भी यह एक गंभीर मुद्दा बन गया है । वैसे किसी अन्य देश में जाकर वहां अपने विषय के विशेषज्ञों से विचार-विमर्श करना, उनसे सीखना और उनके तजुर्बों के बारे में जानकारी हासिल करने से ज्ञान की सीमा बढ़ती ही है, परन्तु अधिकांश लोगों का अपने देश को छोड़कर सदा के लिए विदेश में बस जाना उस देश के दृष्टिकोण से किसी हद तक आपत्तिजनक है । इसलिए ऐसे उपायों की आवश्यकता है, जिनसे इसी धरती पर विदेशों में बसे अप्रवासी भारतीय पूर्ण भारतीय बन कर हमेशा के लिए स्वदेश वापस लौट आएं । ■■■

ओषधि भी है आलू

❑राजेन्द्र कुमार राय
डी-753, सरस्वती विहार, दिल्ली-10034

दुनिया भर में आलू को मनुष्य द्वारा उगाई जाने वाली फ़सलों में महत्वपूर्ण और विशेष स्थान प्राप्त है। आज लगभग पूरी दुनिया पर आलू का राज है। इस समय आलू विश्व भर में 130 से भी अधिक देशों के निवासियों के दैनिक आहार का एक महत्वपूर्ण अंग है।

उत्पादन के मामले में आलू इस समय गेहूं, मक्का और धान के बाद विश्व की चौथी सबसे महत्वपूर्ण फ़सल है। दुनिया के अनेक भागों में आलू ने बहुत बार लोगों को भुखमरी की मार से बचाया है। प्रसिद्ध बोहेमियन युद्ध के दौरान आलू ने ही वहां के निवासियों का पेट भरा था। इसी तरह प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान भी आलू ने कई देशों को भुखमरी से बचाया था।

दुनिया के अनेक देशों के साथ-साथ हमारे देश के जवान भी आलू के सहारे दूर दराज के मोर्चों पर डटे रहते हैं। कुछ समय पहले तक आलू हमारे देश में गरीब और मध्यवर्गीय लोगों का प्रमुख भोजन माना जाता था। परंतु अब तो चिप्स, वेफर्स आदि के रूप में धनाढ्य वर्ग में भी इसकी खपत बढ़ती जा रही है।

अधिकांश वैज्ञानिक दक्षिण अमेरिका में पेरू देश की एंडीज पहाड़ियों को आलू की जन्मस्थली मानते हैं। कुछ वैज्ञानिक चिली को आलू की जन्मस्थली मानते हैं, तो कुछ उत्तरी अमेरिका में वर्जीनिया को आलू की उत्पत्ति का केन्द्र मानते हैं। आलू की उत्पत्ति के ये तीनों ही स्थल जिन्हें लेकर विवाद है, नई दुनिया में हैं। इस तरह यह तय है कि आलू नई दुनिया की ही देन है। नई दुनिया से आलू, पेरू पर आक्रमण करने वाले स्पेनी हमलावरों के साथ बाहर आया। स्पेन से यह इटली पहुंचा। वहां से यह उत्तरी यूरोप से बरमूदा होते हुए वर्जीनिआ गया। पुर्तगाल के व्यापारियों के साथ आलू सत्रहवीं शताब्दी में भारत पहुंचा।

फिलहाल दुनिया में सबसे ज्यादा आलू रूस में पैदा होता है। रूस के बाद चीन, पोलैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत का स्थान है। हमारे देश में खेती की जाने वाली कुल भूमि के लगभग 0.68 प्रतिशत हिस्से पर आलू की खेती होती है। देश में केरल को छोड़कर लगभग सारे राज्यों में आलू की खेती की जाती है। इस समय विश्व में भारत का आलू उत्पादन की दृष्टि से पांचवां और क्षेत्रफल की दृष्टि से चौथा स्थान है। फिर भी जहां तक खपत का प्रश्न है वह विश्व के औसत 65 लोग्राम प्रतिवर्ष प्रतिव्यक्ति की तुलना में भारत में केवल 17.69 किलोग्राम ही है।

विविधता के मामले में भी आलू का कोई जवाब नहीं है। इस समय इसकी कुल ज्ञात प्रजातियों की संख्या 235 है। इनमें इसकी खेती की जा सकने वाली और जंगली दोनों ही किस्में शामिल हैं। आलू की जहां कुछ प्रजातियां शून्य से भी कम तापमान पर फलती-फूलती हैं तो कुछ गर्म इलाकों में अच्छी उपज देती हैं। कुछ प्रजातियां पहाड़ियों पर तो कुछ वर्षा वनों में तो कुछ रेगिस्तानी क्षेत्रों में उगती हैं। आलू सोलेनेसी कुल का पौधा है। दुनिया भर में इसकी सात जातियों की खेती होती है। इनमें से *सोलेनम ट्यूबरोसम* **जाति के** आलू की खेती सबसे ज्यादा क्षेत्र में होती है।

आलू का उत्पादन बढ़ाने के लिए भारत में वैज्ञानिक

अनुसंधान पहली अप्रैल 1935 को शिमला में आलू प्रजनन केन्द्र खोलने के साथ प्रारंभ हुआ था। आलू पर अनुसंधान के महत्व को देखते हुए 1949 में पटना में 'केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान' स्थापित किया गया जिसे बाद में स्थानांतरित करके शिमला ले आया गया। तब से आज तक देश भर में आलू पर अनुसंधान इसी संस्थान की देख-रेख में होता है।

केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान ने आलू की खेती की वैज्ञानिक विधियों के विकास के साथ-साथ आलू की अनेक उन्नत और सुधरी किस्में भी विकसित की हैं। साथ ही संस्थान ने काफी मात्रा में आलू के प्रजनक बीज भी किसानों को उपलब्ध कराए हैं। संस्थान प्रतिवर्ष 1600 टन से भी अधिक रोग मुक्त प्रजनक बीज किसानों को उपलब्ध कराता है। संस्थान ने अब तक आलू की 25 से भी अधिक सुधरी हुई उन्नत किस्में जारी की हैं।

आलू के बीज का मतलब आलू के पूरे कद से है जिसे हम खाते हैं। इस तरह केवल बीज के रूप में ही आलू के कुल उत्पादन का लगभग 20 प्रतिशत हिस्सा (लगभग ढाई करोड़ क्विंटल) खर्च हो जाता है। इस तरह आलू की खेती पर आने वाले खर्च का लगभग 40 प्रतिशत केवल बीज पर खर्च होता है।

बीज के साथ जुड़ी हुई अन्य समस्याएं हैं - इतनी मात्रा में बीज को सुरक्षित रूप से भंडारित रखना, उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना और रोगों से उनका बचाव करना। इसीलिए वैज्ञानिक 1979 से ही आलू का ऐसा 'सच्चा बीज' तैयार करने की दिशा में प्रयासरत थे जो अन्य फ़सलों के बीजों की तरह कम स्थान घेरे और साथ बीज के रूप में आलू की अधिक मात्रा न खर्च हो। इस दिशा में वैज्ञानिकों के प्रयास सफल हुए और दिल्ली में पूसा परिसर में स्थित अंतर्राष्ट्रीय आलू अनुसंधान केन्द्र के वैज्ञानिकों ने ऊतक संवर्धन विधि द्वारा आलू का सच्चा बीज तैयार करने में सफलता पाई। इस बीज के उपयोग से कई लाख टन बीज के स्थान पर केवल कुछ टन बीज से देश भर में आलू की बुआई संभव हो गई है।

विश्व भर के पोषण वैज्ञानिक इस बात पर एकमत हैं कि हम सभी के लिए आठ अमीनों एसिड बहुत ही आवश्यक हैं। ये हैं आइसोल्युसिन, ल्युसिन, वैलीन, थ्रिओनीन, ट्रिप्टोफैन, लाइसिन, मैथियोनीन और फ़ैनिलेनीन। हमारे आहार में इन सभी अमीनो एसिडों की उपस्थिति ही उसे संपूर्ण आहार बनाती है। हमें ज्ञात है कि प्रोटीन का निर्माण अमीनो एसिडों से ही होता है अथवा दूसरे शब्दों में अमीनों एसिड ही प्रोटीन के निर्माता घटक होते हैं। वैज्ञानिकों को यह भी पता है कि शाकाहार की श्रेणी में आने वाले किसी भी एक आहार में यह आठों अमीनो एसिड नहीं पाए जाते। हां, मांसाहार में ये सारे के सारे अमीनो एसिड अवश्य मौजूद होते हैं। वैज्ञानिक आजकल आनुवंशिक इंजीनियरी तकनीकों की सहायता से आलू में ऐसी जीन प्रवेश कराने का प्रयास कर रहे हैं जो इन सभी अमीनो एसिडों के निर्माण को प्रेरित करे। अपने प्रयासों में वैज्ञानिकों को काफी सफलताएं भी हासिल हुई हैं।

आलू एक ओषधि भी है। इसे शीतल, मधुर, वीर्यवर्धक, किंचित अग्निकारक तथा रक्तपीत और वातकफ नाशक बताया गया है। आग से जले स्थान पर आलू को पीस कर इसका पलस्तर रखने से लाभ मिलता है। आलू का शाक सुस्वाद, शक्तिवर्धक तथा रुचिकर होता है, परन्तु पाचन में मध्यम दर्जे का होता है। वात, कफ से उत्पन्न व्याधियों, दमा, जुकाम, इत्यादि रोगों में आलू का सेवन लाभदायक है। आलू में शरीर की रक्षा करने वाला कार्बोहाइड्रेट अच्छी मात्रा में उपलब्ध रहता है जिससे शारीरिक गर्मी बनाये रखने में मदद मिलती है। इसमें खनिज लवण भी होते हैं। विटामिन ए, बी तथा सी की मात्रा भी आलू में होती है। तलने से आलू के गुण नष्ट हो जाते हैं इसलिए उबले या भुने आलू लाभदायक हैं। उबली हुई गोभी की तुलना में उबले हुए आलू में विटामिन 'सी' की मात्रा पांच गुना अधिक होती है।

लाल आलू सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसमें अन्य प्रकार के आलुओं की अपेक्षा पौष्टिक तत्व अधिक मात्रा में होते हैं। पहाड़ी आलू भी खाने में अच्छा रहता है। हरे, काले और नीले रंग के आलू हानिकारक होते हैं। ■■■

पुस्तक : भारतीय बूटी अनुसंधान के अद्भुत चमत्कार

लेखक: डॉ० एन० आर० यादव

प्रकाशक : दाह रिसर्च इन्स्टीट्यूट, नैनी, इलाहाबाद

मूल्य : 45.00 रूपये, पृष्ठ:208

हमारे देश की आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति दुनिया की प्राचीनतम और अत्यन्त विकसित चिकित्सा-पद्धति रही है। दुर्भाग्य से लम्बी गुलामी के कारण यहां आयुर्वेद लगातार उपेक्षित रहा और एलोपैथी फलती-फूलती रही। आज स्थिति यह हो गयी है कि बड़ा डॉक्टर वही माना जाता है जो देशी चिकित्सा विधियों का घोर विरोधी होता है। लेकिन मोती लाल नेहरु मेडिकल कॉलेज, इलाहाबाद में बायोकेमेस्ट्री विभाग के, विभागाध्यक्ष डॉ० एन०आर० यादव के साथ एक ऐसी घटना घटी जिसने उनका एलोपैथी से मोहभंग कर दिया और वे मेडिकल कॉलेज में रहते हुये आयुर्वेद पर शोध करने लगे।

"भारतीय बूटी अनुसंधान के अद्भुत चमत्कार" डॉ० यादव के उसी शोध की कहानी है। डॉ० यादव ने आयुर्वेद से 'एड्स' और 'सफ़ेद दाग़' की सफल चिकित्सा करने का दावा किया है। विदेशों में शोध कार्य कर चुके डॉ० यादव को एक बार सफेद कुष्ठ हो गया। तमाम एलोपैथी दवाएं कारगर न हो सकीं। तब उन्होंने जड़ी-बूटियों का अध्ययन शुरू किया। बाद में उन्होंने अपने ही द्वारा निकाले गये आयुर्वेद के एक सूत्र से अपना सफ़ेद कुष्ठ पूर्णरुपेण ठीक कर लिया। इसी सूत्र द्वारा उन्होंने सफ़ेद कुष्ठ के रोगियों का इलाज शुरू किया। सफ़ेद कुष्ठ का इलाज करते हुये ही डॉ० यादव के पास कुछ ऐसे मरीज भी आये जिन्हें सफेद कुष्ठ के साथ-साथ एड्स था। डॉ० यादव का दावा है कि सफेद कुष्ठ के लिये निकाली हर्बल औषधि से एड्स रोगियों को भी काफी लाभ पहुँचा। इसी शोध पर डॉ० यादव को 'विश्व एड्स दिवस'। दिसम्बर 1993 को अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक समारोह 'वोर्ड ऑफ आल्टरनेटिव मेडिसिन', कलकत्ता में उन्हें स्वर्ण पदक देकर सम्मानित किया जा चुका है।

डॉ० यादव ने अपनी शोध सम्बन्धी जानकारी भारत के राष्ट्री प्रधानमंत्री, प्रदेश के मुख्य मंत्री, राज्यपाल, स्वास्थ्य विभाग के अलावा 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' आदि को भेजी है। उन्होंने अपने शोध को विस्तार देने के लिये सहयोग की अपेक्षा भी की है।

पुस्तक दो खण्डों में है। प्रथम खण्ड एड्स के ऊपर है। इसमें एड्स के विषय में विस्तार से जानकारी दी गयी है। इस अध्याय के संलग्नक में एड्स की हर्बल औषधि की खोज सम्बन्धी पत्र-व्यवहार तथा अखबारों की कटिंग प्रकाशित की गयी है। पुस्तक के द्वितीय खण्ड में श्वेत कुष्ठ के विषय में जानकारी तथा चिकित्सा आदि का वर्णन किया गया है।

एड्स जैसे गंभीर विषय पर एक एलोपैथी के प्रोफ़ेसर द्वारा आयुर्वेद की हिमायत करना महत्वपूर्ण बात है। जनसामान्य के साथ-साथ चिकित्सा विज्ञान के शोधार्थियों को भी पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय चिकित्सा संगठनों को डॉ० यादव की खोज की पूरी जांच-पड़ताल करनी चाहिए। हो सकता है डॉ० यादव की खोज विश्व का महान कल्याण करने वाली साबित हो।

–विजय जी
जवाहर इण्टर कॉलेज,
जारी, इलाहाबाद

सभापति प्रो० पन्त का अभिनन्दन

❑ प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

सम्पादक 'विज्ञान', विज्ञान परिषद् प्रयाग,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

श्रद्धेय प्रो० पंत जी, आदरणीय डॉ० नौटियाल जी, आदरणीय प्रो० शिवगोपाल मिश्र जी और उपस्थित विद्वत्जन !

मैं "विज्ञान परिषद् प्रयाग" की ओर से और अपनी ओर से आप सभी का स्वागत करता हूँ अभिनन्दन करता हूँ, मेरा प्रणाम स्वीकार करें ।

हम लोग यहाँ 'विश्व पर्यावरण दिवस' पर 'पर्यावरण और हम' विषय पर विचार-गोष्ठी के लिए एकत्र हैं ।

आप सब की उपस्थिति का मैं एक और लाभ उठाना चाहता हूँ । आज की संगोष्ठी प्रारंभ करने की अनुमति सभाध्यक्ष जी से माँगने के पूर्व मैं "विज्ञान परिषद् प्रयाग" के वर्ष 1996-97 के लिए नवनिर्वाचित सभापति प्रो० दिव्यदर्शन पंत जी का और अन्य पदाधिकारियों का अभिनन्दन करता हूँ । मेरी बधाई स्वीकार करें ।

प्रो० पंत जी का स्वागत विशेष रूप से है क्योंकि अब परिषद् का भार आपके ही युवा कंधों पर है । मान्यवर! मैं युवा शब्द का प्रयोग अकारण नहीं कर रहा ।

वैसे तो इलाहाबाद विश्वद्यालय के वनस्पति विभाग के अध्यक्ष पद से आपने लगभग एक दशक पूर्व अवकाश ग्रहण किया था, किन्तु आप उच्चस्तरीय शोध के क्षेत्र में आज भी एक युवा की भाँति सक्रिय हैं । अभी-अभी, कुछेक दिनों पूर्व ही, आप चीन में साइकड-पौधों की, 1 से 5 मई तक पैंजीहुआ, सिचुअन में चलने वाली एक अंतराष्ट्रीय संगोष्ठी में भारत का प्रतिनिधित्व करने के बाद स्वदेश वापस लौटे हैं । इस 'चौथी अंतर्राष्ट्रीय साइकड बायोलॉजी संगोष्ठी' का विषय था **"साइकड-96"** ।

इस संगोष्ठी में आपके व्याख्यान का विषय था– "वर्तमान एवं पुरातन साइकडों की आकारिकी तथा भौगोलिक वितरण : एक तुलनात्मक अध्ययन" ।

अपने विद्वतापूर्ण और सूचनाप्रद व्याख्यान में आपने बताया कि साइकड पौधे नग्नबीजी होते हैं और इनकी मात्र ग्यारह जातियाँ ही शेष रह गई हैं । इनकी संख्या भी बहुत कम हैं और इनका वितरण विश्व के उष्ण कटिबंधीय और उपोष्णीय क्षेत्रों में ही सीमित रह गया है। मनुष्यों द्वारा इनके अत्यधिक दोहन के कारण ये विलुप्त होने के कगार पर पहुँच गए हैं। इन्हें 'वनस्पति साम्राज्य के सरीसृप' अथवा 'पादप साम्राज्य के पंडा' की संज्ञा दी गई है ।

उपरोक्त संगोष्ठी में वैज्ञानिकों द्वारा साइकस-समूह के पादपों की विभिन्नता, वर्गीकरण, जीवाश्म-इतिहास, अन्य पादप समूहों से संबंध, प्रजनन, कार्यिकी, जैवरासयनिकी, पारिस्थितिकी, और विषैले प्रभावों के विषय में विस्तार से चर्चा हुई । इसके अतिरिक्त इन पादपों के उपयोग और इनके संरक्षण पर विचार-विमर्श हुए । इस बात पर विशेष बल दिया गया कि इनको विलुप्त होने से बचाने के लिए सभी संभव प्रयास करने चाहिए।

संगोष्ठी के समापन के बाद प्रतिभागियों को पैंजीहुआ और दक्षिण चीन के उन स्थलों को भी दिखाया गया जहाँ *साइकस* और साइकस-समूह के पादप अपनी

छटा दिखा रहे थे । प्रो० पंत की सूचना के अनुसार **डॉ० वेण्डी स्ट्राह्म** भी उपस्थिति थीं, जो 'इंटरनेशन यूनियन फॉर कंजरवेशन ऑव नेचर एण्ड नेचुरल रिसोर्सेज', ग्लाण्ड, स्विटजरलैण्ड से संबंधित हैं ।

प्रो० पंत ने एक और विशेष रूप से उल्लेखनीय बात बतायी है । उन्होंने कहा कि इस अवसर को चिरस्मरणीय बनाने के उद्देश्य से वहाँ डाक विभाग द्वारा *साइकस* की चार स्पीशीज़ के डाक-टिकट जारी किए गए। ये स्पीशीज़ हैं-*साइकस मल्टीपिन्नेटा, साइकस पैंजीहुआनेन्सिस, साइकस रिवोल्यूटा* और *साइकस पेक्स्टीनेटा ।*

यहाँ यह बताने की आवश्यकता नहीं कि प्रो० पंत जहाँ एक ओर अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के जाने-माने पुरावनस्पतिविद् हैं वहीं साइकस-समूह के पादपों पर अनुसंधान के लिए विश्वविख्यात हैं । आपके द्वारा लिखी गई पुस्तक-"साइकस एण्ड साइकैड्स" सारे संसार में वनस्पतिविदों द्वारा सराही गई पुस्तक है । जैसे स्वर्गीय **प्रो० पंचानन महेश्वरी** की पुस्तक "एन इन्ट्रोडक्शन टू द एम्ब्रियोलोजी ऑव एन्जियोस्पर्म्स" एम्ब्रियोलोजी की गीता है उसी प्रकार प्रो० पंत जी की पुस्तक नग्नबीजी पादपों की गीता है ।

इन शब्दों के साथ में एक बार पुनः प्रो० पंत का अभिनन्दन करता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आपको दीर्घायु करें, चिरायु करें ताकि हम सभी को और आने वाली पीढ़ियों को आपसे सक्रिय अनुसंधान की प्रेरणा मिलती रहे, हमें आपका मार्गदर्शन मिलता रहे ।

■

पर्यावरण और मानव

❑ दर्शनानन्द

उपनिदेशक, उद्यान, इलाहाबाद
मण्डल (अ०प्रा०) सी० 67, गुरु तेग बाहदुर नगर
(करेली हाउसिंग स्कीम,) इलाहाबाद-211016

पर्यावरण से मानव का बहुत घनिष्ठ संबंध है। पर्यावरण को शुद्ध रखना अथवा प्रदूषित करना हम सब के ऊपर निर्भर करता है। यदि आज पर्यावरण प्रदूषित है तो उसके उत्तरदायी हम स्यवं हैं। पर्यावरण के प्रदूषित होने का मुख्य कारण मनुष्य द्वारा अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु प्रकृति के साथ छेड़-छाड़ करना है। प्रकृति के साथ छेड़-छाड़ करने पर पारिस्थितिकीय संतुलन बिगड़ जाता है, जिससे विभिन्न प्रकार की समस्याएं उत्पन्न होने लगती हैं। फलतः मनुष्य कैन्सर, दमा, ब्रांकाइटिस जैसे अनेक घातक रोगों से पीड़ित होता रहता है। स्थिति गम्भीर होने पर वह अपने जीवन से हाथ धो बैठता है।

मूल्यवान प्राकृतिक सम्पदाओं जैसे वनों व बाग-बगीचों में तथा अन्य स्थानों पर लगे वृक्ष प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया द्वारा वायुमण्डल में मनुष्य द्वारा छोड़ी गई कार्बन डाइऑक्साइड तथा अन्य ज़हरीली गैसें पत्तियों की सहायता से अपने भीतर सोख लेते हैं। इसी के साथ वृक्षों की पत्तियां वायु में प्राणवायु ऑक्सीजन छोड़ती हैं, जिसे मनुष्य अपनी सांस के साथ खींच कर जीवित रहता है। परन्तु जब वनों की कटानें जारी रहेंगी, जंगल में आगें लगती रहेंगी बाग-बगीचों को काट कर आवासीय कॉलोनिया बनती रहेंगी, वृक्षों की कटानों के अनुपात में नए वृक्ष नहीं लग पाएंगे, तथा नवीन लगाए गए पौधे पशुओं एवं अराजक तत्वों द्वारा नष्ट होते रहेंगे, तब तक वायुमण्डल में विषैली गैसों की बढ़ोत्तरी होती रहेगी तथा ऑक्सीजन का अभाव होता जाएगा।

कूड़े-कचरों को जलाए जाने वाली वस्तुओं में पॉलीथीन, रबर तथा चमड़े के टुकड़े, मल-मूत्र, मृत कीटों एवं अन्य जीव-जन्तु सम्मिलित रहते हैं। ये काले धुएं वायु में कार्बनमॉनोक्साइड, कार्बन डाइऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड व अन्य विषैली गैसें, फैलाने के साथ-साथ वातावरण को दुर्गन्धित भी करती हैं। ये दुर्गन्धें प्रायः असहनीय तथा अत्यंत अस्वास्थ्यकर होती हैं।

दिन प्रतिदिन जनसंख्या में होती हुई अभूतपूर्व वृद्धि प्रदूषण को बढ़ाने में विशेष यौगदान दे रही हैं। जनसंख्या बढ़ाने में अपने देश के निवासियों का योगदान तो है ही, साथ ही घुसपैठियों (जिनके देश में प्रवेश पर रोक न लगा कर नागरिकता की मान्यता प्रदान कर दी जाती है) द्वारा भी इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया जा रहा है।

दैनिक कूड़े-कचरों के निस्तारण की समस्या भी उत्पन्न होती रहती है। निवास स्थानों के कचरे कभी अपने दरवाजें के सामने, कभी किसी दूसरे या पड़ोसी के दरवाजे पर डाल दिए जाते हैं। कूड़ादान रहते हुए भी उसी के पास कूड़े बाहर

भी डाल दिए जाते हैं। ऊपर की मंज़िलों में रहने वाले प्रायः अपने घर के कचरे सीधे ऊपर से ही नीचे डाल देते हैं। ऐसी स्थिति में सड़कों या गलियों में चलने वाले यदि सजग न रहें तो प्रायः कचरे उनके ऊपर ही गिर जाते हैं। इसी प्रकार मकानों के पनालों से गिरते हुए गंदे व दुर्गंधित जल से भी चौकन्ना रहना पड़ता है, अन्यथा राही को इससे नहाना भी पड़ सकता है।

दरवाजों के सामने के कचरे सफाई कर्मचारियों द्वारा कब हटाए जाते हैं, यह उनकी मर्जी पर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त कूड़ेदानों में तथा सड़कों पर कूड़े पड़े रहते हैं जब तक कि उन्हें कचरा एकत्रित किए जाने वाले मुख्य स्थान तक न पहुँचा दिया जाए।

कूड़े-कचरे यथास्थान डाले जाने चाहिए तथा इन्हें जलाने पर कड़े प्रतिबंध लगाने चाहिए। इस दिशा में अनियमितता बर्तन वाले के विरुद्ध कठोर कार्यवाही की जानी चाहिए। कचरे एकत्रित किए जाने वाले मुख्य स्थान के कचरों को कम्पोस्ट, बायोगैस निर्माण एवं कागज निर्माण के कारखानों में उपयोग करना चाहिए।

यदि इन कुव्यवस्थाओं पर मनन किया जाय तो पुनः यही निष्कर्ष निकलता है कि इन सब का उत्तरदायी मानव अर्थात् हम लोग ही हैं। मानव अथवा हम लोग में जनसाधारण तथा प्रशासन दोनों ही सम्मिलित हैं। प्रशासन विभिन्न व्यवस्थाओं को नियंत्रित रखने के लिए कायदे-कानून तो बनाता है, परन्तु वे कायदे-कानून कार्यान्वित भी हो रहे हैं अथवा नहीं, यह देखने की किसी को चिंता ही नहीं रहती। केवल कानून बना कर ही लक्ष्य की पूर्ति समझ ली जाती है और उसकी कार्यान्वयन सम्बधी जाँच -पड़ताल करने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। इसी कारण जनसाधारण भी अपने स्वार्थवश कानूनों की उल्लंघन करते रहते हैं, तथा जनहित की ओर ध्यान नहीं दे पाते। यदि प्रशासन चुस्त रहे तो ये कुव्यवस्थाएँ देखने को न मिलें। वन, बाग व वृक्ष अनियमित रूप से कहां और कब कट रहे हैं तथा नवीन रोपित वृक्ष नष्ट तो नहीं हो रहे हैं--इन बिन्दुओं पर प्रशासन द्वारा पूर्ण निगरानी की आवश्यकता है। समय-समय पर आकस्मिक निरीक्षण करके दोषी व्यक्तियों को दण्डित किया जाना अनिवार्य होना चाहिए।

विभिन्न फल-उद्यान-समूहों को फलपट्टी घोषित कर देना चाहिए, जिससे ये सुरक्षित रहें। इलाहाबाद में सुलेमसराय तथा चायल विकासखण्ड के कुछ क्षेत्रों के अमरूद उद्यान समूहों को अमरूद फल पट्टी घोषित किया जा चुका है, जबकि इसके पूर्व के अमरूद उद्यान समूह कटवा कर प्रीतम नगर आवासीय कॉलोनी का निर्माण कराया जा चुका है। इसके अतिरिक्त मलीहाबाद (लखनऊ)तथा कुण्डा (प्रतापगढ)में आम-पट्टी तथा प्रतापगढ़ में आँवला-पट्टी भी अन्य उदाहरण हैं।

जनसंख्या नियंत्रण हेतु प्रोत्साहन पर व्यय करने के बजाय परिवार नियोजन न अपनाने वाले व्यक्तियों/परिवारोओं को नौकरियों में नियुक्तियां, आरक्षण तथा अन्य सुविधाओं से भी वंचित रखना उपयुक्त होगा। इसके लिए जिम्मेदार कर्मचारियों द्वारा घर-घर जा कर सर्वे करने की भी आवश्यकता होगी।

अतः पर्यावरण को शुद्ध रखने के लिए लिए जहाँ एक ओर प्रशासन को उपर्युक्त तथा अन्य सम्बन्धित महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर प्रत्येक दशा में चुस्त रहना नितान्त आवश्यक है, वहीं जनता को अपना स्वार्थ त्याग कर जनहित में पर्यावरण को दूषित होने से बचाने के हरसंभव उपाय करने चाहिए। ■

सूर्योदय के पूर्व उठिए-स्वस्थ रहिए

❑ डॉ० विश्वनाथ याज्ञिक

69,आर्य नगर लखनऊ, उत्तर प्रदेश

ब्रह्म मुहूर्त में सैया त्याग कर शौचादि दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होकर ईश्वराराधन तथा व्यायाम (टहलना) आयुर्वेद की आयुवर्द्धिनी तथा स्वास्थ्य-प्रदायनी दिनचर्या मानी गई है। लोक-ख्यात कहावता है--"जिल्दी सोना, जल्दी उठना मनुष्य को स्वस्थ, ऐश्वर्यवान एवं बुद्धिमान बनाता है।"(Early to bed and early to rise, makes a man healthy, wealthy and wise)।

आज पाश्चात्य सभ्यता में देर रात्रि के भोजन, दूर दर्शन-अवलोकन तथा नृत्यादि मनोरंजन का रात्रि जागरण प्रवृत्ति भले ही लोकचर्या बन रहा है, परन्तु यह निश्चय स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है तथा प्रकृति के प्रतिकूल है।

देर रात्रि तक के जागरण से शारीरिक क्रियाओं पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। प्रकृति के विरुद्ध अपनाई गई जीवन प्रणाली से शरीर के विभिन्न तंत्र (पाचन, रक्त-परिसंचरण, श्वसन, उत्सर्जी-तंत्रिका और अंतःस्रावी आदि) विषम प्रभावों से आक्रान्त होते हैं। इस विषय में प्रख्यात चिकित्साविज्ञानी डॉ० विलियम बरिज (भूतपूर्व प्राचार्य, किंग ज़ार्ज मेडिकल कॉलेज, लखनऊ)के विचारों को यहाँ उद्धृत करना समीचीन होगा।

एक बार उन्होंने एक परीक्षार्थी से पूछा-"परीक्षा के पूर्व कल रात्रि कितने बजे सोए थे?"

परीक्षार्थी का उत्तर था--"सर!रात मैं दो बजे तक पढ़ता रहा और फिर सोया।"

प्रिसिपल डॉ० बरिज ने कहा--"क्या मैंने तुम्हें यही पढ़ाया था? जाइए, छः माह बाद आइए, अपना विषय ठीक से समझ कर और पढ़ कर।"आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान के अनुसार भी मानव शरीर की नियंत्रक है एक आन्तरिक जैविक-घड़ी (Internal Biological Clock),जो जीवनचर्या का सुचारु परिपालन करने में सहायता देती है। 'ब्रिटिश मेडिकल रिसर्च कौंसिल'के अनुसार प्राकृतिक दिनचर्या के विषर्यय होने से इस घड़ी की गति गड़बड़ाती है। फलतः यामिनी (रात्रि)के विचरण और जागरण के बाद दूसरे दिन स्फूर्ति नहीं रहती, जमुहाइयाँ (yawrns)आती हैं, उदासी रहती है और नींद के झोके दिन में आते हैं। अपच होता है, कब्ज होता है और अन्तःस्रावों पर भी विषम प्रभाव पड़ता। जोड़ों में दर्द, रीढ़ की हड्डी में जकड़न आदि की शिकायतें आम बनती हैं।

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में इस जैविक-घड़ी पर काफी शोध कार्य हुआ है। यह कैसे काम करती है? इसके गड़बड़ाने पर क्या दुरवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं?आदि आदि।

डॉ० माइकेल हेसटिंग्स के अनुसार यह आंतरिक जैविक-घड़ी 25 घंटे के चक्र के अनुसार चलती है। किन्तु इसके दुष्परिणाम तब सामने आते हैं जब यह घड़ी बाह्य जैविक-घड़ी के अनुसार 24 घंटे के चक्र से चलने लगती है। ऐसा आधुनिक जीवन की दशाओं और कार्य करने की तरीके के कारण होता है। इस प्रकार की घड़ी को पुनः ठीक करने की आवश्यकता होती है, जो कि अत्यन्त दरूह कार्य है।

आधुनिक जीवन शैली और तदनुवर्तिनी दैनिक चर्या मानव जैविक घड़ियों को उनकी क्षमता के परे आहत कर रही है जहाँ गति है, विश्राम नहीं, भाग दौड़ की त्वरा है, विश्रान्ति की तुषृद शांति नहीं। चौबीस घण्टों की दिनानुदिनी आपाधापी और "जैट-रेट" व्यस्तता मानव जीवन के लिए अभिशाप बन रही हैं। किसी को थमने की, आराम से सांस लेने की फुर्सत नहीं है। यह अर्वाचीन सभ्य जीवन की विभीषिका बन गई है। पं० जवाहर लाल नेहरू ने "आराम हराम है' का नारा दिया था। उनका "आराम" से आशय निष्क्रिय आलस्य (Slothfulness) से था। वास्तव में जीवन में विराम (विश्राम-rest pause) मानव-काया-मशीन हेतु तेल है, जो परम आवश्यक है।

डॉ० हेस्टिंगस का स्पष्ट अभिमत है कि प्राकृतिक शारीरिक व्यवस्था (Natural Body Rhythm) के अव्यवस्थित होने पर चिन्ताकुल होना चाहिए। कायिक-सामर्थ्य और नैसर्गिक कार्य-विधि के प्रतिकूल कार्य करने से क्षमता की क्षति, ऊर्जा का ह्रास होता है।

शारीरिक-शांति, मानसिक तनाव से आक्रान्त व्यक्ति अस्थायी थकावट (Baresis) से ग्रस्त न होकर थकावट (Fatigue) के पाश में आवद्ध होता है। यह "फैटीग" (थकावट) हानिप्रद है।

डॉ० विंस्टन क्लिफोर्ड ने डॉ० माइकेल हेस्टिंग्स से सहमत होते हुए जैविक-घड़ी के बारे में कहा है—"**शरीर की घड़ी** (Circardian Clock) और बाह्य घड़ी में साम्य स्थापित करने के लिए प्रकाश की भूमिका महत्वपूर्ण है। प्रातःकाल का प्रकाश जीवन-घड़ी की गति को सही करता है, उसे प्रवर्द्धित करता है। सायंकाल का प्रकाश इस घड़ी को धीमी करता है।" **डॉ० सिमोन डेविड भी इसी विचार को मानते हैं। उन्होंने सिद्ध किया है कि संभवतः सूर्योपासना का यही रहस्य रहा है। इस जैविक-घड़ी में पीनियल ग्लैण्ड के अंतःस्राव "मीलैटोनिन"** का योगदान संभव है। डॉ० ऊल्फ के अनुसार सोने के समय में पीनियल ग्रंथि जैविक-घड़ी द्वारा सक्रिय कर दी जाती हैं। फलतः रक्त-धारा में मिलैटोनिन अंतःस्राव प्रचुर मात्रा में प्रवाहिता होता है। रात्रि भर यह प्रक्रिया चलती है। प्रातः जैविक-घड़ी पीनियल ग्रंथि को निष्क्रिय कर देती है और तब तक मिलैटोनिन अपना वांछित कार्य कर चुकी होती है।

उपरोक्त वैज्ञानिक अनुसंधानों का निष्कर्ष यह है कि हर व्यक्ति को जैविक-घड़ी के अनुकूल जीवन-पद्धति अपनानी चाहिए। रात्रि में जल्दी सोना चाहिए जिससे काया की क्षमता को उर्जस्वित करने के लिए वांछित विश्राम (Melatonin secretion) हो सके। प्रातःकाल जल्दी उठना चाहिए तथा उषा काल में भ्रमण-व्यायाम आदि करना चाहिए क्योंकि प्रातःकाल की प्रकाश प्राप्ति (Exposure to morning light) में जैविक-घड़ी (Biological clock) अभीष्ट रूप में गतिमान बनती है (डेनोल्ड)। समयानुशासित चिकित्सा क्रम आधुनिक चितिक्सा-विज्ञान की सुदृढ़ मान्यता बन रही है कि प्रत्येक जीवधारी अपनी-अपनी जैविक-घड़ी (Biological clock) से परिचालित होता है। अमेरिका में इसे चिकित्सा-शास्त्र का एक विशेष अंग बनाया जा रहा है। इसे 'क्रोमोथेराप्यूटिक्स' (Chromotherapeutics) कहते हैं।

डॉ० रिचर्ड मार्टिन, डॉ० जेम्स मिलर, डॉ० लूथर, डॉ० हिल्टन, डॉ० रॉबर्ट शोफ, जैसे अनेक प्रख्यात अमेरिकी वैज्ञानिक जैविक-घड़ी की अवधारणा को मानते हैं।

अमेरिकन मेडिकल एसोसियेशन से सम्बद्ध चिकित्सक-वर्ग सही ओषधि को सही मात्रा में सही (उपयुक्त) समय पर देने पर जोर दे रहे हैं, जिससे रोगी को सर्वाधिक लाभ मिल सके।

कई आम रोगों के लक्षण जैविक-घड़ी से संयोजित रहते हैं। ऊर्ध्व रक्त चाप, ह्रदय शूल (Angina), दमा, मिरगी, आधासीसी,, ह्रदयाघात (Heart-attack), जोड़ों के शोध (Arthritis) आदि में जैविक-घड़ी (Biological Rtythm) की भूमिका का महत्वपूर्ण स्थान है।

वैज्ञानिक अनुसंधानों से यह तथ्य उजागर हुआ है कि दमें के रोगी को दवा ऐसी दी जाये कि उसका सर्वाधिक प्रभाव प्रातःकाल में हो। वैसे यह विदित है कि दमें की चिकित्सा का अधिक उपयुक्त समय संध्याकाल है, न कि दिवस का अन्य कोई समय।

अब वैज्ञानिकों का निश्चित मत है कि चिकित्सा-पद्धति में "क्रोमोथेराप्यूटिक्स" (Chromotherapeutics) को निकट भविष्य में सुनिश्चित स्थान प्राप्त होने वाला है। समय की गरिमामयी उपयुक्तता रोगी की प्रभावी चिकित्सा में विशिष्ट योगदानी बनी है और इसकी महत्त्ता पर ध्यान देना ही होगा। आयुर्वेद में चिकित्सोपचार में समय के औचित्य पर पूर्ण ध्यान दिया गया है। कफ, पित्त, वायु के प्रबलत्व-शमनत्व के विचार से भोजनादि की व्यवस्था की गई। पूर्वान्ह, मध्यान्ह तथा अपरान्ह का विभाजन तर्क-सम्मत रहा है। पित्त प्रदान काल में (दिन में दस से दो बजे तक) भोजन करने का परामर्श देने, तदुपरान्त राक्षस काल (जब पित्त शमित रहता है) में भोजन का निषेध रहा है। इसी प्रकार ऋतु चर्या भी स्वास्थ्य रक्षण हेतु परमावश्यक मानी गई है। ऋतु-परिवर्तन के साथ भोजनादि में तदुनुकूल हेर-फेर हितकारी बताया गया है। उचित आहार-विहार, शुद्ध आचार-विचार स्वस्थ रहने के हेतु अनिवार्यतः आवश्यक तत्व हैं। इसी से कहा है कि आचारण सर्वोपरि है और वही 'पण्डित' है जो ज्ञानपूर्वक इसका अनवरत पालन करता है।

पाठकाः पाठकोशेष ये चान्ये शास्त्रचिन्तकाः।

सर्वे व्यसनिनो मूर्खायः, क्रियावान्स पण्डितः।।

संतुलित आहार-निद्रा शरीरधारियों के स्वास्थ्य हेतु आवश्यक है।

प्राणाः प्राण भृतामत्रं तदयुक्त्या निहन्त्यस्र।

विषं प्राणं हरे तत्वं युक्तियुक्तं रसायनम्।।

अतः समयानुकूल दिनचर्या, भोजन, व्यवस्था, निद्रा, व्यायाम आदि का सम्पादन ब्रह्ममुहूर्त के उत्थान से रात्रि के शयन तक सुसंगत रूप में करना ही चाहिए।

डॉ शिवगोपाल मिश्र सम्मानित

'डॉ० आत्माराम पुरस्कार' जैसे अनेकानेक पुरस्कारों और सम्मानों से अलंकृत, अन्य हिन्दी विज्ञान सेवी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अवकाश प्राप्त प्रोफेसर, शीलाधर मृदा विज्ञान अनुसंधान संस्थान के पूर्व निदेशक, विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका के प्रबंध संपादक, ख्याति प्राप्त मृदा विज्ञानी, सैकड़ों शोधपत्रों, कई दर्जन पुस्तकों के रचनाकार, लेखक सम्पादक और 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' के अनन्य सेवी और वर्तमान प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र को हिन्दी संस्थान (लखनऊ) ने 'विज्ञान भूषण' प्रदान कर सम्मानित किया है। यह पुरस्कार डॉ० मिश्र को उनकी दीर्घकालीन हिन्दी विज्ञान सेवाओं के लिए दिया गया है। डॉ० मिश्र को विज्ञान परिषद् परिवार की बधाई।

शाकाहार की विशेषता

❑ डॉ० राजीव रंजन, उपाध्याय

उपाध्याय कैंसर शोध संस्थान,
परिसर कोठी काके बाबू
देवकाली मार्ग,
फैजाबाद -224001

शाकाहार भारतीयों की जीवन-पद्धति से अभिन्नता से जुड़ा है। इस तथ्य की अनुभूति मुझे अपने, ईरान के दीर्घ कालीन प्रवास के दौरान हुयी। अधिकांश ईरानी यह कल्पना ही नहीं कर सकते थे कि भोजन पूर्णरूपेण शाकाहारी कैसे हो सकता है? शाकाहारी भोजन बनाया कैसे जा सकता है? क्या वह स्वादिष्ट होता है? उनके इन सहज प्रश्नों का उत्तर, हम लोग उन्हें शाकाहारी भोजन करा कर, दे देते थे। अधिकांश परिवारों ने, हम लोगों से, ईरान में, शाकाहारी भोजन बनाना सीखा ही नहीं वरन् उनकी रुचि शाकाहारी भोजन की तरफ बढ़ गयी। इसी प्रकार के शाकाहारी भोजनों को यूरोपीय और अमेरिकी मित्रों को खिलाने और उनके यहां खाने का अवसर मिला।

हम में से, आज भी अधिकांश परिवार शुद्ध शाकाहारी हैं और वे दीर्घजीवी भी हैं तथा पूर्ण स्वस्थ भी। भारत में शाकाहारी भोजन की परम्परा एक सहस्र ईसा पूर्व से भी अधिक पुरानी है, और विश्व में मात्र भारत ही एक ऐसा देश है, जहाँ पर- सौ से अधिक पीढ़ियों के परिवारों में शाकाहार प्रचलित है, उन परिवारों के सदस्य पूर्णरुपेण स्वस्थ ही नहीं है वरन् वे मांसाहारी परिवीरों से अधिक कुशाग्र बुद्धि एवं दीर्घजीवी हैं। स्पष्ट है, कि शाकाहारी भोजन की कुछ विशेषता है।

भारत की जनगणना में दिये गये आंकड़ों से यह ज्ञात होता है कि सारे देश में 28 से 30 प्रतिशत लोग शाकाहारी हैं तथा सर्वाधिक शाकाहारियों की संख्या गुजरात में तथा न्यूनतम प्रतिशत उड़ीसा एवं पश्चिमी बंगाल में है। गुजरात में शाकाहार की प्रवृत्ति यदि वैष्णव-धर्म के प्रभाव के कारण है तो उड़ीसा और बंगाल में "माछेर-झोल" जीवन दर्शन और धर्म का अविभाज्य अंग हैं। देवी दुर्गा को "गंभीर नीर पूरित मत्यस खण्डे" प्रिय है। यह तथ्य मछलियों की सुलभता एवं सुपाचयता से भी जुड़ा है। जो खाद्य पदार्थ जिस क्षेत्र में, प्रदेश में सहजता से उपलब्ध है, वही भोजन का अंग बन जाता है। यह केरल के संदर्भ में भी परिलक्षित होता है, जहाँ पर शाकाहारियों की संख्या मात्र 6 प्रतिशत है। केरलवासियों का मुख्य भोजन मत्स्य ही है।

भारत की शाकाहारी भोजन पद्धति से सभी परिचित हैं। यह परम्परा सहस्राधिक वर्षों से सतत है। सारे देश में दाल के साथ रोटी या चावल खाया जाता है। यह चावल-सांभर, इडली, दोसा, ढोकला और खिचड़ी भी हो सकता है। जो लोगों को स्थानीय रुचि और स्वाद पर आश्रित है, अन्त में उपस्थित सिस्टीन (Cystine) एवं मिथियोनीन (Methionine) अमीनो एसिड तथा दालों में विद्यमान लाईसिन (Lysine) एक दूसरे को, संतुलित आहार की दृष्टि से पूरक हैं और यहीं कारण है कि अनादि काल से दाल के साथ रोटी, चावल आदि खाने का विधान उत्तर भारत में तथा इडली आदि के साथ साँभर खाने की परम्परा दक्षिण भारत में है। इस प्रकार के भोजन में 65% प्रोटीन शरीर को प्राप्त

होती है तथा जब यह भोजन दही, मट्ठा अथवा दूध युक्त हो जाता है तो प्रोटीन का प्रतिशत बढ़ कर माँस से प्राप्त प्रोटीन के बराबर अथवा न्यूनाधिक हो जाता है। यहाँ पर यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि हम आप शाकाहार प्रतिदिन कर सकते हैं, पर माँसाहार नहीं। भारतीय भोजन में निहित रेशों का, खुरदुरे तत्वों का अपना अलग ही योगदान है। यह स्थापित है कि रेशेदार भोजन करने वाले शाकाहारियों को-बड़ी आँत का कैंसर नहीं होता है।

भारतीय शाकाहारी घरों में चटनी, अचार, रायता तथा अन्य सहायक व्यंजन, मुख्य भोजन की अनिवार्यता है। इनसे पर्याप्त मात्रा में विटामिथ-सी प्राप्त हो जाता है। सलादों में हमें, मुख्यतः गाजर, टमाटर, शलजम आदि से विटामिन-ए (Vitamin-A) सहजता से मिल जाता है। कच्चे फलों और कन्दमूलों के स्वस्थ्यकारी गुणों से वैदिक ऋषि परिचित थे, तभी तो उन्होंने फलाहार की परम्परा का प्रारम्भ किया था जिसका विकृत-स्वरूप आज भी व्रत आदि के अवसरों पर व्याप्त है, जो सर्वविधि स्वास्थ्यकर नहीं है। फलों में निहित आवश्यक तत्व, इनके आहार से, हमें सहजता से प्राप्त हो जाते हैं।

आज दही के गुणों से वैज्ञानिक जगत् परिचित है तथा अंकुरित चने, जौ, मूँग आदि के गुण प्राचीन भारत की स्वास्थ्य संबंधी धरोहर चरकसंहिता में वर्णित हैं जो पूर्णरूपेण वैज्ञानिक है। इन्हीं भोजन-नियमों का पालन कर आयुर्वेद स्वास्थ्य की वृद्धि और सुरक्षा का उपदेश देता है।

हरी सब्जियों के सेवन से शरीर के लिए आवश्यक विटामिन बी-12 (Vitamin-B-12) की पूर्ति होती है तथा कैल्शियम और लौह तत्व कुछ विशिष्ठ शाकों से सहजता से मिल जाते हैं। लोहे की कढ़ाही, तवा, करछुल भी भोजन को पकाते समय अनेक प्रकार के रसों से मिल कर लौह की कमी पूरा करते हैं--यह यह गुण स्टेनलेस-स्टील के बर्तनों में नहीं है-- हो सकता है महिलाओं में बढ़ती लौह की कमी के फलस्वरूप उत्पन्न हुयी "एनीमिया" (रक्ताल्पता)के पीछे यही कारण हो।

भारत में आज, शाकाहारी भोजन करने वालों की संख्या मुख्यतः शहरों में घट रही है परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में यह अनुपात करीब-करीब स्थिर है। उधर पश्चिमी देशों में, जहाँ पर शाकाहारियों की संख्या करीब शून्य थी, परिवर्तन हुआ है। आज पश्चिमी देशों में शाकाहारियों की संख्या अनुमानतः 10 प्रतिशत के समीप है। यह तथ्य वहां के वासियों के बदलते जीवन-दर्शन का परिणाम है।

भारत के परिप्रेक्ष्य में, यह ध्यान रखने की बात है, कि जिस देश का मूलमंत्र ही "अहिंसा परमो धर्मः" रहा है, जहाँ पर सर्वप्रकार के अन्न, वनस्पतियाँ, फल, प्रत्येक प्रत्येक ऋतु में सुलभ हैं, जहाँ पर शाकाहार स्वस्थ जीवन का आधार रहा है, उस देश में माँसाहारियों की जनसंख्या में वृद्धि, भविष्य में उनके अच्छे स्वास्थ्य का संकेत नहीं देती है। इस दिशा में लोगों को सचेत करने की आवश्यकता है तथा शाकाहार की महत्ता को जनमानस में पुनःस्थापित करने की आवश्यकता है।

■

प्रकाशक	सम्पादक	मुद्रक	सम्पर्क
डॉ० शिवगोपाल मिश्र	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	अरुण राय	विज्ञान परिषद्
प्रधानमंत्री	*सहायक संपादक*	प्रसाद मुद्रणालय	महर्षि दयानन्द मार्ग
विज्ञान परिषद् प्रयाग	डॉ० दिनेश मणि	7 ए, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद	इलाहाबाद

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक स्वामी (डॉ०) सत्यप्रकाश सरस्वती के तत्वाधान में विज्ञान परिषद् इलाहाबाद के सुयोग्य सम्पादक मंडल द्वारा विद्वान लेखकों की बच्चों और बड़ों के लिए सम्पादित व लिखित सचित्र पुस्तकों और एनसाइक्लोपीडिया के विभिन्न खंडों की (जन्हें एन सी आर टी द्वारा पुरस्कृत किया गया) सूची नीचे दी गई है। ये पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी और ज्ञान-वर्धक हैं। ये पुस्तकें पुस्तकायन 2/4240 ए, अंसारी रोड, दरियागंज दिल्ली से प्राप्त की जा सकती हैं।

बाल-ज्ञान विज्ञान साहित्य सचित्र पुस्तकें Rs.

पुस्तक	लेखक	Rs.
हमारा पर्यावरण :	अनिल कुमार शुक्ल	35
मधुमक्खियों की अनोखी दुनिया :	विजय	35
अंटार्कटिका :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	35
भारतीय पुरातत्व विज्ञान	डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव	35
जल कृषि (हाईड्रोपोनिक्स) :	दिनेश मणि	35
लोकोपयोगी रसायन विज्ञान :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
हमारा शरीर और स्वास्थ्य :	डॉ० भानुशंकर मेहता	35
सन्तुलित आहार :	डॉ० विजयहिन्द पाण्डेय, शुभा पाण्डेय	35
भौतिकी के नोबेल पुरस्कार विजेता:	आशुतोष मिश्र	35
ऊर्जा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	25
वैज्ञानिक कृषि :	डॉ० अशोक कुमार	25
जीवों की उत्पत्ति :	विजय	25
कम्प्यूटर :	आशुतोष मिश्र	25
रसायन विज्ञान के नोबेल पुरस्कार विजेता :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
प्रदूषित मृदा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	35
प्राकृतिक घटनाएँ : वैज्ञानिक दृष्टि :	विजय	35
रंग-बिरंगे फल :	दर्शानान्द	35
तारों का अद्भुत् संसार :	आशुतोष मिश्र	50
जीव प्रौद्योगिकी :	मनोज कुमार पटैरिया	35
ईंधन :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	40
भारतीय सभ्यता के साक्षी :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव, गौरेन्द्र नारायण राय चौधरी	35
पानी के रोचक तथ्य :	डॉ० डी० डी० ओझा	35

ज्ञानकोश : बाल विज्ञान एनसाइक्लोपीडिया Rs.

पुस्तक	लेखक	Rs.
पक्षी जगत् :	राजेन्द्र कुमार राजीव'	150
जल-थल जीव :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
कीट पतंगे, सूक्ष्मजीव जगत्:	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
संचार-परिवहन :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
खोज और खोजकर्ता :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
मानव जगत् :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
पेड़-पौधे :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150

बाल ज्ञान विज्ञान सीरीज की पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	Rs.
क्या क्यों कैसे :	हरिदत्त शर्मा	50
क्या क्यों कैसे :	हरिदत्त शर्मा	50
क्या क्यों कैसे :	हरिदत्त शर्मा	50
ज्ञानवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
मनोरंजक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	50
बुद्धवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
हमारा सूर्य :	शरण	35
हमारा चन्द्रमा :	शरण	35
हमारा पृथ्वी :	शरण	35
पर्यावरण : जीवों का आंगन :	प्रेमानन्द चन्दोला	10
अन्तरिक्ष से आने वाला :	सुरजीत	12
रोहित का सपना :	ब्रह्मदेव	10
विज्ञान के खेल :	सन्तराम वत्स्य	12
विज्ञान के पहिए :	सन्तराम वत्स्य	12

विविध

पुस्तक	लेखक	Rs.
प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	325
प्राचीन भारत में रसायन का विकास :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	395

उत्तर-प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आँध्र प्रदेश
के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामायिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफ़ाफ़ा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र यदि किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिंतनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्नस्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु पुस्तक अथवा पत्रिका की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन की दरें निम्नवत् हैं।

भीतरी पूरा पृष्ठ 200.00 रु०, आधा पृष्ठ 100.00 रु० चौथाई पृष्ठ 50.00

आवरण : *द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ* 500.00 रु०।

मूल्य :

आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत : 500 रु० संस्थागत, **त्रिवार्षिक** : 60 रु० : **वार्षिक** 25 रु०

प्रति अंक : 3 रु० 50 पैसे, यह अंक : 7 रु०

प्रेषक : विज्ञान परिषद् प्रयाग,

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद -211002

ISSN : 0373 - 1200

नवम्बर -दिसम्बर 1996

मूल्य : 10 रु०

आचार्य रामदास तिवारी

स्मृति अंक
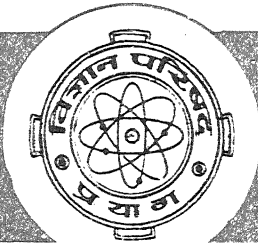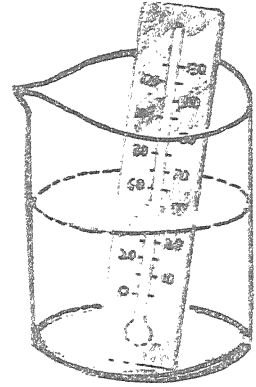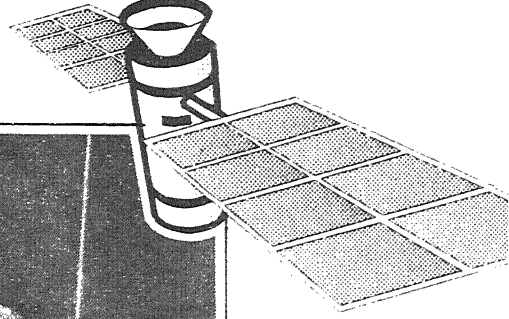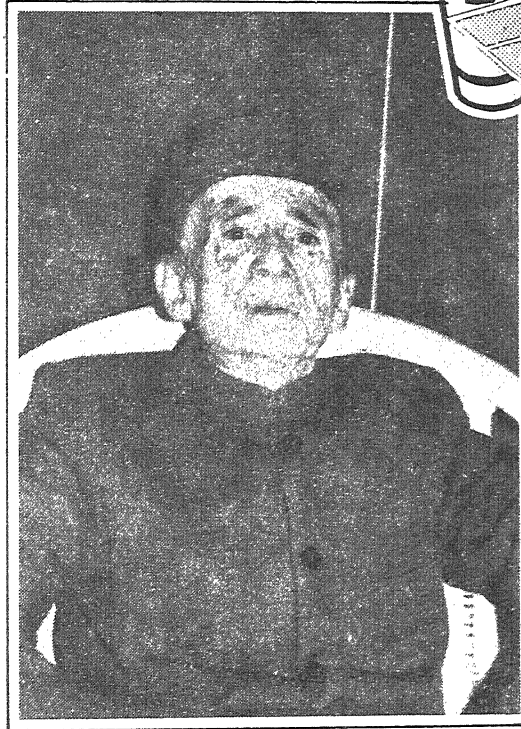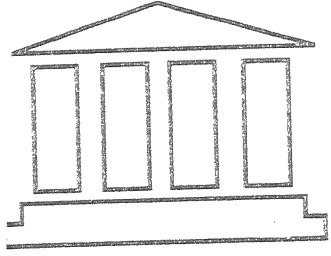
विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913 : विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
नवम्बर-दिसम्बर 1996 : वर्ष 82 अंक 8, 9; मूल्य : यह अंक : 10 रु०
आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत : 500 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 60 रु०, वार्षिक 25 रु०, एक प्रति : 3 रु० 50 पैसे

विज्ञान विस्तार

विज्ञान वक्तव्य—प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ... 1
स्व० प्रोफेसर रामदास तिवारी : एक कर्मठ व्यक्तित्व—डॉ० संत प्रसाद टंडन ... 2
आर० डी० साहब : कुछ यादें— डॉ रमेश चन्द्र कपूर ... 4
मेरे अभिन्न मित्र डॉ० तिवारी— डॉ० रामचरण मेहरोत्रा ... 7
डॉ० रामदास तिवारी की स्मृति में—डॉ० दिव्यदर्शन पन्त ... 8
मेरे परम श्रद्धेय गुरुदेव प्रोफेसर रामदास तिवारी : कुछ संस्मरण—डॉ० राजकुमार बंसल ... 9
आचार्य रामदास तिवारी : अद्भुत व्यक्तित्व—डॉ० ईश्वर चन्द्र शुक्ल ... 11
विज्ञान परिषद् के निर्माता डॉ० रामदास तिवारी—डॉ० शिवगोपाल मिश्र ... 13
मेरे मित्र प्रो० आर० डी० तिवारी—डॉ० राबर्ट काल्वोडा ० ... 16
मेरे गुरु प्रो० तिवारी—डॉ० के० सी० श्रीवास्तव ... 18
विनोदप्रिय रसायनविज्ञानी डॉ० रामदास तिवारी—प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ... 20
विज्ञान परिषद् के 43 वें वर्ष का कार्य-विवरण—डॉ० रामदास तिवारी ... 23
कुछ संस्मरण—प्रो० रामदास तिवारी ... 25
विज्ञान परिषद् के 44 वर्ष—डॉ० रामदास तिवारी ... 27
पेनिसिलिन की कहानी—डॉ० रामदास तिवारी ... 29
उच्च बहुलक या हाई पालीमर—डॉ० रामदास तिवारी ... 32
डॉ० रामदास तिवारी और सहयोगियों द्वारा प्रकाशित शोध पत्र ... 36

प्रकाशक	*सम्पादक*	*मुद्रक*	*सम्पर्क*
डॉ० शिवगोपाल मिश्र	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	अरुण राय	विज्ञान परिषद्
प्रधानमंत्री	*सहायक संपादक*	प्रसाद मुद्रणालय	महर्षि दयानन्द मार्ग
विज्ञान परिषद् प्रयाग	डॉ० दिनेश मणि	7 ए, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद	इलाहाबाद

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय पाठकगण!

(1) 'विज्ञान' का नवम्बर-दिसम्बर 1996 अंक, जो स्वर्गीय डॉ० रामदास तिवारी स्मृति अंक है, प्रस्तुत है। यह अंक आचार्य प्रवर डॉ० रामदास तिवारी जी के व्यक्तित्व के अनुरूप नहीं बन बड़ा है। इसकी खामियों से मैं अवगत हूँ। अतः आपको कमियाँ नजर आयेंगी। किन्तु विज्ञान परिषद् की अपनी कठिनाइयाँ हैं, सीमायें हैं अतएव जैसा भी बन पड़ा, अंक आपके सामने है।

(2) इस अंक के लिए आचार्य तिवारी जी के पुराने शिष्य और सहयोगी डॉ० के० सी० श्रीवास्तव जी ने न केवल अपना संस्मरण सुदूर डेनमार्क से भेजा है, वरन् उन्होंने इस अंक के प्रकाशन के लिए 3000 रु० की एक राशि भी अपने छोटे भाई श्री प्रभुचन्द्र श्रीवास्तव जी के माध्यम से भेजी है, जो स्थानीय सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज क्रे पुस्तकालय में कार्यरत हैं।

स्व० प्रो० तिवारी के एक अन्य विदेशी मित्र रसायनविज्ञानी डॉ० राबर्ट काल्वोडा ने प्राहा (चेकोस्लोवोकिया) से अपना संस्मरण भेजा है। हम डॉ० के० सी० श्रीवास्तव और डॉ० काल्वोडा के अत्यन्त आभारी हैं और उनके आलेख का हिन्दी रूपान्तर प्रकाशित कर रहे हैं।

(3) मैं स्व० आचार्य तिवारी जी के सुपुत्र डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी, वर्तमान अध्यक्ष, रसायन विभाग और परिषद् के वर्तमान प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र का आभारी हूं, जिन्होंने न केवल अपना संस्मरणात्मक लेख दिया, बल्कि कदम-कदम पर मार्गनिर्देश भी दिया। इस अंक के लेखकों के प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापित कर रहा हूँ जिन्होंने कृपापूर्वक समय से अपने आलेख भेज दिए हैं। अपने सहयोगी डॉ० दिनेश मणि के अतिरिक्त मैं डॉ० सुनील दत्त तिवारी और टाइपिस्ट चन्द्रभान सिंह जी का भी आभारी हूँ। अंत में मैं अपने कर्तव्य से च्युत हो जाऊँगा यदि मैं प्रसाद मुद्रणालय के स्वामी श्री अरुण राय के प्रति आभार व्यक्त न करूँ जिनके सहयोग के बिना तो यह अंक सामने आता ही नहीं।

(4) कुछ अच्छे समाचार हैं। पिछले दिनों प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी जी एक दुर्घटना में बुरी तरह घायल हो गए थे, पर अब पूर्णरूपेण स्वस्थ हैं। डॉ० शिवगोपाल मिश्र जी अस्वस्थ चल रहे थे किन्तु अब स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं। इस बीच परिषद् का कार्य भी वे पूर्ववत् घर से कर रहे हैं।

श्री शुकदेव प्रसाद जी को आत्माराम पुरस्कार प्रदान कर केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा ने उन्हें उनकी विज्ञान लेखन की सेवाओं के लिए सम्मानित किया है। श्री शुकदेव जी को बहुत-बहुत बधाई।

(5) जोधपुर से डॉ० रामगोपाल जी (संयुक्त निदेशक, रक्षा प्रयोगशाला) ने सूचना दी है कि उन्होंने जोधपुर शाखा में तीन दर्जन सभ्य (आजीवन, त्रिवार्षिक और वार्षिक) और जोड़े हैं। हमें उनके सदस्यता शुल्क भी प्राप्त हो गए हैं! डॉ० रामगोपाल जी को साधुवाद।

परिषद् की विभिन्न शाखाओं के पदाधिकारियों से मेरा विनम्र अनुरोध है कि अपनी शाखा की गतिविधियों की रिपोर्ट वे हमें 'विज्ञान' में प्रकाशनार्थ भेजते रहें।

इस अंक के संबंध में पाठकों के विचारों का स्वागत है। दीपावली का महापर्व आप सभी के लिए शुभ हो, मंगलमय हो और आपके लिए ढेर सारी खुशियाँ लाये।

--**प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव** ■■■

स्व० प्रोफेसर रामदास तिवारी : एक कर्मठ व्यक्तित्व

❑ डॉ० संत प्रताद टंडन

15 बैंक रोड, इलाहाबाद-2

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रोफेसर रामदास तिवारी का निधन 18 मार्च, सन् 1996 को एक लम्बी बीमारी के बाद हो गया। मृत्यु के समय उनकी आयु लगभग 78 वर्ष की थी। जीवन के अन्तिम कई महीने वे अपने रोग के कारण बड़े कष्ट में रहे, और उनकी दृष्टि से उनके निधन ने उन्हें कष्टों से छुटकारा दिया, किन्तु माया-मोह में बंधे उनके परिवार के सदस्यों, मित्रों, और परिचितों के लिए उनका इस संसार से प्रयाण शोकदायक है। विचित्र विडम्बना है। हम सब जानते हैं कि मनुष्य अमर नहीं है और न यह संसार उसका स्थायी निवास है, फिर भी माया-ममता में हम ऐसा बँधे हैं कि अपने प्रियजनों के इस संसार से विदा होने पर असह्य वेदना अनुभव करते हैं। बिरले ही आध्यात्मिक व्यक्ति होंगे जो रागरहित हैं और ऐसे अवसरों पर अपने मन को शान्त रख सकने में समर्थ होते हैं।

मेरा और रामदास जी का सम्बन्ध बहुत वर्षों का था। जब मैं सन् 1938 में प्रथम बार रसायन विभाग में एक अस्थायी पद पर अध्यापक के रूप में आया तब रामदास जी एम० एस-सी० कक्षा (द्वितीय वर्ष) के छात्र थे। वह उस वर्ष विभाग के रसायन परिषद् के मंत्री भी थे, और उस अधिकार से उन्होंने उस वर्ष कानपुर तथा लखनऊ के कुछ औद्योगिक क्षेत्रों की यात्रा का आयोजन किया था। इस यात्रा में विद्यार्थियों के साथ मैं और कार्बनिक रसायन के प्रोफेसर शिखी भूषण दत्ता भी सम्मिलित हुये थे। इस यात्रा में मेरा रामदास जी के साथ बहुत निकट का सम्पर्क रहा और उनकी संगठन क्षमता तथा कर्तव्यनिष्ठा से हम सभी प्रभावित हुये। इसके बाद सन् 1942 में मैं स्थायी रूप से रसायन विभाग में अध्यापक हो गया और कुछ ही समय बाद रामदास जी विभाग में अध्यापक हो गये। इस प्रकार हम दोनों का सम्बन्ध घनिष्ठ होता गया। रामदास जी में जहाँ एक ओर कार्यकुशलता और कर्तव्यनिष्ठा थी वहीं दूसरी ओर उनका स्वभाव बड़ा मधुर था। जो भी उनके सम्पर्क में आता वह थोड़े ही समय में उनके स्वभाव से आकर्षित होकर उनका मित्र हो जाता था। मैं आयु में उनसे कुछ बड़ा था। हम दोनों का परस्पर का भातृस्नेह अन्त तक बना रहा। मेरी एक पुत्री किरण रेखा ने एम० एस-सी० परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उन्हीं के संरक्षण और निर्देशन में विभाग में अन्वेषण कार्य भी किया और डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। रामदास जी में एक बड़ा गुण यह भी था कि जो भी उनके पास किसी प्रकार की सहायता के लिए पहुँचता वह उसकी सहायता यथाशक्ति करते थे। अपने इसी गुण के कारण वह विद्यार्थियों तथा अपने सहयोगियों और मित्रों में बड़े प्रिय थे।

रामदास जी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे, और अपने विषय के अच्छे विद्वान थे। वनस्पतियों में उपस्थित प्राकृतिक रासायनिक तत्वों को प्राप्त करने और उनके गुणों तथा उपयोगिताओं का विश्लेषण करने की दिशा में उनका शोधकार्य बड़े महत्व का रहा है। इसके अतिरिक्त कार्बनिक रसायन के अन्य कई क्षेत्रों में भी उनका, अन्वेषण कार्य बड़ा प्रामाणिक माना जाता है। अनेक विद्यार्थियों ने उनके निर्देशन में कार्बनिक रसायन के विभिन्न अंगों पर अन्वेषण कर डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की है। उनके शोध से सम्बन्धित

मौलिक लेख बड़ी संख्या में देश-विदेश की प्रतिष्ठत शोध-पत्रिकाओं में छपे हैं। वे उच्च कोटि के अध्यापक और प्रभावशाली वक्ता थे। जिन दिनों मैं विभाग का अध्यक्ष रहा, मुझे उनका पूरा सहयोग विभाग के कार्य-संचालन में मिलता रहा। मेरे अध्यक्ष पद से अवकाश ग्रहण करने के बाद सन् 1971 में अध्यक्ष के रूप में रसायन विभाग का समस्त भार और कार्य-संचालन का उत्तरदायित्व उन्हीं के कंधों पर डाला गया था। उन्होंने अपने इस कर्तव्य का निर्वहन बड़ी योग्यता और निष्ठा से सम्पन्न किया। रसायन विभाग की अच्छी प्रगति उनके कार्यकाल में हुई। विश्वविद्यालय की संचालन नीति में भी उनका सदा महत्व का योगदान रहा।

कार्बनिक रसायन के क्षेत्र में रामदास जी की अच्छी ख्याति थी। वे कई वर्षों तक भारतीय विज्ञान कांग्रेस एशोसिएशन की कार्य-समिति के सम्मानित सदस्य भी रहे, और इसके एक अधिवेशन में रसायन खण्ड के मनोनीत सभापति भी हुये। इसके, अतिरिक्त वे अन्य कई प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्थाओं के भी सदस्य रहे। रामदास जी के निधन से कार्बनिक रसायन के क्षेत्र को काफी क्षति पहुँची है। मेरा विश्वास है कि आने वाली पीढ़ी उनके कार्यों से प्रेरणा प्राप्त करेगी, और उनके निधन से जो रिक्तता उत्पन्न हुई है उसकी पूर्ति करेगी।

मैं, अपने इस अभिन्न मित्र और सहयोगी की स्मृति में अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करता हुआ ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह उन्हें सद्गति प्रदान करें, और उनकी आत्मा को शान्ति दें तथा हम सब को कर्तव्यपालन की शक्ति दें।

■■■

आर० डी० साहब : कुछ यादें

❑ डॉ० रमेश चन्द्र कपूर

प्लाट ए-4, 8 रेजीडेंसी रोड
जोधपुर- 342003 (राज०)

तीस के दशक में जब मैं कानपुर में जी० एन० के० स्कूल में पढ़ता था तो वहाँ पर आर० डी० तिवारी का नाम बड़े गर्व के साथ लिया जाता था। हम लोगों ने सुन रखा था कि आर० डी० साहब इसी स्कूल के प्रतिभाशाली विद्यार्थी थे और बाद में अपनी प्रतिभा के बल पर प्रयाग विश्वविद्यालय में नाम कमा रहे थे। जब मैं दसवीं कक्षा में पढ़ रहा था उसी काल में मेरे जेष्ठ भ्राता नगर के बी० एन० एस० डी० कॉलेज में पढ़ते थे। एक दिन घर आकर उन्होंने बताया कि आज हमारे कॉलेज में प्रयाग विश्वविद्यालय से आर० डी० तिवारी साहब आए थे और रसायन पर रोचक वार्ता दी थी। श्री हीरा लाल खन्ना उस कॉलेज के प्रिंसिपल थे। उन्होंने आर० डी० साहब की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की थी। यह सब सुनकर मेरी उत्सुकता और बढ़ी।

मुझे 1942 में आर० डी० साहब के प्रथम दर्शन प्रयाग में हुए थे, जब मैं वहाँ बी० एस-सी० की कक्षा में पढ़ने गया था। वे उस समय रसायन में शोध तथा अध्यापन दोनो ही कर रहे थे। रसायन और वनस्पति विज्ञान विभागों के बीच में गैस प्लांट स्थित था जिसके प्रांगण में करौंदे का वृक्ष लगा था। करौंदे का स्वाद लेने मैं वहाँ पर अकसर पहुँच जाता था। वहीं रसायन विभाग की इमारत से लगा एक कमरा था जहाँ काँच के रासायनिक उपकरणों की भरमार थी। मैं अपने सहपाठी कैलाश नाथ कक्कड़ के साथ एक दिन हिम्मत बाँध कर उस कमरे में झाँकने गया। सफ़ेद ओवर आल पहने एक नवयुवक दिखाई दिया जो रासायनिक द्रवों को एक फनल में हिलाकर रासायनिक क्रियाओं के अवलोकन में तन्मय था कुछ बातचीत आरम्भ हुई और हम लोगों ने आर० डी० तिवारी का नाम लिया। नवयुवक ने कहा- "आर० डी० तिवारी तो मैं ही हूँ।" यह संवाद हम लोगों के आने-जाने का माध्यम बन गया।

आर० डी० साहब की प्रयाग विश्वविद्यालय में नियुक्ति के कुछ ही काल में उन्होंने शिक्षक के रूप में कीर्ति पा ली थी। जहाँ तक मुझे याद है, 1946 में वे प्राक्टर नियुक्त हो गये थे। विद्यार्थियों के साथ इस रूप में पारस्परिक क्रिया बहुत काल तक चली। उस समय उनका कमरा विज्ञान संकाय के दफतर के सम्मुख था। वहीं पर विद्यार्थी आर० डी० साहब का सामना करते थे। कभी-कभी दण्ड भी देना आवश्यक हो जाता था जिसे विद्यार्थियों ने सदैव आदर सहित स्वीकार किया। वैसे आर० डी० साहब का अपने विद्यार्थियों पर अपार स्नेह था।

1962 में प्रयाग छोड़ने के पश्चात् प्रयाग से मेरा सम्बन्ध टूट-सा गया था। बिरले ही वहाँ आना-जाना होता था। इस कारण मेरे आर० डी० साहब के संस्मरण उसी काल तक सीमित हैं। चालीस के दशक में विज्ञान संकाय के कुछ विद्यार्थियों की विशाल बिरादरी संगठित करने की सूझी, जिसकी सदस्यता उन्हीं तक सीमित थी जो बी० एस-सी० परीक्षा में फेल हो चुके हैं। डॉ० सत्यप्रकाश (स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती) के अनुज श्री प्रकाश तथा प्रोफेसर प्यारे मोहन के सुपुत्र श्री अरविन्द मोहन बिरादरी में प्रमुख थे। एक दिन स्थानीय "लीडर" समाचारपत्र में समाचार प्रकाशित हुआ कि उस दिनांक को विशाल बिरादरी की बैठक सायंकाल विजयानगरम हाल के परिसर में होगी। आर० डी० साहब

चौकन्ने हो गये और निर्देश दिया कि ऐसी अजूबा बैठक नहीं होगी। बिरादरी में खलबली मच गई और सब रफूचक्कर हो गये।

सन् बयालिस के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के फलस्वरूप विश्वविद्यालय की विद्यार्थी यूनियन पर रोक लगा दी गई थी, जो विश्वयुद्ध के अंत तक कायम रही। 1946 में यूनियन के गठन की प्रक्रिया आरम्भ हुई। उस समय पाकिस्तान आंदोलन चरम सीमा पर था। भारत के कोने-कोने में अधिकांश मुस्लिम समुदायों में यही सुनाई देता था-"बनके रहेगा पाकिस्तान, बँट के रहेगा हिन्दुस्तान"। प्रयाग विश्व-विद्यालय के तात्कालीन कुलीन कुलपति डॉ० तारा चंद के पास भी कुछ मुस्लिम विद्यार्थी यह माँग करने जा धमके कि अलग मुस्लिम स्टूडेंट यूनियन बनाने की युनिवर्सिटी अनुमति दे। दबाव में माँग मान ली गई। फलस्वरूप विद्यार्थी समुदाय में रोष छा गया। यूनियन अध्यक्ष (संभवतः) प्रकाश उपाध्याय ने गर्जना की कि कुलपति महोदय युनियन में आकर अपने निर्णय के औचित्य को समझाएँ। साथ में कटाक्ष भी किया कि कुलपति जी को तो मुस्लिम यूनियन की बात माननी ही थी, क्योंकि उनका तो नाम ही तारा चाँद है (याद रहे कि मुस्लिम लीग के झंडे में तारा तथा चाँद उपस्थित थे जो आज के पाकिस्तान के झंडे में भी है) अंततः डॉ० तारा चंद यूनियन हाल में आए और विद्यार्थियों को समझाया कि उन्होंने उन मुस्लिम छात्रों को केवल एक क्लब बनाने की अनुमति दी थी। उस कठिन समय में भी आर० डी० साहब कुलपति की सुरक्षा में उनके बाजू में उपस्थित थे।

एक पारिवारिक चित्र

आर० डी० साहब के गुणों का बखान करना असंभव है, परंतु उनके एक गुण की चर्चा करना उचित होगा। अपने मित्र या शरण में आए अनजान के लिये भी वे कुछ भी कष्ट सहने के लिये तत्पर रहते थे। इस प्रकार के इतने प्रसंग मेरी आँखों के सामने हैं कि उन सभी की चर्चा करना संभव नहीं है।

सभी वर्गों के लोग आर० डी० साहब का सम्मान करते थे। 1948 में एक दिन उनके घर पर पहुँचने पर देखा कि उनका कमरा अति विशिष्ट लोगों से खचाखच भरा था, जिसमें इतिहास के प्रसिद्ध आचार्य राम प्रसाद त्रिपाठी; काशी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर भरद्वाज तथा अधिष्ठाता प्रोफेसर श्री रंजन शामिल थे। चाय के प्याले सभी के हाथों में थे। इसी बीच प्रोफेसर त्रिपाठी ने किसी संदर्भ में कहा कि "जो मज़ा पूड़ी और घुइयाँ की सब्जी में है, वह किसी और खाने में नहीं है।" चारों ओर हँसी का ठहाका लग गया।

कुछ ही समय बाद प्रोफेसर त्रिपाठी सागर विश्वविद्यालय के कुलपति के पद को सम्हालने के लिये आमंत्रित किये गये। आर० डी० साहब ने उनके सम्मान में एक पार्टी का आयोजन किया। अनेक गणमान्य लोग उसमें आमंत्रित थे और मैंने भी उसमें घुसपैठ कर रखी थी। मुझे अच्छी तरह याद है कि किसी संदर्भ में त्रिपाठी जी ने प्रयाग के तात्कालिक कुलपति के सामने कहा था- "त्रिपाठी किसी के कंधे पर चढ़कर आम नहीं तोड़ता, वह अपने बलबूते पर भरोसा रखता है।" एक अन्य पार्टी में प्रोफेसर रंजन साहब

का सामना आर० डी० साहब तथा उनके दो अभिन्न मित्रों के साथ हो गया। रंजन साहब बोले-"मुझे इनसे बड़ा डर लगता है। पता नहीं किस समय किसकी टोपी उतार दें।"

नेशनल केडेट कोर में भी आर० डी० साहब ने कुछ समय बड़ी आन से बिताया। एक बार उनकी कम्पनी में दो सार्जन्ट कैडेट थे। दोनों का नाम टंडन था। समस्या थी कि दोनों की परेड के समय कैसे अलग पहचान की जाय। उनमें एक विशुद्ध शाकाहारी तथा दूसरा आमिष भोजी था। आर० डी० साहब ने फौरन कहा-"यह तो बहुत आसान है। एक को बुलाओ 'प्याज वाला टंडन' और दूसरे को 'बिना प्याज का टंडन'।"

आर० डी० साहब का अधिकांश जीवन काल प्रयाग में बीता। किन्तु उन्होंने अपनी इंटरमीडिएट स्तर तक की शिक्षा कानपुर में प्राप्त की थी और इस प्रकार उनका शैशव काल कानपुर में ही बीता। कानपुर की चर्चा वे बड़े ही चाव से करते थे। कानपुर में किस हलवाई के यहाँ सर्वोत्तम मिठाई मिलती है, किस होटल का बाबर्ची मशहूर है, यह सब उनसे अच्छी प्रकार मालूम किया जा सकता था। कानपुर के 'हवा बाबू' को किस धारा में सात वर्ष की कैद मिली थी, यह वे तुरन्त बता सकते थे। बी० एन० एस० डी० कॉलेज के प्रिंसिपल हीरा लाल खन्ना कानपुर के रईसों से अपने कॉलेज में किस खूबी से निःशुल्क पंखे लगवा लिया करते थे, इसका गुर आर० डी० साहब को पता था।

कानपुर के सुप्रसिद्ध कवि "सनेही" जी की हर कवि सम्मेलन में अध्यक्ष पद पर बैठने की प्रबल इच्छा रहती थी। आर० डी० साहब इसके अनेक दृष्टांत जानते थे। एक समय सुश्री महादेवी वर्मा जी की अनुपस्थिति में कुछ समय के लिये जब "सनेही" जी सम्मेलन के अध्यक्ष बने तब क्या हुआ इस प्रसंग को आर० डी० साहब ने रसपूर्ण ढंग से सुनाया था। उनके स्कूल के एक सहपाठी श्री रामलाल थे जो उनके अच्छे मित्र भी थे। उनके अनेक किस्से आर० डी० साहब को याद थे। बताया करते थे कि एक परीक्षा में कोई नकल करता पकड़ा गया था जिससे उस समय स्कूल में सनसनी फैल गई। परन्तु रामलाल जी हेडमास्टर के कमरे में पहुँच कर दहाड़े-"हेड मास्टर साहब आपके स्कूल में हमेशा नकल हुई है, हो रही है और होती रहेगी।" आर० डी० साहब की स्मरण शक्ति अत्यंत तीव्र थी। वे पुराने-पुराने ड्रामों या सिनेमा के संवादों को इतना सिलसिलेवार सुनाया करते थे जैसे कि अभी-अभी याद करके आए हों। इनमें सोहराब मोदी के द्वारा बोले गए संवादों का विशेष स्थान होता था। यही नहीं, उन सभी की हास्यपद "पेरोडी" ऐसे बनाकर सुनाते थे कि हँसते-हँसते पेट फूल जाता था।

बचपन में आर० डी० साहब को एक बार एक पागल कुत्ते ने काट खाया। उन दिनों कुत्ते के काटे के इंजेक्शन हिमांचल प्रदेश के कसौली नामक स्थान में ही लगाये जाते थे। बस क्या था, आर० डी० साहब कसौली के लिये चल पड़े। पास में टिकट के पैसे भी न थे। कहीं पकड़े गये तो कह दिया कि वे इंजन ड्राइवर हैं। टिकट चेकर उन्हें इंजन पर ले गये और कहा- "इंजन चला कर दिखाओ।" आर० डी० साहब ने तुरंत अनेक पद्धतियों को गिनाकर पूछा कि किसके द्वारा चालन करूं। टिकट परीक्षक मात खा गया और उन्हें जाने दिया। इस प्रकार की अनेक घटनाओं का उल्लेख वे चाय की मेज पर करते रहते थे और हम सभी को हँसते-हँसाते रहते थे। पर अब उनकी आवाज़ कभी भी सुनने को नहीं मिलेगी। केवल उनकी यादें ही शेष हैं। और इन्हीं यादों में आर० डी० साहब सदैव जीवित रहेंगे। ■■■

(पृष्ठ 8 का शेष)

रामदास जी के निधन से इलाहाबाद विश्वविद्यालय और उसके रसायन विभाग ने एक योग्य रसायनशास्त्री, प्रभावशाली अध्यापक और निर्भीक प्रशासक सदा के लिये खो दिया, जिसके रिक्त स्थान की पूर्ति बहुत दिन तक नहीं हो पावेगी।

■■■

मेरे अभिन्न मित्र डॉ० तिवारी

❑ डॉ० रामचरण मेहरोत्रा

4/682, जवाहर नगर
जयपुर-302004 (राजस्थान)

अपने परम स्नेही मित्र और सहोदर भाई रामदास तिवारी के बारे में कुछ भी लिखना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। मुझसे उम्र में 5 वर्ष बड़े, शिक्षा में भी मुझसे कई वर्ष के अग्रज होते हुए भी जिस सहिष्णुता से उन्होंने अपने से भी पहले सन् 1944 में मेरी स्थायी प्रवक्ता की नियुक्त को लिया- उससे उनकी विशाल हृदयता का जो प्रभाव हृदय पर पड़ा वह आगामी 50-52 वर्षों की प्रगाढ़ मित्रता से स्पष्ट है।

सौभाग्य से विभाग में भी हम दोनों को एक ही कमरा बैठने को मिला। रामदास जी बड़े ही व्यवस्थित व्यक्ति थे और उनकी हर पुस्तक, कापी, लेखन सामग्री बिल्कुल सजी-सी रहती थी और मैं बिल्कुल फक्कड़, किसी भी वस्तु को यथास्थान रखने से कोसों दूर-लेकिन रामदास जी ने मुझसे कभी शिकायत नहीं की और बड़े स्नेह से मेरी अव्यवस्था को भी सहर्ष स्वीकार करते रहे। कई पुस्तिकायें भी साथ में लिखी। खोज में वह मुझसे 4 वर्ष के अग्रज थे। जब मैंने सौभाग्यवश अपने विद्यार्थियों के प्रश्नों का हल ढूढ़ते हुए अपशोषक चिन्हकारकों पर अपना पहला स्वतंत्र अनुसंधान किया, तो न मालूम क्यों मन में इच्छा हुई कि उसे उनके और अपने दोनों के स्वयं स्वीकृत "चाचा" डॉ० हीरालाल दुबे के साथ ही प्रकाशित किया जाए।

मेहरोत्रा, तिवारी और दुबे (चाचा) का यह तिगुडडा विश्वविद्यालय क्या, इलाहाबाद में प्रसिद्ध हो गया था। वे दोनों मेरे मित्र जब कटरे से 2-3 मील साइकिल पर अहियापुर में मेरे मकान आते थे तो निचली मंजिल से ही मेरी पत्नी को एक बाल्टी शरबत बनाने की आज्ञा देते थे। कितने सुखद थे वे दिन जब यह तिगुड्डा हर स्थान को साथ ही साथ जाता था। इलाहाबाद में उस समय की वार्षिक प्रदर्शिनी में तो हम लोगों की शैतानियों की तो बहुत लोगों को याद है।

प्रोफेसर रामदास जी बराबर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में ही रहे। मैं लन्दन, लखनऊ, गोरखपुर, जयपुर आदि स्थानों पर घूमता रहा, परन्तु हमारी मित्रता की प्रागढ़ता में कभी कोई अन्तर नहीं आया। 52 साल के दीर्घ काल में कभी एक बार भी किंचित भी मनमुटाव न होना असम्भव सा प्रतीत होते हुए यथार्थ रूपी सत्य रहा है।

दिसम्बर 1944 में मेरे विवाह के समय बरात में बरेली से वापस आते हुए अपने गुरु डॉ० सत्यप्रकाश जी के साथ विनोद व्यवहार, कितने बार आम खाने फतेहपुर जाते हुए बिना टिकट डॉ० साहेब को भी साथ ले जाने का मजाक, नेशनल अकादमी ऑफ साइंसेज पर एकाधिपत्य के विरोध में विद्रोह, सभी कार्य कलापों में "पण्डित जी" (डॉ० रामदास) हम सब के आगे रहते थे और नेता के रूप में हमारा मार्गदर्शन करते रहते थे।

पिछले तीन चार वर्षों से कुछ अस्वस्थता के कारण उतने प्रसन्न तो नहीं दिखते थे परन्तु उनकी हँसी का फब्बारा फूट ही पड़ता था। सबके प्रति शुभचिन्तक, सर्वप्रिय अध्यापक, गूढ़ चिन्तक, सब की सेवा में सदैव तत्पर-ऐसे व्यक्ति बिरले ही होते हैं। और मैं तो अपने सौभाग्यपूर्ण अनुभवों में रामदास जी की मित्रता को सर्वोपरि मानता हूँ।

■ ■ ■

डॉ० रामदास तिवारी की स्मृति में

❑ डॉ० दिव्यदर्शन पन्त

अवकाशप्राप्त अध्यक्ष, वनस्पति विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-2

जब मैं 1945 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग में प्रवक्ता (लेक्चरर) के पद पर नियुक्त होकर इलाहाबाद आया तो मेरे बड़े भाई डॉ० शिवदर्शन पन्त ने अपने मित्र डॉ० जमुना दत्त तिवारी जी के निवास स्थान पर मेरे प्राथमिक निवास की व्यवस्था कर दी थी। उस समय डॉ० जमुना दत्त तिवारी, रसायन विभाग के एक वरिष्ठ एवं प्रख्यात प्रवक्ता थे और उनके घर पर रसायन विभाग के प्रायः सभी अध्यापक आया-जाया करते थे। साथ ही मैं भी रसायन विभाग में अपने अवकाश के समय जाता रहता था, और वहाँ की चाय पीता था। इस प्रकार मेरा परिचय रसायन विभाग के प्रायः सभी अध्यापकों से हो गया। लगभग समान आयु होने के कारण डॉ० राम दास तिवारी, डॉ० हीरा लाल दुबे, डॉ० राम चरण मेहरोत्रा, डॉ० रमेश चन्द्र कपूर, डॉ० अरुण कुमार डे, डॉ० एस० पी० मुश्रान, डॉ० हीरा लाल निगम से मेरी मित्रता हो गई। मुझसे बहुत बड़े होने पर भी डॉ० जमुना दत्त तिवारी डॉ० सत्यप्रकाश और मिलिटरी साइन्स के कर्नल तिवारी इस मित्र मण्डली के सदस्य हो गए। हम लोगों की घनिष्ठता धीरे-धीरे बढ़ती गई।

सन् 1966 में मैं वनस्पति विज्ञान में प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष के पद पर नियुक्त हो गया। उसके कुछ ही समय बाद डॉ० रामदास जी भी रसायन विभाग के प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष बने। हम दोनों कुछ दिनों साथ-साथ इलाहाबाद विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी के सदस्य भी रहे। मेरे विज्ञान संकाय के संकायाध्यक्ष पद के कार्य काल पूरे होने के बाद रामदास जी कुछ समय के लिये संकायाध्यक्ष भी रहे। वे बहुत समय तक सहायक प्राक्टर भी रह चुके थे।

रामदास जी एक निर्भीक सत्यवादी और स्पष्ट वक्ता तथा न्यायप्रिय व्यक्ति थे। उनकी हँसी-मज़ाक करने की आदत थी, जिसमें उनकी भाषा कभी-कभी सभ्य समाज की निर्धारित सीमा से थोड़ा बाहर निकल जाती थी, जिसे मैं 'राम दासी भाषा' कहता था, परन्तु यह बात उनकी स्पष्टवादिता की द्योतक थी। सभी मित्र इसको समझते थे।

डॉ० रामदास तिवारी को डॉ० नीलरत्न धर 'पण्डित' के नाम से सम्बोधित करते थे और डॉ० रामदास जी रसायन शास्त्र, विशेष कर कार्बनिक रसायन के अच्छे पण्डित थे और उनके सभी विद्यार्थी उनके व्याख्यानों और अध्यापन की बहुत प्रशंसा करते थे।

रामदास जी हिन्दी भाषा में व्याख्यान और लेखन को विशेष महत्व देते थे। रसायन विभाग में डॉ० सत्यप्रकाश और डॉ० रामदास जी ने इस दिशा में पहले कदम उठाए और हिन्दी में व्याख्यान देना आरंभ किया और कराया। दोनों ही लोग 'विज्ञान परिषद्' के भी बड़े हितैषी और कार्यकर्ता थे, जिन्होंने विज्ञान परिषद् को बहुत आगे बढ़ाया।

मेरी धर्मपत्नी डॉ० राधा पन्त जब 1945 में प्रयाग आईं तब वह रसायन विभग में बायोकैमिस्ट्री (जीव रसायन) की बी० एस-सी० (विशेष कोर्स) की व्याख्याता नियुक्त हुई थीं। हम दोनों शीघ्र ही रामदास जी के मित्र हो गये और बहुधा हम दोनों रामदास जी के निवास पर या वह हमारे निवास पर आते-जाते रहते थे। दोनों ही जगह हम लोगों का 'काफी-पान' होता था जिसमें रामदास जी के मज़ाक और किस्सों की चर्चा रहती थी।

(शेष पृष्ठ 6 पर)

मेरे परम श्रद्धेय गुरुदेव प्रोफेसर रामदास तिवारी : कुछ संस्मरण

❑ डॉ० राजकुमार बंसल

एसोशियेट प्रोफेसर
रसायन विभाग, राजस्थान
विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

प्रोफेसर रामदास तिवारी जी के निर्देशन में मैंने वर्ष 1965-68 तक शोध कार्य किया तथा डी० फिल० की उपाधि प्राप्त की। इससे पूर्व 1963-65 में उन्होंने एम० एस-सी० में रासायनिक क्रियाविधि विषय पढ़ाया। इस अवधि में अनेक अवसरों पर उनके पांडित्य, सहृदयता, मानवीय संवेदनशीलता, अनुशासनप्रियता तथा अध्यापन- अध्ययन के प्रति समर्पण की भावना ने मुझ पर अमिट छाप डाली, जिसने मेरे जीवन को एक निश्चित दिशा प्रदान की।

श्रेष्ठ अध्यापक

प्रोफेसर तिवारी जी अपने विषय के प्रकाण्ड विद्वान थे। वे 66 वें रासायनिक क्रियाविधि सदृश गूढ़ विषय को अत्यधिक तन्मयता तथा सरल तरीके से पढ़ाते थे। यही कारण था कि उनकी कक्षा में छात्रों की उपस्थिति शत-प्रतिशत रहती थी। उनके अनुशासन की धाक थी- एक मिनट भी विलम्ब से आने पर उनकी कक्षा में प्रवेश मिलने का प्रश्न ही नहीं था। यही कारण था कि सभी छात्र समय के पूर्व ही आकर अपना स्थान ग्रहण कर लेते थे।

मानवीय संवेदनशीलता

वर्ष 1965 में एम० एस--सी० उत्तीर्ण करने के पश्चात् सौभाग्यवश मुझे प्रोफेसर तिवारी जी के निर्देशन में शोधकार्य करने की अनुमति मिल गई। परन्तु कुछ समय पश्चात् मेरे सामने आर्थिक समस्या खड़ी हो गई। उसी वर्ष सितम्बर में भारत-पाक युद्ध छिड़ गया, जिसके कारण वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद् C.S.I.R. की शोध छात्रवृत्तियाँ काफी विलम्ब से दी गई। जब मैंने अपनी आर्थिक कठिनाई का प्रोफेसर तिवारी जी से जिक्र किया तो उनका संवेदनशील हृदय विचलित हो उठा। उन्होंने काफी प्रयत्न कर मेरे लिये कुछ आर्थिक सहायता का प्रबन्ध किया ताकि छात्रवृत्ति प्राप्त होने तक मेरा कार्य चलता रहे। उस दिन मुझे ज्ञात हुआ कि ऊपर से अति कठोर दिखाई देने वाले प्रोफेसर तिवारी अन्दर से कितने सहृदय तथा संवेदनशील हैं।

अनुशासनप्रिय किन्तु सहृदय

प्रोफेसर तिवारी जी में अनुशासनप्रियता तथा सहृदयता का अनूठा सामंजस्य था। घटना वर्ष 1967 की है। शोधकार्य करते समय मेरी रुझान विद्यार्थी राजनीति की ओर होने लगी तथा एक बार बिना उनकी अनुमति के मैं कानपुर विद्यार्थी-सम्मेलन में चला गया। लौटने पर मुझे अपनी बैंच पर उनका बन्द लिफाफा मिला जिसमें मुझे उनसे तुरन्त मिलने का निर्देश था। मिलने पर पहले तो वे बड़े रुष्ट हुए, परन्तु कुछ समय पश्चात् ही वे पिता-तुल्य आत्मीय भाव से बोले, भाई तुम गरीब परिवार से आये हो, मैं तुम्हारी जगह होता तो अपना शोधकार्य जल्दी से जल्दी पूरा कर सर्विस प्राप्त करने का प्रयत्न करता। उनके इस कथन से क्षण भर में ही तनाव-

पूर्ण वातावरण आत्मीय वातावरण में बदल गया। बाद में जब मैं जी-जान से अपना कार्य समाप्त करने में जुट गया तो उन्होंने बड़े स्नेहासिक भाव से अन्य शोध सहयोगियों के सामने बंसल को एक बार कहना ही पर्याप्त रहा 'कह कर' मेरी प्रशंसा की। कितना निर्मल हृदय था प्रोफेसर तिवारी जी का।

हिन्दी प्रेमी

प्रोफेसर तिवारी जी का हिन्दी भाषा के प्रति अत्यधिक लगाव था। परन्तु यह लगाव केवल दिखावा न होकर रचनात्मक था। उनका दृढ़ विश्वास था कि विज्ञान की उच्चतम शिक्षा भी हिन्दी भाषा के माध्यम से सम्भव है। वर्ष 1967 की ही घटना है। प्रयाग विश्वविद्यालय में विद्यार्थी संगठन आन्दोलन कर रहे थे कि स्नातक पाठ्यक्रम से अनिवार्य अँग्रेजी समाप्त की जाये। उन्होंने मुझे आदेश दिया कि तुम अपना शोध-प्रबन्ध हिन्दी भाषा में लिखोगे जो किसी विज्ञान विषय में हिन्दी माध्यम में प्रस्तुत प्रथम शोध प्रबन्ध होगा। परन्तु उन्होंने केवल आदेश देकर अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं समझ ली, अपितु इस कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए उन्होंने मुझे हर प्रकार की सहायता तो उपलब्ध कराई ही, साथ ही समय-समय पर उत्साहवर्धन भी करते रहे। उन्होंने परम श्रद्धेय स्व० प्रोफेसर सत्यप्रकाश जी से भी निवेदन किया कि वे मुझे इस कार्य में उचित मार्ग-दर्शन दें।

मेरी मौखिक परीक्षा के समय उन्होंने विज्ञान संकाय के अनेक प्रोफेसरों को आमंत्रित किया। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से प्रोफेसर फूलदेव सहाय वर्मा मौखिक परीक्षा लेने आये थे जो स्वयं विज्ञान के साथ ही हिन्दी के भी प्रकाण्ड विद्वान थे। जब परीक्षा के समय प्रोफेसर वर्मा ने यह कहा- "मैंने पहली बार ऐसा शोध-प्रबन्ध देखा है, जिसमें आधुनिक तकनीकों द्वारा प्राप्त शोध-परिणामों को सरल तथा ग्राह्य हिन्दी माध्यम में प्रस्तुत किया गया है" तो प्रोफेसर तिवारी का चेहरा गर्व तथा प्रसन्नता से खिल उठा। जैसे उनकी अपनी ही साधना सफल हो गई हो।

दूरदर्शी मार्गदर्शक

प्रोफेसर तिवारी जी यह चाहते थे कि उनके शिष्य भी उनकी भाँति कर्तव्यनिष्ठ बनें तथा सतत् ज्ञान-अर्जन में लगे रहें। वर्ष 1968 में मेरी नियुक्ति जोधपुर विश्वविद्यालय में व्याख्याता के पद पर हो गई। प्रयाग छोड़ने से पूर्व जब मैं प्रोफेसर तिवारी जी से आशीर्वाद लेने गया तो वे बोले, "तुम जोधपुर पहुँच कर दो काम करना, मॉरिसन तथा बॉयड द्वारा लिखित कार्बनिक रसायन पुस्तक खरीद कर पढ़ना शुरू कर देना तथा कुछ शोध कार्य भी प्रारम्भ करना, और कुछ नहीं तो दो कार्बनिक यौगिकों को मिला कर उन्हें डॉ० गर्ग (प्रोफेसर तिवारी के एक अन्य शिष्य जो उस समय जोधपुर विश्वविद्यालय में व्याख्याता थे, तथा इस समय रसायन विभाग के अध्यक्ष हैं) की प्रयोगशाला में पृथक करना शुरू कर देना।" आज सोचता हूँ कि उनके दोनों ही सुझाव कितने दूरदर्शी थे। मैंने दोनोंही गुरू-मंत्रों का अक्षरशः पालन किया। फल भी शीघ्र ही सामने आने लगा। एक ही वर्ष में अच्छे अध्यापकों में मेरी गिनती होने लगी तथा जब दो वर्ष पश्चात्, जुलाई 1970 में जोधपुर विश्वविद्यालय छोड़ कर राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर आने लगा तो श्रद्धेय प्रोफेसर आर० सी० कपूर (तत्कालीन विभागाध्यक्ष) का स्नेहासिक्त आशीर्वचन, "तुम्हारे भविष्य के लिये तो तुम्हारा जयपुर जाना ही अच्छा है, परन्तु हम एक अच्छा अध्यापक खो रहे हैं" सुनकर मन ही मन इसका श्रेय गुरुदेव को दिया।

उनके दूसरे सुझाव ने भी समय आने पर अपना प्रभाव दिखाया। राजस्थान विश्वविद्यालय में आते ही प्रोफेसर तिवारी जी की इच्छा के अनुरूप मैं अपना शोधकार्य जमाने में जुट गया तथा शीघ्र ही अपनी शोध प्रयोगशाला स्थापित कर निर्देशन भी प्रारम्भ कर दिया। जब कुछ वर्ष पश्चात् प्रोफेसर तिवारी जी जयपुर आये तो मेरी उन्नति देख कर उन्हें अत्यधिक संतोष तथा प्रसन्नता हुई।

प्रोफेसर तिवारी जी सचमुच महान थे। अपने सहकर्मियों की सफलता तथा कल्याण की भावना सदैव उनके मन में रहती थी। अन्त में उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए यही कामना करता हूं कि मैं उनके द्वारा प्रदर्शित परिश्रम तथा कर्तव्यनिष्ठा के मार्ग पर सदैव चलता रहूँ।

■ ■ ■

आचार्य रामदास तिवारी : अद्भुत व्यक्तित्व

❑ डॉ० ईश्वर चन्द्र शुक्ल

प्रोफेसर, रसायन विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-2

सन् 1959 से लेकर 1996 तक के लंबे समय का मेरा उनसे संपर्क अनेक बातों का स्मरण दिलाता है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी तथा विभिन्न आयामों में अपने को ढालने वाले आचार्य तिवारी सदैव मेरे लिये प्रेरणा-स्रोत रहे हैं।

विगत वर्ष (1995) होली में जब मैं मिलने गया तो वे पहले की ही तरह बोले- "कहिये, क्या हाल है?" मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही उन्होंने कहा- "कैसे आये हो?" मैंने कहा- "आज होली है।" इस पर उन्होंने ऐसा प्रदर्शित किया जैसे उनको कोई चीज याद ही न हो। उस समय जो भी वार्तालाप हुआ उसमें कोई तारतम्य नहीं था। वह ऐसे दिन थे जब उनकी स्मृति का ह्रास प्रारम्भ हो गया था। धीरे-धीरे वे अत्यन्त कमज़ोर होते गये तथा शरीर-क्षमता भी घटती गई। कुछ ही महीनों बाद उन्हें लू लग गई तथा ज्वर आना प्रारंभ हो गया। उपचार हेतु उन्हें गैरसरकारी चिकित्सालय में भर्ती किया गया, जहाँ कुछ दिन रहकर पुनः घर लाया गया। चिकित्सालय में ही वे सन्निपात से ग्रसित हो गये तथा बुलाने पर कभी बोलते तो कभी बोलने की स्थिति में नहीं रहते थे। शरीर शिथिल हो चुका था। अपना कोई कार्य स्वयं नहीं कर सकते थे। इस समय उनकी सेवा का कार्य श्रीमती तिवारी (पूज्य माताजी) तथा स्वजनों द्वारा किया गया। सेवा कार्य में विशेष योगदान उन लोगों का रहा जो कि उनके कृतज्ञ थे तथा कृपापात्र रह चुके थे। इसी बीच उनके पौत्र का विवाह भी हुआ किन्तु वे कोई आनंद नहीं उठा सके। ये दिन उनके वास्तविक कष्ट के दिन थे। संवेदनाशून्य हो चुके थे। केवल सासें चल रही थीं। इसी प्रकार लगभग दस महीने बिताने के बाद एक दिन प्रातः आत्मा पार्थिव शरीर को छोड़कर परमात्मा में विलीन हो गई। आचार्य तो सभी कष्टों से मुक्त हो गये। शवयात्रा के साथ पूरा नगर ही निकल पड़ा। विश्वविद्यालय के अतिरिक्त समाज के सभी वर्गों के लोग पार्थिव शरीर के अंतिम दर्शन हेतु नंगे पैर चल पड़े, रसूलाबाद शवदाह स्थल पर, जहाँ उनके ज्येष्ठ पुत्र द्वारा उनकी अन्त्येष्टि की गई तथा सनातन धर्म के अनुसार सभी कार्य संपन्न हुये।

अतीत की स्मृतियाँ

रसायन विभाग के अध्यक्ष के रूप में उनके पास प्रशासनिक तथा शैक्षिक दोनों प्रकार की जिम्मेवारियाँ थीं। वे विश्वविद्यालय के पुरवासी छात्र संघ के तथा एथेलेटिक संगठन के चेयरमैन, कुलानुशासक, अधिष्ठाता, विज्ञान संकाय कार्यकारिणी सदस्य तथा अन्य प्रभावी पदों पर भी रहे। कई वर्षों तक उन्होंने उ० प्र० मा० शिक्षा परिषद् में विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व किया। वैज्ञानिक गोष्ठियों में जाना तथा शोधपत्र प्रस्तुत करने का कार्य तो वे प्रतिवर्ष ही करते थे। इण्डियन केमिकल्स सोसाइटी, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, नेशनल एकेडेमी ऑव साइन्सेस आदि के उच्च पदों पर रहकर उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया तथा संबंधित संस्थाओं का गौरव बढ़ाया। 'विज्ञान परिषद्' में उनका योगदान सर्वविदित है।

अध्यक्ष के रूप में आपकी प्रशासनिक क्षमता का ही परिणाम था कि विभाग दस बजे प्रातः से सायं चार बजे तक जाग्रत रहता था। अध्यापन, प्रायोगिक कार्य, शोध एवं

चिंतन सभी का सामंजस्य रखकर उन्होंने विभाग को गौरवन्वित किया। स्वयं प्रातः साढ़े नौ बजे विभाग में आकर यह देखना कि कौन समय से आया है तथा किसके आने में विलंब हुआ है, उनका प्रतिदिन का कार्य था। उन्होंने कभी किसी का अहित नहीं किया लेकिन किसी को अकर्मण्य होते हुये भी नहीं देखना चाहा। चाहे प्रायोगिक कक्षा हो या व्याख्यान, उन्हें किसी ने विलंब से कक्षा में जाते हुये नहीं देखा। घंटा बजते ही कक्षा में प्रवेश तथा अनवरत प्रवाह के साथ व्याख्यान देना उनका स्वभाव था। इस क्रम को उन्होंने अपने सभी प्रशासनिक पदों पर रहते हुये भी संपन्न किया। अवकाश पर जाने में हुये शैक्षिक व्यवधान को वे अतिरिक्त व्याख्यान द्वारा पूरा करते थे। इसी प्रकार वे अपने सहयोगियों को भी देखना चाहते थे। ऐसा न होने पर वे व्यक्तिगत पूछताछ तथा डांट-डपट भी करते थे। मुझे पूर्णतः स्मरण है जब उन्होंने मुझे एम० एस-सी० पूर्वार्ध प्रायोगिक कक्षा में दस मिनट विलंब से पहुँचने पर प्रताड़ित किया था। इतना ही नहीं, एक पत्र द्वारा भी सूचना देकर भविष्य में सतर्क रहने हेतु चेतावनी दी थी। उनके कार्यकाल में टंकन का इतना कार्य होता था कि विभाग के लिपिक को टंकन जानना आवश्यक होता था।

मुझे गर्व है कि मैं आजकल उनके शिष्यों में सबसे अधिक वय वाला कार्यरत आचार्य हूँ। जब मेरी नियुक्ति तदर्थ अध्यापक के रूप में हुई तो उन्होंने सर्वप्रथम यही बताया कि अपने से बड़े सभी अध्यापकों को अभिवादन करना आपका प्रथम कर्तव्य है। साथ ही साथ यह भी कहा कि शोध करने के लिये आवश्यक है कि साढ़े तीन बजे के बाद विभाग में देर तक रुका जाय और प्रातः काल समय से आया जाय। सामान्यतः साढ़े तीन बजे के बाद ही वे कहते थे कि अब शोध करने तथा सलाह देने का समय आया है। कभी भी अध्यापन को त्याग कर शोधकार्य करने की सलाह उन्होंने नहीं दी।

विभागाध्यक्ष के रूप में उन्होंने अनेक अभूतपूर्व कार्य किये। अपने कनिष्ठ सहकर्मियों को विदेश जाने में सहयोग किया तथा उनको शोध हेतु प्रोत्साहित किया। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग में अपने अथक प्रयासों द्वारा रसायन विभाग को विशेष स्थान दिलवाया। अवकाश प्राप्त करने के कुछ ही पूर्व उन्होंने यह कार्य संपन्न करवा लिया था। इससे लाखों रुपये का अनुदान मिला जो कि आज भी चला आ रहा है।

जिन दिनों वे उत्तर प्रदेश की वैज्ञानिक अनुसंधान एवं तकनीकी परिषद् के सदस्य थे, अपने विभाग के अनेक लोगों को बिना किसी भेदभाव के शोध हेतु अनुदान दिलवाया। कभी भी किसी प्रकार की राजनीति से प्रेरित होकर उन्होंने कोई कार्य नहीं किया।

आचार्य जी स्वभावतः स्पष्ट तथा अनुशासनप्रिय थे। प्रथम दृष्टि में सभी उनसे सहमते थे लेकिन निकट संपर्क में आने पर लाभ ही पाते थे। उनकी तुलना नारियल फल से हो सकती है। ऊपर का प्रखररूप कठोर होने पर भी अंदर फल मीठा ही होता है। लड़कों की तुलना में लड़कियों को अधिक सम्मान देते थे। उनकी मान्यता थी कि लड़कियाँ अधिक संवेदनशील होती हैं अतः उन्हें प्रताड़ित करना उचित नहीं होता।

वरिष्ठ तथा कनिष्ठ एवं समकक्ष लोगों से उनका व्यवहार ठीक था। कभी ऐसा नहीं लगा कि किसी अवसर पर उन्होंने असामयिक व्यवहार किया हो। समकक्ष लोगों के बीच कहकहे लगाना उनकी विशेष आदत थी। अपने शोध छात्रों से सदैव आत्मीयता रखते थे। पन्द्रह अगस्त तथा छब्बीस जनवरी को प्रयोगशाला में दावत दिया करते थे। विशेष अवसरों पर बाहर ले जाकर भी खिलाते थे। वर्ष के अन्तिम कार्य दिवस पर पूरे विभाग को जलपान कराना तथा परस्पर विनोद करना भी उनका प्रतिवर्ष का नियम था।

मुझे वे दिन भी याद आ रहे हैं जब गुरु जी प्रवक्ता के पद पर कार्यरत थे। अध्यापन तथा शोधकार्य में वे उस समय भी ख्याति प्राप्त कर चुके थे। जब कभी उपाचार्य या आचार्य के चयन का प्रश्न आता था तो यही कहते थे कि यदि कोई विशेषज्ञ चयन समिति में आता है और मैं उसे नहीं जानता या वह मुझे नहीं जानता तो न तो मैं आचार्य बनने योग्य हूँ और न वह विशेषज्ञ बनने योग्य। वास्तव में ऐसा ही हुआ। उनके आचार्य के चयन में विशेषज्ञों ने कहा था कि पंडित को

(शेष पृष्ठ 19 पर)

विज्ञान परिषद् के निर्माता डॉ० रामदास तिवारी

❑ डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमन्त्री
विज्ञान परिषद्-इलाहाबाद-2

सौभाग्यवश मैं उन व्यक्तियों में से हूँ जो क्रम से डॉ० रामदास तिवारी का छात्र, सहकर्मी और सहयोगी रहा।

छात्र के रूप में मैंने देखा कि वे अत्यन्त अनुशासनप्रिय, समय के पाबन्द एवं प्रखर अध्यापक थे। उनकी पुस्तक (Analytical Chemistry) जो डॉ० सत्यप्रकाश के सहयोग से लिखी गई थी, बी० एस-सी० प्रयोगात्मक कार्य के लिये अनिवार्य थी। एम० एस-सी० पूर्वार्द्ध में मैंने कार्बनिक रसायन पढ़ा किन्तु डॉ० तिवारी ने मुझे नहीं पढ़ाया। एम० एस-सी० अन्तिम वर्ष में मैंने कृषि रसायन चुना। हमारी पढ़ाई शीलाधर मृदा शोध संस्थान में होती थी, जहाँ हमारी प्रयोगात्मक कक्षाएँ भी चलती थीं। डॉ० तिवारी हम लोगों की प्रयोगात्मक परीक्षा लेने आन्तरिक परीक्षक के रूप में आये थे। सारे छात्र भयभीत थे कि बहुत ही कठोर परीक्षक आ रहे हैं। क्या मजाल कि कोई छात्र अपने बगल वाले छात्र से किसी तरह की बातें भी कर सकता। किन्तु जब अंक मिले तो मुझे ही सबसे अधिक अंक प्राप्त हुए थे।

फिर जब 1956 में मैं रसायन विभाग में लेक्चरर नियुक्त हुआ तो धीरे-धीरे डॉ० तिवारी से परिचय बढ़ा। मेरी प्रयोगशाला डॉ० तिवारी की प्रयोगशाला से दूर थी। उनकी प्रयोगशाला डीन ऑफिस के सामने थी, किन्तु वे अन्यत्र बैठते थे। जब वे विभागाध्यक्ष बने तो उनका कार्यालय मेरी प्रयोगशाला के पास ही था। वैसे भी अब तक मैं उनके बहुत निकट आ चुका था। इसका कारण यह था कि डॉ० तिवारी ने 'विज्ञान परिषद्' के भवन का जिस तन्मयता से निर्माण कराया था और वे उसके प्रधानमंत्री भी थे, उससे मैं परिचित हो चुका था। मैं 1958 से अनुसन्धान पत्रिका के प्रकाशन से जुड़ चुका था और डॉ० सत्यप्रकाश का स्नेह मुझे मिला हुआ था। डॉ० तिवारी मेरे कार्य से अवगत थे और हिन्दी के पक्षधर होने से वे प्रायः मुझसे हिन्दी के विषय में बातें करते थे। अब वे मुझे 'मिसिर जी' कहने लगे थे। जब भी उन्हें हिन्दी में कोई कार्य कराना होता तो मुझे अपने कमरे में बुलाते थे और वह कार्य मुझे सौंप कर निश्चिन्त हो जाते थे।

रसायन विभाग में डॉ० सत्यप्रकाश और डॉ० रामदास जी में अतीव घनिष्ठता थी। डॉ० तिवारी उन्हें 'दादाजी' कहकर सम्बोधित करते थे। डॉ० सत्यप्रकाश कुर्ता-धोती और टोपी पहन कर आते थे और डॉ० तिवारी प्रायः सूट-टाई में आते थे। दोनों ही हँसोड़ थे। डॉ० सत्यप्रकाश की मृदु मुस्कान होती किन्तु डॉ० तिवारी का अट्टहास गूंज जाता। रसायन विभाग में बड़ा ही सौहार्दपूर्ण वातावरण रहता। पहले डॉ० सत्यप्रकाश अध्यक्ष बने और उसके बाद डॉ० तिवारी। मुझे शोधकार्य में दोनों ही अध्यक्षों से सहयोग मिलता रहा। दोनों ही मुझे बहुत आदर देते। मुझे इसका पता भी न चल पाता कि मैं कृषि रसायन में अध्ययन तथा शोध करने के कारण अलग-अलग हूँ।

डॉ० तिवारी के अन्तःकरण में हिन्दी के प्रति गहरा लगाव था। वे लेखन में उतने पटु न थे जितना कि उत्कृष्ट सलाह-मशविरा देने में। जब उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी का शाखा कार्यालय विज्ञान परिषद् भवन में खुल गया तो अकादमी के निदेशक पं० ब्रह्मदत्त दीक्षित ने डॉ० तिवारी से अनुरोध किया कि वे रसायन विज्ञान के विविध

पक्षों पर एक दर्जन मोनोग्राफ लिखाने का कार्यभार अपने ऊपर लें। डॉ० तिवारी ने मुझसे परामर्श करके यह कार्य भार स्वीकार कर लिया। तब तक डॉ० सत्यप्रकाश संन्यास ले चुके थे। डॉ० तिवारी ने सारी पुस्तकों की रूपरेखा निश्चित करके लेखक चुने और पुस्तक लेखन का कार्यभार सौंप दिया। आश्चर्य ही समझें कि दो वर्ष में सारी पुस्तकें लिख गईं, उनका पुनरीक्षण करा लिया गया और वे मुद्रित होने लगीं। यह एक बहुत बड़ा कार्य था जो उन्होंने सम्पन्न किया।

डॉ० तिवारी ने स्वयं भी हिन्दी समिति, लखनऊ के लिए कार्बनिक रसायन की पाठ्य-पुस्तक लिखी।

डॉ० तिवारी सारी पुस्तकों के प्रूफ शोधन का कार्य मेरे ऊपर छोड़ कर आश्वस्त थे। मेरे ऊपर उनका वरदहस्त था। यह जानते हुए भी कि मैं उन्हीं के जनपद फतेहपुर का हूँ, उन्होंने कभी भी जनपद से बंधकर बातें नहीं कीं। उनका हृदय बहुत विशाल था। वे ऊपर से क्रुद्ध लगते थे किन्तु उनके अन्तर में करुणा की धारा प्रवाहित रहती थी। वे बहुत ही उदार थे। मेरी पुत्री की अस्वस्थता के समय वे उसे बेली अस्पताल देखने पहुँचे थे और जब मुझे उसके उपचार के लिए मद्रास जाना पड़ा तो उन्होंने सभी प्रकार से मुझे ढाढस बँधाया था।

डॉ० तिवारी की कार्यशैली अति नियोजित थी। वे किसी काम के लिये संकेत भर करते थे और स्वयं भी किसी कार्य को समझ कर तुरन्त उसे सम्पन्न करा देते थे।

डॉ० तिवारी अत्यन्त विनोदी स्वभाव के थे। रसायन विभाग में उनकी मित्र मंडली में डॉ० रमेशचन्द्र कपूर, डॉ० एस० पी० मुशरान, डॉ० ए० के० डे, डॉ० बी० बी० एल० सक्सेना के अतिरिक्त सैन्य विभाग के श्री डी० डी० खन्ना मुख्य थे। वैसे विज्ञान संकाय के अधिकांश अध्यापक उनके मित्र थे। वे प्राक्टर रह चुके थे और एन० सी० सी० में भी लेफ्टिनेंट थे अतः वे अनेक प्रसंगों पर बातें चलाते रहते और हँसी-ठट्टा चलता था। विशेषतया वार्षिक प्रयोगात्मक परीक्षाओं में लखनऊ तथा अलीगढ़ से जब उनके मित्र परीक्षक बन कर आते तो दोपहर में जलपान के अवसर पर सभी तरह के मजाक चलते। तब वे अवधी में भी बातें करने लगते। बड़ा मजा आता था हम श्रोताओं को।

डॉ० तिवारी बहुत ही योग्य अनुसन्धानकर्ता थे। उन्होंने डॉ० बाबा करतार सिंह के साथ शोधकार्य किया था। उनका कार्बनिक रसायन का ज्ञान अगाध था। पादप रसायन पर उनका शोध कार्य बहु प्रशंसित रहा है और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पादप रसायन का विशिष्ट केन्द्र स्थापित करने के लिए उन्होंने आजीवन विशेष प्रयास किया। वे विदेश भी गये। उनके अनेक शोधपत्र प्रकाशित हैं।

1970 में डॉ० तिवारी वायुयान दुर्घटना से ग्रस्त हो गये तो उन्हें काफी चोट आई थी। वे दिल्ली से राजस्थान जा रहे थे कि उनका जहाज सफदरजंग हवाई अड्डे में उड़ान भरते ही ऊपर से नीचे आ गया। तब मैं 'भारत की सम्पदा' का सम्पादन करने के सिलसिले में दिल्ली में था। मैं भी उन्हें देखने गया था। भगवान की कृपा थी कि वे बाल-बाल बच गये। बाद में वे पूर्ण स्वस्थ होकर अध्यापन एवं प्रशासनिक कार्य करते रहे। अवकाश प्राप्त करने के कुछ समय पूर्व वे अस्वस्थ हुए, उन्हें आर्थ्राइटिस हो गया किन्तु तो भी वे विज्ञान परिषद् की बैठकों में पूर्ववत् आते रहे। वे विज्ञान परिषद् के सभापति भी बने। विज्ञान परिषद् को विकसित होते देख वे प्रफुल्लित होते थे।

1986 में जब मैं शीलाधर मृदा संस्थान का निदेशक बनाया गया तो मैंने रसायन विभाग के सभी अध्यक्षों को बुलाया और डॉ० तिवारी सहर्ष आये और मुझे आशीर्वाद दिया।

मैं प्रायः होली के अवसर पर उनके घर होली मिलने जाता था। विगत वर्ष मैं इलाहाबाद से बाहर था इसलिए उनसे भेंट नहीं कर सका। इधर वे काफी रुग्ण चल रहे थे। सीढ़ियों से गिरने के कारण उन्हें चोट आई थी। अब वे बिस्तर पर ही लेटे रहने लगे। अन्त में उन्हें नाक से नली द्वारा पेय पदार्थ दिया जाने लगा।

उनके निधन से विज्ञान परिषद् का स्तम्भ टूट गया। उनकी शवयात्रा में शहर तथा विश्वविद्यालय के गण्यमान सभी व्यक्ति सम्मिलित हुए। रसूलाबाद में गंगा तट पर उनके शरीर को भस्मीभूत होते समय सबों की आँखें सजल थीं।

देहात के एक विद्यार्थी ने किस तरह परिश्रम के बल पर शैक्षिक जगत में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया और विज्ञान जगत में किस तरह छा गये, वह सर्व विदित है।

डॉ० तिवारी छरहरे शरीर के फुर्तीले व्यक्ति थे। उनकी आँखें बड़ी-बड़ी, भावपूर्ण तथा मुखमण्डल तेजोमय था। उनकी वाणी में गाम्भीर्य था। वे अपनी धुन के पक्के थे। साइंस कांग्रेस अधिवेशनों में उनकी तूती बोलती थी। उनकी विशेषता यही थी कि एक वैज्ञानिक के साथ-साथ वे सहज मानव थे। धोती-कुर्ता टोपी या पायजामा कुर्ता में भी उन्हें देखा जा सकता था।

रसायन विभाग को चुस्त-दुरुस्त बनाने में उन्होंने कोई कोर-कसर नहीं उठा रखी। उन्होंने पुस्तकालय, नई प्रयोगशालाएँ, अध्यापकों के लिए पृथक कक्ष तथा शोध प्रयोगशालाएँ और उसी के साथ रसायन विभाग को Advanced Centre के रूप में मान्यता दिलाने का प्रशंसनीय कार्य किया। वे अध्यापन को वरीयता देते रहे। नियम से कक्षाएँ लेना, और जो अध्यापक कक्षाएँ नहीं लेते थे या देर से कक्षा या प्रयोगशाला में पहुँचते उनसे दो टूक बात कहने में तनिक भी हिचकते न थे। वे रसायन की सभी शाखाओं की प्रगति चाहते थे, यद्यपि वे स्वयं कार्बनिक रसायन से संबद्ध थे। विश्वविद्यालय के विज्ञान संकाय के वे डीन भी रहे। उनके कार्यकाल में रसायन समिति कार्यशील थी। छात्रों के समूह अध्ययन टूर पर भी जाते थे। अध्यापकों को वैज्ञानिक सम्मेलनों में जाने, शोध प्रपत्र प्रकाशित कराने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। विभाग के कर्मचारी नियमपूर्वक आते-जाते थे और शोधकार्य के लिए प्रयोगशालाएँ अहर्निश खुली रहती थीं।

डॉ० तिवारी संस्मरणों के खजाना थे। वे प्रिंसिपल हीरा लाल खन्ना, डॉ० बी० एन० प्रसाद, डॉ० आत्माराम, डॉ० सत्यप्रकाश, डॉ० रामचरण मेहरोत्रा, डॉ० रमेश चन्द्र कपूर के विषय में अनेक रोचक बातें बताते थे। वे अपने से ज्येष्ठ अध्यापकों का बड़ा आदर करते थे। विभाग के डॉ० जमुना दत्त तिवारी, श्री मूलराज मेहरोत्रा या आई० के० तैमिनी को पूरा सम्मान देते थे। किन्तु अपने से छोटों को भी वे कम स्नेह नहीं देते थे। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद अग्रवाल उनके परम प्रिय थे। डॉ० पूर्ण चन्द्र गुप्त से तो वे कानपुर से ही परिचित थे।

डॉ० तिवारी के शोध छात्रों की संख्या काफी बड़ी है। उनमें से कई तो विभाग में ही नियुक्त हो गये थे। डॉ० जे० पी० शर्मा ने उनके साथ मिल कर एक पुस्तक भी लिखी जो विदेश से छपी।

डॉ० रामदास तिवारी का कृतित्व

मैंने डॉ० तिवारी की अँग्रेजी की दो पुस्तकों, उनके शोधपत्रों तथा हिन्दी में लिखी हुई पाठ्य पुस्तक का यथास्थान उल्लेख किया। किन्तु मैं पृथक से उनके द्वारा हिन्दी में लिखे गये लेखों तथा पुस्तकों का उल्लेख करना चाहूँगा।

डॉ० तिवारी ने सर्वप्रथम विज्ञान के लिए 1944 में लेख लिखा। उसके बाद 1954 में, फिर 1960 में लेख लिखे। उन्होंने कुछ संस्मरण भी लिखे जो डॉ० गोरख प्रसाद, स्वामी सत्यप्रकाश तथा श्री हीरालाल खन्ना से सम्बन्धित थे। उनहोंने 1956 तथा 1957 में विज्ञान परिषद् के वार्षिक उत्सव तथा 44 वर्ष शीर्षक से दो लेख लिखे। इस तरह हिन्दी में उनका लेखन कम है, किन्तु वे लेखकों को प्रोत्साहित करते रहते थे।

उन्होंने डॉ० रामचरण मेहरोत्रा के साथ मिलकर अध्यापन के प्रारम्भिक वर्षों में कक्षा 8 के लिए एक विज्ञान की पाठ्य-पुस्तक भी लिखी। कहने का आशय यह कि ऐसा व्यक्ति जो वैज्ञानिक जगत में प्रशंसित था, विज्ञान परिषद् से जुड़े रहने में अपने को अन्त तक गौरवान्वित अनुभव करता रहा। यह बहुत बड़ी बात थी।

■ ■ ■

मेरे मित्र प्रो० आर० डी० तिवारी

❑ डॉ० राबर्ट काल्वोडा

डी० एस-सी०
प्रोफेसर, जे० हेरोवस्की इंस्टीट्यूट
ऑव फ़िज़िकल केमिस्ट्री, एकेडेमी ऑव
साइंसेज ऑन द चेक रिपब्लिक,
डोलेजस्कोवा-3, 18223 प्राहा 8

प्रो० राबर्ट काल्वोडा ने कृपा करके प्राहा से प्रो० तिवारी से संबंधित अपना संस्मरण अँग्रेजी में लिखकर भेजा। उन्होंने "विज्ञान" के सम्पादक को लिखे एक पत्र में इस बात की छूट भी दे दी कि इस लेख का उपयोग "विज्ञान" पत्रिका में अनूदित करके भी किया जा सकता है। प्रस्तुत है डॉ० काल्वोडा के लेख का हिन्दी रूपान्तर।

—सम्पादक

हृदय रोगोपचार के पश्चात् वापस आने पर प्रोफेसर कपूर (आर० सी० कपूर) से पता चला कि मेरे मित्र प्रो० आर० डी० तिवारी का इसी मार्च माह में निधन हो गया। मुझे यह जानकर अत्यन्त दुःख हुआ। प्रो० तिवारी के निधन से भारत ने एक लब्धप्रतिष्ठ वैज्ञानिक खो दिया।

हमारे निजी सम्पर्कों की शुरुआत छठें दशक के अंत से प्रारंभ होती है जब इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के वैज्ञानिक (प्रो० तिवारी) का चेकोस्लोवक एकेडेमी ऑव साइंसेज के० जे० हेरोवस्की इंस्टीट्यूट ऑव पोलैरोग्राफी में आना हुआ। उस समय हमने "पोलैरोग्राफी" से संबंधित अनेक समस्याओं पर विचार-विमर्श किया, मुख्य रूप से एनेलिटिकल रसायन में पोलैरोग्राफी के प्रयोगात्मक इस्तेमाल पर क्योंकि यह अत्यन्त सरल, सस्ती और अति उपयोगी विधि है ... बाद में मेरी नियुक्ति इलाहाबाद विश्वविद्यालय में डॉक्टरेट की थीसिस (शोध ग्रंथ) के निर्णायक (रेफ्री) के रूप में हुई। मेरा कार्य मुख्य रूप से एनेलिटिकल केमिस्ट्री में केमिकल काइनेटिक्स संबंधी शोध ग्रंथों पर आख्या (रिपोर्ट) देना था। इस प्रकार हमारा सम्पर्क था। 1975 में मुझे भारत भ्रमण का अवसर मिला, जो हमारी एकेडेमी और भारतीय सी एस आई आर के बीच अनुबंध के रूप में था। इसका मुख्य उद्देश्य था कराइकुडी में सेण्ट्रल इंस्टीट्यूट ऑव इलेक्ट्रोकेमिस्ट्री का भ्रमण, जहाँ उस समय अनुप्रयुक्त इलेक्ट्रोकेमिस्ट्री विषयक एक रोचक कार्यक्रम विकसित हो रहा था जिसका संबंध प्रो० उडुपा द्वारा निर्देशित कार्बनिक यौगिकों के विद्युत्-विरचन (Electropreparation) से भी था। उस यात्रा में मुझे अन्य संस्थाओं और विश्वविद्यालयों में भी जाने की सुविधा थी। इसके लिए सर्वप्रथम मैंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय को चुना और फिर वह दिन भी आया जब मैं ट्रेन द्वारा एक सुबह नई दिल्ली से इलहाबाद पहुँचा। इलाहाबाद स्टेशन पर मेरा भव्य स्वागत हुआ। प्रो० तिवारी और अन्य सहयोगी मुझसे मिलने आये। मुझे याद है हम सबको ले जाने के लिए दो मोटरकारों की आवश्यकता पड़ी थी। सर्वप्रथम हम "बार्नेट" गये, जो कि आने वाले कुछ दिनों के लिए मेरा घर बनने वाला था। हमारे पास जो समय था उसका उपयोग करने की दृष्ट से हमने पहले तो कुछ दर्शनीय स्थल देखे, क्योंकि मेरे लिए सभी कुछ नया और आकर्षक था। तत्पश्चात् हम 'हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य' की एक प्रदर्शनी देखने पहुँचे जहाँ कुछ रेखाचित्र, कलाकृतियाँ भी थीं। और अगर मैं भूल नहीं कर रहा हूँ तो जल्दी ही हमने रसायन विभाग में अपने विचार-विमर्श शुरू कर दिए थे। उस समय मैं न केवल वैज्ञानिक समस्याओं के

प्रति डॉ० तिवारी की रुचि से वरन् एक आधुनिक स्तरीय और समयानुकूल रसायन शिक्षा-पद्धति के विकास के प्रति उनकी चिन्ता से भी प्रभावित हुआ था। वह आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों की सुरक्षा के प्रति भी जागरूक थे। संभवतः इसी कारण उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक 'रासायनिक यंत्रीकरण में संक्रियात्मक प्रवर्धकों के उपयोग' विषयक मेरी एक वार्ता के लिए गोष्ठी का आयोजन किया। (उसी वर्ष मैंने उपरोक्त विषय पर एक पुस्तक भी एलिस हॉरवुड लिमिटेड, चिशेस्टर से प्रकाशित की।) इन प्रवर्धकों की सहायता से कम कीमत वाले यंत्रीकरण की शीघ्र उपलब्धि (प्रयोगशालाओं में भी) विद्युत- रासायनिक मापन के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी संभव हो सकी। इसी आधार पर हमने अपने रसायन विभाग में छात्रों और स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लाभार्थ एक प्रयोगात्मक प्रशिक्षण कोर्स का प्रारंभ किया। दूसरे ही दिन मुझे पोलैरोग्राफी पर भी एक वार्ता देनी थी। इसी विषय पर हमारे पूर्व निदेशक प्रोफेसर हेरोव्स्की को 'नोबेल पुरस्कार' प्राप्त हुआ। किंतु मेरे वार्ता से पूर्व प्रो० तिवारी ने यमुना नदी की सैर का प्रस्ताव रखा। मेरे लिए इतनी बड़ी संख्या में धार्मिक आस्थावान लोगों को देखने का यह एक अभूतपूर्व अवसर था। वहाँ मेरे माथे पर लाल चिन्ह (तिलक) भी लगाया गया, जो मेरे मस्तक पर तब भी लगा हुआ था, जब मैं अपना भाषण देने के लिए श्रोताओं से भरे विभाग के कमरे में पहुँचा। संभवतः उसे देखकर लोग कुछ आश्चर्यचकित हो रहे थे और उसका कारण जानकर मैं भी। अपनी इस छोटी सी यात्रा के दौरान हमने भविष्य के लिए कुछ वैज्ञानिक संबंध भी स्थापित किए। मेरी जानकारी के अनुसार मेरे देश के प्रो० सॉमर कई बार इलाहाबाद आए।

प्रो० तिवारी एक भद्र पुरुष होने के साथ ही साथ एक सहृदय मेजबान भी थे। मैत्री भरे माहौल वाले इस विश्वविद्यालय में उनके सान्निध्य में व्यतीत हुआ हर क्षण उनके कुशल आतिथ्य का परिचायक था।

उसी समय एक अन्य असाधारण किन्तु सुखद घटना घटी, यद्यपि मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि उसका उल्लेख इस समय उचित है या अशिष्ट, और यदि यह अनुचित हो तो मैं क्षमा प्रार्थी हूँ। हुआ यूँ कि विश्वविद्यालय के एक अधिकारी के घर पर मेरे लिए एक रात्रिभोज की व्यवस्था की गई। मुझे कहा गया था कि मैं "बार्नेट" होटल पर ड्राइवर की प्रतीक्षा करूँ। उसी होटल के निकट नेहरू परिवार के एक विवाह समारोह में भी मैं आमंत्रित था। परिणामतः मैं उपरोक्त रात्रिभोज में देर से पहुँचा। लोग चिंतित थे कि मेरे साथ क्या हुआ? भोजन की मेज के नीचे एक बिसकी की बड़ी बोतल छिपा कर रखी गई थी, इस विचार के साथ कि उसे मेरी ही उपस्थिति में खोला जायेगा। और यदि मैं न आया तो उसे नहीं छुआ जायेगा। मेरे वहाँ पहुँचने के बाद ही अन्य लोगों को भी बोतल खाली करने की अनुमति दी गई। (मुझे बताया गया कि केवल ऐसे अवसरों पर मदिरापान की छूट होती है।) यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पार्टी देर तक चली और हमारी आपसी वार्ता सफल रही। यह घटना भी मेरी स्मृति में स्व० आर० डी० तिवारी से जुड़ी हुई है।

प्राहा- जुलाई 2, 1996

रावर्ट काल्वोडा ■ ■ ■

मेरे गुरु प्रो० तिवारी

❑ डॉ० के० सी० श्रीवास्तव

इंस्टीट्यूट ऑव कम्यूनिटी हेल्थ
डिपार्टमेंट ऑव इनविरानमेंटल मेडिसिन
ओडेन्स यूनिवर्सिटी, डेनमार्क

डॉ० के० सी० श्रीवास्तव जी इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग में अध्यापक रह चुके हैं और पिछले अनेक वर्षों से रसायन विज्ञान में उच्चस्तरीय शोध में रत हैं। प्रो० तिवारी के स्वर्गवास की सूचना उनके छोटे भाई श्री प्रभु चन्द्र श्रीवास्तव जी ने उन्हें भेजी जो स्थानीय सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज में कार्यरत हैं। विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र जी को लिखे एक पत्र के साथ यह आलेख अँग्रेजी में लिखकर भेजा और साथ में अपने छोटे भाई के माध्यम से तीन हज़ार रुपये भी। उन्होंने पत्र में यह भी लिखा कि आलेख को हिन्दी में अनूदित करके प्रकाशित किया जा सकता है। हम विज्ञान परिषद् की ओर से डॉ० श्रीवास्तव के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। पढ़ें डॉ० श्रीवास्तव के लेख का हिन्दी रूपान्तर ।

—सम्पादक

कभी ऐसा भी होता है जब विद्यार्थी की रुचि विषय विशेष में किसी अध्यापक के अनोखे तरीके से पढ़ाने के कारण विकसित हो जाती है। मेरे साथ कुछ ऐसा ही हुआ।

मेरी रुचि रसायन विज्ञान, विशेष रुप से कार्बनिक रसायन में इसलिए जाग्रत हुई क्योंकि मेरे एक अध्यापक श्री राजदेव सिंह ने मुझे प्रो० आर० डी० तिवारी एवं प्रो० आर० सी० मेहरोत्रा द्वारा संयुक्त रूप से लिखित कार्बनिक रसायन की पुस्तक को पढ़ने का सुझाव दिया। यह बात 1951-53 की है जब सेण्ट एण्ड्रूज कॉलेज, गोरखपुर में मैं इण्टरमीडिएट का विद्यार्थी था। बी० एस-सी० में भी मुझे, जब मैं उपरोक्त कॉलेज का ही विद्यार्थी था, कार्बनिक रसायन पर प्रो० आर० डी० तिवारी, डॉ० रस्तोगी (आगरा यूनिवर्सिटी) और मिश्र (लखनऊ यूनिवर्सिटी) की पुस्तक को पढ़ने की संस्तुति की गई। श्री आर० डी० सिंह इस पुस्तक को अंतरविश्वविद्यालय पुस्तक कहा करते थे। इस पुस्तक को मैंने अत्यधिक पसंद किया। मैंने निश्चय किया कि भविष्य में मेरे अध्ययन का विषय रसायन विज्ञान होगा और मैं इलाहाबाद में पढ़ूँगा।

जब मैंने एम० एस-सी० में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लिया तो मेरे अध्यापकों में प्रो० आर० डी० तिवारी भी एक अध्यापक थे। उनके पढ़ाने के तरीके के कारण हम उनके प्रशंसक थे। उनके लेक्चर शायद ही कोई छोड़ता हो। इसके विपरीत हम उनके व्याख्यान की आतुरता से प्रतीक्षा करते थे। किन्तु इसका यह कतई अर्थ नहीं कि अन्य अध्यापक अच्छे नहीं थे।

एम० एस-सी० उत्तीर्ण करने के बाद 1957 में मैंने सी० एस० आई० आर० की एक स्कीम में प्रो० तिवारी के निर्देशन में शोध प्रारंभ किया, यद्यपि शोध का विषय रसायन विज्ञान से हटकर लगता था। मेरे शोध प्रारंभ करने के बाद अधिक समय नहीं व्यतीत हुआ था, जब प्रो० तिवारी कोलम्बो प्लान के अंतर्गत् 6 माह के लिए यू० के० चले गए। उनके जाने के बाद मुझे अपने शोध दल के सदस्यों से अधिक सहयोग नहीं मिल सका। इसका कारण यह था कि मेरे शोध का विषय कुछ अनोखे तरह का था। जब प्रो०

तिवारी विदेश यात्रा से वापस लौटे तो मैंने उन्हें अपनी कठिनाई के विषय में बताया। उन्होंने मेरी समस्या को समझा और शोध को सही दिशा प्रदान की। अनेक प्रारंभिक कठिनाइयों के बावजूद मैं तीन वर्ष पूरे होते-होते अपना शोध ग्रंथ प्रस्तुत करने में सफल हो गया। परीक्षक की रिपोर्ट आने के बाद प्रो० तिवारी ने एक अनौपचारिक बातचीत के दौरान कहा कि विदेशी परीक्षक (प्रो० एम० स्टेसी, यू० के०) ने भाषा की प्रशंसा की है। मैंने डॉ० जे० पी० तिवारी, जो प्रो० तिवारी के निर्देशन में शोध कर रहे थे, की उपस्थिति में तत्काल कहा कि ऐसा इसलिए है क्योंकि भाषा तो मेरी न होकर प्रो० तिवारी की है। और यह सत्य था। प्रो० तिवारी ने शोध ग्रंथ की भाषा के सुधार के लिए अत्यधिक श्रम किया था।

बाद में मेरी नियुक्ति जब रसायन विभाग में प्रवक्ता के रूप में हो गई, तब मैं प्रो० तिवारी जी के निकट सम्पर्क में आ गया। मेरी दृष्टि में वे व्यवस्थाप्रिय थे। उनका एक गुण जिससे मुझे आज भी ईर्ष्या होती है, यह है कि पत्रों का उत्तर वे तुरंत देते थे। वे जोर देकर कहते थे कि शोध तो तब प्रारंभ होती है जब डिग्री प्राप्त हो जाती है। और व्यक्ति को इस दिशा में ईमानदारी से प्रयास करना चाहिए। वे उन लोगों की कटु आलोचना करते थे जो डिग्री प्राप्त हो जाने के बाद सुस्त पड़ जाते थे अथवा उनके शोध की गति धीमी पड़ जाती थी।

1969 में डेनमार्क आने के बाद, जहाँ मैं आज भी रह रहा हूँ, मैं प्रो० तिवारी से सदैव सम्पर्क बनाये हुए था। जब भी वे पत्र लिखते थे तो उसमें इस बात की जिज्ञासा अवश्य रहती थी कि मेरा शोध कार्य कैसा चल रहा है। इससे मुझे उनकी, मेरी गतिविधियों में, रुचि का आभास होता था। जब भी मैं भारत वापस आता था, प्रो० तिवारी से अवश्य मिलता था और उनके साथ व्यतीत किए गए समय का भरपूर आनन्द उठाता था। मैं अपने शोधपत्रों के रीप्रिन्ट्स प्रो० तिवारी को भेजता रहता था और शोधपत्रों की लोकप्रिय प्रकृति के कारण प्रो० तिवारी उनमें रुचि लेते थे।

प्रो० तिवारी से मेरी अंतिम मुलाकात सितम्बर 1995 में हुई। मुझे ये देखकर अत्यन्त दुःख हुआ कि उस समय प्रो० तिवारी बिस्तर पर असहाय अवस्था में पड़े हुए थे। मैंने बात करनी चाही थी, किन्तु कुछ कह सकने में वे असमर्थ थे। वे जिस कमरे में लेटे हुए थे उसमें देवी-देवताओं (के चित्रों) को देखा। मैंने विनम्रतापूर्वक सिर झुकाकर उनसे (देवी-देवताओं से) पूछा-क्या यही जीवन है!

■ ■ ■

(पृष्ठ 12 का शेष)

उनकी अपनी योग्यता हेतु तथा उनके वरिष्ठ सहयोगी को उनके पिता की योग्यता हेतु नियुक्त किया जाता है।

दुर्घटना

उनके जीवन का सर्वाधिक चर्चित घटना थी उनकी विमान दुर्घटना। अपने शिष्य की बहिन के विवाह, जो कि उन्हीं के अन्य शिष्य के साथ हो रहा था, वे दिल्ली से जोधपुर विमान द्वारा जा रहे थे। विमान उड़ान भरते ही दुर्घटना ग्रस्त हो गया तथा गुरु जी बुरी तरह घायल हो गये। अनेक दिनों के उपचार के उपरान्त स्वस्थ हुए। गुरु जी स्वस्थ तो हो गए लेकिन बाद में वे जोड़ों के दर्द (गठिया) आदि से पीड़ित रहने लगे। इसी कष्ट के कारण (इलाहाबद विश्वविद्यालय से अवकाश प्राप्त करने के बाद) जम्मू विश्वविद्यालय में आचार्य का पद स्वीकार नहीं कर सके। प्रतिदिन कुछ यौगिक क्रियायें तथा खान-पान के आधार पर वे स्वस्थ एवं प्रसन्न रहे। अनेक रोगों यथा गठिया, चर्मरोग, कोलाइटिस, ब्रांकाइटिस, उच्च रक्तचाप आदि से ग्रसित होने पर भी वे चुस्त रहते थे।

मन यह मानने को तैयार नहीं होता कि गुरु जी अब नहीं रहे। पर सत्य को तो झुठलाया नहीं जा सकता। श्रद्धेय गुरु जी की स्मृति को कोटिशः नमन।

■ ■ ■

विनोदप्रिय रसायनविज्ञानी डॉ० रामदास तिवारी

❑ प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

सम्पादक 'विज्ञान'
विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद-2

एक बार एक लड़का बाहर से अपने पिताजी के साथ इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी० एस-सी० प्रथम वर्ष में प्रवेश के लिए आया। लड़के का प्रवेश विश्वविद्यालय में हो गया। उसे हॉस्टल में भी प्रवेश मिल गया। अब तो उसे इलाहाबाद में ही रहना था। इसलिये उसके पिता जी उसे हॉस्टल सुपरिन्टेंडेंट के पास ले गए।

हॉस्टल सुपरिन्टेंडेंट महोदय कुछ लिख रहे थे। थोड़ी देर बाद उन्होंने जब ध्यान दिया तो उस लड़के के पिताजी को खड़े पाया। उन्होंने कहा- "कहिए मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ?"

पिताजी- "आपसे निवेदन है कि इस बच्चे का ख्याल रखिएगा।"

सुपरिन्टेंडेंट महोदय-"आप निश्चित रहें। हम बच्चों का ख्याल रखते हैं।" इतना कहकर वे पूर्ववत् अपने कार्य में व्यस्त हो गए। किन्तु थोड़ी देर बाद जब उन्होंने पुनः सिर उठाया तो विद्यार्थी के पिता जी को खड़े पाया।

सुपरिन्टेंडेंट महोदय-"अरे आप गए नहीं? कुछ और काम है क्या?"

पिताजी- "इस बच्चे का ख्याल रखिएगा।"

सुपरिन्टेंडेंट महोदय- "हाँ, हाँ, आप निश्चिन्त रहें। मैं इस बच्चे का ख्याल रखूँगा।"

किन्तु थोड़ी देर बाद जब उन्होंने पुनः ध्यान दिया तो उन सज्जन को वहीं खड़े पाया।

सुपरिन्टेंडेंट महोदय कुछ चौंके। उन्हें लगा शायद विद्यार्थी के पिता जी कुछ कहना चाहते हैं। अब वे कुर्सी छोड़कर उठ खड़े हुए। उन्होंने पूछा- "शायद आप कोई खास बात कहना चाहते हैं? लगता है कह नहीं पा रहे हैं। आप निःसंकोच अपनी बात कहें।"

पिताजी- "यह बच्चा पहली बार घर छोड़कर बाहर रहने आया है। यह बहुत सीधा है। चाय-काफी कुछ नहीं पीता है। कृपया ध्यान रखें कि बच्चा चाय-काफी न पीने पाये। सुपरिन्टेंडेंट महोदय- "ठीक है। मैं आपकी बात समझ गया। मैं इस बच्चे का खास ख्याल रखूँगा।"

इतना सुना कर प्रो० तिवारी जी मुस्कुराये और बोले-"सुपरिन्टेंडेंट महोदय ने बच्चे का ख्याल रखा। उसे चाय-काफी नहीं पीने दी। लेकिन यह बच्चा बियर पीने लगा।" सभा में उपस्थित लोगों का अट्टहास गूँज उठा। हँसी की आवाज मंद पड़ी तो प्रो० तिवारी जी ने हम लोगों की ओर (वे विज्ञान परिषद् प्रयाग की एक सभा में बोल रहे थे) एक प्रश्न उछाला- "और जानते हैं वह बच्चा कौन था? वह बच्चा... था (उस समय तक वह बच्चा बड़ा होकर विश्वविद्यालय के एक विभाग में विभागाध्यक्ष के पद पर आसीन हो चुका था। प्रो० तिवारी ने नाम बता दिया था। किन्तु यहाँ मैं नाम लेकर मर्यादा का उल्लंघन नहीं करूंगा)।

इस प्रकार के किस्से-कहानियाँ वे विज्ञान परिषद की सभाओं में अकसर सुनाते रहते थे। और हम सुनने वालों के मुँह से बरबस हँसी के फौव्वारे छूट जाते थे। वास्तव में प्रो० तिवारी बड़े ही विनोदी प्रकृति के व्यक्ति थे। किन्तु हास्य-व्यंग्य के माध्यम से वे कभी-कभी बड़ी ऊँची बातें क्षणमात्र में कह जाते थे।

स्व० प्रो० तिवारी जी से संबंधित अनेक स्मृतियाँ हैं। अनेक संस्मरण हैं। जब लिखने बैठा हूँ तो समझ में नहीं आ रहा है कि कहाँ से शुरू करता हूँ।

पहली बार डॉ० रामदास तिवारी जी का नाम मैंने सेण्ट एण्ड्रूज कॉलेज, गोरखपुर में अपने रसायन विभाग के अध्यापक (विभागाध्यक्ष) श्री आर० डी० सिंह जी से सुना, जब मैं बी० एस-सी० का विद्यार्थी था (1956-58)। श्री आर० डी० सिंह जी ने डॉ० तिवारी जी द्वारा लिखी गई एक पुस्तक (नाम मैं भूल रहा हूँ) का उल्लेख किया और पुस्तक की बड़ी प्रशंसा की। मेरी रुचि रसायन विज्ञान में कम थी। इस विषय में मैं कमजोर भी था। इसलिए बात आई गई हो गई।

संयोगवश अगस्त 1963 में मेरी नियुक्ति वनस्पति विज्ञान के प्रवक्ता के रूप में स्थानीय सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज में हो गई। उन दिनों डॉ० कृष्ण बहादुर जी (अब स्वर्गीय)का नाम अखबार की सुर्खियों में था। जीवन के उद्भव से संबंधित उनका शोधकार्य बहुचर्चित था। मैं जिज्ञासावश डॉ० बहादुर की लैब में उनसे मिलने गया था। रसायन विभाग में जाकर भी प्रो० तिवारी के दर्शन का लाभ मैं न उठा सका।

लगभग 8 वर्षों के लम्बे अंतराल के बाद प्रयोगात्मक परीक्षा की इन्क्वायरी के सिलसिले में (जिसके प्रो० तिवारी सदस्य थे) मुझे पहली बार उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

उनके तौर-तरीके, बात करने के अंदाज से आप प्रभावित न हों, ऐसा हो ही नहीं सकता था। यह उनके व्यक्तितव का अनूठा पहलू है।

बाद में जब (1975 से) मैं विज्ञान परिषद् जाने लगा तो प्रो० तिवारी जी के बहुआयामी व्यक्तित्व के दर्शन हुए। उनके द्वारा किए गए शोध कार्य में मेरी विशेष रुचि रही क्योंकि अनेक पादपों की रासायनिक प्रकृति पर शोध उनका प्रिय विषय रहा है। प्रो० तिवारी ने ऐसी 28 पादप-प्रजातियों पर स्वयं अथवा सहयोगियों के साथ शोध किया है यथा -

Ocimum canum, Nigella sativa, Sphaeranthus indicus, Cassia alata, Pinus gerardiana, Cassia occidentalis, Cucurbita maxima, Cassia tora, Clitoria ternatea, Symplocos racemosa, Feronia elephantum, Sesbania grandiflora, Clerodendrum indicum, Labio rohita (fish), Dipteracantha prostrata, Diospyros peregrira, Cordia myxa, Hygrophila spinosa, Desmodium gangeticum, Desmodium pulchellum, Glycine soja, Mucuna pruriens, Dolichos biflorus, Cassia siamea, Cassia javanica, Symploca spicata, Cassia sophera, Morunda citrofolia, Bryonia Lasiniosa.

1941 से 1976 के बीच प्रो० तिवारी जी के 104 शोधपत्र प्रकाशित हुए हैं। इनमें से अनेक स्वतंत्र रूप में अकेले उनके नाम से हैं और अधिकतर शोधपत्र उनके सहयोगियों और शोध छात्रों के साथ संयुक्त रूप से हैं। उनके शोध सहयोगियों और शिष्यों की संख्या 48 है। इससे इस बात का सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि कितने लोग उनके निर्देशन में कार्य करने को आतुर रहा करते थे। ये हैं बी० के० सिंह, आर० सी मेहरोत्रा, एच० एल० दुबे, पी० सी० गुप्ता, एन० पी० श्रीवास्तव, आर० के० गुप्ता, एस० पी० गर्ग, एल० बी० लाल०, के० सी० श्रीवास्तव, जे० पी० तिवारी, जे० पी० शर्मा, पी० सी० गंगवार, एस० एस० मिश्र के० सी० दत्ता, पी० दुबे, आर० के० बाजपेयी, एस० एस० खन्ना, सुधा कुमारी अग्रवाल, ए० के० अवस्थी, तिला जोशी, पी० डी० सतसंगी, आई० सी० शुक्ला, श्री राम शुक्ला,एम० सी० पंत, आई० उद्दीन, यू० आर भरद्वाज, एम० एल० वार्ष्णेय, एम० पी० सिनहा, एन वासुदेवा, के० मिश्रा, एन कक्कड़, यू० सी० पाण्डेय, एस० सी० रस्तोगी, जी० डी० तिवारी, एस० अरोरा, एच० डेमान, ई० विन्टर फेल्ट्ट,

एस० शुक्ला, ओ० पी० यादव, आर० के बंसल, जयराज बिहारी पी० गाँधी, हेम एल० त्रिपाठी, जी० मिश्रा, एच० एस० सहारिया, जे० सिंह, जी० श्रीवास्तव और एम० गोयल। उन्होंने सैकड़ों लोगों को शोध की प्रेरणा दी है।

1971 में वे भारतीय विज्ञान काँग्रेस के 58वें सेशन के रसायन सेक्शन के सभापति भी थे और उनके अध्यक्षपदीय उद्बोधन का विषय था- 'सम एसपेक्ट्स ऑव फंक्शनल ग्रुप्स एनालिसिस'। इस व्याख्यान की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई थी।

वनस्पति विज्ञान का विद्यार्थी होने के नाते मैं उनके शोध के स्तर पर किसी प्रकार की टिप्पणी करने में अपने को सर्वथा अक्षम पाता हूँ, किन्तु प्रशंसा तो अनेक रसायनविदों से सुनी है।

अनेक रोगों से ग्रसित होने के बावजूद वे जिन्दादिल व्यक्ति थे और उन्होंने जीवन को साहस के साथ जिया था। विज्ञान परिषद् की सीढ़ियाँ वे बहुत धीरे-धीरे चढ़ते थे, किन्तु किसी की बाँह का सहारा लेना उन्हें पसंद नहीं था।

मैंने सुन रखा था कि विभाग में वे एक कड़े प्रशासक के रूप में जाने जाते थे किन्तु मैंने तो उनका सदैव सहृदय रूप ही देखा। वे हिन्दी अनुरागी थे और विज्ञान पत्रिका में उनके कुछ लेख भी प्रकाशत हैं।

डॉ० रामदास तिवारी द्वारा लिखे गये लेख जो विज्ञान में प्रकाशित हैं-

1. वनस्पति तेल, दिसम्बर 1944, पृष्ठ 49-52.
2. पेनिसिलिन की कहानी, जुलाई 1954, पृष्ठ 1-4
3. विज्ञान पिरषद् के 44 वर्ष, मई-जून-जुलाई 1956, पृष्ठ 13-14 एवं 10.
4. विज्ञान पिरषद् के 43वें वर्ष का कार्य विवरण, जून 1957, पृष्ठ 91-92.
5. उच्च बहुलक या हाई पालीमर, जनवरी 1960, पृष्ठ 117-121 एवं 125.
6. खन्ना जी, मैं तथा विज्ञान परिषद् भवन, जनवरी-फरवरी 1966, पृष्ठ 13.
7. कुछ संस्मरण- डॉ० गोरख प्रसाद स्मृति अंक जून-जुलाई 1961, पृष्ठ 49-50.
8. कुछ संस्मरण-मार्च 1984 , पृष्ठ 22-23

उनकी कृतियों में शोध पत्रों के अतिरिक्त उनकी पाठ्य पुस्तकें भी शामिल हैं। वैसे उन्होंने अँग्रेजी भाषा की अपेक्षा हिन्दी में कम लिखा है किन्तु उनकी भाषा-शैली प्रवाहमय है। अपनी बात बड़े सरल शब्दों के माध्यम से कहते थे। किन्तु उनकी सुन्दरतम रचना हैं उनके पुत्र डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी, जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के वर्तमान अध्यक्ष हैं और अपने शोध कार्य के लिए देश-विदेश में विख्यात हैं।

प्रो० रामदास तिवारी जैसे लोग मरते नहीं। वे अपने परिवारजनों, मित्रों, प्रशंसकों और शिष्यों की स्मृति में सदैव जीवित रहते हैं और उन्हें अनुप्राणित करते रहते हैं। मैं स्मृति शेष प्रो० तिवारी को नमन करता हूँ।

■ ■ ■

विज्ञान परिषद् के 43 वें वर्ष का कार्य-विवरण

❑ डॉ० रामदास तिवारी

प्रधान मंत्री, विज्ञान परिषद्

अक्टूबर 1955-सितम्बर 1956

अक्टूबर 1956-मार्च 1957

इस वर्ष का वार्षिक उत्सव अन्य वर्षों के उत्सवों की अपेक्षा विशेष महत्व का है अतः कार्य-विवरण प्रस्तुत करने में हमें एक विशेष प्रसन्नता होती है। कारण यह है कि परिषद् के 43 साल के जीवन में हम पहली बार जिस स्थान पर अपना उत्सव कर रहे हैं वह परिषद् का अपना भवन है। इसी वर्ष के अन्दर अप्रैल 1956 को हमारे प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू जी ने इस भवन का शिलान्यास किया और लगभग 1 वर्ष में हम इस स्थिति में हो गये हैं कि इस भवन में अपना कार्यालय रख सकते हैं तथा उत्सव भी कर रहे हैं। इस कार्य को आरंभ कराकर इस स्थिति तक पहुँचाने का श्रेय हमारे सभापति श्री हीरा-लाल जी खन्ना को है। जिस स्थान पर हम लोग एकत्रित हैं वहाँ हमारा हाल होना है। इस हाल को छोड़ कर बाकी भाग तथा 4 कमरे लगभग तैयार हैं। हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि जहाँ हमारे अवकाश प्राप्त करने वाले सभापति जी ने इतना बनवा दिया है, हमारे नये सभापति जी हाल को पूरा करा देंगे और अगले वर्ष जब हम वार्षिक उत्सव करेंगे तब इस खुले मैदान के स्थान पर, जहाँ कि हमने हाल को प्लिंथ तक बना लिया है, हमें पूरा तैयार हाल मिलेगा और उसी में हमारी मीटिंग होगी। भवन-निर्माण कोष की आय तथा व्यय का लेखा तथा दानदाताओं की सूची परिशिष्टों में दी हुई है।

गत वर्ष मैंने परिषद् की ओर से एक अनुसंधान-पत्रिका निकालने के सम्बन्ध में कहा था, जिसमें मूल अनुसंधान लेख तो हिन्दी में होंगे पर उनका संक्षेप हिन्दी, अँग्रेजी, फ्रेंच तथा जरमन में होगा, जिससे हमारे अनुसंधान लेख संसार के प्रमुख Abstract में स्थान पा सकेंगे।

अन्य देशों में इस प्रकार की पत्रिकायें छपा करती हैं। मैंने यह भी कहा था कि बिना अच्छे अनुदान के यह काम हम नहीं कर सकते। मुझे आज यह कहते हुए हर्ष होता है कि इस कार्य के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने हमें 2500/- का अनावर्तक अनुदान जनवरी 1957 में दिया है जिससे हम शीघ्र ही त्रैमासिक पत्रिका निकालने वाले हैं। नेशनल इन्स्टीट्यूट को भी हमने आवेदन पत्र भेजा है। अधिक अनुदान मिलने पर तथा इन अनावर्तक अनुदान के आवर्तक रूप में बदल जाने पर हम इसे मासिक पत्रिका कर सकेंगे। इसका सारा कार्य डॉ० सत्यप्रकाश जी कर रहे हैं।

वैज्ञानिक ज्ञानकोष के प्रकाशन के सम्बन्ध में, जिसके सम्बन्ध में मैंने गत वर्ष कहा था, भारत सरकार से लिखा पढ़ी हो रही है। अनुदान मिलने पर हम इस कार्य को सम्पन्न कर सकेंगे। डॉ० गोरख प्रसाद जी ने इस कार्य को पूरा करने का बीड़ा उठाया है। हम उनके आभारी हैं।

इस वर्ष हम पं० ओंकारनाथ जी शर्मा की पुस्तक रेलइंजन परिचय तथा संचालन, पृष्ठ-संख्या 340, चित्र 85, रंगीन चित्र-2 के साथ निकाल सके हैं जिसे हम शीघ्र सभ्यों के पास भेजेंगे। उत्तर प्रदेश सरकार से पुस्तकें छापने के लिये

हमें जनवरी 1957 में 2500/- अनावर्तक अनुदान मिला है जिससे हम पुस्तकें छापने का प्रबन्ध कर रहे हैं।

परिषद् के आयव्यय का लेखा, विज्ञान के सम्बन्ध में खर्च, अगले वर्ष के लिए अनुमान पत्र तथा भवन सम्बन्धी हिसाब आगे परिशिष्ट क, ख, ग, घ और च में दिये हैं।

इस वर्ष आजीवन सभ्यों की संख्या 66, सभ्यों की 144 तथा ग्राहकों की 261 रही। हमें सभ्यों से एक निवेदन करना है। वह अपना वार्षिक सभ्य शुल्क समय पर देते रहें। कुछ सभ्यों पर शुल्क बहुत वर्षों से बाकी हैं जिससे हमें असुविधा होती है। आशा है कि हमारे प्रेमी सभ्य हमारी परिस्थिति को देख कर सहायता करेंगे।

हम अपने भवन के अधोधरातलीय विस्तृत कक्ष (अंडरग्राउण्ड सेलार) को पूरी तरह तैयार कर सके हैं। बिजली का भी प्रबन्ध हो गया है। कुछ फर्निचर भी आ रहा है। श्री जवाहरलाल नेहरू जी ने सिलान्यास के अवसर पर हमारे उस हाल को देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की थी और वैज्ञानिक पुस्तकालय के लिए बहुत उपयुक्त बतलाया था।

हम इस दिशा में विशेष उद्योग करना चाहते हैं। वैज्ञानिक साहित्य सृजन के लिए हम उसे एक सुन्दर केन्द्र बनाना चाहते हैं। अँग्रेजी या अन्य विदेशी भाषाओं का उपयोगी साहित्य तो हमें अपने पुस्तकालय में रखना ही है, हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं का वैज्ञानिक साहित्य भी अधिक से अधिक संख्या में एकत्र करने का हौसला है। यह कार्य बड़ा व्यय-साध्य है। सरकार की प्रचुर सहायता तो अपेक्षित है ही, साहित्य-प्रेमी विद्वानों से भी हमारी प्रार्थना है कि वे अपने निजी संग्रहों में से पुस्तकें दान कर हमारे इस पुस्तकालय का मूल्य बढ़ावें। यह ध्यान रखना है कि हम उनका सर्वोत्तम उपयोग करेंगे क्योंकि हम वैज्ञानिक लेखकों को प्रश्रय दे सकेंगे जो हमारी बहुसंख्यक जनता में वैज्ञानिक भावना उत्पन्न करने के लिए पुस्तक-पुस्तिकायें, लेख आदि प्रस्तुत करते रहेंगे। हम अपने मासिक 'विज्ञान' को भी सुन्दर बना सकने के लिए सामग्री तैयार करा सकेंगे। अन्य उत्तम पत्र-पत्रिकाओं में भी लेख भेजवाने या प्रकाशकों को वैज्ञानिक पुस्तकें तैयार करा सकने में यथेष्ट सहायता दे सकेंगे।

कार्यालय की व्यवस्था करने के लिए हमारे पास धन का पूर्ण अभाव है। फलतः हमारे पास कोई भी पूर्ण समय देकर काम करने वाला क्लर्क, प्रबन्धक तथा सम्पादक नहीं है।

प्रकाशन का भी कार्य अधिक बढ़ाना है। इस विज्ञान के उपयोगी अंगों पर साहित्य प्रस्तुत ही न करेंगे, प्रत्युत उसके प्रसार का भी अधिक आयोजन कर सकेंगे।

विज्ञान को हम अधिक से अधिक संख्या में छाप सकने के लिए आकर्षक और विशेष उपयोगी बनाना चाहते हैं। धनाभाव से अभी तक वह जीवित मात्र ही है।

अंततः हाल की हमें अत्यन्त ही आवश्यकता है जिसमें हम इंगलैण्ड की रायल इंस्टिट्यूशन की तरह वैज्ञानिक विषयों पर जनता के सम्मुख वैज्ञानिकों के लोकप्रिय भाषण तथा प्रयोगों के प्रदर्शन कराने का प्रयास करेंगे। ये सब हौसले आज हमें अपनी शक्ति के बिल्कुल बाहर की ही बातें हैं, किन्तु किसी न किसी को इस दिशा में आगे तो बढ़ाना ही है। अतेव राष्ट्र-निर्माण के इस पुनीत तथा आवश्यक कार्य के लिये हम अपने सभापति, कार्यकर्त्ताओं, विद्वानों तथा उदार पोषकों के बल, सक्रिय सहयो ग औ र आशीर्वा द पर निर्भ र हैं ।

■ ■ ■

कुछ संस्मरण

❑ प्रो० रामदास तिवारी

अवकाश प्राप्त अध्यक्ष, रसायन विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डॉ० आत्माराम जी को मैंने सबसे पहले 1935 में देखा था। इन्टरमीडिएट पास करके मैंने बी० एस-सी० में विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया था और वे रसायन विज्ञान विभाग में आचार्य नीलरत्नधर की प्रयोगशाला में अपने अनुसंधान कार्य में लगे थे जिसके आधार पर उन्होंने 1936 में डी० एस-सी० उपाधि प्राप्त की।

बी० एस-सी० प्रथम वर्ष से ही डॉ० सत्यप्रकाश जी से अच्छा सम्पर्क हो गया, कारण मेरा रसायन विज्ञान का प्रयोगात्मक कार्य उन्हीं के निरीक्षण में होता था। सत्यप्रकाश जी अपने विद्यार्थियों को हिन्दी में लिखने की प्रेरणा देते रहते थे जिससे विज्ञान परिषद् से संपर्क हुआ और फिर कुछ समय बाद डॉ० आत्माराम जी से। विज्ञान परिषद् ने 1935 में आत्माराम जी द्वारा लिखित एक पुस्तक रसायन इतिहास सम्बन्धी प्रकाशित की थी जिसे मैंने पढ़ा था।

बी० एस-सी० पास करके मैंने एम० एस-सी० रसायन विज्ञान में प्रवेश लिया और इसी बीच दिसम्बर 1938 में विज्ञान परिषद् की रजत जयन्ती हुई जिसका उद्घाटन उस समय के शिक्षा मंत्री संपूर्णानन्द जी ने किया था। मैंने इससे संबन्धित उत्सव देखे तथा भाषण सुने, जिससे परिषद् से सम्बन्ध बढ़ता गया।

डॉ० आत्माराम जी इलाहाबाद से कलकत्ता चले गये जहाँ अलीपुर टेस्ट हाउस में वैज्ञानिक के रूप में कार्य करने लगे। यह उस समय की एक महत्वपूर्ण संस्था थी। 1940 में जब काउन्सिल ऑव साइन्टिफिक एन्ड इन्डस्ट्रियल रिसर्च बनी, सर शान्ती स्वरूप भटनागर ने इसका कार्यभार सँभाला और अनेक प्रयोगशालाओं का निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ। जब कलकत्ते में सेन्ट्रल ग्लास एन्ड सिरेमिक रिसर्च इन्सटीट्यूट बनने का निश्चय हुआ तो डॉ० आत्माराम जी 1946 में इसके डाइरेक्टर मनोनीत हुए। उन्होंने इसकी विभिन्न प्रयोगशालाओं के निर्माण से लेकर वैज्ञानिक विकास तक बहुत ही कुशलता से देखे और परिणामस्वरूप वहाँ उच्चकोटि का कार्य होने लगा। ऑप्टीकल ग्लास का बनाना इस प्रयोगशाला की सबसे महत्वपूर्ण देन थी जो विश्वविख्यात है और इस सबका श्रेय आत्माराम जी को ही है। 20 वर्ष तक इसके डाइरेक्टर रहने के बाद 1966 में वह सी० एस० आई० आर० डाइरेक्टर जनरल होकर दिल्ली चले गये जहाँ भारतवर्ष की समस्त प्रयोगशालाओं के सुचारु रूप से चलाने तथा उनके कार्यों के समन्वयन का भार उनके ऊपर पड़ा जिसे उन्होंने बड़ी कुशलता से निभाया। यहाँ से अवकाश ग्रहण करने के बाद वे नेशनल कमेटी ऑन साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी के चेयरमैन बनाये गये और उन्होंने लगन के साथ कार्य पूरा किया।

मैंने भी 1943 से विश्वविद्यालय में कार्य प्रारम्भ किया अतः इलाहाबाद या अन्य स्थानों में डॉ० आत्माराम जी से सम्पर्क होता रहा और वह सदैव उच्चकोटि का अनुसन्धान कार्य करने की प्रेरणा देते रहे। जब भी मैं सी० एस० आई० आर० से सम्बन्धित मीटिंगों में जाता था, उनका दर्शन अवश्य करता था।

इसके अतिरिक्त भारतीय विज्ञान काँग्रेस से भी उनका बड़ा सम्बन्ध था। वे इसके भूतपूर्व जनरल सेक्रेट्री तथा

जनरल प्रेसीडेन्ट रह चुके थे और इस आधार पर पदेन काउन्सिल का सदस्य हूँ। वर्ष में 2-3 बार इन मीटिंगों में मिलना हो जाता था। अपने गंभीर एवं महत्वपूर्ण विचारों से वे काउन्सिल का मार्ग-दर्शन करते रहते थे।

1968 में मैं एक अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेन्स में भाग लेने इंग्लैंड तथा कुछ विश्वविद्यालयों में भाषण देने जर्मनी गया था। लौटने पर दिल्ली में जब उनसे मिला तो उन्होंने अपनी यात्रा का वर्णन लिखकर साइन्स रिपोर्टर तथा विज्ञान प्रगति में देने के लिए सलाह दी।

मेरी अनुसंधान सम्बन्धी एक पुस्तक परगोमान प्रेस ने छापी थी तथा उसकी एक प्रति उन्होंने डॉक्टर आत्माराम जी के पास भी भेजी थी। उसको पढ़कर आत्माराम जी ने प्रोत्साहन तथा सराहना का एक पत्र मेरे पास भेजा था।

जब मैं रसायन विज्ञान विभाग का विभागाध्यक्ष था तब विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने विभाग को विशेष सहायता के विभाग (Department of special assistance) की मान्यता देकर लगभग 30 लाख रुपये का अनुदान दिया जिसमें कुछ धन प्रयोगशालाओं के निर्माण के लिए भी था। विभाग से उनके पुराने सम्बन्ध होने के कारण मैंने उनसे इनका शिलान्यास करने की प्रार्थना की, जिसे प्रेमपूर्वक स्वीकार करके उन्होंने इसे सम्पन्न किया। तमाम कारणों-विशेषकर विश्वविद्यालय की शिथिलता के कारण लगभग 4 वर्ष तक कुछ काम नहीं हुआ। अब कुछ महीनों से छुट-पुट कुछ काम हो रहा है। इधर 6 फरवरी 1983 को आत्माराम जी का निधन हो गया। ईश्वर से प्रार्थना है कि उनका आशीर्वाद हमारे साथ रहे और कार्य शीघ्र पूरा हो जाये।

विज्ञान परिषद् तथा हिन्दी के प्रति उनका अगाध प्रेम था। वे परिषद् तथा इसके भवन के लिए बहुत कुछ करना चाहते थे पर इसके पूर्व ही वह इस संसार से चले गए। ईश्वर से प्रार्थना है कि उनको पूरा करवा सकने की हम सबको शक्ति दें।

डॉ० आत्माराम, आचार्य नीलरत्न धर के प्रिय शिष्यों में से एक थे। वे बिना डॉ० धर की राय के कोई काम नहीं करते थे। हम लोगों ने डॉ० धर तथा आत्माराम जी दोनों को देखा है और निसंकोच यह कह सकते हैं कि वे एक आदर्श गुरु के आदर्श शिष्य थे।

सादा रहन-सहन तथा उच्च विचार के डॉ० धर साक्षात प्रतीक हैं और डॉ० आत्माराम जी का भी जीवन भर यही आदर्श रहा।

■■■

(पृष्ठ 28 का शेष)

योजना में यदि इस प्रकाशन के लिये प्रतिवर्ष कुछ न कुछ रुपया मिलता रहा तो इस महान कार्य को हम सम्पन्न कर सकेंगे।

विज्ञान परिषद् का कार्य अब तक और अधिक सुचारु रूप से न चल सकने का कारण हमारा अपना विज्ञान भवन का न होना था। हमारे सभापति श्री हीरा लाल जी खन्ना के प्रयत्न से भवन निर्माण का कार्य भी अच्छी प्रगति से हो रहा है। हमारे भारतवर्ष के प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू इस भवन का शिलान्यास कर रहे हैं। आशा हैं कि पण्डित जी का आशीर्वाद प्राप्त होने से भवन निर्माण कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होगा तथा परिषद के द्वारा वैज्ञानिक साहित्य के प्रकाशन तथा प्रसारण में दिन पर दिन वृद्धि होगी।

■■■

विज्ञान परिषद् के 44 वर्ष

❑ डॉ० रामदास तिवारी

प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्

आज से 44 वर्ष पूर्व इस बात को कौन सोच सकता था कि इस देश में विज्ञान की उच्च शिक्षा हिन्दी के माध्यम से संभव हो सकेगी। विश्वविद्यालयों की तो बात ही क्या हाईस्कूल तथा मिडिल कक्षाओं में भी विज्ञान ही नहीं बल्कि भूगोल, इतिहास व गणित ऐसे विषय भी अँग्रेजी में पढ़ाये जाते थे। अनेक विश्वविद्यालयों में तो हिन्दी, उर्दू, संस्कृत तथा फारसी की भी पढ़ाई अँग्रेजी में होती थी।

स्पष्ट हैं कि हिन्दी माध्यम से उच्चतर शिक्षा एक स्वप्न ही थी। परन्तु इस स्वप्न को सत्य करने का पहला कदम महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी ने उठाया था, जबकि उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना प्रयाग में की जिसका मुख्य उद्देश्य यह था कि अनेक विषयों के पठन-पाठन का माध्यम हिन्दी हो। इसके परिणाम स्वरूप म्योर सेन्ट्रल कॉलेज इलाहाबाद के कुछ अध्यापकों व छात्रों में इस बात की चर्चा होने लगी कि क्या वैज्ञानिक साहित्य देशी भाषाओं में नहीं हो सकता। अतः 10 मार्च 1913 को महामहोपाध्याय डॉक्टर गंगानाथ झा, प्रोफेसर हमीदुददीन, बाबू रामदास गौड़ और प्रोफसर सालिगराम भार्गव ने एक मीटिंग करके यह निश्चय किया कि देशी भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य की रचना और प्रचार का काम संगठित रूप से चलाने के उद्देश्य से वर्नाक्यूलर साइन्टिफिक लिटरेचर सोसाइटी की स्थापना की जाय, जिसका नाम डाक्टर गंगानाथ जी झा ने विज्ञान परिषद्, तथा मौलवी हमीदुद्दीन ने अंजुमन सनाअव फनून रक्खा।

आज अपने देश में वैज्ञानिक शिक्षा का पठन-पाठन हिन्दी में देखकर प्रसन्नता होती है, परन्तु इस कार्य के आरम्भ का पहला श्रेय विज्ञान परिषद् ही को है, और जब हिन्दी भाषा में विज्ञान की शिक्षा का इतिहास लिखा जायेगा तो इन दिवंगत आत्माओं का नाम जिन्होंने सबसे पहले इस कार्य का बीड़ा उठाया था, स्वर्ण अक्षरों से लिखा जायेगा।

स्थापना के बाद

विज्ञान परिषद् की संस्थापना हो जाने के बाद इसके संचालन कार्य में म्योर सेन्ट्रल कॉलेज के प्रिन्सिपल जे० जी० जेनिंग्स तथा प्रोफेसर ई० जी० हिल तथा जे० जे० ड्यूरेक से भी बहुत सहायता मिली। कॉलेज के अन्य हिन्दुस्तानी अध्यापकों की तो पूरी सहानुभूति थी ही। अतः इसका पहला अधिवेशन तथा पदाधिकारियों का चुनाव 31 मार्च 1913 को हुआ। इसके पश्चात् दिन पर दिन उत्साह बढ़ता गया तथा कार्य की वृद्धि होती गयी।

उस समय से अब तक विज्ञान परिषद् का मासिक विज्ञान लगातार निकलता रहा है। और इसके द्वारा विज्ञान के नये-नये चमत्कार तथा अन्वेषण हिन्दी भाषा में जन साधारण को प्राप्त होते रहे हैं। यह गौरव की बात है कि इस पत्रिका का प्रकाशन हम लगातार करते आये हैं। भारतवर्ष के इस नव निर्माण युग में हमें इस पत्रिका को और भी रोचक तथा लाभप्रद बनाना है। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की पत्रिकायें स्वावलम्बी नहीं हो सकतीं। इसका प्रकाशन राज्य सहायता पर निर्भर रहता है। हमें उत्तर प्रदेश सरकार से 2000 रुपये प्रतिवर्ष अनुदान प्राप्त होता है। और इसका श्रेय स्वर्गीय सी० वाई० चिन्तामणि जी को है जो हमारे परिषद् के सभापति भी थे, और जिन्होंने अपने शिक्षा-मंत्री काल में

इसे अनुदान देना प्रारम्भ किया था। विज्ञान तथा विज्ञान परिषद् की वृद्धि के साथ अब यह अनुदान पर्याप्त नहीं होता है। इसलिये हमारा कार्य सुचारु रूप से चलने के लिये 5000 रुपये प्रतिवर्ष अनुदान की आवश्यकता है।

पुस्तकों का प्रकाशन

विज्ञान के प्रकाशन के सथ-आथ कुछ वैज्ञानिक पुस्तकों के प्रकाश की ओर भी ध्यान दिया गया। सबसे पहली पुस्तक विज्ञान प्रवेशिका प्रोफेसर सालिगराम जी भार्गव और प्रोफेसर रामदास जी गौड़ ने लिखी जिसके प्रकाशन पर विज्ञान परिषद् के उद्देश्यों तथा कार्यों की समालोचना करते हुये अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने इसकी प्रशंसा की और प्रोत्साहन दिया। कार्य में सबसे बड़ी कठिनाई पारिभाषिक शब्दों की थी। अतः भिन्न-भिन्न विषयों की समितियाँ बना दी गयी जिन्होंने पारिभाषिक शब्द-निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया। प्रोफेसर सैयद मोहम्मद अली नामी के प्रयत्न से विज्ञान प्रवेशिका भाग 1 का उर्दू अनुवाद भी तैयार किया गया जिसका प्रकाशन लाला रामनारायण जी को दिया गया। यह हमारी पहली पुस्तक थी। इसके बाद हमारे आज तक के प्रकाशनों की संख्या 70 के लगभग है। इसमें से सूर्य सिद्धान्त, समीकरण मीमांसा, सरल विज्ञान सागर, फोटोग्राफी, फसल के शत्रु, शिशु पालन, मधुमक्खी पालन, घरेलू डाक्टर, उपयोगी नुस्खे, सांपों की दुनिया, राष्ट्रीय अनुसंधानशालायें, गर्भस्थ शिशु की कहानी तथा रेल इंजन परिचय विशेष उल्लेखनीय हैं।

विज्ञान परिषद् का साहित्य क्षेत्र में यह नया प्रयोग था और इसने सामान्य लोगों की इस धारणा को कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक विषयों के प्रतिपादन की क्षमता नहीं है, निर्मूल सिद्ध कर दिया। परिषद् ने अनेक उदीयमान लेखकों को यह अवसर दिया कि वे वैज्ञानिक विषयों पर लेख लिखें और पुस्तकों की रचना करें। परिषद् के तत्वावधान में लेखकों ने लेखन कला की शिक्षा प्राप्त की और परिषद् से ही नहीं अन्य स्थलों से भी हिन्दी संसार को अच्छा साहित्य भेंट किया। हमारी पुस्तकों के अनेक लेखकों की अपनी पुस्तकों पर विभिन्न सरकारों तथा संस्थाओं से अनेक पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। इस प्रयोग के फलस्वरूप अब यह स्पष्ट हो गया है कि हम विश्वविद्यालयों की उच्च शिक्षा भी हिन्दी माध्यम द्वारा दे सकते हैं।

आज तो प्रयाग, लखनऊ, काशी, सागर, नागपुर आदि के विश्वविद्ययों में वैज्ञानिक शिक्षा हिन्दी माध्यम द्वारा दी जाने लगी है, तथा प्रश्न-पत्र भी हिन्दी में आने लगे हैं और उचित साहित्य की रचना का कार्य भी प्रारम्भ हो गया है। परिषद् के कार्य और अनुभव से प्रेरणा लेकर वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली निर्माण समितियों के सदस्य हैं। हमारे पास प्रकाशन के लिये बहुत सी सामग्री है। परन्तु धनाभाव के कारण हम इस कार्य को और आगे बढ़ाने में असमर्थ रहे हैं।

परिषद् बहुत दिनों से इस बात का विचार करती रही है कि एक चतुर्मासिक अनुसंधान पत्रिका निकाली जाये, जिसमें गवेषणात्मक लेख छपें। हमारे देश में अभी इस प्रकार की कोई पत्रिका नहीं है। इसमें अनुसन्धान सम्बन्धी लेख तो हिन्दी में छपेंगे, परन्तु लेखों का सारांश हिन्दी तथा अँग्रेजी और यदि सम्भव हुआ तो फ्रेन्च, जर्मन में भी छपेंगे जिससे सारांश बनाने वालों को सरलता हो और हमारे अनुसन्धान संसार के वैज्ञानिक क्षेत्र में स्थान पा सकें। अनेक देशों में इस प्रकार की पत्रिकायें छपा करती हैं। इतने थोड़े काल में चीन में अपनी भाषा में अनुसन्धान पत्रिका निकालना प्रारम्भ कर दिया। स्वतन्त्र भारत में इस प्रकार की वैज्ञानिक पत्रिका का निकालना परम आवश्यक है, जिसके द्वारा हमारे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध अधिक प्रौढ़ होंगे। इस प्रकार की पत्रिका निकालने के लिये हमने उत्तर प्रदेश की वैज्ञानिक अनुसन्धान समिति से 5000 रुपया प्रतिवर्ष का अनुदान मांगा था, जिसे कमेटी ने अपनी सिफारिश के साथ उत्तर प्रदेश सरकार को भेजा है। यदि हमें यह अनुदान मिल गया तो हम इस पत्रिका को शीघ्र ही प्रकाशित कर सकेंगे।

एक दूसरी आयोजना हमने एक वैज्ञानिक ज्ञान कोष (इनसाइक्लोपीडिया) के प्रकाशन की बनायी थी, जिसे 10-12 भागों में छपने में लगभग 3 लाख रुपये का व्यय होगा। इस सम्बन्ध में सारे प्रार्थना-पत्र उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा केन्द्रीय सरकार को भेज दिये गये हैं। दूसरी पंचवर्षीय

(शेष पृष्ठ 26 पर)

पेनिसिलिन की कहानी

❑ डॉ० रामदास तिवारी

डी० एस-सी०

पेनिसिलिन एक औषधि है जो इस दृष्टि से अद्वितीय है कि यह मानव-शरीर द्वारा इतनी मात्रा में ग्रहण की जा सकती है जितनी इतने ही प्रभाव के किसी अन्य रासायनिक पदार्थों की अवस्था में घातक हो सकती है। मनुष्य के लिए अनिष्टकर, सर्वाधिक घातक कीटाणुओं में से कुछ का विनाश एवं वृद्धि अवरुद्ध करने का गुण इसमें होता है। इसका महत्व इस तथ्य से प्रकट हो सकता है कि जहाँ 1914-18 के विश्व व्यापी महायुद्ध में युद्धगत आहतों में से आठ प्रतिशत की मृत्यु हुई, वहाँ पिछले महायुद्ध में यह संख्या 4 प्रतिशत से भी ऊपर नहीं गई। इस संख्या अपकर्ष का कारण इस नवीन औषधि पेनिसिलिन की सुलभता थी। इससे पूर्ववर्ती महायुद्ध के समय चिकित्सक को जहाँ विकृत व्रण (सेप्टिक वून्ड्स) असहाय और किंकर्तव्यविमूढ़ रखते, वहाँ आधुनिक युद्ध में मोर्चे पर चिकित्सक को ऐनिसिलिन सुलभ थी जिससे रोगी की उचित सेवा होती, और वह स्वास्थय प्राप्त कर कार्यरत हो सकता।

पेनिसिलिन की कहानी में तीन ऐतिहासिक घटनाएँ हैं, प्रथम सन् 1929 ई० में फ्लेमिंग द्वारा इसका अन्वेषण था, द्वितीय सन् 1932 ई० में रायस्ट्रिक द्वारा इसके रासायनिक गुणों पर प्रकाश डालना था, और तृतीय सन् 1940 में फ्लोरी द्वारा इसकी रोग-निवारक महत्ता की अत्यन्त उत्तेजक घोषणा थी। यह कौतूहल की बात है कि पेनिसिलिन के अन्वेषण में, जो अत्यन्त स्तब्धकारी तथा साथ ही विशेष महत्वपूर्ण भी है, अनेक स्थितियों में सौभाग्य ने बड़ा महान स्थान प्राप्त किया। इस प्रकार का यह केवल एकाकी उदाहरण नहीं है। वैज्ञानिक गवेषणा का इतिहास ऐसे उदाहरणों से ओत-प्रोत है कि बिल्कुल असाधारण तथा अचिन्त्य दिशा में विस्मयजनक प्रगति की जा सकती है।

पेनिसिलिन की कहानी सन् 1929 ई० में लन्दन के सेन्ट मेरी चिकित्सालय की कीटाणु वैज्ञानिक प्रयोगशाला में प्रो० फ्लेमिंग से प्रारम्भ होती है। वह एक विशेष, प्रकार के कीटाणु का कृत्रिम रूप से पालन कर रहे थे। इस स्थिति पर यह जान लेना आवश्यक है कि इनका अध्ययन करने के लिए कीटाणु-वैज्ञानिक को उन्हें ऐसे उपयुक्त आहार पर, जिसे माध्यम कहते हैं, तथा समुचित परिस्थिति में पोषित करना पड़ता है कि वे संख्या-वृद्धि कर उपनिवेश सृजित कर सकें। अगार(एक समुद्री वनस्पति से उत्पन्न किया रस) एक ऐसा पदार्थ है जिनमें वे भली-भाँति उत्पन्न होते हैं। एक उल्लेखनीय आवश्यक बात यह है कि कीटाणु-वैज्ञानिक को इसकी सावधानी रखनी पड़ती है कि पोषित किए जाने वाले अभीप्सित कीटाणु के अतिरिक्त किसी भी अन्य जीवाणु से वह कृत्रिम पोषित उपनिवेश संपर्क-भ्रष्ट न होने पावे। प्रो० फ्लेमिंग एक विशेष प्रकार के कीटाणुदल को अगार में कृत्रिम रूप से पोषित कर रहे थे और उन्होंने देखा कि उनका एक अगार-घोल भ्रष्ट हो गया है। उनको साधारणतः सावधानी से रखने पर भी कुछ अन्य अनभीप्सित सूक्ष्मदर्शकीय जन्तु बने, उनके माध्यम को संपर्कभ्रष्ट कर दिया है और अगार-घोल के तल पर एक सूक्ष्म नील-हरित फंगी उत्पन्न हुआ दिखाई पड़ता है। यदि फ्लेमिंग सरीखा आसाधारण प्रकार का सतर्क तथा अत्यन्त दीक्षित द्रष्टा न होता तो यह प्रयोग निष्फल घोषित किया जाकर कीटाणु-पोषणपात्र तुरन्त ही फेंक दिया गया होता, किन्तु इस पोषणपात्र का ध्यानपूर्वक अध्ययन

करनेसे एक विचित्रता व्यक्त हुई जो किसी साधारण प्रयोगकर्त्ता की दृष्टि को धोखा दे जाती। कीटाणु के जिस विशेष प्रकार का उपनिवेश वे पोषित कर रहे थे, वह फंगी के उत्पत्ति-स्थान से बहुधा लुप्त हो गई थी। स्पष्टतया यह एक ऐसा उदाहरण था जिसमें एक विशेष कीटाणु की विद्यमानता ने दूसरे प्रकार के सूक्ष्मदर्शकीय जन्तु की वृद्धि का अवरोध किया था। पारिभाषिक भाषा में यह कीटाणुवीय-अवरोध कहा जा सकता है। पोषणपात्र की ध्यानपूर्वक परीक्षा और उल्लिखित फंगी के संज्ञा-ज्ञान से उसका वर्गीकरण **पेनिसिलयम नोटेटम** वर्ग में किया गया। यह भी देखा गया कि फंगी ने पोषण-पदार्थ में एक रासायनिक पदार्थ निःसृत किया जो कतिपय रोगजनक कीटाणुओं की वृद्धि का अवरोधक था। प्रत्युत फंगी द्वारा निःसृत रासायनिक तत्व था, जिसे प्रोफेसर फ्लेमिंग ने पेनिसिलिन नाम से संबोधित किया।

बाद में यह पता चला कि यद्यपि फंगी, **पेनिसिलियम नोटेटम,** द्वारा निःसृत पदार्थ पेनिसिलिन, अनेक प्रकार के कीटाणुओं की ओर विशेष कर व्रणविकृति के रोगोत्पादकों का विनाश करने में समर्थ था, यह जीव के शरीर के लिये अनिष्टकार नहीं था। इस प्रकार यह पदार्थ परोपजीवी-हंता तो था किन्तु जीवहंता नहीं था। यह ऐसी अवस्था थी जो इसके रासायनिक चिकित्सा के साधन रूप में उपयुक्त होने के सर्वथा ही अनुकूल थी, क्योंकि इसके पूर्व के ज्ञात पदार्थों में से अधिकांशतः ऐसे थे जो कीटाणुद्रोही सिद्ध होते तो साथ ही शरीर के तत्वद्रोही भी प्रकट होते तथापि इस अवसर पर इस सौभाग्य-वशात् अन्वेषित औषधि का महत्व पूर्णतया अनुभव नहीं किया जा सका और पेनिसिलिन सम्बन्धी कार्य पूर्णतया एक दशक तक स्थगित-सा ही रहा। इस प्रकार हम देखते हैं कि किस प्रकार सौभाग्य और संयोगवशात् पेनिसिलिन का प्रादुर्भाव हुआ।

सन् 1938 ई० में आक्सफोर्ड में सर विलियम डन चिकित्साविज्ञान विद्यालय में प्रो० फ्लोरी और चेन द्वारा पेनिसिलिन के इतिहास में दूसरी महत्वपूर्ण प्रगति हुई, वे इस बात की गवेषणा कर रहे थे कि कीटाणु-द्रोह की समस्या क्या है, एक कीटाणु दूसरे कीटाणु पर क्यों तथा कैसे आक्रमण करता है। यह सौभाग्य की ही बात है **पेनिसिलियम नोटेटम** पर शोध कार्य बहुत पूर्व स्थिति में ही प्रारंभ हो गया था। इन दोनों कर्मियों के अतिरिक्त अन्य मेघावी शोधकों के एक दल ने इस समस्या के विभिन्न अंगों पर कार्य प्रारंभ किया। इन गवेषणाओं के फलस्वरूप निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुँचा जा सका-

1. 15 करोड़ में एक भाग के अनुपात के घोलित द्रव में विद्यमान शुद्ध पेनिसिलिन व्रण-विकृति के रोग के कीटाणुओं की वृद्धि अवरूद्ध करने में सक्षम है।

2. मेनिंगाइटिस तथा प्रमेह रोगों के उत्पादक कीटाणु तो व्रण-विकृति रोग-जनक कीटाणुओं की अपेक्षा (पेनिसिलिन के प्रति) दुगुने संवेदनशील (प्रभावधीन) हैं।

3. पेनिसिलिन प्रस्तुत करने की तत्कालीन ज्ञात पद्धति से शेष रद्द जानेवाली अशुद्धता के पदार्थ भी कुप्रभावहीन थे।

इन तीन महत्वपूर्ण निष्कर्षों से यह विदित हो सका कि मानव-कल्याण के लिए औषधि रूप इसके उपयोग के अतिरिक्त पेनिसिलिन का उपयोग युद्धगत आहतें के लिए भी हो सकेगा। अतएव पेनिसिलिन के बड़े पैमानें पर उद्योग का कार्य प्रारंभ किया गया। इग्लैन्ड के जर्मनी द्वारा बम वर्षा के आधीन होने के कारण निर्माण-कार्य में विघ्न पड़ने के भय से निर्माण का अधिकांश कार्य अमेरिका में किया गया। गवेषणा का प्रगति-मार्ग तीन मुख्य दिशाओं में रक्खा गया:-

1. पेनिसिलन का भारी मात्रा में निर्माण।
2. यह ज्ञात करना कि किस प्रकार के कीटाणु पेनिसिलन के प्रभावान्तर्गत थे और किस प्रकार के नहीं थे।
3. पेनिसिलिन का विशुद्धीकरण, इसकी रासायनिक रचना का निर्धारण तथा इसका कृत्रिम रूप से निर्माण।

पहले कार्य ने यह समस्या खड़ी की कि भारी कारखाने के पैमाने पर इसका किस प्रकार निर्माण किया जाय। प्रयोगशाला के पैमाने पर, विज्ञ रसायनशास्त्रियों द्वारा शीशियों में धीमी प्रगति की निर्माण विधि से इसका निर्देश

मिलना कठिन ही था कि किस प्रकार अनुभवहीन कारखाने के श्रमिकों द्वारा यह भारी पैमाने में निर्माण किया जा सके। कारखाने के श्रमिकों के सामने यह समस्या रहती है कि किस प्रकार न्यूनतम समय में न्यूनतम व्यय से अधिकतम मात्रा में निर्माण ऐसी अविरल पद्धति से होता रहे जो मूर्ख-साध्य सा हो। इसके लिए वनस्पति विज्ञान, रसायन विज्ञान, कीटाणु विज्ञान एवं रासायनिक इंजीनियरी विज्ञान सम्बन्धी प्रचुर मात्रा में गवेषणा की महती आवश्यकता थी। अनेक क्षेत्रों में बहुसंख्यक कार्यकर्ताओं के सामूहिक प्रयत्नों के परिणाम-स्वरूप पेनिसिलिन-उत्पाद् फंगी या भुकुड़ी की उत्पादन विधि विकसित हो सकी। यह चीनी के साधारण घोल में सुचारु रूप से उत्पन्न होती है जिसमें कुछ रासायनिक लवण भी सम्मिलित होते हैं तथा पूर्ण पदार्थ एक सप्ताह तक 21 प्रतिशत शतांश तापमान पर रक्खा जाता है। सम्पन्न पद्धति को वायुगत कीटाणुओं तथा फंगियों से संपर्क-वर्जित रक्खा जाता है। इस आधारभूत सार में पेनिसिलिन का संचार हुआ रहता है। उससे कतिपय दुर्बोध वैज्ञानिक पद्धतियों के उपयोग से पेनिसिलिन का रस प्रस्तुत होता है। इन पद्धितयों में ईथर, क्लोरोफार्म, या अनिलएसिटेट समान जल में घुलनशील घोल के माध्यमों का उपयोग किया जाता है और आवश्यकतानुसार अम्लता या क्षारता की मात्रा घटा-बढ़ा ली जाती है। उपरिवर्णित विधि की रूपरेखा पढ़ने में बड़ी सरल है, परन्तु यथार्थ व्यवहार में कितनी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार साधारण चिकित्सा-कार्य के लिए उपयुक्त 30 प्रतिशत से 80 प्रतिशत तक शुद्धता का पेनिसिलिन विभिन्न कोटियों का प्रस्तुत किया जाता है। मस्तिष्क-व्यवच्छेद के विशेष उपयोग के लिए रवादार शत-प्रतिशत शुद्ध पेनिसिलिन भी तैयार की जा सकती है किन्तु वह बहुत मूल्यवान होती है।

उपरवर्णित दूसरा कार्य यह ज्ञात करना था कि कौन से कीटाणु पेनिसिलिन द्वारा प्रभावित होते हैं और कौन नहीं होते। यह ज्ञात हो सका कि स्ट्रेप्टोकोकी तथा स्टेफिलोकोकी कीटाणु जो क्रमशः व्रण-विकृति तथा गैस गैंगरीनी रोग उत्पन्न करते हैं, इसमें सर्वाधिक प्रभावशील है और ऐंथरेक्स, न्युमोनिया, डिपथेरिया, जननेन्द्रिय रोग, तथा मेनिंगाइटिस रोगों के कीटाणु भी इससे अधिक प्रभावशील हैं, परन्तु क्षय, टायफाइड और प्लेग के कीटाणु के प्रति पेनिसिलिन असंवेदनशील या अप्रभावशील है। साधारण विधिवत बिल्कुल प्रारंभिक प्रयोग चूहियों पर औषधि की उचित मात्रा तथा शक्ति का निर्धारण करने के लिए किया गया। तत्पश्चात् इसका प्रयोग मानव रोगियों पर प्रारंभ हुआ और पिछले कई वर्षों से पत्रों के पृष्ठ उन संवादों से रंगे मिलते हैं जो पेनिसिलिन की अभूतपूर्व शक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इसके प्रभावोंत्पादन की प्रणाली के सम्बन्ध में पहले विचार किया गया था कि पेनिसिलिन कीटाणु का हनन नहीं करती, बल्कि उनकी वृद्धि को ही अवरूद्ध करती है। बाद में यह ज्ञात हुआ कि कीटाणुओं का साक्षात् संहार होता है। इसकी पुष्टि हुई हैं कि ये दोनों बातें सत्य हैं। इसकी कीटाणु सम्बन्धी क्रिया इतनी प्रबल होती है कि एक ग्राम का 5 करोड़वाँ भाग (1/50000000) बीस करोड़ कीटाणुओं को मारने के लिए यथेष्ट है। केवल संयुक्त राज्य अमेरिका के पेनिसिलिन की मात्रा के मासिक उत्पादन की निम्नांकित तालिका पेनिसिलिन की बढ़ती महत्ता का अनुमान हो सकता है:-

1943 - 190 करोड़ टन

1944 - 13800 करोड़ टन

1945 -57000 करोड़ टन

1946 - 80000 करोड़ टन

1947 - 10,0000 करोड़ टन

यह शत प्रतिशत शुद्ध पेनिसिलिन उत्पादन परिणाम है कि रसायनवेत्ताओं का ध्यान इस आणविक रचना के निर्धारण की ओर जा सका है। इसे सफलतापूर्वक ज्ञात करने में वे समर्थ हो सके हैं। इस संबंध में यह उल्लेख करना आवश्यक है कि औषधि निर्माण विद्या ने शुद्ध पेनिसिलिन उत्पादन में महत्वपूर्ण भाग लिया है।

■ ■ ■

उच्च बहुलक या हाई पालीमर

❑ डॉ० रामदास तिवारी

रसायन विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-2

ऐतिहासिक

वायरस ऐसे पदार्थ हैं जो जड़ पदार्थों के समान व्यवहार करते हैं और चेतन पदार्थों की भाँति जीवित प्राणियों के समान भी क्रियायें करते हैं। इन्हें वास्तव में जड़ और चेतन के बीच की कड़ी समझा जा सकता है। अब यह सम्भव हो गया है कि इन पदार्थों को केलासित रूप में प्राप्त कर लिया जाय या फिर इच्छानुसार जीवित अवस्था में निर्मित कर लिया जाय। इस वैज्ञानिक सफलता के परिणामस्वरूप जीवन प्रक्रम के सम्बन्ध की उलझी हुई गुत्थी कुछ सुलझती दृष्टिगोचर होती है। अभी तक जीवित वस्तुओं के सृजन के हेतु एक ऐसी शक्ति की कल्पना की जाती थी जो मानव सामर्थ्य से परे की वस्तु थी किन्तु इस क्षेत्र में जो शेधकार्य हुआ है उससे यह आशा बंध गई है कि मानव जीवन के भेद के रहस्य का उद्‌घाटन कर सकेगा। इस प्रकार बहुलक-विज्ञान का महत्व बढ़ गया है।

जर्मनी के ईमिल फिशर आधुनिक बहुलक-रसायन के जनक कहे जाते हैं। सन् 1914 ई० में उन्होंने पालीपेप्टाइड का निर्माण किया। इसी क्षेत्र में लगभग इसी समय रूस के लेवडेव ने ब्यूटाडाइन का निर्माण किया और उसे संयोजन विधि से रबर में परिवर्तित किया। हाल ही में विगनीन ने संयोजन-विधि से एक अष्टसदस्यीय वलय के पालीपेप्टाइड का निर्माण किया जिसका नाम आक्सीटोसीन है। यह जीवन की प्रक्रियाओं पर माईक्रोग्राम सान्द्रण में भी प्रभावी सिद्ध हुई है। इस खोज के लिये इन्हें सन् 1955 ई० में नोबिल पुरस्कार भी प्रदान किया गया। सन् 1953 में बहुलक सम्बन्धी गवेषणाओं पर स्टेनडिंगर को सन् 1957 ई० में न्यूक्लिइक अम्लों की संरचना पर प्रकाश डालने के लिये सर अलेक्जेण्डर टाड को और इनसुलीन के अणु की पूर्ण संरचना ज्ञात करने के लिए सैंगर को नोबिल पुरस्कार मिले। सैंगर का कार्य कठिन था क्योंकि इनसुलीन के एक अणु में 777 परमाणु होते हैं और उन परमाणुओं की स्थिति का औचित्य ज्ञात करना एक दुरूह कार्य था।

औद्योगिक क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण बहुलकों पर कार्य हुआ है। इनमें से प्लास्टिक, रेजिन, रबर, बेकलाइट, यूरिया, मेलामीनें, एल्कालाइडें, एपोक्सी रेजिनें, पोलीस्टाइरीनें, पोलीमीथिल मीथाकिलेटें इत्यादि हैं। इन सब सफल प्रयोगों के बाद भी सन् 1930 तक बहुलकों के सम्बन्ध में प्राथमिक और सबसे महत्वपूर्ण तथ्य अज्ञात ही रहे। प्रारम्भिक कालिल-वैज्ञानिकों ने बहुलकों का संयोजन-कलिलों के वर्ग में रखा किन्तु स्टैनडिंगर ने बताया कि ये यौगिक सहयोजनीय हैं जिनका अणुभार अत्यधिक है। मायर और मार्क ने एक्स-रे सबंधी अध्ययन से स्टैनडिंगर के कथन की पुष्टि की। परिणामस्वरूप कलिल-वैज्ञानिकों की धारणा निर्मूल सिद्ध हुई और कार्बनिक विज्ञान में संरचना सम्बन्धी खोजों की सहायता से बहुलकों की रासायनिक क्षेत्र में प्रतिष्ठा हुई।

बहुलकों का निर्माण·

बहुलक निर्माण क्रिया दो विधियों से होती है, पहली क्रिया में कई अणु परस्पर के संयोग से एक वृहत अणु का

निर्माण करते हैं जिसे बहुसंघनन (Polymerisation) कहते हैं। दूसरी क्रिया में एक अणु में दूसरा अणु मिलता है फिर इन दो से तीसरा और इन तीन से चौथा और इसी प्रकार क्रिया चलती रहती हैं और एक बृहत अणु का निर्माण हो जाता है। इस क्रिया को योगशील बहुलकीकरण कहते हैं। पहली क्रिया से निर्मित बहुलकों में नाइलोन एक पॉलीएमाइड और टेरिलीन (एक पॉलीएस्टर) है और दूसरी क्रिया से पॉलीस्टिरीन और पॉलीबीनाइल क्लोराइड-एसीटेट के बहुलक हैं।

बहुसंघनन की क्रिया से बहुलकों के निर्माण की क्रिया सरलता से समझी जा सकती है। विशेष रूप से निम्नलिखित तीन विषयों के सम्बन्ध में प्रयोगों से सारा पता लग जाता है। वे तीन विषय हैं।

(1) बहुसंघनन गतिज विज्ञान, (2) आयाम वाले बहुलकों का श्लिषीकरण और (3) अणुभार का विभाजन, जिसमें में यह मान लिया जाता है कि बहुसंघनन की क्रिया क्रमबद्ध प्रक्रिया है और दिये गये भाग लेने वाले समूहों में होने वाली आन्तरिक रासायनिक प्रक्रिया अणु के आकार पर निर्भर नहीं है। इन तीनों विषयों पर सन्तोषजनक कार्य किया गया है। प्रयोगों से सभी सैद्धान्तिक परिणामों की पुष्टि होती है।

योगशील बहुलकीकरण क्रिया के विषय में जानने के लिये विनाइल बहुलक क्रिया पर अधिक काम हुआ है। सन् 1930 के लगभग यह निश्चत हो गया कि यह श्रंखलाबद्ध प्रक्रिया है। यह बहुलक क्रिया निम्न तीन क्रमों में सम्मपन्न होती हैं—

(1) प्रारम्भिक $M \rightarrow M^*$

(2) प्रसरित $M_n^* + M \rightarrow M_{n+1}^*$

(3) अन्तिम $M_m^* + M_n^* \rightarrow M_{m+n}$ अथवा $M_m + M_n$
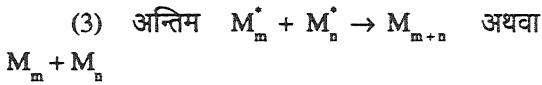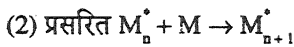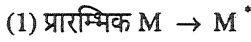
प्रारम्भिक

प्रारम्भ ऊष्मा, प्रकाश रसायन या मुक्त मूलक विधि में से किसी से भी हो सकता है। उत्प्रेरक के बिना ऊष्मा द्वारा अथवा प्रकाश द्वारा प्रारम्भ की गई क्रियाओं के द्वारा प्रायोगिक तथ्य प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई होती है। इस कारण से सिद्धान्त स्थापन में भी बाधा पड़ जाती है।

वनाइल बहुलक क्रिया में अनेक ऐसे पदार्थों का पता लगा है जो ऐसे मुक्त मूलकों के सृजन में समर्थ हैं जो शक्तिशाली उत्प्रेरक सिद्ध हुये हैं। इनमें बेंजॉयल पर-ऑक्साइड और एजो सृजन में समर्थ है जो शक्तिशाली उत्प्रेरक सिद्ध हुये हैं। इनमें वेंजॉयल परऑक्साइड और एजोक्सिआइसोब्यूटिरनाइड्राइल प्रमुख हैं। यदि अनुनादन (रेजोनेन्स) द्वारा मुक्त मूलकों को प्रति स्थापित कर दिया जाये तो वे उत्प्रेरण में सफल नहीं हो सकते। उदाहरणार्थ ट्राइफीनाइल मीथिल मूलकों द्वारा वनाइल या एलाइल एसीटेटों के बहुलक नहीं बन पाते। बेंजाइल परआक्साइड में O-O बंधन टूट जाता है और C_6H_5COO के दो-मूलक बनते हैं जो बाद में दो फीनाइल मूलकों को जन्म देते हैं। इन दोनों मूलकों से बहुलक बनने में सहायता मिलती है। एजो बिस-आइसोब्यूटिरोनाइट्राइल में दोनों C-N के बन्धन टूट जाते हैं और दो मूलक बन जाते हैं जो बहुलक बनाने में सहायक होते हैं।

प्रसरित

सक्रिय केन्द्र के विकास की क्रिया पर प्रयोग किये गये हैं। प्रकाश-रसायन की विधि से चरम प्रसरण गति ज्ञात कर ली जाती है। साधारण मोनोमरों के लिये आवृत्ति मूलक 10^6 और सक्रियकरण ऊर्जा लगभग 5 किलो केलरी होती है।

ताप के सिद्धान्त के अनुसार मोनोमरों के बहुलक में परिवर्तित होने पर मुक्त ऊर्जा का ह्रास होता है। ΔH का मान ॠण्णात्मक होता है अर्थात् बहुलकीकरण की क्रिया में ताप उत्पन्न होता है। मोनोमर में सभी प्रकार की स्वतन्त्य संख्या रहती है किन्तु बहुलकों में सब प्रकार के स्वातन्त्र्य नष्ट हो जाते हैं, केवल कुछ शिथिल रूप में दोनों प्रकार के आन्तरिक घूर्णन स्वातन्त्र्य संख्या और कम्पन संख्या स्वातन्त्र्य ही रह जाते हैं। इस प्रकार बहुलकीकरण से एनट्रापी का ह्रास हो जाता है और मुक्त ऊर्जा समीकरण $\Delta F = \Delta H - T\Delta S$ में एनट्रापी और एनथेलपी विपरीत

दिशाओं में होते हैं। सम्भव हो सकता है कि किसी ताप पर एक इनमें से एक दूसरे से सबल सिद्ध हो। ऐसे ताप पर बहुलक मोनोमर से निर्बल होगा और बहुलक फिर से मोनोमरों में विभाजित हो जावेगा। इस ताप के समीप के क्षेत्र में प्रयोग करके बहुलकीकरण का ताप और एनट्रापी ज्ञात की सकती है।

अन्तिम

आयनों द्वारा किये गये बहुलकीकरण मेंअन्तिम क्रम एक-आणुक होता है। मुक्त मूलकों द्वारा उत्प्रेरित बहुलकीकरण द्वि-आणुक होता है जहाँ उत्प्रेरक निर्भरता गति उत्प्रेरक के सान्द्रण के वर्गमूल के अनुपात में होती है। अन्तिम क्रिया संयोजन से होती है या असमानुपातिक से, इस विषय में मतभेद है।

श्रंखलाबद्ध स्थानान्तरण

विकासमान मुक्त मूलक कभी-कभी और बढ़ने की अपेक्षा अपने समीप के किसी अणु से प्रतिकृत होता है और एक ऐंऋत बहुलक और एक नवीन मुक्त मूलक को जन्म देता है। यह मुक्त मूलक बहुलक के विकास के लिये नवीन सक्रिय केन्द्र बन जाता है यथा :-

$$Mn + CCl_4 > Mn\,Cl + CCl_3$$
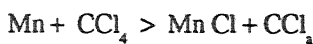
इस समीकरण में M_n विकास क्रम में मुक्त मूलक हैं, Mn Cl मृत बहुलक है और $C\,Cl_3$ एक नवीन सक्रिय मुक्त-मूलक है। जब ऐसी स्थित उत्पन्न होती है तब बहुलकीकरण की गति और गत्यात्मक श्रंखला-दूरी तो अपरिवर्तित रहती है किन्तु आणविक भार घट जाता है।

बहुलक निर्माण में नवीन-प्रगति

हाल ही में बहुलक विज्ञान के कुछ विभिन्न क्षेत्रों में विशेष प्रगति हुई है। इनका संक्षिम विवरण नीचे दिया गया है:

(1) शिल्प बहुलक (ग्रैफ्ट पालीमर) तथा रुद्ध बहुलक (ब्लाक पालीमर) : शिल्प बहुलक निर्माण के लिये एक बहुलक श्रंखला समूह को लेकर उसे किसी दूसरे प्रकार के एकलक पर विकसित किया जाता है। ऐसी स्थिति में एक बहुलक से दूसरे बहुलक का इस प्रकार से मिलन होता है कि पहला दूसरे से शाखा के रूप में संलग्न हो जाता है। इस प्रकार अलग-अलग शाखायें अलग-अलग एकलकों की होती हैं। इस विधि से पॉलीस्टाइरीन की श्रंखला पर मेथिल मीथाक्रिलेट की शाखाओं वाले एक शिल्प बहुलक का निर्माण किया जा सकता है।

रुद्ध-बहुलक के निर्माण के लिये किसी केश नलिका से होकर एकलक दूसरे एकलक में तीव्र गति से प्रविष्ट किया जाता है। केश नलिका के किसी उपयुक्त स्थान पर बहुलकीकरण प्रारम्भ होता है। इस कार्य के हेतु एक अन्य विधि को साधारणतःकाम में लाते हैं। इसके लिये पूर्वनिर्मित सीमावर्ती समूह रासायनिक क्रिया से एक दूसरे से सम्बद्ध हो जाते हैं और एक नियंत्रित बहुलक बना देते हैं। इस विधि से टेरीलीन और ऑलीइथिलीन ऑक्साइड के संयोग से बहुलक बनाये गये हैं। इस प्रकार निर्मित बहुलक लगभग टेरीलीन के समान ही केलासित होता है किन्तु उसमें लचीलापन, आर्द्रता की पुनर्प्राप्ति और रंगों के साथ व्यवहार का गुण अधिक होता है।

(2) रेडियो-समावयवों का प्रयोग : उच्च बहुलक रसायन की समस्याओं पर प्रकाश डालने के लिये C^{14} और S^{35} का विशेष प्रयोग किया गया है। इन प्रयोगों से प्रारम्भ की चरम गति और क्षमता, अम्ल की प्रक्रिया की प्रकृति और मृत बहुलक के साथ श्रृंखला के स्थानान्तरण की प्रकृति आदि का मापन किया जा सकता है। उदाहरणार्थ बेंजोइल पर ऑक्साइड से उत्प्रेरित पॉलीस्टियरीन उत्प्रेरण के स्थान से असम्बद्ध है, उत्प्रेरण चाहे बेंजीन वलय पर हो चाहे कार्बोनिल कार्बन पर। इससे सिद्ध होता है कि C_6H_5COO और $C_6\,H_5$ दोनों ही बहुलकीकरण उत्प्रेरण करते हैं।

(3) बद्ध (टैप्ड) मुक्त-मूलक : जब रासायनिक क्रिया से दीर्घजीवी मुक्त मूलकों का सृजन होता है तब अन्तिम गति क्षीण हो जाती है। इस प्रकार बंधन में पड़े मुक्त मूलकों का अस्तित्व भौतिक और रासायनिक विधियों से ज्ञात किया जा सकता है। बन्धक मुक्त मूलकों के प्राप्त करने के लिये किसी

एकलक पायस पर उच्च शक्ति विकीर्ण करते हैं। इस विधि से प्राप्त मुक्त-मूलकों का सदुपयोग, स्थान्तरण ऐसे प्रयोगों के लिये विशेष सुविधाजनक है। और उसके पायस में जिसमें मुक्त मूलक हो, दूसरे एकलक के उपयोग से रुद्ध बहुलक का निर्माण किया जा सकता है।

(4) विशिष्ट विन्यासमय बहुलक : सन् 1955 ई० में बुहलक रसायन के क्षेत्र में विशेष कार्य विन्यास के बहुलकों पर हुआ। इटैली के बान नाटा और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के जीगलर ने विशिष्ट विन्यासमय बहुलकों का संश्लेषण किया। सभी प्राकृतिक उच्च बहुलकों के अणुओं का विन्यास अद्भुत प्रकार का होता है।

लगभग एक शताब्दी तक संश्लेषण में रत रसायनज्ञों के सामने यह एक समस्या के रूप में रहा। प्राकृतिक रबर में केवल 'सिस' और प्रोटीन में केवल 'लीवो' रूप ही हैं किन्तु संश्लेपण विधि से प्राप्त पॉली आइसोप्रीन अणु में सिस और ट्रान्स दोनों रूप बिना किसी क्रम के होते हैं और यही अवस्था साधारण ऑलीस्टियरीन में डेक्स्ट्रो और लेवो रूपों की है। समूहों के विन्यास की इस क्रमहीनता के कारण केलासन जाल में यह बहुलक श्रंखलायें ठीक नहीं बैठतीं और फलस्वरूप इन पदार्थों के केलासन और यांत्रिक गुणों पर बुरा प्रभाव डालती हैं।

सन् 1955 में जीगलर ने एल्यूमीनियम ट्राईएल्काइल और टाइटैलियम हैलाइड की प्रक्रिया द्वारा उत्प्रेरक का सृजन किया जिसकी सहायता से साधारण ताप और कम दाब पर इथिलीन के बहुलक निर्मित किये गये। इस पॉलीइथिलीन में विशेष गुण पाये गये यथा उच्च केलासन, उच्च घनत्व, उच्च गलनांक आदि। इसी प्रकार के उत्प्रेरकों की सहायता से पॉलीस्टाइरीन आदि प्राप्त की गई। विषमावयवीय उत्प्रेरकों की सहायता से प्राकृतिक रबर का संश्लेषण किया गया जो पॉलीआइसोप्रीन है। जीगलर के उत्प्रेरकों पर अधिक कार्य किया गया है क्योंकि यह औद्योगिक महत्व का है।

प्रोटीन सादृश्य यौगिकों का संश्लेषण

पॉलीन्यूक्लियोटाइडों और प्रोटीन सदृश्य यौगिकों के संश्लेषण में आजकल विशेष रुचि ली जा रही है। इन बहुलकों में एक विशेषता यह है कि अन्य विशाल अणुओं की भाँति ये सर्पिल रूप धारण करने की प्रवृत्ति दिखाते हैं और क्रमहीन रूप धारण नहीं करते। बहुलकों के गुणों को समझने के लिये ये सर्पित संरचनायें विशेष महत्व की हैं।

कुछ विलक्षण बहुलक

आजकल कुछ विचित्र बहुलकों का निर्माण किया जा रहा है। पॉलीविनाइल क्लोराइड की फिल्म पर बाहरी प्रकाश का बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। पॉलीकार्बोनेटों का निर्माण किया जा रहा है जिसकी रेखा सूची को लकड़ी के मोटे तख्ते में जड़ा जा सकता है। संश्लेषित ऊन का सल्फर क्लोराइड से निर्माण किया जा रहा है। यह भौतिक गुणों में प्राकृतिक ऊन के समान है। अत्यन्त उच्च गलनांक के कार्बनिक यौगिक निर्मित हो रहे हैं। पॉली स्टियरीन के एक समजातीय का गलनांक 260^0 सेण्टीग्रेड है।

उच्च बहुलकों ने विज्ञान में अपना एक सुनिश्चित स्थान बना लिया है। उनकी उपादेयता और औद्योगिक जगत में उनका उपयोग बड़े महत्व का है। संसार की औद्योगिक समस्याओं के समाधान का एक मार्ग इस विज्ञान द्वारा खुल गया है। अद्भुत विन्यास के उच्च बहुलकों के संश्लेषण द्वारा जैव जगत की उन समस्याओं को सुलझने का मार्ग दिखाई पड़ने लगा है जिनका नियंत्रण अभी तक दैवी शक्तियों द्वारा ही मान लेना पड़ता था। बहुलक (पॉलीमर) विज्ञान का भविष्य उज्जवल है और इस विज्ञान की वृद्धि के साथ ही मानव जीवन के विकास के सूत्र जुड़े दृष्टगोचर हो रहे हैं।

■ ■ ■

List of Published Papers upto 1976
Prof. R. D. Tiwari and Collaborators

1. Tiwari, R. D., Chemical Examination of the Fatty Oil from the seeds of Ocimum canum, *Proc. Nat. Acad. Sci. India*, 1941, 11, 45.
2. Singh, B. K. and Tiwari, R. D., Chemical Examination of the seeds of Nigella sativa Part I, *Proc. Nat. Acad. Sci. India*, 1942, 12, 141.
3. Singh, B. K. and Tiwari, R. D: Chemical Examination of the seeds of Nigella sativa Part II, *Proc. Nat. Acad. Sci. India*, 1943, 13, 54
4. Singh, B. K. and Tiwari, R. D. Chemical Examination of Sphaeranthus indicus Part I, *Proc. Nat. Acad. Sci. India*, 1943, 13, 88.
5. Singh, B. K. and Tiwari, R. D., Chemical Examination of Cassia alata Part I, Proc. Nat. Acad. Sci India, 1943, 13, 111.
6. Singh, B. K. and Tiwari, R. D. Chemical Examination of Pinus gerardiana, *Proc. Nat. Acad. Sci. India*, 1943, 13, 120.
7. Tiwari, R. D., Chemical Examination of the seeds of Nigella sativa Part III, *Allahabad University Studies, 1944, 1.*
8. Tiwari, R. D., Studies on the Glyceride Structure of Natural Oils and fats, *Proc. Oil Tech. Assn. India*, 1944, 1.
9. Tiwari, R. D., The Chemical Examination of Sphaeranthus indicus Part II, *Proc. Nat. Acad. Sci. India*, 1946, 15, 55.
10. Mehrotra, R. C., Tiwari, R. D. and Dube, H. L., Resorcinol succinein as Adsorption Indicator in Argentometric Titrations, *Current Science*, 1947, 16, 119.
11. Mehrotra, R. C. Tiwari, R. D. and Dube, H. L., Resorcinol succinein as Adsorption Indicator in Argentometric titrations. *J. Ind. Chem. Soc.*, 1947, 24, 165.
12. Tiwari, R. D. and Gupta P. C., Component fatty Acids of the oil from the seeds of Cassia occidentalis, *Proc. Oil Tech. Assn., India*, 1953, 59.
13. Tiwari, R. D. and Gupta, P. C. Chemical Examination of the oil from the seeds of Cucurbita maxima, *Proc. Oil Tech. Assn., India*, 1955, 25.
14. Tiwari, R. D. and Gupta P. C., Component fatty Acids of the oil from the seeds of Cassia tora, *Proc. Oil Tech. Assn. India*, 1955, 111.
15. Tiwari, R. D. and Srivastava, N. P., Crossed Cannizzaro reaction with aromatic and heterocyclic aldehydes, *Recueil Des Travaux Chimioues Des Pays-Bas*, 1956, 75, 254.
16. Tiwari, R. D. and Gupta, P. C. General characteristics of the seeds Facts of the Leguminosae family, *Allahabad University Studies, 1956, 1.*
17. Tiwari, R. D. and Gupta, R. K., Chemical Examination of the oil from the seeds of Clitoria ternatea, *Proc, Oil Tech Assn. India*, 1957, 9.
18. Tiwari, R D. and Gupta R. K., Chemical Examination of the seeds of Bryonia laciniosa, *Ind. J. Appl. chem.*, 21, 31.
19. Tiwari, R. D. and Gupta, R. K., Chemical Examination of the bark of Symplocos racemosa, *Vijnana Parishad Anusandhan Patrika*, 1958, 1, 211.

20. Tiwari, R. D. and Gupta, R. K. Chemical Examination of the seeds of Cletoria ternatea, *Vijnana Parishad Anusandhan Patrika*, 1959, 2, 1.

21. Tiwari, R. D. and Gupta, R. K., Chemical Examination of the leaves of Clitoria ternatea, *J. Ind. Chem. Soc.*, 1959, 36, 243.

22. Tiwari R. D. and Gupta, R. K., A note on the Chemical Examinations of the constituents of the bark of Feronia elephantum, *Current Science*, 1959, 28, 213.

23. Tiwari R. D. and Garg, S. P., Examination of the componet acids of the oil from the seeds of Sesbania grandiflora, *Proc. Oil Tech Assn., India*, 1960, 16, 35.

24. Tiwari, R. D. and Lal, L. B., Phthalein dyes from cyclohexane 1 : 2-dicarboxylic acid, *Vijnana Parishad Anusandhan Patrika*, 1960, 3, 181.

25. Tiwari, R. D. and Garg, S. P., Hexitols from the bark of Clerodendrum indicum, *Ind. J. of Pharmacy*, 1961, 23, 77.

26. Tiwari, R. D. and Srivastava, K. C., Study of the component acids of the viceral fat from the fish Labeo rohita, *Proc. Nat. Acad. Sci., India*, 1962, 32, 111.

27. Tiwari, R. D. and Srivastava, K. C. Study of the component amino acids of the proteins of the fish Labeo rohita, *Ind. J. Fisheries*, 1962, 9, 135.

28. Tiwari, R. D. and Srivastava, K. C., Studies of the liver fat from the fish Labeo rohita Part I, Vijnana Parishad Anusandhan Patrika, 1962, 5, 83.

29. Tiwari, R. D. and Srivastava, K. C. Studies of the liverfat from the fish Labeo rohita Part II, Vitamin A content, *Vijnana Parishad Anusandhan Patrika*, 1962, 5, 143.

30. Tiwari, R. D., Tewari, J. P. and Srivastava, K. C., The Examination of the component Acids of the oil from the seeds of Dipteracanthus prostrata, *Proc. Oil Tech. Assn. India*, 1962, 17, 7.

31. Tiwari, R. D. and Srivastava, K. C., Semi-micro determination of the neutralisation equivalents of higher fatty acids, *Proc. Nat. Acad. Sci., India*, 1962, 32, 119.

32. Tiwari, R. D., Sharma, J. P. and Gangwar, P. G., Semi-micro determination of Nitro-group by reduction with Stannous chloride, *Proc. Nat. Acad. Sci.India, 1962, 32, 119.*

33. Tiwari, R. D. Srivastava, K. C. and Sharma, J. P., Semi- micro determination of the naeutralisation equivalent of higher fatty acids by non-aqueous titration, *Z-anal. Chem.*, 1962, 187, 161.

34. Tiwari, R. D., and Sharma, J. P., Semimicro determination of nitro groups by reduction with Titanous sulphate, Z. anal. Chem., 1962, 191, 329.

35. Tiwari, R. D., Reaction between p-toluidine and m- dinitrobenzene, *Proc. Nat. Acad. Sci. India*, 1963, 33, 381.

36. Misra, S. S., Tiwari, R. D. Jewari, J. P. and Dutta, K. G., Pharmacodynamic Studies of Ketolactone Isolated from bark of the Feronia elephantum, *Ind. J. Med. Res.*, 1963, 51, 48.

37. Tiwari, R. D. and Srivastava, K. C., Study of the component acids from the body fat of the fish Labeo rohita, *Proc. Nat. Acad. ci India*, 1963, 33, 1.

38. Tiwari, R. D. The Chemical Examination of Sphaeranthus indicus Part III, *Proc. Nat. Acad Sci. India*, 1963, 33, 249.

39. Tiwari, R. D. and Dave, P., Chemical Examination of the Pectin from the fruit pulp of Feronia elephantum, *Proc. Nat. Acad Sci. India*, 1963, 33, 407.

40. Tiwari, R. D. and Sharma, J. P., Micro determination of neutralisation equivalents of higher fatty acids by non-aqueous titrations, Z. anal. Chem., 1963, 195, 267.

41. Tiwari, R. D. and Sharma, J. P., Spectrophotometric determination of Hexanitrodip- henylamine in microgram quantities, *Talanta*, 1963, 10, 933.

42. Tiwari, R. D. and Sharma, J. P., Iodometric determination of nitroso group in Semimicro Scale, *Proc. Nat. Acad. Sci. India*, 1963, 33, 79.

43. Tiwari, R. D. and Sharma, J. P., A rapid procedure for the determination of nitro groups on Semimicro and microscales, *Anal. chem*, 1963, 35, 1307.

44. Tiwari, R. D. and Sharma, J. P., MIcro procedure for the determination of nitro, nitroso and azo groups in Organic compounds, *Allahabad University Studies*, 1963, 64, 25.

45. Gupta, R. K. and Tiwari, R. D., Chemical Examination of the leaves of Diospyros peregrina, *Ind. J. of Chemistry*, 1964. 2, 129.

46. Tiwari, R. D. and Dave, P., Isolation and study of the mucilage from the seeds of Dipteracanthus prostrata, *Proc. Symposium Chemistry of Natural Products, Kyoto, Japan*, 1964, 161.

47. Tiwari, R. D., Bajpai, R. K. and Khanna, S. s., Isolation and study of a Tertiary alcohol from the leaves of Sesbania grandiflora, *Arch. Pharm.*1964, 297, 310.

48. Tiwari, R. D. and Tiwari, J. P., Isolation and study of Feronoquinone, a colouring matter from the trunk bark of Feronia elephantum, *Proc. Synposium Chemistry of Natural Products, Kyoto, Japan, 1964, 202.*

49. Tiwari,R. D. and Tiwari, J. P., Structural Studies on Feronolide, a ketolactione from the bark of Feronia elephantum, *Arch. Pharm. Pharm.* 1964, 297, 236.

50. Gupta, R. K. and Tiwari, R. D., Chemical Examination of the bark of Diospyros peregrina, *Proc. Nat. Acad. Sci, India*, 1964, 34, 180.

51. Tiwari, R. D. and Bajpai, R. K., Chemical Examination of Sesbania grandiflora leaves, Isolation and study of a saponin, *Proc. Nat. Acad. Sci., India*, 1964, 34, 239.

52. Tiwari, R. D. and Sharma, J. P., Micro and semimicro determination of nitroso and azo groups by reduction with titanous Sulphate, *Ind. J. of chem.*, 1964, 2, 173.

53. Tiwari, R. D. and Dave, P., Isolation and study of the mucilage from the fruits of Cordia myxa *Proc. Nat. Acad. Sci., India*, 1965, 35, 437.

54. Tiwari, R. D., Agarwal, Sudha Kumari and Awasthi, A. K., Chemical Examination of the mucilage of the seeds of Hygrophila spinosa, *Proc. Nat. Acad. Sci., India*, 1965, 35, 442.

55. Tiwari R. D. and Joshi, Tila, Chemical Examination of the coloured compounds from Cassia alata, *Proc. Nat. Acad. Sci. India 1965, 35, 448.*

56. Tiwari R. D. Sattsangi, P. D. and Srivastava K. C., The fatty acid composition of the Feronia elephanturm trunk bark fat, *Proc. Nat. Acad. Sci., India*, 1965, 35, 456.

57. Tiwari R. D. and Dave, P., Chemical Examination of the mucilage from the seeds of Dipteracanthus prostratus, *Proc. Nat. Acad. Sci, India*, 1965, 35, 461.

58. Tiwari, R. D. and Sattsangi, P. D. Chemical Structure of Feronol, *Bull. Nat. Inst. Sciences, India, 1965, 31 187.*

59. Tiwari, R. D. and Sharma, J. P., Semimicro determination of Saponification equivalents of highter fatty acid esters. *Proc. Nat. Acad. Sci. India*, 1965, 35, 445.

60. Tiwari, R. D. Sharma, J. P. and Shukla, I. C., Determiantion of acetic anhydride in presence of acetic acid, *Microchem. J.*, 1965, 9, 423.

61. Tiwari, R. d. and Sharma, J. P., Reduction of azo compounds with acidic reducing agents, *Anal. Chim. Acta*, 1965, 33, 459.

62. Tiwari R. D. and Bajpai, R. K., Chemical Examination of Sesbania grandiflora bark, Part I, *P.oc. Nat Acad. Sci., India, 1966, 36, 167.*

63. Tiwari R. D. Sharma, J. P. and Shukla, I. C., Milligram determination of primary amides, *Talanta, 1966, 13, 499.*

64. Tiwari R. D. Sharma, J. P. and Shukla, I. C., Semimicro determination of amides and anhydrides using ion exchange resin, *Ind. J. of Chemistry*, 1966, 4, 221.

65. Tiwari, R. D. Srivastava, K. C. and Shukla, Shrirama, Chemical Examination of the fixed oil from the seeds of Desmodium pulchellum, *Indian Journal of Appl. Chemistry*, 1967, 30, 62.

66. Tiwari, R. D. Srivastava, K. C. and Sattsangi, P. D., Chemical Examination of the fixed oil from the seeds of Hygrophila spinosa, *Indian journal of Appl. Chemistry*, 1967, 30, 58.

67. Tiwari R. D. Srvastava, K. C., Shukla, Shrirama, and Bajpai, R. K., Chemical constituents of heart woods, Andhra University, Waltair, 1967, 59.

69. Tiwari, R. D., Sharma, J. P. and Shukla, I. C., Milligram determination of aromatic amines and phenols using N- bromosuccinimie, *Talanta, 1967, 14, 853.*

70. Tiwari, R. D. and Srivastava, K. C., Spot revealing reagents in the paper chromatography of saturated fatty acids, Z. anal. Chem., 1967, 230, 361.

71. Tiwari, R. D. and Srivastava, K. C., Paper chromatography of fatty acids, Z. anal. Che., 1967 232, 117.

72. Pant, M. C., Uddin, I., Bhardwaj, U. R. and Tiwari, R. D., Blood sugar, total cholesterol lowering effect of glycine soja, Mucuna pruriens and Dolichos biflours seed diets in normal fasting Albino rats, *Ind. J. of Medical Research.* 1968, 56, 1808.

73. Tiwari, R. D., Varshney, M. L. and Sinha, M. P., Calactomanans from the seeds of Desmodium gangeticum and Desmodium pulchellum, *5th International Symposium on the chemistry of Natural Products, London*, 1968, 253.

74. Vasudeva, N., Misra, K. and Tiwari, R. D., The chemistry of natural leucoanthocyanidins, *University of Allahabad Studies*, 1968, 1.

75. Kakkar, N., Misra, K. and Tiwari, R. D., Proanthocyanidins of Symplocos racemosa bark, Part I, Proc. Nat. Acad. Sci. India, 1969, 39, 91.

76. Tiwari, R. D., and Pande, U. C., Spectorphotometric determination of tartaric acid and citric acids in milligram quantities, *Microchem J.*, 1969, 14, 138.

77. Tiwari, R. D. and Pande, U. C., Determination of milligram amounts of thiourea and some of its derivatives with N- bromosuccinimide, *Analyst*, 1969, 94, 813.

78. Tiwari, R. D., Srivastava, K. C. and Rastogi, S. C., Distribution of phospholipids in organs of Labeo rohita, *Ind. J. Biochem.*, 1970, 7. 134.

79. Sinha, M. P. and Tiwari, R. D., The structure of a galactomannan from the seeds of Desmodium pulchellum, *Phytoc hemistry*, 1970, 9, 1881.

80. Tiwari, R. D. and Pande, U. C., Spectrophotometric determination of thiourea in microgram quantities, *Microchemica Acta*, 1970, 3, 478.

81. Rastogi, S. C., Tiwari, G. D., Srivastava, K. C. and Tiwari, R. D., Phospholipids from the seeds of Desmodium gangeticum, *Planta Medica*, 1971, 20, 131.

82. Arora, S., Deymann, H., Tiwari, R. D. and Winterfeldt, E., A New Chromone from Cassia siamea, *Tetrahedron*, 1971, 27, 981.

83. Shukla, S. and Tiwari, R. D., 7-methoxylporiol-4'- β-D-Xylopyranosyl D-gluco-pyranoside from heartwood of Feronia elephantum, *Ind. J. Chem.*, 1971, 9, 287.

84. Tiwari, R. D. and Yadav, O. P., Structural Study of the quinones from the roots of Cassia alata, *Planta Medica*, 1971, 19, 299.

85. Tiwari, R. D. and Bansal R. K., Physcion l-gycosyl rhamnoside from seeds of Desmodium pulchellum, *Phytochemistry*, 1971, 10, 1921.

86. Tiwari, R. D. and Yadav, O. P., The favonoids of Cassia javanica flowers, *Phytochemistry*, 1971, 10, 2256.

87. Rastogi, S. C., Srivastava, K. C. and Tiwari, R. D., Quantitative Analysis of Phospholipids by thin layer chromatography and evaluation as Molybdenum blue, Z. Anal. chem., 1971, 253, 208.

88. Tiwari, R. d., Some aspects of organic fuctional groups analysis, *Presidential Address, Section of Chemistry 58th Session of the Indian Science Congress, Bangalore*, 1971.

89. Tiwari, R. D. and Behari, Jai Raj, Chemical Examination of the roots of Cassia tora, *Planta Medica*. 1972, 21, 393.

90. Tiwari, R. D. and Pande, U. C., Spectrophotometric determination of some aromatic nitro-com-pounds in microgram quantities, *Microchem. J.*, 1972, 17, 476.

91. Sharma, J. P. and Tiwari, R. D., Charge transfer complexes and their applications, determination and distinction of some aromatic amines, *Microchem. J.* 1972, 17, 151.

92. Tiwari, R. D. and Misra, K., Chemistry of Biflavonoids, a review, *Rasyan Samiksha*, 1974, 1, 127.

93. Tiwari, R. D. and Pande, U. C., N-bromosuccinimide as an analytical reagent for the determination of organic compounds, *J. Ind. chem. Soc.* 1974, 51, 112.

94. Gandhi, P. and Tiwari, R. D., Synthesis of I-5, II-5, I-7, II-7-tetramethoxy (I-8, II-8) biflavone, *J. Ind. chem. Soc.*, 1975, 52,

95. Gandhi, P. and Tiwari, R. D., Studies in methylenation of some polyphenols, Isolation of dimers linked throught methylenedioxy group, *Current Science*, 1976, 45, 18.

96. Tiwari, R. D. and Tripathi, Hem L., A new flavonol glycoside from the leaves of Symplocas spicata, *Phytochemistry*, 1976, 15, 833.

97. Tiwari, R. D. and Misra, G., Chemical examination of the flowers of Cassia sohera, *Planta Medica, 1975, 28, 182*.

98. Saharia, H. S. and Tiwari, R. D., Flavanoids of Acacia suma heart wood, Quercetin and heperin 3:7-dimethylether, *Current Science*, 1976, 45, 294.

99. Singh, J. and Tiwari, R. D., Flavone glycosides from the flowers of Morinda citrofolia, *J. Ind. Chem. Soc.*, 1976, 53, 424.

100. Saharia, H. S. and Tiwari, R.D., Reductive dimerisation of flavanoids, Synthesis of some biflavanoids, *J. Ind. Chem. Soc.*, 1976, 53, 530.

101. Tiwari, R. D. and Tripathi, Hem L., Arabinogalactan from the leaves of Symplocas spicata, *Planta Media*, 1976, 29, 375.

102. Srivastava, G., Gopal, M., Pande, U. C. and Tiwari, R. D., Micro determination of aromaticnitro-compounds by reduction with Fe(11) in alkaline medium, Z. *Anal. Chem.*, 1976, 280, 30.

103. Srivastava, G., Gopal M. Pande, U. G. and Tiwari, R. D., Spectrophotometric determination of aromatic m-polynitro-compounds using sodium borohydride, Z. *Anal. Chem.*, 1976, 278, 367.

104. Gandhi, P. and Tiwari, R. D., Reductive dimerisation of flavanones, synthesis of biflavones, *Ind. J. Chemistry*, 1976, 14B, 532.

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक स्वामी (डॉ०) सत्यप्रकाश सरस्वती के तत्वाधान में विज्ञान परिषद् इलाहाबाद के सुयोग्य सम्पादक मंडल द्वारा विद्वान लेखकों की बच्चों और बड़ों के लिए सम्पादित व लिखित सचित्र पुस्तकों और एनसाहक्लोपीडिया के विभिन्न खंडों की (जन्हें एन सी आर टी द्वारा पुरस्कृत किया गया) सूची नीचे दी गई है। ये पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी और ज्ञान-वर्धक हैं। ये पुस्तकें पुस्तकायन 2/4240 ए, अंसारी रोड, दरियागंज दिल्ली से प्राप्त की जा सकती हैं।

बाल-ज्ञान विज्ञान साहित्य सचित्र पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	Rs.
हमारा पर्यावरण :	अनिल कुमार शुक्ल	35
मधुमक्खियों की अनोखी दुनिया :	विजय	35
अंटार्कटिका :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	35
भारतीय पुरातत्व विज्ञान	डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव	35
जल कृषि (हाईड्रोपोनिक्स) :	दिनेश मणि	35
लोकोपयोगी रसायन विज्ञान :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
हमारा शरीर और स्वास्थ्य :	डॉ० भानुशंकर मेहता	35
सन्तुलित आहार :	डॉ० विजयहिन्द पाण्डेय, शुभा पाण्डेय	35
भौतिकी के नोबेल पुरस्कार विजेता:	आशुतोष मिश्र	35
ऊर्जा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	25
वैज्ञानिक कृषि :	डॉ० अशोक कुमार	25
जीवों की उत्पत्ति :	विजय	25
कम्प्यूटर :	आशुतोष मिश्र	25
रसायन विज्ञान के नोबेल पुरस्कार विजेता :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
प्रदूषित मृदा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	35
प्राकृतिक घटनाएँ : वैज्ञानिक दृष्टि :	विजय	35
रंग-बिरंगे फल :	दर्शानान्द	35
तारों का अद्भुत् संसार :	आशुतोष मिश्र	50
जैव प्रौद्योगिकी :	मनोज कुमार पटैरिया	35
ईंधन :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	40
भारतीय सभ्यता के साक्षी :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव, गौरेन्द्र नारायण राय चौधरी	35
पानी के रोचक तथ्य :	डॉ० डी० डी० ओझा	35

ज्ञानकोश : बाल विज्ञान एनसाइक्लोपीडिया

पुस्तक	लेखक	Rs.
पक्षी जगत् :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
जल-थल जीव :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
कीट पतंगे, सूक्ष्मजीव जगत्:	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
संचार-परिवहन :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
खोज और खोजकर्ता :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
मानव जगत् :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
पेड़-पौधे :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150

बाल ज्ञान विज्ञान सीरीज की पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	Rs.
क्या क्यों कैसे :	हरिदत्त शर्मा	50
क्या क्यों कैसे :	हरिदत्त शर्मा	50
क्या क्यों कैसे :	हरिदत्त शर्मा	50
ज्ञानवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
मनोरंजक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	50
बुद्धवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
हमारा सूर्य :	शरण	35
हमारा चन्द्रमा :	शरण	35
हमारा पृथ्वी :	शरण	35
पर्यावरण : जीवों का आंगन :	प्रेमानन्द चन्दोला	10
अन्तरिक्ष से आने वाला :	सुरजीत	12
रोहित का सपना :	ब्रह्मदेव	10
विज्ञान के खेल :	सन्तराम वत्स्य	12
विज्ञान के पहिए :	सन्तराम वत्स्य	12

विविध

पुस्तक	लेखक	Rs.
प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	325
प्राचीन भारत में रसायन का विकास :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	395